कबीर की विचारधारा

गोविन्द त्रिगुणायत एम. ए. पी-एच. डी.

साहित्य निकेतन
कानपुर

कबीर की विचारधारा

Kabir Ki Vichar Dhara

(criticism)

[२१००) की धनराशि के हरजीमल डालमिया साहित्य
पुरस्कार से पुरस्कृत]

लेखक

डा० गोविन्द त्रिगुणायत, एम० ए०, पी-एच० डी०

मुरादाबाद

Dr. Govind Trigunayat

साहित्य-निकेतन

कानपुर

प्रकाशक
साहित्य निकेतन,
श्रद्धानन्द पार्क कानपूर

प्रथम संस्करण, सं० २००६
द्वितीय संस्करण सं० २०१४
मूल्य ६) '५०

Rs 6.50

मुद्रक :—
पी० सी० मेहरा
न्यू ईरा प्रेस, इलाहाबाद

त्वदीयं वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पये ।।

निवेदन

मध्यकालीन संतों में कबीर अग्रगण्य हैं। वे कवि, धर्मोपदेष्टा, सुधारक, योगी और भक्त तो थे ही, किन्तु उनका वास्तविक सौन्दर्य उनके विचारक स्वरूप में दिखलाई पड़ता है। उनके अन्य सभी स्वरूप इसी के आश्रित हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने यह बात कई बार संकेतित भी की है।[1] कितनी विडम्बना है कि उनके अन्य स्वरूपों की तो थोड़ी बहुत विवेचना हुई भी, किन्तु उनके विचारक स्वरूप पर किसी ने भी गम्भीरता से विचार नहीं किया। कुछ आचार्यों ने इधर दृष्टि डालने की चेष्टा अवश्य की किन्तु उसकी विशालता और जटिलता को देखकर सम्भवतः वे भी ठिठक गए। फलतः उनका वह स्वरूप रहस्यमय ही बना रहा। लेखक का यह बाल-प्रयत्न उसी के रहस्योद्‌घाटन के हेतु हुआ है। किन्तु यह अकिञ्चन भिखारी अध्यात्म लोक के उस महान् सम्राट् की दिव्य रत्नराशि की झलक भी देख सका है इसमें संदेह है। इसीलिए वह किसी बात का दावा नहीं करता। यद्यपि इस ग्रन्थ का मूल रूप आगरा विश्व-विद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के प्रदान से प्रशंसा के साथ सम्मानित किया जा चुका है किन्तु कबीर के महान् व्यक्तित्व एवं प्रतिभा को देखते हुए, यह उनके विचारक रूप के अध्ययन का अथ रूप ही है इति रूप नहीं।

मैं यह निस्संकोच कह सकता हूँ कि महात्मा कबीर के जटिल विचारक-स्वरूप को समझने और समझाने की शक्ति मुझमें नहीं है। इस दिशा में जो कुछ मैं थोड़ा बहुत समर्थ हो सका हूँ, उसका श्रेय जीवन की कुछ विगत प्रेरणाओं तथा कुछ साधु विद्वानों के आशीर्वादों को है। प्रत्येक कृति का अपना इतिहास होता है। इसका भी एक अलग इतिहास है—बहुत ही करुण और कोमल। उस इतिहास का संकेत करने के लिए न यहाँ समय ही है और न आवश्यकता ही। यहाँ पर दुख के साथ इतना ही कहना है कि जिनकी प्रेरणाओं और आशीर्वादों का यह फल है, उनमें से आज कोई भी इस लोक में मेरी

---

1 क० ग्रं० पृ० ८६ पद ५

प्रयत्नलता की सफलता देखने के लिए अवशेष नहीं है। फिर भी मुझे संतोष है कि उनके अनुरोधों को मूर्त रूप देने में मैंने यथाशक्ति परिश्रम किया है। मुझे विश्वास है कि इसे देखकर उनकी आत्मा प्रसन्न होगी।

यहाँ पर मैं उन समस्त विद्वानों और सज्जनों के प्रति आभार प्रकट करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनकी सहायता और कृपा से मैं अपना कार्य कर सका हूँ। सबसे अधिक श्रद्धा के पात्र पूज्य गुरुवर पं० अयोध्यानाथ जी शर्मा हैं, जिनकी देख-रेख में यह ग्रन्थ लिखा गया है। उनकी कृपा के बिना यह कार्य हो ही नहीं सकता था। इसके बाद मैं पूज्य गुरुवर स्व० पं० चंद्रशेखर पाण्डेय और आचार्य केशवप्रसाद मिश्र को शतशः श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ। वास्तव में यह ग्रन्थ उन्हीं के आशीर्वादों से पूर्ण हो सका है। इनके अतिरिक्त आचार्य क्षितिमोहन सेन, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा तथा डा० भगीरथ मिश्र आदि विद्वानों ने भी लेखक की यथेष्ट सहायता की है। वह इन सब का चिर ऋणी रहेगा। पुस्तक लिखते समय देश विदेश के अनेकानेक विद्वानों के ग्रन्थों का निस्संकोच भाव से उपयोग किया गया है। लेखक इन सभी विद्वानों का हृदय से आभारी है।

अन्त में मैं अपने संस्कृत (एम० ए०) के विद्यार्थी श्री राजेन्द्रकुमार त्रिपाठी के श्रम और धैर्य की सराहना करता हूँ। उन्होंने समय-समय पर प्रतिलिपि कार्य में मेरी बड़ी सहायता की है। इसके लिए वे आशीर्वाद के अधिकारी हैं। ईश्वर उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाए।

मुझे अत्यन्त खेद है कि यह ग्रन्थ उतने सही रूप में प्रकाशित नहीं हो सका जैसी मेरी इच्छा थी। इसमें अनेक अशुद्धियाँ और त्रुटियाँ वर्तमान हैं। विद्वज्जनों से प्रार्थना है कि इनके लिए वे उदारतापूर्वक क्षमा करें। अगले संस्करण में इनका परिहार करने की चेष्टा की जायगी।

—गोविन्द त्रिगुणायत

शिव-सदन, मुरादाबाद
कार्तिक पूर्णिमा २००६

द्वितीय संस्करण के पूर्व

मुझे बड़ा ही परितोष है कि मेरी इस रचना का हिन्दी जगत् ने हृदय से अभिनन्दन किया है। हरजीमल डालमिया साहित्य पुरस्कार समिति दिल्ली ने इसे २१००) की धनराशि से पुरस्कृत कर जो सम्मान प्रदान किया है, वह अभी तक हिन्दी की किसी भी पी-एच० डी० की थीसिस को नहीं प्राप्त है। विभिन्न विश्वविद्यालयों ने तथा साहित्य सम्मेलन आदि संस्थाओं ने अपने यहाँ की उच्चातिउच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित कर ग्रन्थ की महती उपादेयता स्वीकार की है। मैं सभी के प्रति जिन्होंने इस ग्रंथ को गौरवान्वित और सम्मानित किया है हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मुझे विश्वास है कि विद्वतवर पहले की ही भाँति इसका आदर करेंगे तथा इसके प्रचार और प्रसार में योग देंगे।

—गोविन्द त्रिगुणायत

कबीर की विचारधारा

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ**

संकेत सूची

क० ग्रं०—कबीर ग्रन्थावली—डा० श्यामसुन्दर दास
सं० क०—संत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा
रा० सि०—राग सिरी
रा० ग०—राग गउड़ी
रा० आ०—राग आसा
रा० रा०—राग रामकली
रा० भै०—राग भैरउ
स०—सलोक
कठ०—कठोपनिषद्
मुण्ड०—मुण्डकोपनिषद्
माण्डूक्य०—माण्डूक्योपनिषद्
श्वे०—श्वेताश्वतर उपनिषद्
तै०—तैत्तिरीय
वे० सू० भा०—वेदान्त सूत्र भाष्य
ब्र० सू० भा०—ब्रह्म सूत्र भाष्य
हठ० प्र०—हठयोग प्रदीपिका
श्रीमद्०—श्रीमद्भागवत
वैष्णविज्म शैव०—वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस
सिस्टम्स—डा० भण्डारकर
ना० भ० सू०—नारद भक्ति सूत्र
हि० का० धा०—हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन
गो० बा०—गोरख बानी
बृ०—बृहदारण्यकोपनिषद्
छा०—छान्दोग्योपनिषद्

आपही आप विचारिये, तब केता होइ अनन्द रे ॥
तुम जिनि जानौं गीत है, यहु निज ब्रह्म विचार ।
केवल कहि समुझाइया, आतम साधन सार रे ॥

क० ग्रं० पृ० ८६

लेखक की अन्य रचनाएँ

आलोचना—

कबीर और जायसी का रहस्यवाद, उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत पृष्ठ संख्या ३००, मूल्य ४)

शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (प्रथम भाग) पृष्ठ संख्या लगभग ५०० (प्रेस में)

हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, (प्रेस में) पृष्ठ संख्या लगभग ८००

अनुवाद—

हिन्दी दशरूपक उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत, पृष्ठ संख्या २५०, डिमाई साइज, मूल्य ६)

संग्रह—

हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ (कहानी कला पर १०० पृष्ठों की पांडित्य पूर्ण भूमिका सहित) मूल्य ३॥)

प्राप्तिस्थान—

साहित्य निकेतन, कानपुर

कबीर के सम्बन्ध में भ्रान्तिपूर्ण धारणाएँ

कबीर हिन्दी-साहित्य की श्रेष्ठतम विभूति हैं। वे वाणी के उन वरद पुत्रों में हैं, जिनकी प्रतिभा के प्रकाश से हिन्दी साहित्याकाश चिर आलोकित रहेगा। साधु-सन्तों से चिर सम्पर्क रखने के कारण, मुसलमान दम्पति द्वारा प्रतिपालित, हिन्दू संस्कार सम्पन्न सन्त के सम्बन्ध में आलोचकों ने मनमाने मत प्रकट किए हैं। इसी के परिणामस्वरूप सत्य के इस अनन्य समर्थक के सम्बन्ध में अनेक अलीक और एकाङ्गी मत-मतान्तरों का प्रचार हो चला है।

लगभग ५० वर्ष पूर्व लोग महात्मा कबीर के बौद्धिक विकास से इतना अधिक अपरिचित थे कि दयानन्द सरस्वती[1] जैसे सम्भ्रान्त विद्वान् और विचारक ने भी उनके व्यक्तित्व और विचारों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की। पर ज्यों-ज्यों उनकी रचना का अध्ययन होने लगा, लोग उनके महत्व को समझने लगे। किन्तु फिर भी अभी तक विद्वानों में उनके सम्बन्ध में मतैक्य का अभाव है। यही कारण है कि आज भी अनेक विरोधी मत-मतान्तर दिखाई पड़ रहे हैं। यहाँ पर उनमें से कुछ का संकेत कर देना अनुपयुक्त न होगा। उनके कवि-स्वरूप को ही लीजिये। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डा० रामकुमार वर्मा[2] ने उन्हें हिन्दी भाषा का श्रेष्ठ कवि माना है। इसके विरुद्ध कवि-सम्राट् हरिऔध[3] जी ने उनके कवि-स्वरूप को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया है। इसी प्रकार कुछ विद्वान् उन्हें उत्तम रहस्यवादी[4] मानते हैं और कुछ लोग उच्च कोटि का दार्शनिक।[5]

---

१ श्रीमद् दयानन्द सरस्वती कृत—सत्यार्थ प्रकाश पृ०—२२८

२ डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २५६

३ हरिऔध—कबीर वचनावली, भूमिका—पृ० ३८

४ डा० रामकुमार—कबीर का रहस्यवाद

५ डा० श्यामसुन्दर दास कृत हिन्दी साहित्य—पृ० १३८ तथा मिश्र बन्धु कृत मिश्र बन्धु विनोद प्रथम भाग—पृ० २५२-५३

पाश्चात्य विद्वानों ने उन्हें सुधारक का पद दे रखा है।[१] कतिपय अन्य विद्वान् उनको भक्त ही समझते हैं।[२]

इस महात्मा पर अन्य धर्मों का प्रभाव प्रदर्शित करने में और भी अधिक खींचातानी की गई है। कुछ लोगों की धारणा है कि कबीर की विचार-धारा का पूरा-पूरा आधार हिन्दू धर्म ही है।[३] कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं जो उन्हें इसलाम से प्रभावित सिद्ध करते हैं। ये लोग उन्हें सूफी मानते हैं[४] और अपने मत की पुष्टि में उन्हें शेख तकी का मुरीद कहते हैं। इनके विपरीत कुछ विद्वान् हैं जो उनके ऊपर सूफी प्रभाव बहुत कम स्वीकार करते हैं।[५] ईसाई विद्वान् भला कब चूकने वाले थे, उन्होंने उनके ऊपर ईसाई धर्म का ऋण लाद दिया है।[६]

कबीर की दार्शनिक पद्धति के सम्बन्ध में भी काफी मतभेद है। डा० बड़थ्वाल उन्हें अद्वैतवादी[७] मानते थे। डा० की साहब ने उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी[८] कहा है। फर्कुहर साहब उन्हें भेदाभेदवादी मानने के पक्ष में हैं। संस्कृत-साहित्य के निष्णात विद्वान् डा० भण्डारकर ने उन्हें द्वैतवादी समझा है।[९]

उनके योग के सम्बन्ध में भी विविध मत हैं। कुछ उन्हें हठयोगी[१०] समझते

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत—हिन्दी साहित्य का इतिहास—देखिए—कबीर का विवरण—पृ० ८७

२ जुत्शी कृत—कबीर साहब—पृ० ८१

३ डा० ईश्वरीप्रसाद—हिस्ट्री ऑव मुस्लिम रूल इन इण्डिया—पृ० २६८

४ इन्फ्लुएन्स आव इस्लाम ऑन इण्डियन कलचर—देखिए—पृ० १५१ तथा ना० प्र० पत्रिका भाग १४ अंक ४—पृ० ४५०

५ डा० भण्डारकर—वैष्णविज्म और शैविज्म—पृ० ७०

६ जरनल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसायटी, सन् १९०७—पृ० ४९२

७ डा० बड़थ्वाल—निर्गुण स्कूल ऑव हिन्दी पोयट्री

८ डा० की—कबीर एण्ड हिज फालोअर्स—पृ० ७१

९ डा० भण्डारकर—'वैष्णविज्म शैविज्म'—पृ० ७०-७७

१० डा० रामकुमार वर्मा—कबीर का रहस्यवाद

हैं तो कुछ राजयोगी ।[१] कबीर-पंथ में उनका योग "शबद् सुरति योग" के नाम से प्रसिद्ध है । कबीर के जाति, जन्म और तिथि आदि के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के मत-मतान्तर हैं । सबसे अधिक मनोरञ्जक बात तो यह है कि उनके अस्तित्व के सम्बन्ध में ही मतभेद उत्पन्न हो गया है । कुछ ऐसे भी सज्जन हैं जो अस्तित्व को ही संदिग्ध मानते हैं ।[२]

अब विचारणीय यह है कि कबीर के सम्बन्ध में इस प्रकार के एक पक्षीय और विरोधात्मक मत-मतान्तरों का उदय क्यों और कैसे हुआ ? वास्तव में इसका प्रमुख कारण उनके व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य ही है । उनकी दिव्य प्रतिभा ने तत्कालीन समस्त सार-पूर्ण धार्मिक तत्वों का आत्मसाक्षात्कार कर एक ऐसे काव्यमय राम-रूप की अवतारणा की है जो प्रत्यक्ष साधु-स्वरूपी होते हुए भी दिव्य है, अलौकिक है और अनिर्वचनीय ।

"जेहि की रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' वाली उक्ति के अनुसार यदि उनके आलोचकों ने अपनी भावना के अनुकूल ही उनके स्वरूप के अंग-विशेष को देखा तो वह स्वाभाविक ही है ।

महात्मा कबीर का संक्षिप्त जीवन-वृत्त

कवि की वाणी पर, उसके अन्तर्जगत और बहिर्जगत, दोनों की छाया पड़ती है । उसकी मानसिक वृत्तियों का, उसके स्वभाव का, उसकी परिस्थितियों का उनके काव्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है अतः किसी भी कवि की वाणी के प्राण से परिचय प्राप्त करने के लिए उस कवि के जीवन तथा उसके व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन करना परमावश्यक है ।

कबीर का अभी तक कोई प्रामाणिक जीवन-वृत्त नहीं लिखा गया है । कबीर साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'संत कबीर' में इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है । किन्तु उसे हम कबीर की जीवन सम्बन्धी जानकारी की 'इति' नहीं कह सकते । किसी भी कवि या महापुरुष के

---

१ विल्सन—रिलीज़स सेक्ट्स ऑव दि हिन्दूज—पृ० ६९

२ योगाङ्क—(कल्याण)—पृ० ६३०

जीवन वृत्त का निर्माण करने के लिए हमें बहिस्साक्ष्यों और अन्तस्साक्ष्यों का आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ हम पहले बहिस्साक्ष्य की सामग्री पर विचार करेंगे।

बहिस्साक्ष्य की सामग्री

कबीर के जीवन से सम्बन्धित बहिस्साक्ष्य की सामग्री के रूप में हमें तीन चीजें मिलती हैं।

(क) वे प्राचीन ग्रन्थ जिनमें कबीर का कुछ न कुछ विवरण प्राप्त होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के विद्वानों ने प्रायः इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर उनका जीवन-वृत्त लिखा है।

(ख) कबीर से सम्बन्धित स्थान और वस्तुएँ।

(ग) जन-श्रुतियाँ।

हम क्रमशः इनमें से एक-एक का उल्लेख करते हैं :—

(क) प्राचीन ग्रन्थों के रूप में प्राप्त बहिस्साक्ष्य की सामग्री

(१) नाभादास कृत भक्तमाल :—इस ग्रन्थ का रचना काल लगभग १५८५ ई०[1] माना जाता है। इस ग्रन्थ में कबीर के सम्बन्ध में केवल दो पद दिए हैं। इनमें से एक छप्पय तो कबीर पर लिखा गया है और दूसरा छप्पय रामानन्द के सम्बन्ध में। दोनों से कबीर और रामानन्द का सम्बन्ध स्पष्ट होता है। अतः इन दोनों को उद्धृत करते हैं :—

(१) कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो।
जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पच्छपात नहिं बचन सबहि के हित की भाखी ॥
आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥[2]

---

१ डा० रामकुमार वर्मा—सन्त कबीर प्रस्तावना—पृ० ३५

२ देखिए—नाभादास कृत भक्तमाल—पृ० ४६१

(२) श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो।
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरी पद्मावति नरहरि॥
पीपा भवानन्द रैदास धना सेन सुरसरि की घरहरि।
औरो शिष्य प्रशिष्य एकते एक उजागर॥
विश्व मंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर।
बहुत काल वपु धारि कै प्रनत जनत को पार दियौ॥
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियौ॥

भक्तमाल छप्पय ३१[1]

प्रथम छप्पय से केवल कबीर के निष्कपट जीवन और उनकी कथन शैली पर ही प्रकाश पड़ता है। उनके जीवन से सम्बन्धित किसी विशेष ज्ञातव्य बात का पता नहीं चलता। हाँ दूसरे पद से रामानन्द और कबीर का गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। भक्तमाल के आधार पर एक बात और निश्चित की जा सकती है। वह यह कि कबीरदास जी ग्रंथ के रचना काल सं० १६४२ से पूर्व ही अपना कार्य काल समाप्त कर चुके होंगे।

(२) **भक्तमाल की टीका** :—सं० १७०२ में सन्त प्रवर प्रियादास जी ने भक्तमाल की एक विस्तृत टीका लिखी थी। इस टीका में कबीर का जीवन-वृत्त विस्तारपूर्वक लिखा गया है। संक्षेप में उससे निम्नलिखित ज्ञातव्य बातें स्पष्ट होती हैं।

(१) कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। उसने उन पर अत्याचार भी किए थे।

(२) कबीर रामानन्द के शिष्य थे।

(३) कबीरदास जी रामानन्द जी के आशीर्वाद के फल-स्वरूप एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। नीरू तथा नीमा नामक जुलाहे दम्पत्ति ने उन्हें पाला-पोसा था।

इस टीका से दो आवश्यक ज्ञातव्य बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि वे सिकन्दर लोदी के समकालीन थे और दूसरी यह कि वे रामानन्द के शिष्य थे।

---

१ सीताराम भगवानदास द्वारा सम्पादित—भक्तमाल—पृ० २८८

अन्य कई ग्रंथों के उल्लेखों से भी इन दोनों बातों की पुष्टि होती है। उनका जीवन-वृत्त विवेचन करते समय इन दोनों बातों पर हम विस्तार से विचार करेंगे। जहाँ तक जन्मादि सम्बन्धी अन्य कथाओं का सम्बन्ध है वे अधिकतर जन-श्रुतियों पर आधारित हैं और भक्ति के आवेश में लिखी गई हैं। अतः उन्हें हम पूर्ण प्रामाणिक नहीं मान सकते।

(३) रैदास जी की बानी :—रैदास जी ने अपनी बानियों में दो बार कबीर का उल्लेख किया है वे क्रमशः इस प्रकार हैं :—

(क) निरगुन का गुन देखो आई,
देही सहित कबीर सिधाई।[1]

(ख) जाके ईदि बकरीदि कुल गऊरे बध करहि,
मानिअहि सेष सहीद पीरा।
जाकै बापि वैसी करी पूत असी सरी,
तिहुरे लोक परसिद्ध कबीरा।
आदि गुरु ग्रन्थ साहिब तरन तारन पृ० ६६८

रैदास जी की बानी में पाये जानेवाले इन दोनों अवतरणों से केवल दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि वह निर्गुणोपासक थे और दूसरी यह कि वे मुसलमान कुलोद्भव थे।

(४) गरीबदास जी की बानी :—गरीबदास जी ने 'परख को अंग' में कबीरदास जी का इस प्रकार वर्णन किया है :—

गरीब सेवक होय कै उतरे इस पृथ्वी के माँहि।
जीव उधारन जगत गुरू बार बार बलि जाहि॥
गरीब कासी करत किया उतरे अधर मंझार।
मोमन को मुजरा हुआ जंगल में दीदार॥

गरीब कोटि किरनि शशि भान सिधि आसन गगन विमान।
परसत पूरण ब्रह्म कूँ सीतल पिण्ड अरु प्राण॥

---

१ बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित—रैदास जी की बानी—पृ० ३२

गरीब गोद लिया मुख चूम करि हेम रूप झलकंत ।
जगर मगर काया करै दमकै पदम अनन्त ।।
गरीब कासी उभरी गुल भया मोमन का घर घेर ।
कोई कहे ब्रह्म विष्णु है कोई कहै इन्द्र कुबेर ।।

इस अवतरण में स्पष्ट ही कबीर की दिव्य महिमा का वर्णन किया गया है। इसमें वे जन्म से मुसलमान और एक सिद्ध पुरुष माने गये हैं। इस अवतरण से यह भी ध्वनि निकलती है कि वे काशी में ही निवास करते थे।

(५) धर्मदास जी का 'निर्भय ज्ञान' :—इस ग्रन्थ में लिखा है कि कबीर के सत्लोक कूच कर जाने पर उनके शव पर वीरसिंह बघेला तथा बिजली खाँ में युद्ध हुआ और अन्त में शव के स्थान पर कुछ पुष्प ही शेष रह गये जिन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों ने आपस में बाँट लिया।

इस घटना से यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीरदास जी की मृत्यु बिजली खाँ के समय में हुई थी। आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया[1] में लिखा है कि सन् १४५० ई० में बिजली खाँ ने कबीरशाह का स्मारक बनवाया था। अतः इससे यह स्पष्ट ही है कि कबीर की मृत्यु सन् १४५० के पूर्व हो चुकी थी।

(६) गुरू ग्रन्थ साहब :—इस ग्रन्थ में कबीरदास जी के बहुत से 'सलोकु' और राग संग्रहीत हैं। कबीरदास के अतिरिक्त कुछ अन्य संतों की बानियाँ भी पाई जाती हैं। कबीरदास जी के 'सलोकुओं' और 'रागों' से जो बातें स्पष्ट होती हैं उनका उल्लेख तो हम कबीर की जीवनी के अन्तस्साक्ष्यों का विवेचन करते समय करेंगे। यहाँ पर अन्य सन्तों की बानियों का ही उल्लेख करना उपयुक्त होगा। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

(१) नाम छीबा कबीरु जुलाहा पूरे गुरु ते गति पाईं।

(नानक, सिरी रागु)

(२) नाम जै देऊ कबीरु त्रिलोचन अउ जाति रविदास ।।
चमिआरु चलईआ

(नानक, राग विलावलु)

---

१ आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया (न्यूसिरीज) वेस्टर्न प्राविंसेस भाग २—पृ० २२४

(३) बुनना तनना तिआगि कै प्रीति चरन कबीरा।
नीचा कुला जुलाहरा भइओं गुनीय गहीरा॥

(भगत धनेजी, रागु आसा)

(४) नामदेव कबीर तिलोचनु सधना सैन तैरे।
कहि रविदास सुनतु रे संतहु हर जीउ ते सभै सरै॥

(भगत रविदास, राग मारू)

(५) हरि के नाम कबीर उजागर।
जनम जनम के काटे कागर॥

इत्यादि (भगत रविदास, रागु आसा)

(६) जाके ईदि बकरीदु कुल गऊरे बध करहि।

(भगत रविदास, रागु मलार)

(७) गुण गावे रविदासु भगतु जै देव त्रिलोचन।
नामा भगति कबीर सदा गावहि समलोचन॥

(सवईए महले पहले के)

इन अवतरणों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कबीर की किसी भी जीवन-घटना का उल्लेख नहीं है। केवल नानक जी की बानी से यह पता लगता है कि उन्होंने 'पूरे गुरु ते' गति पाई थी। 'पूरे गुरु' से रामानन्द का अर्थ लेना अधिक उपयुक्त मालूम होता है। 'पूरे' का पूर्ण, उपयुक्त, योग्य आदि अर्थ लगा लेने से स्पष्ट ही उस युग के श्रेष्ठ गुरु रामानन्द की ओर संकेत मालूम होता है। डा० मोहन सिंह ने 'पूरे गुरू' से ब्रह्म का अर्थ लिया है।[1] मेरी समझ में यह अर्थ केवल खींचातानी करके ही लिया जा सकता है।

(८) कबीर साहब की परिचइ[2] :—इस ग्रंथ के लेखक अनन्त दास जी हैं। अनन्त दास जी सन्त रैदास के परवर्ती थे।[3] यह ग्रन्थ सन् १६०० के आस-

---

१ डा० मोहन सिंह—कबीर—हिज बायोग्रैफी—पृ० २३

२ डा० रामकुमार वर्मा—संत कबीर—पृ० ३६

३ खोज रिपोर्ट—१६०६-११

पास लिखा गया था। इस ग्रन्थ में कबीर के जीवन से सम्बन्धित निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं :—

(१) वे जुलाहे थे और काशी में वास करते थे।

(२) वे गुरु रामानन्द के शिष्य थे।

(३) बघेल राजा वीर सिंह कबीर के समकालीन थे।

(४) सिकन्दरशाह का काशी में आगमन हुआ था और उन्होंने कबीर पर अत्याचार भी किए थे।

(५) कबीर ने १२० वर्ष की आयु पाई थी।

कबीर के जीवन-वृत्त लिखने में इन सभी बातों से काफी सहायता मिली है। उनके जीवन के विविध अंगों का विवेचन करते समय इनका भी उपयोग किया गया है।

(६) **संत तुकाराम** :—संत तुकाराम की रचनाओं में भी कबीर से सम्बन्धित निम्नलिखित एक पंक्ति पाई जाती है :—

'गोरा कुम्हार, रविदास चमार, कबीर मुसलमान, सेन नाई, जना बाई कुमारी अपनी भक्ति के कारण ईश्वर में लीन हो गए।'

इस पंक्ति से कोई विशेष बात तो नहीं स्पष्ट होती पर हाँ इतना अवश्य है कि उनके मुसलमान होने का समर्थन हो जाता है।

(१०) **संत पीपा की बानी** :—संत पीपा की बानियों में भी कबीर की प्रशंसा में एक पद मिलता है। उस पद में कोई ज्ञातव्य बात नहीं वर्णित की गई है। हाँ इतना अवश्य अनुमान लगाया जा सकता है कि कबीरदास जी या तो उनके समकालीन होंगे या उनसे पहले हो चुके होंगे। संत पीपा का समय सन् १४२५[1] माना जाता है। अतः स्पष्ट है कि कबीर सन् १४२५ तक दिवंगत हो चुके थे।

(११) **प्रसङ्ग पारिजात**[2] :—इस ग्रंथ की चर्चा अक्टूबर सन् १९३२ की

---

१ देखिए—मेडिवल मिस्टीसिज्म—पृ० ८४

२ श्री शङ्कर दयालु श्रीवास्तव एम० ए०—स्वामी रामानन्द और प्रसङ्ग पारिजात—'हिन्दुस्तानी' अक्टूबर १९३२

हिन्दुस्तानी पत्रिका में हुई है। इसके लेखक कोई चेतन दास नाम के साधु माने जाते हैं।

यह ग्रन्थ पैशाची भाषा के शब्दों से युक्त देस वाड़ी प्राकृत में लिखा गया है। इस ग्रन्थ में कबीर को रामानन्द का शिष्य माना गया है। इसके लेखक साधु ने लिखा है कि वह रामानन्दजी की वर्षी के अवसर पर उपस्थित था। यदि यह सत्य है तो कबीर और रामानन्द का गुरु-शिष्य सम्बन्ध पूर्णतया सिद्ध हो जाता है।

(१२) सरब गुटिका :—इस हस्तलिखित ग्रन्थ का उल्लेख डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'सन्त कबीर' में किया है। इसमें ही श्री कबीर साहब की परिचई भी संग्रहीत है तथा इसी में एक ग्रन्थ और है—उसमें भी कबीर और रामानन्द का गुरु-शिष्य सम्बन्ध ध्वनित मिलता है।[1] इनके अतिरिक्त मुकुन्द कवि का 'भक्ति माल,' रघुराजसिंह की 'राम रसिकावली' आदि ग्रन्थों में भी कबीर के वर्णन मिलते हैं, किन्तु वैज्ञानिक विवेचना की दृष्टि से इनका कोई मूल्य नहीं है।

(१३) कुछ कबीर पंथी ग्रन्थ :—इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ कबीर पंथी ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। जिनमें कबीर के सम्वन्ध में कुछ न कुछ विवरण मिलते हैं। किन्तु वे प्रायः साम्प्रदायिक भावना से लिखे जाने के कारण अत्यन्त अति-रञ्जनापूर्ण मालूम होते हैं। फिर भी यहाँ पर संक्षेप में उनमें से प्रमुख ग्रन्थों में दी हुई सामग्री का उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा।

(क) भवतारण :—इस ग्रन्थ में कबीर साहब[2] अवतारी महापुरुष कहे गये हैं उनको ईश्वरत्व की कोटि तक पहुँचा दिया गया है।[3] इस ग्रन्थ के लेखक कबीर के प्रधान शिष्य धर्मदासजी हैं।

(ख) अमरसिंह बोध :—इस ग्रन्थ में कबीर और चित्रगुप्त का सम्वाद वर्णित है। कबीर की विजय और चित्रगुप्त की पराजय दिखलाकर कबीर की महत्ता का अच्छा प्रतिपादन किया गया है। उनके जीवन-वृत्त निर्माण में इस ग्रन्थ से कोई सहायता नहीं मिलती।

---

१ अमरसिंह बोध—वेङ्कटेश्वर प्रेस—पृ० १०

२ डा० रामकुमार वर्मा—सन्त कबीर—पृ० ६२

३ भवतारण—सरस्वती विलास प्रेस—पृ० ३१,३२

(ग) गोरख कबीर गुष्टि :—इस ग्रन्थ में कबीरदास जी को गोरखनाथजी के प्रति उपदेश देते हुए चित्रित किया गया है। ग्रन्थ की वर्णना से स्पष्ट प्रकट होता है कि कबीर के महत्व का प्रतिपादन ही ग्रन्थकार का मुख्य लक्ष्य है। यह ग्रन्थ जोधपुर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित है।

(घ) कबीर चरित्र बोध :—कबीर पंथियों में यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसी ग्रन्थ में कबीर की जन्म तिथि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है 'संवत चौदह सौ पचपन विक्रमी ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन सत्य पुरुष का तेज काशी के लहर तालाब में उतरा। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गये।[1]

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी बहुत से कबीर-पंथी ग्रन्थ हैं जिनमें कबीर का जीवन-वृत्त वर्णित है। इनमें 'अमर सुख निधान', 'अनुराग सागर,' 'निर्भय-ज्ञान,' 'द्वादस पंथ,' 'कबीर परिचय' आदि प्रमुख हैं। प्रायः इन सभी ग्रन्थों में कबीर को एक दिव्य अवतारी ब्रह्म सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। किसी भी ग्रन्थ में वैज्ञानिक ढंग से जीवन-वृत्त लिखने की प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती है।

(१४) कुछ उर्दू और फारसी के ग्रन्थ :—महात्मा कबीर का सम्बन्ध हिन्दू और मुसलमान दोनों से समान रूप से था। अतः हिन्दी ग्रन्थों के अतिरिक्त उर्दू और फारसी के ग्रन्थों में भी उनका उल्लेख पाया जाना स्वाभाविक है। इन उर्दू और फारसी के ग्रन्थों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं :—

(क) खजीन अत्तुल असफिया[2] :—इसके रचयिता मौलवी गुलाम सरवर हैं। इस ग्रन्थ में कबीर की जन्म तिथि का हिजरी में उल्लेख है। हिजरी को सम्वत् में परिवर्तित करने पर कबीर की जन्म तिथि सन् १३६४ आती है। यह तिथि देखने मात्र से ही भ्रामक और अशुद्ध प्रतीत होती है। दूसरी बात जो इस ग्रन्थ में वर्णित है, वह है कबीर का शेख तकी का मुरीद होना। सम्भवतः कबीर को शेख तकी का मुरीद मानने वाली बात इसी ग्रन्थ के आधार पर प्रचलित है।

---

१ कबीर चरित्रबोध—वेङ्कटेश्वर प्रेस—पृ० ६

२ प्रथम वाल्यूम—पृ० ४४६

(ख) दबिस्ताने मजाहिब[1]:—इस ग्रन्थ के लेखक कोई मोशिन फानी नाम के मुसलमान सज्जन हैं। ट्रोयर और शी महोदयों ने मिलकर इसका अनुवाद भी किया है। इस ग्रन्थ की सबसे विशेष उल्लेखनीय बात यही है कि कबीर रामानन्द के शिष्य थे।

(ग) तजकीरुल फुकरा :—मौलवी नसीरुद्दीन लिखित इस ग्रन्थ से भी केवल इतना ही ज्ञात होता है कि कबीर रामानन्द के शिष्य थे।

(घ) आइने अकबरी :—यह ग्रन्थ १५६८ में लिखा गया था।[2] इसमें कबीरदास जी का दो स्थलों पर उल्लेख किया गया है। प्रथम अवतरण में कबीर की मृत्यु के बाद जो हिन्दुओं और मुसलमानों में विग्रह हुआ था उसका उल्लेख है और दूसरे स्थल पर कबीर की समाधि-स्थल के सम्बन्ध में जो मतभेद है उसका वर्णन है। कुछ लोग तो उनकी समाधि रतनपुर में (सूबा अवध) बतलाते हैं, और कुछ उसे पुरी के पास सिद्ध करते हैं। आइने अकबरी का लेखक द्वितीय मत के पक्ष में मालूम होता है।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि के इन ग्रन्थों के अतिरिक्त बहुत से आधुनिक विद्वानों ने कबीर के सम्बन्ध में अपने-अपने मत प्रकट किए हैं। इन विद्वानों में डा० भण्डारकर, मेकलिफ, विल्सन, फर्कुहर, राय दत्त, इलियट, वेस्कट आदि प्रमुख हैं।

इन सभी विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रायः जन-श्रुतियों या कबीर पंथी ग्रन्थों के आधार पर निश्चित किए हैं। किसी ने कबीर के जीवन-वृत्त की खोज करने की चेष्टा नहीं की है। अतः यहाँ पर उनका विस्तृत विवरण देना अनावश्यक है।

हाँ, इधर हिन्दी के कुछ विद्वानों ने कबीर के जीवन-वृत्त का सही विवेचन प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। इन विद्वानों में डा० रामकुमार वर्मा,[3] डा०

---

१ दबिस्तान-ए-मजाहिब-ट्रोयर शी का अनुवाद, फर्स्ट वाल्यूम—पृ० ४४६

२ आइने अकबरी – ब्लाकमैन कृत अनुवाद, इण्ट्रोडक्शन—पृ० १०

३ देखिए—डा० रामकुमार वर्मा कृत सन्त कबीर की भूमिका

हजारी प्रसाद,[1] डा० बड़थ्वाल,[2] डा० रामप्रसाद त्रिपाठी,[3] श्री चन्द्रवली पाण्डे,[4] डा० मोहन सिंह,[5] श्री हरिऔध,[6] डा० श्याम सुन्दर दास[7] आदि अग्रगण्य हैं, इन सबके द्वारा दिए गए विवरणों को उद्धृत करना यहाँ पर असम्भव है और अनावश्यक भी। जीवन-वृत्त का विवेचन करते समय इन सभी विद्वानों की सम्मतियों पर समीक्षात्मक दृष्टि रक्खी गई है।

(ख) कबीर से सम्बन्धित स्थान और वस्तुएँ

कबीर से सम्बन्धित स्थानों में सबसे अधिक विचारणीय काशी, मगहर और मानिकपुर हैं। इनके अतिरिक्त जगन्नाथपुरी, रतनपुरी, नर्मदा तट आदि स्थानों में अभी विशेष खोज की आवश्यकता है। यह स्थान भी कबीर से विशेष सम्बन्धित बताए जाते हैं। जहाँ तक बहिस्साक्ष्य की वस्तुओं का सम्बन्ध है, इनमें कबीर के विविध चित्र भी प्रमुख रूप से विचारणीय हैं। पहले हम क्रमशः कबीर से सम्बन्धित स्थानों का विवरण देने का प्रयत्न करेंगे।

मगहर :—इस स्थान का संकेत कबीर ने अपनी कई बानियों में किया है। जनश्रुति भी है कि महात्मा कबीरदास जी ने अपने नश्वर शरीर का त्याग इसी स्थान पर किया था। मगहर वस्ती जिलान्तर्गत आमी नाम की छोटी सी नदी पर स्थित है। यहाँ पर पास ही पास दो मठ बने हुए हैं। इनमें से एक में एक कब्र बनी हुई है और दूसरे में हिन्दू ढंग की एक समाधि। समाधि के एक ओर देहरी में पादुकाएँ रक्खी हुई हैं जो देखने में अत्यन्त प्राचीन मालूम होती हैं। इसमें प्रायः एक साधु बैठे रहते हैं और धूप दीप जलाया करते हैं। पास में ही

---

१ देखिए—डा० हजारी प्रसाद कृत—कबीर

२ डा० बड़थ्वाल—निर्गुण स्कूल ऑव हिन्दी पौयट्री, परिशिष्ट के नोट्स

३ कबीर जी का समय—हिन्दुस्तानी भाग २ अं० २ पृ० २०७

४ देखिए—चन्द्रवली पाण्डेय—कबीर साहब का जीवनवृत्त
ना० प्र० स० पत्रिका भा० १४

५ डा० मोहन सिंह—कबीर एण्ड हिज बायौग्रैफी

६ कबीर वचनावली

७ कबीर ग्रन्थावली

आमी नदी बहती है। इस आमी नदी का भी अपना अलग इतिहास है। कहते हैं कि मगहर से लगभग २० मील दूर एक बड़ा भारी आम का वृक्ष था। एक बार इसी वृक्ष के नीचे सद्गुरू कबीर और योगी गोरखनाथ में योग चर्चा चल पड़ी। इतने में ही गोरखनाथ ने अपनी योग सामर्थ्य दिखलाने के लिए पैर से गड्ढा करके उसमें से जल निकालकर कबीर दास जी को दिया। इस पर कबीर दास जी ने कहा—योगिराज, इतने जल से प्राणियों की तृप्ति नहीं हो सकती। इस स्थल पर एक नदी की आवश्यकता है। अगर आप में शक्ति हो तो नदी प्रवाहित करके दिखला दीजिए। गोरखनाथ जी ऐसा न कर सके। तब महात्मा कबीर दास जी ने वहीं पर अपनी उँगलियों से तीन रेखाएँ खींचीं। क्षण भर में उन रेखाओं से जलधारा बह निकली। यही जलधारा लोक में आमी नदी के नाम से प्रसिद्ध है। मगहर का पर्यवेक्षण करने पर भी कबीर के सम्बन्ध में किसी नवीन बात का पता नहीं चल पाता है। मगहर के मठों से केवल इतना अनुमान किया जा सकता है कि महात्मा कबीर की प्रतिष्ठा हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही वर्गों में समान रूप से थी। मठों आदि को देखकर, जनश्रुतियों पर विश्वास कर अन्तस्साक्ष्य के द्वारा समर्थन किए जाने पर हमें ऐसा विश्वास होता है।कि महात्मा कबीर मगहर में ही सतलोक गामी हुए थे और वहीं उनकी जन्मभूमि भी थी।

काशी :—काशी में कबीर पन्थियों का प्रमुख स्थान कबीर-चौरा है। इस स्थान में दो हाते बने हुए हैं। इनमें से एक नोरूतिला के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं यहीं पर नीरू और नीमा का मकान था। दूसरा हाता कबीर चौरा का है। दोनों के मैदानों में नीम के पेड़ लगे हुए हैं तथा बहुत से मठ बने हैं, जिनमें कुछ कबीर पन्थी साधू भी रहते हैं। यहीं आँगन में एक वेदिका बनी हुई है। कहते हैं कि महात्मा कबीर यहीं बैठकर उपदेश देते थे। इस पर खड़ाऊँ भी रक्खे हुए हैं। ऐसा प्रचलित है कि ये महात्मा कबीर दास जी के खड़ाऊँ हैं। किन्तु देखने में वे अधिक प्राचीन नहीं प्रतीत होते। एक कोठरी में महन्तजी की गद्दी बनी हुई है और बहुत से कबीर पन्थी गुरुओं के चित्र भी लगे हुए हैं। नीरूतला में नीरू और नीमा की कबरें भी बनी हुई हैं। कबीर-चौरा से दो मील की दूरी पर लहर तालाब है। कहते हैं यहाँ पर कबीर दास जी तेज रूप में कमल पर प्रकाशित हुए थे।

कबीर चौरा में हमें कबीर के एकाध चित्रों के अतिरिक्त कोई भी ऐसी प्रामाणिक वस्तु नहीं मिलती जिससे कबीर के जीवन-वृत्त-लेखन में कुछ सहायता मिल सके।

मानिकपुर :—मौलाना गुलाम सरवर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ खज़ीन अत्तुल असफिया[1] में लिखा है कि महात्मा कबीर शेख तकी के मुरीद थे। बीजक की ४८ वीं रमैनी से भी ऐसा ज्ञात होता है कि कबीर दास जी मानिकपुर में जाकर रहे थे। किन्तु मानिकपुर में खोज करने पर केवल शेख तकी की टूटी-फूटी कब्र का तो पता अवश्य लगता है किन्तु वहाँ कबीर से सम्बन्धित कोई भी वस्तु उपलब्ध नहीं होती। अतः कबीर के जीवन-वृत्त-लेखन में हमें मानिकपुर से कोई सहायता नहीं मिलती है। विद्वानों ने, खोजों के आधार पर, यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि महात्मा कबीर दास जी ने जगन्नाथपुरी,[2] रतनपुर,[3] बगदाद, समरकन्द,[4] गुजरात,[5] पंढरपुर,[6] आदि स्थानों की यात्रा की थी। किंतु इन स्थानों में कबीर के जीवन से सम्बन्धित कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है।

कबीर के विविध चित्र

कबीर के जीवन से सम्बन्धित प्राप्त वस्तुओं में से कबीर दास जी के विविध चित्र विशेष विचारणीय हैं। इन चित्रों के आधार पर उनकी वेश भूषा रहन सहन आदि पर कुछ प्रकाशन पड़ सकता है। अभी तक कबीर दास जी के सात ऐसे चित्र प्राप्त हुए हैं जिन्हें प्रामाणिक मान सकते हैं।

वे चित्र इस प्रकार हैं :—

(१) कबीर चौरा काशी का चित्र।

(२) रामानन्द टु रामतीर्थ नामक ग्रन्थ में दिया हुआ चित्र।

---

१ खजीन अत्तुल असफिया फर्स्ट वाल्यूम—पृ० ४४६

२ टेवर्नियर लिखित ट्रेवेल्स भाग—२ पृ० २२६

३ खुलासातुत्तवारीख—पृ० ४२ (दिल्ली का संस्करण)

४ कबीर मंसूर में लिखा है।

५ सेन कृत मेडिवल मिस्टीसिज्म—पृ० ६८, ६६

६ ए हिस्ट्री ऑव मरहठा पीपुल भाग २—पृ० ७०६

(३) ब्रिटिश म्यूजियम वाला चित्र।

(४) कलकत्ता म्यूजियम का चित्र।

(५) गुरु अर्जुनदेव के लाहौरवाले गुरुद्वारे में फ्रेस्को के रूप में वर्तमान चित्र।

(६) युगलानन्द द्वारा प्रदत्त चित्र।

(७) पूना की चित्रशाला वाला चित्र।

(१) **कबीरचौरा वाला चित्र :**—इस चित्र में कबीर दास जी एक मामूली कद के हृष्ट पुष्ट व्यक्ति के रूप में चित्रित हैं। वे एक पायजामा पहने हुए हैं तथा वाह्याकार से वे केवल एक मुसलमान साधु ही नहीं वरन् अवतारी महापुरुष भी मालूम पड़ते हैं। इस चित्र से महात्मा कबीर के वास्तविक रूप का पता लगाना जरा कठिन मालूम पड़ता है।

(२) रामानन्द टु रामतीर्थ नामक पुस्तक में दिया हुआ कबीर का चित्र सिद्ध महापुरुष के सभी लक्षणों से युक्त दिखलाया गया है। वे महंतों की सी गद्दी पर बैठे हुए हैं तथा राजाओं का सा छत्र उनके मस्तक पर सुशोभित है। हाथ में माला धारण किए हुए हैं। इस चित्र को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि यह कबीर की मृत्यु के बाद कबीर पंथ के स्थापित होने पर ही बनाया गया होगा। उनके कानों में नाथ पंथियों के से कुण्डलों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि साधारण जनता उन्हें सिद्ध और नाथ परम्परा में होने वाला एक सिद्ध महापुरुष ही मानती थी। इस चित्र में वे उसी रूप में चित्रित किये गये हैं।

(३) **ब्रिटिश म्यूजियमवाला चित्र :**— इस चित्र में कबीर दास जी अपने वास्तविक रूप में चित्रित किये गये हैं। चित्र में एक कुटी सी बनी हुई है। आश्रम का सा वातावरण है। कबीर दास जी नंगे बैठे हुए करघा चलाकर कपड़ा बुनते हुए दिखाये गए हैं। उनके गले में एक कंठी सी दिखाई देती है जो नीच जाति के भक्त लोग अब भी पहनते हैं। उनके दोनों ओर उनके दो चेले बैठे हुए हैं। उनमें से एक चेले के गले में एक माला पड़ी हुई है वह देखने में हिन्दू मालूम होता है। दूसरा व्यक्ति देखने में मुगलकालीन मुसलमान मालूम पड़ता है। उसके हाथ में एक सारङ्गी भी है। सम्भव हो कोई मुसलमान संगीतज्ञ

हो जो सत्संग की इच्छा से कबीर के पास आया हो, मुझे कबीर के प्राप्त सभी चित्रों में यही प्रामाणिक प्रतीत होता है। इसके कई कारण हैं।

(१) इसमें कबीर एक सामान्य भक्त एवं धार्मिक जुलाहे के रूप में चित्रित किये गये हैं। निश्चय ही यह चित्र कबीर के जीवन काल का ही होगा। यदि उनकी मृत्यु के बाद बनाया गया होता तो इसमें अन्य चित्रों की भाँति उनका महापुरुषत्व, अवतारीपन, आदि दिखलाने की चेष्टा की गई होती।

(२) चित्र कला की शैली भी कबीर कालीन ही प्रतीत होती है। यद्यपि बहुत से विद्वान् इसे १८ वीं शताब्दी की मुगल कला का उदाहरण रूप मानते हैं, किन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मुगल कालीन आडम्बर प्रियता इसमें रत्ती भर भी नहीं है। केवल एक पार्श्ववर्ती की रूप रेखा मुगल कालीन सी प्रतीत होती है। उनके दाढ़ी आदि नहीं है। दाढ़ी आदि न रखने का फैशन मुसलमानों में मुगल काल में ही चल पड़ा था। बहुत सम्भव है यह महाशय कोई हिन्दू ही हों जो युग के अनुरूप वेश-भूषा में होने पर भी हिन्दुओचित ढङ्ग पर दाढ़ी आदि न रक्खे हुए हों। इस चित्र से कबीरदास जी के जीवन की कई बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम तो यह कि वे अत्यन्त सरल, आडम्बर विहीन एवं स्वाभाविक जीवन व्यतीत करते थे। दूसरे यह कि वे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के अनुयायी होते हुए भी कर्मयोग में पूर्ण विश्वास करते थे। उनकी रचनाओं से यह बात स्पष्ट भी होती है। उनकी कुटी और उसके वातावरण से भी ऐसा अनुभव होता है। वह महात्मा कबीर के बिल्कुल अनुरूप ही है।

(४) **कलकत्ते म्यूजियम का चित्र**:—यह चित्र उपर्युक्त चित्र से ही मिलता-जुलता है इसमें कबीर अपने स्वाभाविक रूप में चित्रित किए गए हैं। इस चित्र में वे अकेले नहीं हैं। उनका कोई शिष्य उनके पास है। मेरा अनुमान है यह चित्र ब्रिटिश म्यूजियम के चित्र के आधार पर बनाया गया होगा। सम्भवतः इसीलिए दोनों में काफी साम्य मालूम पड़ता है।

(५) **गुरु अर्जुन देव के गुरुद्वारेवाला चित्र**:—उपर्युक्त दोनों चित्रों के समान इस चित्र में भी कबीर स्वाभाविक रूप में ही चित्रित हैं। इसमें भी उपर्युक्त दोनों चित्रों के समान ही वे करघा चलाते हुए दिखलाए गए हैं। इस चित्र में कबीर साधु और सामान्य व्यक्ति के रूप में ही दिखाए गए हैं। इसमें वे ब्रिटिश

म्यूजियमवाले चित्र के समान नङ्गे भी नहीं दिखलाए गए हैं किन्तु जो वस्त्र वे पहने हुए हैं वे बहुत ही मामूली साधारण जनोपयुक्त हैं। इसमें उनका कद कुछ नाटा और उनकी आकृति कुछ चपटी, सुदृढ़ और गठीली अंकित है। इसमें उनके बड़ी-बड़ी दाढ़ी मूछें भी दिखाई गई हैं। उनकी बाईं ओर कई शिष्य बैठे हैं। एक ओर एक स्त्री भी चित्रित है। चित्र के आकार-प्रकार से मुझे यह चित्र अधिक प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता। बहुत सम्भव है कि ब्रिटिश म्यूजियम वाले चित्र के अनुकरण पर ही यह चित्र बाद को बनाया गया हो।

(६) युगलानन्दवाला चित्र :—यह चित्र कबीर ग्रन्थावली के प्रारम्भ में ही दिया हुआ है। इसमें कबीर एक सूफी शेख के रूप में चित्रित किए गए हैं। मेरा अनुमान है कि यह चित्र बाद का है और गुलाम सरवर के मतावलम्बियों की कृति है। इसीलिए इसमें वे सूफी फकीर के वेश में अंकित किए गए हैं।

(७) पूनावाला चित्र :—यह चित्र भी मुझे बाद का मालूम पड़ता है। इसमें चित्रित कबीर मुसलमान जुलाहे नहीं प्रतीत होते। उनका वातावरण तथा रूप-रेखा हिन्दू महन्तों की सी दिखलाई गई है। इसकी अस्वाभाविकता इसकी प्रामाणिकता में बाधक है।

निष्कर्ष :—कबीर के उपर्युक्त विविध चित्रों के विवेचन से कबीर के संबंध में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं।

(१) कबीर जाति के जुलाहे थे तथा सरल और आडम्बर विहीन जीवन में विश्वास करते थे। वे वैरागी होकर भी गृहस्थ और कर्मयोगी थे।

(२) उनका सम्बन्ध पूर्ववर्ती सिद्धों और नाथों से भी था।

(३) उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने उन्हें महन्त, महापुरुष यहाँ तक कि अवतारी ईश्वर तक का रूप देने की चेष्टा की थी।

(ग) कबीर के सम्बन्ध में प्रचलित जन-श्रुतियाँ :—यों तो कबीर के भक्तों में कबीर के सम्बन्ध में सैकड़ों जन-श्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। उन सबका यहाँ उल्लेख करना असम्भव ही नहीं अनावश्यक भी है। हम केवल उन्हीं दो एक जन-श्रुतियों का उल्लेख करेंगे जिनसे कबीर के जीवनवृत्त-लेखन में कुछ सहायता मिल सके।

एक जन-श्रुति है कि महात्मा कबीर एक विधवा ब्राम्हणी के पुत्र थे और

स्वामी रामानन्द के आशीर्वाद से उत्पन्न हुए थे। कहते हैं एक बार एक ब्राम्हण अपनी बाल विधवा कन्या को लेकर स्वामीजी के दर्शन करने गया। स्वामीजी ने कन्या के प्रणाम करते ही 'पुत्रवती भव' आशीर्वाद दे दिया। पिता अपनी विधवा कन्या को इस प्रकार आशीर्वाद पाते देख व्याकुल हो उठा। उसने उसी समय कन्या के वैधव्य का हाल कह सुनाया। यह सुनकर स्वामीजी ने कहा कि मेरा आशीर्वाद तो अन्यथा नहीं हो सकता किन्तु तुम्हारी कन्या को कलंक नहीं लगेगा ऐसा प्रसिद्ध है। स्वामीजी के आशीर्वादानुसार उस कन्या को यथा समय पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। उसने उस पुत्र को लोक-लज्जा के भय से लहर तालाब में डाल दिया। किन्तु ईश्वरेच्छा वश नीरू और नीमा नाम के दम्पति उधर से गुजरे। उस सुन्दर बालक को देखकर वे उसे अपने घर ले आये। यह कथा कुछ कबीर-पंथी ग्रंथों में भी यत्किञ्चित हेर-फेर के साथ दी हुई है।

एक दूसरी किंवदन्ती है कि एक दिन स्वामी अष्टानन्द ने लहर तालाब में एक विचित्र ज्योति को अवतरित होते देखा। उन्होंने आश्चर्यान्वित होकर इस घटना की चर्चा अपने गुरु रामानन्द से की। स्वामी रामानन्द ने कहा कि वह ज्योति बालक रूप में परिणत हो जावेगी और वह बालक लोक का महान् कल्याण करेगा। कहते हैं आगे चलकर ज्योति से उत्पन्न बालक ही कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इसी प्रकार की अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। यद्यपि किंवदन्तियाँ सत्य नहीं होतीं किन्तु उनका आधार सत्य का आश्रय अवश्य लिए रहता है। कोई आश्चर्य नहीं कबीरदास जी नीरू और नीमा के पोषित पुत्र मात्र हों, उनका जन्म किसी हिन्दू स्त्री से ही हुआ हो कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। निश्चित प्रमाणों के अभाव में हमें अन्तस्साक्ष्य और ऐतिहासिक तथ्यों का ही अधिक आश्रय लेना चाहिए।

कबीर के जीवन-वृत्त-लेखन में सहायक अन्तरसाक्ष्य :—यहाँ पर हम केवल कबीर की जीवनी के विविध अङ्गों पर प्रकाश डालनेवाली कबीर की प्रामाणिक रचनाओं में पाई जानेवाली पंक्तियों का ही उल्लेख करेंगे। उसके पश्चात् हम अन्तस्साक्ष्य और बहिस्साक्ष्यों के आधार पर उनके जीवन वृत्त को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

(१) कबीर का समय

गुरू परसादी जै देव नामा ।
भगति क प्रेम इन्हहि है जाना ॥ (क० ग्र० पृ० ३२८)

(२) माता :—

(क) मुसि मुसि रोवे कबीर की माई ।
ए वारिक कैसे जीवहि रघुराई ॥
तनना बुनना सब तज्यो कबीर ।
हरि का नाम लिखि लियो कबीर ॥
(क० ग्र० पृ० ३१६)

(ख) निति उठ कोरी गगरिया लै लीपत जनम गयो ।
हमरे कुल कौने राम कह्यो ॥
जब की माला लइ निपूते ।
तब ते सुख न भयो ॥

(ग) मुई मेरी माई हौ खरा सुखाला ।
(राग आसा ३ संत कबीर)

(३) पिता :—

(क) वापि दिलासा मेरो कीन्हा ।
(राग आसा ३ संत कबीर)

(ख) पिता हमारो बड्ड गुसाई । (राग आसा ३ संत कबीर)
(ग) बलि तिसु बापै जिन हउ जाइया ।
(राग आसा ३ संत कबीर)

(४) गुरू—

(क) सतगुरु मिले तो मारग दिखाइया । (३ संत कबीर)
(ख) गुरू सेवा ते भगति कमाई ।
(रा० भै० ६ संत कबीर)

(ग) राम नाम के पटंतरे देवे को कछू नाहि।
का लै गुरु सन्तोखिए हौस रही मन माहि ॥
(क० ग्र० पृ० १)

(घ) पीछै लागा जाइ था लोक वेद के साथ।
आगे थे सद्गुरु मिल्या दीपक दीया हाथ ॥
(क० ग्र० पृ० २)

(५) जाति और जीविका :—

(क) हम घर सूत तनहि नित ताना
(राग आसा २६)

(ख) तू बाम्हन मैं कासी क जुलाहा बूझउ मोर गियान।

(ग) कहत कबीर कारगह तोरी सूतहि सूत मिलाए कोरी।
(राग आसा ३६)

(घ) जिउ जलु महि पैसि न निकसै।
तिउँ ढुरि मिलिओ जुलाहो ॥ (धना ३ सं० क०)

(ङ) तू बाम्हन मैं कासी का जुलाहा।
मोहि तोहि बराबरी कैसे कै निबहै ॥

(च) भूखे भगति न कीजै यह माला अपनी लीजै।
(क० ग्र० पृ० ३१४)

(६) निवास स्थान :—

(क) पहले दरसन मगहर पायो,
पुनि कासी बसे आई। (राम ३)

(ख) जैसे मगहर तेसी कासी हम एकै करि जानी।
(राम ३)

(ग) तोरे भरोसे मगहर वसिओ,
किअ कासी किआ ऊखर मगहर। (धना ३)

(७) बाल्य काल :—

(क) बारह बरस बाल पन बीते बीस बरस कछु तप न किओ ।

(आ० १५)

(८) स्त्री :—

(क) मेरी बहुरिआ को धनिआ नाऊ,
लै राख्यो राम जनीआ नाम ।

(आ० ३३)

पहली करुप कुजाति कुलखनी,
अबकी सुरुपि सुजाति सुलखनी । (आ० ३२)

(ख) भूड पलोसि कमर बधि पोथी,
हम कऊ चावन उन कउ रोटी ।

(स्त्री का कथन गौ० ६)

(ग) सुनि अँघली लोई वे पीर । (गौ० ६)

(ङ) कबीर त्यागा जान करि,
कनक कामिनी दोइ । (क० ग्र० पृ० ६०)

(९) पुत्र-पुत्री :—

बूडा वंस कबीर का उपजिओ पूत कमाल ।

(सं० ११५)

बिटवहि राम रमउवा लावा ।
ए बारिक कैसे जीवहि रघुराई । (गू० २)
लरकी लरिकन खैबो नाहि । (गौ० ६)

(१०) अध्ययन :—

बिदिया न परउ बादु नही जानउ । (बि० २)

(११) पर्यटन :—

(क) हज हमारी गोमति तीरा जहाँ बसै पीताम्बर पीर ।

(सं० १४)

(ख) हज कावै होइ होइ गया केती बार कबीर ।
(सं० १६८)

(१२) कबीर का विरोध :—

(क) कबीर पकरी टेक राम की,
तुरुक रहे पचि हारी । (क० ग्र० ३३१)

(ख) अति अथाह जल गहिर गम्भीर,
वांधि जंजीर ठाढ़े है कबीर ।
जल की तरङ्ग उठ करि है कबीर,
हरि सुमिरन तट बैठे है कबीर ।। (क० ग्र० पृ० २०३)

(१३) कबीर का वैराग्य और योग :—

(क) मेरे राजन मैं वैरागी जोगी । (क० ग्र० पृ० ३२८)

(ख) कबीर जाग्या ही चहिए,
क्या ग्रह क्या वैराग ।

(१४) (क) सकल जनम सिवपुरी गवाँइया ।
मरती बार मगहरि उठि धाइया ।।
बारह बरस तपु किआ कासी ।
मरन भइया मगहर की वासी ।। (ग० १५)

(ख) किया कासी किआ ऊखर मगहर राम रिदैजो होय ।
जो तन कासो तजै कबीरै रमइयै कौन निहोर ।। (ध३)

अन्तस्साक्ष्य और वहिस्साक्ष्य के आधार पर कबीर का जीवन-वृत्त विवेचन

वहिस्साक्ष्य और अन्तस्साक्ष्य की समस्त सामग्री का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं अब हम निम्नलिखित शीर्षकों के सहारे महात्मा कबीर के जीवन-वृत्त को आलोचनात्मक ढंग से लिखने का प्रयत्न करते हैं :—

(१) कबीर की जन्म तिथि और समय ।

(२) कबीर का नाम।
(३) कबीर का जन्मस्थान।
(४) कबीर की जाति।
(५) कबीर के माता-पिता।
(६) कबीर के गुरु और उनका विद्याध्ययन।
(७) पारिवारिक जीवन तथा साधु जीवन।
(८) व्यवसाय।
(९) पर्यटन।
(१०) कबीर का उन्हीं के समय में महत्त्व।
(११) कबीर की मृत्यु तिथि।
(१२) कबीर का मृत्यु स्थान।

(क) कबीर की जन्म तिथि और समय :— कबीर की रचनाओं में केवल एक ही उल्लेख ऐसा है जिसके आधार पर उनके समय का अनुमान लगाया जा सकता है। वह है :—

गुरु परसादी जैदेव नामा।
भगति के प्रेम इन्हहि है जाना॥ (क० ग्र० पृ० ३२८)

इससे स्पष्ट है कि कबीर दास जी जैदेव और नामदेव के पश्चात हुए थे। जैदेव का समय बारहवीं शताब्दी[1] तथा नामदेव का समय तेरहवीं शताब्दी का[2] अन्तिम चरण माना जाता है।

वहिस्साक्ष्य के ग्रन्थों में कबीर साहब का उल्लेख आइने अकबरी में है। आइने अकबरी का रचना काल[3] १५९६ माना जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि कबीर दास जी सन् १५९६ के पहले सतलोक को कूच कर गए थे। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा कबीर का समय चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के

---

१ देखिए ब्रह्मनिज़्म एण्ड हिन्दुइज़्म—मोनियर विलियम पृ० १४६
२ 'वैष्णवइज़्म शैवइज़्म एण्ड माइनररिलीजस सिस्टम्स' डा० भंडारकर पृ० ९२
३ देखिए प्रीफेस आइने अकबरी—ब्लाकमैन का अनुवाद

बीच में ही होगा। वहिस्साक्ष्य का दूसरा ग्रन्थ जिसमें कबीर का समय दिया हुआ है मौलवी गुलाम सरवर का खजीन अत्तुल असफिया है। इसके अनुसार सन् १५९४ कबीर की जन्म तिथि आती है जो सर्वथा असम्भव है।

'कबीर चरित बोध' नाम का एक अन्य कबीर पंथी ग्रन्थ है। इसमें भी कबीर की जन्म तिथि दी है। इसके अनुसार महात्मा कबीर का अवतार सन् १३९८ में हुआ था।[1] यों तो प्रत्यक्ष ऐसा अनुभव होता है कि यह तिथि सम्भव है कबीर की सही जन्म तिथि हो। किन्तु कबीर चरित बोध एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ है। उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता अतः हमें कुछ और बातों पर विचार करना पड़ेगा।

जनश्रुति है कि कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन थे तथा सिकन्दर लोदी ने उन पर बहुत से अत्याचार किए थे। इस जनश्रुति की थोड़ी बहुत पुष्टि वहिस्साक्ष्य और अन्तस्साक्ष्यों से भी होती है। अधिकांश इतिहासकार दोनों को समकालीन मानते हैं। किन्तु डा० रामप्रसाद त्रिपाठी इस मत से सहमत नहीं हैं। अगर कबीर को सिकन्दर लोदी का समकालीन मान भी लिया जाय तो कबीर लगभग सं० १४८८ से १५१७ के बीच वर्तमान माने जा सकते हैं; इस बीच में उन्हें जीवित मान लेने से कोई अड़चन भी नहीं पड़ती। कहते हैं सिकन्दर लोदी और कबीर की भेंट उस समय हुई थी जब वह काशी में आया था। ब्रिग्स साहब सिकन्दर लोदी का आगमन सन् १४९४ में मानते हैं[2] पर आरकेलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया में लिखित तथ्यों के आधार पर सिकन्दर लोदी और कबीर का इस तिथि पर मिलना असम्भव सिद्ध हो जाता है; क्योंकि उसमें लिखा है कि सन् १४५० में बिजली खाँ ने आमी नदी के दाहिने तट पर कबीर शाह का रोजा बनवाया था तथा १५६७ में फिदई खाँ ने उसकी मरम्मत करवाई थी।[3] इसका तात्पर्य

---

१ देखिए कबीर चरित बोध—पृ० ६

२ हिस्ट्री आफ दि राइज आफ मोहमेडेन पावर इन इण्डिया ब्रिग्स पृ० ५७१-७२

३ आरकेआजिकल सर्वे आफ इण्डिया (न्यू सिरीज) नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज भाग २—पृ० २२४

यह है कि कबीर १४५० तक सतलोकगामी हो चुके थे। इस मत के आधार पर ही कुछ लोग यह मानने लगे हैं कि कबीर की निधन तिथि सन् १४५० के पूर्व किसी समय है। डा० रामकुमार वर्मा का मत इससे भिन्न है। उनका अनुमान है कि बिजली खाँ कबीर का भक्त था। उसने मगहर में उनकी जन्म तिथि के उपलक्ष में रोजा बनवाया था। पर वहाँ की बनी हुई समाधि इस बात की विरोधिनी प्रतीत होती है। मेरा अनुमान है कि सर्वे का तिथि निर्देश केवल अनुमान मूलक है और किन्हीं पुष्ट प्रमाणों पर आधारित नहीं है। अतः हमें उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए। डा० त्रिपाठी के कबीर को सिकन्दर लोदी का समकालीन मानने के अन्य जो दो तर्क हैं उनका निराकरण डा० रामकुमार वर्मा कर ही चुके हैं। मैं उनसे सहमत हूँ। इस तिथि का निर्णय करने के लिए कबीर और रामानन्द के सम्बन्ध पर भी विचार कर लिया जाय।

वहिस्साक्ष्य के अधिकांश ग्रन्थों में रामानन्द को कबीर का गुरु माना गया है। केवल वर्तमान युग के डा० भंडारकर और डा० मोहन सिंह[1] इस मत से सहमत नहीं हैं। यद्यपि अन्तस्साक्ष्यों के अंतर्गत कबीर ने कहीं भी रामानन्द का नाम नहीं लिया है फिर भी अनेक स्थलों पर ऐसी ध्वनि निकलती है कि रामानन्द ही कबीर के गुरु थे। रामानन्द को कबीर का गुरु मानने के और भी कई कारण हैं। आगे अन्य स्थल पर उनका उल्लेख किया गया है।

स्वामी रामानन्द के जन्मकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। डा० भंडारकर[2] और ग्रियर्सन साहब[3] के मतानुसार वे सम्वत् १३५६ में उत्पन्न हुए थे। अगस्त्य संहिता[4] के अनुसार भी उनकी जन्म तिथि यही आती है। फर्कुहर[5] और की साहब[6] का मत इससे थोड़ा भिन्न है। इन दोनों विद्वानों

---

१ कबीर हिज़ बाइग्राफी—पृ० ११, १४

२ 'वैष्णवइज़्म शैवइज़्म'—पृ० ६६

३ जर्नल आफ दि रायल ऐशियाटिक सोसाइटी १६२०—पृ० ३२३

४ और देखिए—भंडारकर—पृ० ६६

५ आउट लाइन्स आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया पृ० ३२३

६ 'कबीर एण्ड हिज़ फालोअर्स' पृ० २७

ने रामानन्द का समय सन् १४०० से लेकर १४७० तक निश्चित किया है।[1] मुझे दोनों तिथियों में एक भी अधिक तर्क संगत और समीचीन नहीं मालूम होती। सम्वत् १३५६ को रामानन्द की जन्मतिथि स्वीकार करने पर संत पीपा को उनका शिष्य मानने में अड़चन पड़ती है। संत पीपा का समय संवत् १४८२ निश्चित किया जाता है। यदि हम सम्वत् १३५६ को स्वामी रामानन्द की जन्म तिथि मान लें तो संत पीपा के जन्म काल में ही स्वामी रामानन्द की आयु १२६ वर्ष की आती है। उनके शिष्यत्व को सिद्ध करने के लिए कम से कम २० वर्ष का समय और लगाना पड़ेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि रामानन्द ने लगभग १४० वर्ष की आयु प्राप्त की थी। किन्तु इतनी आयु प्राप्त करना इस कलिकाल में असम्भव सा प्रतीत होता है। अतः हम सम्वत् १३५६ को रामानन्द की जन्म तिथि नहीं मान सकते।

फर्कुहर साहब और की साहब द्वारा अनुमानित तिथि भी सही नहीं मालूम होतीं। एक तो उन्होंने स्वामी रामानन्द की, जिनके सम्बन्ध में भक्तमाल में लिखा है कि उन्होंने 'बहुत काल वपु धारि कै'[2] स्वर्गवास किया था केलल ७० वर्ष की ही आयु मानी है। रामानन्द ऐसे योगी महात्मा के लिए ७० वर्ष की आयु बहुत कम है। अतः हम इस तिथि को भी सही स्वीकार नहीं कर सकते। भक्तमाल के टीकाकार हरिवरन ने लिखा है कि स्वामी रामानन्दस्वामी रामामुजाचार्य की शिष्य परम्परा में पञ्चम थे।[3] चार पीढ़ियों के व्यतीत होने में यदि कम से कम ३०० वर्ष मान लें तो भी रामानन्द का समय लगभग १३७५ के समीप आता है, क्योंकि रामानुज का समय विद्वानों ने सम्वत् १०७३[4] के समीप निश्चित किया है। मेरा अनमान है कि स्वामी रामानन्द थोड़ा और बाद को हुए थे। मैं समझता हूँ कि सम्वत् १३८५ को रामानन्द की जन्म तिथि मान लेने में कोई अड़चन नहीं पड़ सकती।

---

१ आउट लाइन्स आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया फर्कुहर पृ० ३२३

२ भक्तमाल छप्पय ३१

३ मेडिवल मिस्टीसिज़्म—सेन पृ० ७१

४ गीता रहस्य—तिलक—पृ० १९

स्वामी रामानन्द की निधन तिथि के सम्बन्ध मेंमेरा अनुमान है कि वह लगभग १५०० के रही होगी। प्रसंग पारिजात नामक ग्रन्थ में उनकी निधन तिथि सं० १५०५[1] दी हुई है। इस ग्रन्थ के लेखक का कहना है कि वह रामानन्द की वर्षी के दिन उपस्थित था। यदि उस साधु की बात सत्य स्वीकार कर ली जाय तो रामानन्द की निधन तिथि सं० १५०५ ठहरती है। इस तिथि को सत्य न मानने के पक्ष में कोई सशक्त तर्क नहीं दिए जा सकते। इस प्रकार हम रामानन्द का समय सम्वत् १३८५ से लेकर १५०५ तक निश्चित कर सकते हैं। इस निश्चय के अनुसार उनकी आयु लगभग १२० वर्ष की आती है। जनश्रुति भी है कि उन्होंने १२० वर्ष की आयु प्राप्त की थी। रामानन्द ऐसे योगी और महात्मा की आयु १२० वर्ष होना स्वाभाविक ही है।

यदि हम कबीर की जन्म तिथि सम्वत् १४५५ ही मानें तो भी वे सरलता से रामानन्द के शिष्य माने जा सकते हैं। दोनों की अवस्थाओं में ७ वर्ष का अन्तर दिखाई पड़ता है। गुरु और शिष्य की अवस्था में इतना अन्तर होना परमापेक्षित भी है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि महात्मा कबीर का जन्मकाल सम्वत् १४५५ मानना अधिक उपयुक्त और तर्क-संगत है।

कबीर का नाम :—कबीर ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र अपने कबीर नाम का उल्लेख[2] किया है। इस कबीर नाम के संबन्ध में बहुत जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। एक किंवदन्ती है कि कबीर दास जी का जन्म हाथ के अँगूठे से हुआ था इसीलिए उन्हें करबीर या कबीर कहा जाने लगा। इस सम्बन्ध में एक दूसरी किंवदन्ती भी है। कहते हैं कि कबीर के नामकरण के अवसर पर काजी ने जब नाम निश्चित करने के लिए कुरान खोली तो उसे सबसे प्रथम कबीर शब्द दिखाई पड़ा इसीलिए उसने इनका नाम कबीर रख दिया। कबीर का कबीर नाम पूर्ण सार्थक भी था। अरबी भाषा में कबीर का अर्थ महान् होता है। यह प्रायः ईश्वर के विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त होता है। कबीर ने जहाँ अपनी रचनाओं में अपने

---

१ रामानन्द और प्रसंग पारिजात हिन्दुस्तानी अक्टूबर १९३२

२ जाति जुलाहा नाम कबीरा बन-बन फिरौ उदासी क० ग्र० पद २००

नाम की मुहर लगाने के लिए इस नाम का प्रयोग किया है वहीं उन्होंने अपने वास्तविक अर्थ महान् के अर्थ में भी प्रयुक्त किया है।

कबीरा तू ही कबीरु तू तोरो नाम कबीर।
राम रतन तब पाइऐ जड़ पहिलै लजहि सरीर।

(क० ग्र० परिशिष्ट पृ० २६२ साखी १७७)

कबीर का जन्म स्थान :—महात्मा कबीर के जन्म स्थान के सम्बन्ध में साधारणतया तीन मत प्रचलित हैं :—

(१) वे मगहर में उत्पन्न हुए थे।

(२) उनका जन्म स्थान काशी है।

(३) आजमगढ़ान्तर्गत वेलहरा गाँव उनका जन्म स्थान है।

मगहर को कबीर का जन्म स्थान मानने वाले अपने मत की पुष्टि में निम्नलिखित दोहा उद्धृत करते हैं :—

तोरे भरोसे मगहर बसिऔ मेरे तन की तपन बुझाई।
पहले दरसन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई॥

इस अवतरण में दर्शन शब्द पर विवाद है। मगहर को कबीर का जन्म स्थान मानने वाले तो दर्शन शब्द का अर्थ जन्म लेना मानते हैं तथा दूसरे पक्ष वाले कहते हैं कि दर्शन का अर्थ सामान्यतया ईश्वर दर्शन से लेना चाहिए। मुझे पहला अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। मेरी धारणा है कि कबीर मगहर में ही उत्पन्न हुए थे। इस धारणा की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं :—

(१) मगहर में मुसलमानों की बस्ती बहुत अधिक है वे सभी अधिकतर जुलाहे हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि कबीर इन्हीं जुलाहों के घर उत्पन्न हुए हों।

(२) कबीर दास जी ने अपनी रचनाओं में मगहर की कई बार चर्चा की है इसका तात्पर्य यह है कि मगहर से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने उसे सदैव काशी के समकक्ष ही पवित्र और उत्तम माना है। इतनी अधिक श्रद्धा भावना केवल जन्म स्थान के प्रति ही हो सकती है।

(३) कबीर दास जी मृत्यु का समय समीप आने पर मगहर चले गये थे।

उन्होंने काशी में रहना बहुत उचित नहीं समझा। यह मानव स्वभाव है कि वह जहाँ उत्पन्न होता है वहीं मरना चाहता है।

(४) कबीर दास जी ने स्पष्ट लिखा हैं कि सबसे प्रथम उन्होंने मगहर को देखा था उसके बाद वे काशी में बस गये थे। इस उक्ति में खींच तान कर दूसरा अर्थ लगाना हठधर्मी भर होगी।

(५) कबीर दास जी ने लिखा है कि 'तोरे भरोसे मगहर बसिओ मेरे तन की तपन बुझाई' इस पंक्ति से स्पष्ट है कि अपनी जन्मभूमि में पहुँच कर कबीरदास जी को बड़ी शांति मिली थी। जन्मभूमि में पहुँच कर इस प्रकार की शांति का अनुभव करना स्वाभाविक भी है।

(६) एक बात और है। आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया में लिखा है कि बिजली खाँ ने बस्ती जिले के पूर्व में आमी नदी के दाहिने तट पर रोजा सम्वत् १५०७ में बनवाया था। सिकन्दर लोदी और कबीर के मिलन की घटना के आधार पर निश्चित किया जा चुका है कि उस समय कबीर जीवित थे। मेरा अनुमान है कि बिजली खाँ कबीर का भक्त था। उसने कबीर के जीवन काल में कबीर के जन्म स्थान में कोई स्मारक बनवाया होगा। आगे चलकर फिदई खाँ ने उनकी मृत्यु के बाद उसे रोजे का रूप दिया होगा।

उपर्युक्त सभी कारणों से सिद्ध हो जाता है कि कबीर का जन्म स्थान मगहर, काशी का समीपवर्ती मगहर था।

कबीर के जन्म स्थान के सम्बन्ध में एक दूसरा मत भी है। इस मत के विद्वान् काशी को कबीर का जन्म स्थान मानते है। अपने इस मत की पुष्टि में वे दो प्रमाण देते हैं :—

(१) कबीर दास जी ने अपने को काशी का जुलाहा कहा है।

(२) जनश्रुतियाँ और कबीरपंथी ग्रन्थ सभी काशी को कबीर का जन्म स्थान मानते हैं। किन्तु ये दोनों ही तर्क अत्यन्त अशक्त हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर दास जी बाल्यकाल से ही काशी में रहते थे। जीवन पर्यन्त काशी में रहने वाला व्यक्ति अपने को काशी का वासी कहे, तो कोई अनुचित नहीं है। जहाँ तक कबीर पंथी ग्रंथों की बात है वे अधिकतर भक्ति भावना से प्रेरित होकर लिखे गए हैं, किसी वैज्ञानिक विवेचना की दृष्टि से नहीं। अतः हम इनकी सभी

बातों को प्रामाणिक नहीं मान सकते। इस प्रकार स्पष्ट है कि बनारस को कबीर का जन्म स्थान मानने के लिए हमारे पास सशक्त प्रमाण और तर्क नहीं है।

तीसरा मत जिला आजमगढ़ के अंतर्गत बैलहरा गाँव से सम्बन्धित है। कुछ लोगों की धारणा है कि कबीरदास जी आजमगढ़ जिलान्तर्गत बैलहरा गाँव में उत्पन्न हुए थे। इस मत का[1] आधार बनारस गजेटियर है। कहते हैं कि वहाँ बेलहर नाम का एक तालाब है; पहले उसका नाम लहर तालाब था। कबीर दास जी का अवतार इसी लहर तालाब में हुआ था। आजमगढ़ में खोज करने पर वहाँ उस गाँव में कबीर से सम्बन्धित न तो कोई स्मारक ही मिला न वहाँ कुछ कबीर पंथी ही मिले। गजेटियर लेखक के अनुमान के आधार मात्र पर हम आजमगढ़ के बैलहरा गाँव को कबीर का जन्म स्थान नहीं मान सकते।

कबीर की जाति :—कबीर की जाति के सम्बन्ध में भी बड़ा विवाद रहा है। डा० हजारीप्रसाद की खोजों ने इस विवाद को अब काफी शांत कर दिया है। कबीर ने अपनी रचनाओं में अपने को जुलाहा और कोरी दोनों कहा है।

जाति जुलाहा नाम कबीरा,
बनि बनि फिरौं उदासी।

—क० ग्र० पद २७०

परिहरि काम राम कहि बौरे, सुनि सिख बन्धू मोरी।
हरि को नाव अभै पददाता, कहै कबीरा कोरी॥

—क० ग्र० पद ३४६

और

जोलाहे घर अपना चीना, घट ही राम पिछाना।
कहत कबीर कारगह तोरी सूतै सूत मिलाये कोरी॥

—क० ग्र० परिशिष्ट पद ४६

अब प्रश्न यह है कि कबीर ने अपने को कोरी और जुलाहा दोनों कैसे कहा। जुलाहे मुसलमान होते हैं और कोरी हिंदू। सबसे प्रथम डाक्टर बड़थ्वाल ने इस

---

१ विचार विमर्श—पृ० ५

प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा है[1] कि "सम्भव है जुलाहा कहने से उनका अभिप्राय केवल पेशे से हो, उनके धर्म का उसमें कोई संकेत न हो। जनश्रुति के अनुसार वे जन्म से तो हिंदू थे किन्तु पालन मुसलमान के घर में हुआ था परन्तु इस बात का प्रमाण मिलता है कि वस्तुतः उनका जन्म मुसलमान परिवार में हुआ था।" इन पंक्तियों में डा० साहब का मत कुछ स्पष्ट नहीं हो पाया है। बाद में चलकर उन्होंने अपने मत को पूर्णतया स्पष्ट किया है। निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री में वे लिखते हैं:—

"मेरी समझ से कबीर भी किसी प्राचीनतया कोरी किन्तु तत्कालीन जुलाहा कुल के थे जो मुसलमान होने के पहले जोगियों के अनुयायी थे। उनके वंशवालों ने यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से इस्लाम को स्वीकार कर लिया था फिर भी परम्परागत संस्कारों से उनका मानसिक सम्बन्ध नहीं छूटा था।"[2] जहाँ तक कबीर के मुसलमान जोलाहे होने की बात है, उसे हम असत्य स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि संत कवियों से लेकर आजकल तक के अधिकांश विद्वान् उन्हें जुलाहा ही मानते हैं।[3]

---

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० १९९१ भाग १५—पृ० ४४

२ निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री—डा० बड़थ्वाल पृ० २५०

३ कुछ सन्तों और विद्वानों की सम्मतियों के लिए निम्नलिखित ग्रन्थ और स्थल देखिए:—

(१) सन्त रैदास का मत देखिए—सन्त रैदास की बानी वेलवेडियर प्रेस

(२) सन्त धना की बानी देखिए—

(३) अनन्तदास—कबीर साहब की परिचई—में 'कासी बसै जुलाहा एक हरि भगतिन की पकरी टेक' शीर्षक पद देखिए

(४) रज्जबजी—'जुलाहा अभे उत्पन्न्यो साध कबीर' महा मुनिसर्वंगी साध महिमा १२

(५) 'वैष्णवइज़्म शैवइज़्म' में डा० भंडारकर का मत देखिए—पृ० ६७

(६) कबीर एण्ड दि कबीर पन्थ—वेस्कट पृ० ३५

(७) रानडे का मिस्टीसिज्म इन महाराष्ट्र—पृ० २५६

(८) खजीन अत्तुल असफिया—प्रथम वाल्यूम पृ० ४४६

(९) दविस्ताने मजाहिब में मोशिन फानी का मत, देखिए ट्रोयर एण्ड शी का अनुवाद—पृ० ४४६ फर्स्ट वाल्यूम

ऐसी दशा में कोरी शब्द का क्या सुलझाव होगा ? इस समस्या को डा० हजारी-प्रसाद जी ने गहन खोजों के आधार पर सुलझाने की चेष्टा की है। उनका मत है कबीर दास जी का सम्बन्ध जुगी नाम की जाति से था। यह जाति पहले न तो हिन्दू थी और न मुसलमान। इनका सम्बन्ध अधिकतर वर्णाश्रम धर्म विहीन नाथ पन्थी योगियों से था। यवनों के आने पर इस जाति ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया होगा। किन्तु धर्म परिवर्तन किए हुए, अधिक दिन व्यतीत न होने के कारण इनका सम्बन्ध नाथ पंथी परम्परा और संस्कारों से भी बना हुआ था। कबीर दास जी ऐसी ही इस्लाम में परिवर्तित जुगी जाति में उत्पन्न हुए थे। डा० हजारीप्रसाद के इस मत से डा० रामकुमार वर्मा भी सहमत हैं।[1] आचार्य जी ने अपने मत की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं :—

(१) कबीर दास जी ने अपने को जोलाहा तो कई बार कहा है किन्तु मुसलमान एक बार भी नहीं कहा है।

(२) उनकी 'न हिन्दू न मुसलमान' वाली उक्ति उन्हीं वर्णाश्रम भ्रष्ट जुगी जाति के व्यक्तियों की ओर संकेत करती है।

(३) कबीर दास जी ने अपनी एक उक्ति में स्वीकार किया है कि हिन्दू, मुसलमान और योगी अलग-अलग होते हैं।[2]

(४) कबीर दास के विषय में प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ फूल बच रहे थे जिसमें से आधों को हिन्दुओं ने जलाया और आधों को मुसलमानों ने गाड़ दिया। आचार्य जी का अनुमान है कि त्रिपुरा जिले के वर्तमान योगियों की भाँति उन्हें समाधि भी दी गई थी और अग्नि संस्कार भी किया गया था।[3]

यद्यपि कबीर के नाथ पंथी विचारधारा के आधार तत्त्व को खोज निकालने

---

१ 'सन्त कबीर' डा० रामकुमार वर्मा—पृ० ६१

२ जोगी गोरख गोरख करै, हिन्दू राम नाम उच्चरै।
मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीरा कौ स्वामी घर घर रह्यो समाई॥
क० ग्र० पृ० २००

३ कबीर—डा० हजारीप्रसाद—पृ० ९-११

की धुन में लगे हुए आचार्य जी ने कबीर को जुगी जाति से परिवर्तित मुसलमान सिद्ध करने के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत किये हैं, किन्तु मालूम नहीं क्यों आचार्य जी की बात सहसा ग्राह्य नहीं प्रतीत होती। उनके तर्कों के विरोध में निम्नलिखित तर्क सरलता से सामने आते हैं।

(१) ऊपर दिए हुए तर्कों में दिया हुआ उनका पहला तर्क बहुत ही अशक्त है। उनका यह कहना कि कबीर दास जी ने अपने को जोलाहा तो कहा है किन्तु मुसलमान कहीं नहीं कहा है। मेरी समझ में ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार एक ब्राह्मण से यह आशा की जाय कि वह अपने को ब्राह्मण कहने के बाद हिन्दू भी कहे। कबीर दास जी अपनी जाति धर्म आदि का लेखा तो दे नहीं रहे थे जो जुलाहा कहने के बाद अपने को मुसलमान अवश्य कहते। उन्होंने जोलाहा शब्द का प्रयोग अपने कुल की हीनता द्योतित करने के लिए ही किया है। अन्य स्थलों पर उन्होंने अपने को स्पष्ट रूप से हीन जाति का कहा—

कबीर मेरी जाति को सब कोई हसनोहारु।

संत कबीर सं० २

अतः हम कह सकते हैं कि उन्होंने जोलाहे शब्द का प्रयोग अधिकतर अपनी हीन जाति को द्योतित करने के लिए ही किया है। इसीलिए उन्होंने जहाँ जुलाहे शब्द का प्रयोग किया है वहाँ सापेक्षता में ब्राम्हण को भी ले आये हैं।
वे कहते हैं—

तू बम्हन मैं कासी का जुलाहा,
बूझहू मोर गियाना—।

संत कबीर आ० २६

'तू बाम्हन मैं कासी का जुलाहा
मोंहि तोहि बराबरि कैसी कै बनहि'

संत कबीर रागु ५

इन दोनों ही में उनके कहने का अभिप्राय यही है कि तुम उच्चाति उच्च ब्राह्मण हो और मैं नीच जाति का जुलाहा हूँ; किन्तु फिर भी मुझे तुमसे अधिक ज्ञान है। अतः स्पष्ट है आचार्य जी का प्रथम तर्क सशक्त नहीं है।

(२) उनका दूसरा तर्क है कि कबीर दास जी ने अपने को 'न हिन्दू न मुसलमान' कहा है उनके मतानुसार यह उक्ति आश्रम भ्रष्ट जुगी जाति की ओर संकेत करती है। आचार्य जी से ऐसे तर्क की आशा नहीं की जाती थी। वे संत साहित्य के मर्मज्ञ हैं। संत लोग कभी भी वर्णाश्रम धर्म में विशेष विश्वास नहीं करते थे। यदि ऐसा न होता तो मुसलमान सन्तों के हिन्दू शिष्य न होते और हिन्दू संतों के मुसलमान शिष्य न होते।[१] संत तो वास्तव में वही है जो समदर्शी हो। कबीर ने संतों का लक्षण इस प्रकार दिया है :—

'निरबैरी निह-कांमता सांई सेती नेह।
बिषिया सूंन्यारा रहै, संतनि का अंग एह'॥

क० ग्र० पृ० ५०

इस प्रकार के लक्षणों से युक्त संत के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की उपेक्षा करना स्वाभाविक भी है। आचार्य क्षिति मोहन सेन ने स्पष्ट ही स्वीकार किया है कि भारतीय मध्य कालीन रहस्यवादी संतों की प्रमुख विशेषता यही थी कि वे किसी भी धार्मिक संस्था, तथा धर्म ग्रन्थ में विश्वास नहीं करते थे।[२]

ऐसी दशा में यह कहना कि कबीर दास का हिन्दू मुसलमान दोनों से उदासीन होना उनके जुगी जाति का संकेतक है अधिक तर्क संगत नहीं मालूम पड़ता। फिर कबीर दास जी ने यह भी तो कहा है कि वे योगियों के मतानुयायी नहीं हैं।[३] वे तो अपने संत मत को सभी से अलग मानते हैं। फिर उन्हें इस आधार पर जुगी जाति का कैसे कहा जा सकता है।

(३) उनका तीसरा तर्क है कि कबीर दास जी ने स्वीकार किया है कि योगी हिन्दू और मुसलमान दोनों से भिन्न होते हैं। किन्तु इस उक्ति में यह भी तो स्पष्ट लिखा है कि कबीर दास जी योगियों से भी सम्बन्धित नहीं हैं।

(४) आचार्य जी का 'समाधि' वाला तर्क भी अधिक सशक्त नहीं। एक

---

१ देखिए 'दीन इलाही' राय चौधरी कृत प्रथम अध्याय

२ देखिए मेडिवल मिस्टीसिज्म-सेन प्रीफेस टु दि ट्रांसिलशेन पृ० १

३ योगी गोरख गोरख करै, हिन्दू राम नाम उच्चरै। मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीरा को स्वामी घट घट रह्यो समाई॥ क० ग्र० पृ० २००

तो जनश्रुति को हम पुष्ट प्रमाण नहीं मान सकते क्योंकि कबीर दास जी से संबन्धित बहुत सी जनश्रुतियाँ साम्प्रदायिक भावना के कारण बहुत ही अतिरंजित रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि कबीर दास जी की समाधि भी बनी थी और जलाए भी गये थे, तो भी यह तर्क उन्हें जुगी जाति का सिद्ध करने में पर्याप्त नहीं है। बहुत से हिन्दू योगियों की समाधियाँ पाई जाती हैं जो जुगी जाति के न होकर केवल योगी ही होते हैं। इस बात में कोई भी संदेह नहीं कर सकता कि कबीर दास जी योगी थे। अतः आचार्य जी का यह तर्क भी मुझे अधिक सशक्त नहीं लगता।

मेरी समझ में कबीर की नाथ पंथी विचार धारा को स्पष्ट करने के लिए उन्हें जुगी जाति का सिद्ध करना आवश्यक भी नहीं क्योंकि कबीर के युग में नीचे जाति के लोगों में नाथ पंथ को बड़ी प्रतिष्ठा थी।

हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के बे पढ़े लिखे निम्न सामाजिक स्तर के लोगों के लिए आध्यात्मिक विचार विनमय के साधन गाँव में पाये जाने वाले नाथ पंथी सिद्ध लोग ही हुआ करते थे। यही कारण है कि जायसी तक जो निश्चय ही जुगी जाति के न थे नाथ पंथी विचार धारा से पूर्ण प्रभावित थे। उनकी रचनाओं पर नाथ पंथी योग का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रभाव का कारण तत्कालीन युग ही था। कबीर पर इसी युग का प्रभाव पड़ा था। दूसरे कबीर परम जिज्ञासु सन्त थे, अतः सरलता से मिल जाने वाले नाथ पंथी संतों से इन्होंने बहुत कुछ सीखा होगा। फिर पूरब में गोरखनाथ जी के प्रभाव से नाथ पंथ का प्रचार भी बहुत था। अतः उन पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त मेरी धारणा है कि रामानन्द जी की विचार धारा भी योग मत से प्रभावित थी। कबीर पर अपने इन गुरु का प्रभाव पड़ा ही होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर की नाथ पन्थी विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए उन्हें जुगी जाति का सिद्ध करना परमावश्यक नहीं है। यदि कबीर जुगी जाति से किसी प्रकार भी सम्बन्धित होते तो वे अपनी रचनाओं में कही न कहीं उसका एकाध बार प्रयोग अवश्य करते। फिर उनके पंथ के प्रचारक कब चूकनेवाले थे, वे अवश्य ही जुगियों से कबीर का सम्बन्ध स्थापित करते। इसके अतिरिक्त ऐसा भी

स्वाभाविक था कि नीच जाति के जुगी लोग अपने ही जाति के इस्लाम में परिवर्तित कबीर ऐसे पुरुष रत्न की प्रशंसा करने का कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य करते। किन्तु जुगी लोगों में काफी खोज करने पर भी ऐसा मालूम हुआ कि कोई भी कबीर को अपनी जाति का स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। इन्हीं सब कारणों से मेरा अनुमान है कि कबीर दास जी किसी भी जुगी ऐसी जाति से सम्बन्धित न थे।

अब थोड़ा सा कोरी शब्द पर विचार कर लिया जाय। कोरी हिन्दू जुलाहे को कहते हैं। यह वयन जीवी जाति प्राचीनकाल से चली आ रही है इसको समाज में अत्यन्त नीच जाति मानते हैं। मेरा अनुमान है कि कबीर का कोरियों से कोई विशेष सम्बन्ध न था। कबीर दास जी की यह प्रवृत्ति थी कि वे जब जिस वर्ग और जाति के लोगों के सामने बात करते थे प्रायः अधिकतर उसी व्यक्ति की भाषा में विचारों को अभिव्यक्त करते थे। डा० हजारीप्रसाद जी भी इस मत से सहमत हैं। मेरा अनुमान है कि कबीर ने कोरी शब्द का प्रयोग इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर किया है। जुलाहे का हिन्दी रूपान्तर कोरी ही हो सकता है। मेरी समझ में उनके द्वारा प्रयुक्त कोरी शब्द जाति का सूचक न होकर केवल व्यवसाय का ही सूचक है। इसलिए हम कबीर को डा० बड़थ्वाल के मतानुसार किसी कोरी जाति का मुसलमानी संस्करण भी नहीं मान सकते हैं।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने एक स्थल पर कोरी शब्द को परमात्मा का वाचक माना है।[2] इससे स्पष्ट है उनके मतानुसार भी कबीर कोरी जाति के न थे।

कबीर की जाति से सम्बन्धित एक मतवाद और उठ खड़ा हुआ है। इसका आधार कबीर के द्वारा प्रयुक्त 'गोसाईं' शब्द है। कबीर ने एक स्थल पर लिखा है :—

पिता हमारो बड्ड गुसाईं तिसु पिता हउ किउ करिजाई।

संत कबीर आ ३

---

१ निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री—पृ० २५०
और भी योग प्रवाह—पृ० १२६

२ संत कबीर परिशिष्ट—पृ० ४२

गोसाइयों के सम्बन्ध में एम० शेरिङ्ग ने लिखा है कि ये दशनामी भेद से कहीं शैव होते हैं और कहीं वैष्णव होते हैं।[1] इसी आधार पर डा० रामकुमार का मत है कि कबीर के पिता ऐसे जुलाहा जाति के होंगे जो मुसलमान होते हुए भी योगियों के संस्कारों से सम्पन्न दशनामी सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसाईं कहलाते थे। इन गोसाइयों पर नाथ पंथ का पर्याप्त प्रभाव था।[2]

कबीर पर नाथ पंथ के प्रभाव का वे यही कारण मानते हैं। अहमदशाह ने लिखा है कि कबीर को यदि विधवा ब्राम्हणी का पुत्र ही माना जाय तो गोसाईं अष्टानन्द वाली कथा सत्य माननी चाहिए और कबीर को अष्टानन्द गोसाईं का पुत्र मानना चाहिए।[3] किन्हीं पुष्ट प्रमाणों के अभाव में हम इस मत का भी समर्थन नहीं कर सकते। अतः हम कबीर का सम्बन्ध गुसाईं जाति से स्थिर नहीं कर सकते। वास्तव में यह निश्चित करना कि कबीर किस जाति के रत्न थे बड़ा कठिन है। फिर भी मेरी धारणा यही है कि कबीर जुलाहा जाति के ही रत्न थे। नीरू और नीमा ही इनके माता-पिता थे। हाँ यह अवश्य सम्भव है कि नीमा पहले हिन्दू जाति की रमणी हो। बाद में किन्हीं परिस्थितियों के कारण उसे इस्लाम स्वीकार करना पड़ गया हो। कोई आश्चर्य नहीं कि इसी आधार पर लोग उन्हें नीरू और नीमा का पोष्य पुत्र कहने लगे हों। किन्तु इस बात को भी मानने के लिए कोई पुष्ट आधार नहीं है। मेरी समझ में कबीर की हिन्दू विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए रामानन्द का शिष्यत्व पर्याप्त है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि रामानन्द का शिष्य होने पर ही कबीर हिन्दू धर्म की ओर इतना अधिक उन्मुख हुए थे।

माता-पिता—महात्मा कबीर के माता-पिता के सम्बन्ध में भी तीन मत हैं:—

---

१ हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्टस् ऐज रिप्रेजेण्टेड एट बनारस एम० ए० शेरिङ्ग (१८७१-८१) पृ० २५५

२ संत कबीर—पृ० ६१

३ कबीर एण्ड हिज फालोअर्स डा० की पृष्ठ २८ और देखिए—दि बीजक आफ कबीर—अहमद शाह १९१७ पृ० ४, ५

(१) कबीर दिव्यगति सम्भूत महापुरुष थे।
(२) कबीर नीरू और नीमा के पोष्य पुत्र थे।
(३) कबीर नीरू और नीमा के औरस पुत्र थे।

पहला मत श्रद्धालु कबीर भक्तों द्वारा प्रवर्तित जान पड़ता है। इस वैज्ञानिक युग में दैवी उत्पत्ति में सबका विश्वास होना बड़ा कठिन है। कुछ दूसरे श्रद्धालु कबीर को किसी विधवा ब्राह्मणी अथवा ब्राह्मण कन्या का पुत्र मानते हैं। उपर्युक्त दोनों मत वालों का विश्वास है कि कबीर नीरू और नीमा के पोष्य पुत्र थे। किन्तु अन्तस्साक्ष्य से कहीं भी ऐसी ध्वनि नहीं निकलती कि वे नीरू और नीमा के पोष्य पुत्र थे। मेरा अनुमान है कि कबीर नीरू और नीमा के औरस पुत्र थे। अन्तस्साक्ष्य से भी यही ध्वनि निकलती है। 'पाई-पाई तू पुति हाई' जैसी पंक्तियाँ यही सिद्ध करती हैं कि कबीर नीरू नीमा के औरस पुत्र थे। इसके अतिरिक्त :—

'बापि दिलासा मेरो कीन्हा'।

(राग आ० ३, संत कबीर)

हमरे कुल कौने राम कह्यो।
जब की माला लइनिपूते तब ते सुख न भयो॥

(वि० ४ सं० २ क०)

'मुई मेरी माई हउ खरा सुखाला' (सं० क० आ० ३)
'मुसि मुसि रोवै कबीर की माई' (सं० क० गू० २)
'एवारिक कैसे जीवहि रघुराई' (सं० क० गू० २)
'तनना बुनना सब तज्यो कबीर' (सं० क० गू० २)

आदि उद्धरण भी इसी मत की पुष्टि कर रहे हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कबीर नीरू और नीमा नाम के जुलाहा दम्पति के औरस पुत्र थे। मेरा अनुमान है कि कबीर की हिन्दू विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए उन्हें विधवा ब्राह्मणी तथा ब्राह्मण-कन्या आदि का पुत्र कल्पित किया जाने लगा था। जन-श्रुतियों के आधार पर कोई निश्चित मत नहीं स्थिर किया जा सकता। इसी प्रकार केवल अनुमान मूलक अशक्त तर्कों के आधार पर उन्हें गुसाईं या जोगी जाति

का भी नहीं कह सकते । वे जाति से मुसलमान होकर भी रामानन्द के शिष्य थे । यही कारण है कि उनके ऊपर दोनों का प्रभाव है ।

गुरु और विद्याध्ययन :—कबीर के गुरु के सम्बन्ध में विद्वानों में कई मत प्रचलित हैं । इनमें से निम्नलिखित तीन प्रमुख हैं :—

(क) कबीर के कोई मानव गुरु ही न थे ।

(ख) कबीर शेख तकी के मुरीद थे ।

(ग) कबीर स्वामी रामानन्द के शिष्य थे ।

प्रथम मत के प्रवर्तकों में डा० मोहन सिंह[1] प्रमुख हैं । इनकी धारणा है कि कबीर ने किसी मनुष्य को अपना गुरु ही नहीं बनाया था । कबीर की रचनाओं में पाये जानेवाले 'गुरु' शब्द का अर्थ वे सर्वत्र ब्रम्ह ही लेते हैं । मेरी समझ में कबीर का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट अनुभव होता है कि वे किसी महापुरुष के शिष्य अवश्य थे । इन्हीं महापुरुष से इन्हें राम नाम रूपी गुरु मंत्र प्राप्त हुआ था । निम्नलिखित साखी से यह बात पूर्णरूपेण ध्वनित होती है :—

राम नाम के पटंतरे देवे को कुछ नाहिं ।
क्या ले गुरु संतोषिए हौंस रही मन माहिं ॥

क० ग्र० पृ० १ सा० ४

अतः यह कहना कि कबीर दास जी ने किसी मनुष्य को गुरु नहीं बनाया था अधिक समीचीन और तर्क संगत नहीं मालूम होता ।

कुछ दूसरे विद्वानों की धारणा है कि कबीर साहब शेख तकी के मुरीद थे । इन विद्वानों में मैलकाम साहब, वेस्कट साहब[2] और डा० रामप्रसाद त्रिपाठी[3] आदि प्रमुख हैं । प्रायः इन सभी विद्वानों ने प्रमाण रूप में गुलाम सरवर की 'खजीन अत्तुल असफिया' को उद्धृत किया है । गुलाम सरवर साहब भी कबीर को शेख तकी का मुरीद मानते थे । किन्तु गुलाम सरवर साहब के ग्रन्थ और उनके मतों

---

१ कबीर—हिज बाइग्राफी—डा० मोहन सिंह— पृष्ठ २२-२४

२ 'कबीर एण्ड दि कबीर पंथ' पृ० २४

३ 'हिन्दुस्तानी' (त्रैमासिक पत्रिका) सन् १९३२ पृ० २१८

को हम प्रामाणिक नहीं मान सकते। उन्होंने कबीर के जन्म की जो तिथि दी है वह अत्यन्त भ्रामक और कपोल कल्पित है। अतः माता-पिता गुरु आदि के सम्बन्ध में कही हुई बातें कहाँ तक सत्य होंगी कुछ कहा नहीं जा सकता। मेरी समझ में इस प्रकार के अनैतिहासिक और भ्रामक ग्रन्थों के आधार पर कोई मत खड़ा करना विद्वानोचित नहीं कहा जा सकता। यदि मान भी लिया जाय कि तकी साहब कबीर के पीर थे तो अन्तस्साक्ष्यों से यह बात पुष्ट नहीं होती। कबीर ने अपनी वाणी में कहीं पर भी शेख तकी के प्रति श्रद्धा नहीं प्रकट की है। बहुत सम्भव है कि शेख तकी कबीर के प्रतिद्वन्दी हों अतः उनके शिष्यों ने कबीर को छोटा सिद्ध करने के लिये उनको तकी साहब का मुरीद कहना शुरू कर दिया हो। किन्तु वास्तव में कबीर शेख तकी के मुरीद नहीं थे।

तीसरे मत वाले कबीर को रामानन्द का शिष्य मानते हैं। बहिस्साक्ष्य और अन्तर्साक्ष्य दोनों आधारों पर यह मत तीनों में अधिक तर्कसंगत और सम्भाव्य मालूम पड़ता है। यह ठीक है कि कबीर ने कहीं पर भी रामानन्द का नाम निर्देशित नहीं किया है। किन्तु हम केवल इसी आधार पर उनको रामानन्द के शिष्यत्व से बंचित नहीं कर सकते। बहुत संभव है कि गुरु के प्रति अत्यधिक श्रद्धा होने के कारण ही उन्होंने ऐसा किया हो। मेरी अपनी भी धारणा यही है कि कबीर रामानन्द के ही शिष्य थे। इस धारणा की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(१) कबीर और रामानन्द लगभग समकालीन थे। रामानन्द युग के महान् आचार्य थे।[1] ऐसे महान् आचार्य को छोड़कर कबीर और किसी को गुरु नहीं बना सकते थे।

(२) रामानन्द और कबीर की विचार धारा में बड़ा साम्य है। पीछे हम यह दिखला चुके हैं। यह साम्य सम्भवतः इसीलिए है कि कबीर रामानन्द के शिष्य थे। शिष्य का गुरु की विचार धारा से प्रभावित होना अत्यंत स्वाभाविक है।

(३) कबीर और रामानन्द के गुरु शिष्य सम्बन्ध को ध्वनित करती हुई बहुत सी किवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। किवदंतियाँ स्वयं अतिरञ्जनापूर्ण और कपोल

---

१ देखिए— **इसी ग्रन्थ में 'कबीर का समय'**

कल्पित होती हैं किन्तु उनका मूलाधार सत्य निर्विवाद ही होता है। अतः इस आधार पर भी कबीर और रामानन्द में हम गुरु और शिष्य का सम्बन्ध मान सकते हैं।

(४) कबीर ने एक स्थल पर लिखा है :—

कबीर गुरु बसे बनारसी, सिष समदा तीर।
बिसार्‌या नहीं बीसरे, जे गुण होय सरीर ॥

क० ग्र० पृ० ६८

इस साखी से स्पष्ट प्रकट होता है कि कवीर के गुरु बनारस में थे। बनारस में उस समय रामानन्द से महान् और कोई दूसरा आचार्य न था। अतः उन्हें कबीर का गुरु मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

(५) अनेक निष्पक्ष प्राचीन विद्वानों ने कबीर को रामनन्द का शिष्य माना है। इन विद्वानों में 'दबिस्ताने तवारीख' के लेखक मोहसिन फानी, तथा भक्तमाल के लेखक नाभादास जी, उसके टीकाकार प्रियादास जी तथा 'तजकीरुल फुकरा' के लेखक प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त थोड़े दिन हुए श्री शंकर दयाल श्रीवास्तव ने हिन्दुस्तानी पत्रिका में एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने कबीर को रामानन्द का शिष्य सिद्ध करने के लिए किसी 'प्रसंग पारिजात' नामक प्राचीन ग्रन्थ को प्रमाण रूप में उद्धृत किया था। इस ग्रन्थ के लेखक कोई अनन्तदास साधु कहे जाते हैं। अपने इस ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है कि वे स्वामी रामानन्द की बर्षी के दिन उपस्थित थे। उन्होंने कबीर को रामानन्द का ही शिष्य माना है। इन प्राचीन संत विद्वानों के मतों को हम अग्राह्य नहीं कह सकते। अतः रामानन्द को कबीर का गुरु कहना अनुपयुक्त नहीं है। इसीलिये हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डा० राम कुमार वर्मा, आचार्य डा० हजारीप्रसाद जी तथा डा० श्याम सुन्दर दास और डा० बड़थ्वाल आदि इसी मत के पक्ष में हैं।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि कबीर दास जी रामानन्द के ही शिष्य थे। उनकी सारी विचार धारा स्वामी रामानन्द से प्रभावित है।

जहाँ तक कबीर के विद्याध्ययन और पुस्तक ज्ञान का सम्बन्ध है उसमें वे बिल्कुल कोरे थे। उन्होंने निस्संकोच रूप से यह बात स्वीकार भी की है।

'विद्या न परउ वाद नहिं जानउ' (संत कबीर वि॰ २)

पुस्तक अध्ययन नहीं के बराबर होते हुए भी कबीर का जीवन-अध्ययन बड़ा गहरा था फिर सत्संगति से भी इन्हें अपने ज्ञान का बहुत बड़ा अंश प्राप्त हुआ था। अन्तर्ज्ञान की तो उनमें किसी प्रकार से कमी ही न थी। इन्हीं सब कारणों से कबीर दास युग के महान् उपदेशक और दार्शनिक बन सके थे।

कबीर का पारिवारिक जीवन :—कबीर वैरागी होते हुये भी गृहस्थ थे। उन्होंने वैवाहिक जीवन व्यतीत किया था तथा ससन्तान भी थे। अब प्रश्न यह है कि इनकी स्त्री का क्या नाम था वे कौन थीं। अनेक किंवदन्तियों के आधार पर परम्परा लोई को इनकी स्त्री मानती आ रही है। कबीर ने भी अपनी रचनाओं में कई बार लोई शब्द का प्रयोग किया है। वह भी अधिकतर सम्बोधन में है। जिस प्रकार शिवजी ने पार्वती जी को उपदेश दिये थे सम्भवतः उसी प्रकार कबीर ने अपने बहुत से उपदेश लोई, जो सम्भवतः उनकी स्त्री ही थी, को सम्बोधित कर प्रवर्तित किये थे। लोई के सम्बन्ध में प्रवाद है कि वे किसी बनखण्डी वैरागी को लोई में लपेटी हुई नवजात कन्या के रूप में गङ्गा जी के तट पर मिली थीं। उन्होंने ही उस कन्या का पालन-पोषण किया था। बड़े होने पर उसका विवाह कबीर से हो गया। सम्बन्ध बड़ा उपयुक्त और सम था। अगर वर के पिता का पता न था तो दुलहिन के माता पिता दोनों ही अज्ञात थे। एक अन्य किंवदंती है कि लोई पहले तो कबीर की शिष्या थी किन्तु बाद को उनकी पत्नी बन गई थी। कुछ भी हो परम्परा के आधार पर हम कबीर की स्त्री का नाम लोई मान सकते हैं। डा॰ रामकुमार वर्मा ने अन्तस्साक्ष्य के आधार पर अनुमान किया है कि कबीर के दो स्त्रियाँ थीं। उनके मतानुसार पहली सम्भवतः कुरूप थी उसकी जाति पाँति का कोई भी पता न था। उसमें गार्हस्थ्य के भी कोई लक्षण न थे। दूसरी स्त्री सम्भवतः सुन्दर और सुलक्षण थी। पहली स्त्री का नाम लोई था और दूसरी का धनिया। इसे लोग रमजनिया भी कहते थे। उनका अनुमान है कि सम्भवतः वह रमजनिया वेश्या रही हो। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कबीर के दो स्त्रियाँ रही हों किन्तु उनमें से एक वेश्या थी, यह नहीं कहा जा सकता है। कबीर भक्त थे। उनकी दोनों स्त्रियों में जो भक्तिन होगी कबीर को वही अधिक प्रिय होगी। उसी को वे सुलक्षणा और सुन्दर भी मानते होंगे।

मेरी समझ में रमजनिया का अर्थ वेश्या न लेकर भक्तिन लेना अधिक उपयुक्त है।

जब हम कबीर के दो पत्नियाँ मानते हैं तो उनसे उन्हें सन्तानें भी अवश्य प्राप्त हुई होंगी। अन्तस्साक्ष्य से ऐसा सिद्ध भी होता है कि कबीर के कई लड़के-लड़की थे। कुछ अन्य विद्वानों का मत भी है कि कबीर के कमाल तथा निहाल और कमाली तथा निहाली नाम के चार पुत्र और पुत्री थे।[1] पन्थाई भाइयों का कहना है कि कमाल ने गुजरात में एक पंथ भी प्रवर्तित किया था। अतः यह मानने में संकोच नहीं होना चाहिए कि कबीर दो स्त्रियों और कई पुत्र-पुत्रियों से समन्वित गृहस्थ थे। किन्तु फिर भी कबीर का पारिवारिक जीवन सुखी न था। एक स्थल पर वे कहते हैं—

जादि का भाई जनमिया कहूँ न पाया सुख।
डाली डाली मै फिरौ पाती पाती दुःख ॥

(क० ग्र० पृ० ११७)

कबीर अपने पुत्र की ओर से सम्भवतः प्रसन्न न थे। 'बूड़ा बंस कबीर का उपजा पुत्र कमाल' वाली लोकप्रसिद्ध उक्ति इसी बात की ओर संकेत करती है। सम्भवतः उनकी स्त्री से भी उनकी अधिक नहीं पटती थी। इसका कारण भी स्पष्ट था। कबीर साधु-सन्तों के सत्कार में अधिक लगे रहते थे। घर में जो कुछ अच्छा भोजन बनता था वह तो वे साधु-सन्तों को खिला देते थे, चबैना आदि उनकी स्त्री बेचारी को खाना पड़ता था। तभी तो वह कहती थी—

मूंड पलोसि कमर बांधि पोथी।
हम कउ चाबनु उन कउ रोटी ॥

संत कबीर गौ० ६

इस प्रकार का असंतोष सम्भवतः उनकी पहली स्त्री ने ही प्रकट किया होगा। तभी तो कबीर ने उसे कुरुपि, कुजाति, कुलक्खनी कहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर का पारिवारिक जीवन बहुत सुखमय और सफल न था।

---

१ कबीर—हिज बाइग्राफी—डा० मोहन सिंह—पृ० ३२

व्यवसाय :— कबीर जाति से जुलाहे थे। जुलाहे सदैव से ही वयन जीवी रहे हैं। कबीर भी कपड़े बुनने का ही व्यवसाय करते थे। उन्होंने कहा भी है।

हम घर सूत तनहि नित ताना।

संत कबीर आ० २६

किन्तु इस पैतृक व्यवसाय में सम्भवतः उनकी तबियत नहीं लगती थी। बाद में शायद उन्होंने उसे छोड़ भी दिया था।

तनना बुनना सभु तज्यो है कबीर।
हरि का नाम लिखि लियो सरीर॥ (सं० कं० गू० २)

पर्यटन :— कबीर फक्कड़ और घुमक्कड़ साधु थे। उन्होंने सारे भारत का पर्यटन तो किया ही था; हज भी कई बार गए थे।

कबीर हज कावे होइ होइ गइआ केती बार कबीर

सं० कं० १६८

किन्हीं गोमती तट वासी पीताम्बर पीर के प्रति इन्हें बड़ी श्रद्धा थी। उनके दर्शनार्थ तो वे प्रायः जाया करते थे।

हज हमारी गोमति तीर,
जहाँ वसहि पीताम्बर पीर। (संत कबीर आ० १३)

बाहिस्साद्य के ग्रन्थों से भी ज्ञात होता है कि कबीर बहुत दूर-दूर तक पर्यटन के लिए गए थे। आचार्य क्षिति मोहन सेन ने उनकी गुजरात यात्रा का वर्णन किया है। खुलासाउत्तवारीख में उनके रतनपुर जाने का संकेत है। वे जगन्नाथपुरी में भी कुछ दिन तक रहे थे, इस बात का स्पष्ट संकेत आइने अकबरी में मिलता है। 'कबीर मंसूर' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि कबीर ने बगदाद, समरकन्द, बुखारे आदि की भी यात्रा की थी। 'ए हिस्ट्री आफ मरहठा पीपुल' में कहा गया है कि कबीर ने दक्षिण में पंढरपुर की भी यात्रा की थी। इन यात्राओं से उन्हें निश्चय ही अतुल ज्ञान राशि प्राप्त हुई होगी। उनकी बानियों में वही ज्ञान राशि भरी हुई है।

उनके युग में उनकी स्थिति :—कबीर की रचनाओं से ऐसा अनुभव होता है कि उन्हें अपने जीवन-काल में वह सम्मान न मिल सका जो उन्हें आज प्राप्त है। अन्तस्साक्ष्य से ऐसा भी मालूम पड़ता है कि किसी व्यक्ति ने इनको मार डालने तथा कष्ट देने की अनेक कुचेष्टाएँ भी की थीं। निम्नलिखित पंक्तियों से यही बात प्रकट होती है :—

भुजा बांधि मिलाकर डारिओ।
हँसती कोपिमूंड महि मारिओ।।
गंग गुसाइन गहर गम्भीर।
जंजीर बाँधकर खरे कबीर।।

संत कबीर भै० १८

सम्भवतः कबीर को नीच जाति का साधक समझ कर लोग उनकी हँसी उड़ाते थे।

कबीर मेरी जाति को सभु कोइ हसने हारु।

संत कबीर सं० २

ऐसी विषम परिस्थितियों में भी सत्य का वह अनन्य उपासक रंच मात्र भी विचलित न हुआ। यही दृढ़ता कबीर के जीवन की प्रमुख शक्ति है। आज तक वे इसी लिए जीवित रह सके हैं।

कबीर की मृत्यु तिथि :—जन्म तिथि के समान कबीर की मृत्यु तिथि भी अनिश्चित ही है। बहिस्साक्ष्य और अन्तस्साक्ष्य दोनों में इसके सम्बन्ध में कोई भी संकेत नहीं पाया जाता। इनकी मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में चार दोहे प्रसिद्ध हैं। वे इस प्रकार हैं :—

(१) संवत पन्द्रह सौ औ पाँच भौ मगहर कियो गौन।
अगहन सुदी एकादसी रलो पौन में पौन।।

(२) सम्वत पन्द्रह सौ पछहत्तर कियो मगहर को गौन।
माग सुधी एकादसी टलो पौन में पौन।।

(३) सम्वत पन्द्रह सौ उनहत्तरा हाई
सतगुर चले उठ हंसा ज्याई (धर्मदास द्वादस पंथ—)

(४) पन्द्रह सौ उन्चास में मगहर कीनो गौन
अगहन सुदी एकादसी मिलो पवन में पौन

भक्तमाल की टीका

उपर्युक्त चारों उद्धरणों से स्पष्ट है कि कबीर दास जी की मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में चार मत हैं। कुछ लोग १५०५ मानने के पक्ष में हैं, कुछ सं० १५७५ निश्चित करते हैं। बहुत से लोग १५६६ मानते हैं तथा बहुत से १५४६ को अधिक समीचीन समझते हैं। इनमें से चारों तिथियाँ ऐतिहासिक या अन्य किन्हीं पुष्ट प्रमाणों पर नहीं आधारित हैं। अनन्त दास की परिचई के अनुसार कबीर ने १२० वर्ष की आयु पाई थी। कबीर ऐसे महात्मा की इतनी आयु होना आश्चर्य-जनक भी नहीं है। हम ऊपर कबीर की जन्म तिथि सं०१४५५ निश्चित कर चुके हैं। १४५५ में १२० जोड़ देने पर उनकी मृत्यु तिथि १५७५ आती है अतः इन सभी तिथियों में मेरी समझ में सं० १५७५ वाली तिथि ही प्रामाणिक माननी चाहिए। इससे कबीर को सिकन्दर लोदी, स्वामी रामानन्द तथा नानक चैरु के समकालीन मानने में बाधा नहीं पड़ती है। ब्रिगस के अनुसार कबीर की भेंट सिकन्दर लोदी से सं० १५५३ में हुई थी। उस समय कबीर लगभग ९८ वर्ष के रहे होंगे। वेस्काटसाहब का मत है कि गुरु नानक २७ वर्ष की अवस्था में कबीर दास जी से मिले थे। गुरु नामक की जन्म तिथि सं० १५२६ मानी जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि सं० १५५३ में कबीर की नानक से भेंट हुई थी। कबीर का नानक पर जो प्रभाव है उसे देखते हुए यह मानना अनुचित भी नहीं है।

कबीर की एक मृत्यु तिथि और विचारणीय है। वह है 'भक्ति सुधा विन्दु स्वाद' नाम ग्रन्थ[1] की। उसमें लिखा है कि कबीर सम्वत् १५४६ में मगहर गए थे और सं० १५५२ में वहाँ वे अगहन सुदी एकादशी को सत्यलोक गामी हुए

---

१ भक्ति सुधा विन्दु स्वाद—पृ० ८४०

थे। 'भक्ति सुधा विन्दु स्वाद' नामक ग्रन्थ भक्ति भावना से प्रेरित हो लिखा हुआ मालूम पड़ता है। उसमें लेखक का लक्ष्य वैज्ञानिक खोज पूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत करना न था। ऐसी दशा में हम उसकी प्रामाणिकता में निश्चयात्मक रूप से विश्वास नहीं कर सकते। फिर इस ग्रन्थ की तिथि को प्रामाणिक स्वीकार करने पर कबीर की सिकन्दर लोदी तथा नानक से भेंट वाली वार्ताएँ सिद्ध नहीं हो सकेंगी। अतः हम इसे स्वीकार न कर कबीर की निधन तिथि सं० १५७५ ही मानते हैं।

कबीर का मृत्यु स्थान :—किम्वदन्ती है और कबीर की रचनाओं में भी ऐसे संकेत मिलते हैं कि उनकी मृत्यु मगहर में हुई थी। एक स्थल पर वे कहते हैं :—

सकल जनम शिवपुरी गवाइआ।
मरती बार मगहरि उठि धाइया॥
बहुत बरस तप कीआ कासी।
मरन भाइआ मगहर को वासी॥ (स० क० ग० १५)

अब प्रश्न है कि यह मगहर कौन सा स्थल है। प्रियादास जी मगहर को मग्गह लिखते हैं। मग्गह मृत्यु के लिए बड़ा अशुभ स्थान माना जाता है। प्रसिद्ध भी है 'मग्गह मरै तो गदहा होय'। शिवव्रत लाल का मत है कि कबीर जी मरने के लिए गंगा पार मगहर नाम के स्थान पर गए थे। मग्गह और मगहर दो स्थल हैं। मगहर बस्ती जिलान्तर्गत एक गाँव है। मग्गह गंगा पार स्थित एक प्रान्त है जो कर्मनाशा क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। मेरी समझ से कबीर की मृत्यु बस्ती जिलान्तर्गत मगहर में हुई थी वहाँ पर आज भी कबीर की कब्र और समाधि मौजूद है। फिर मेरा यह अनुमान है कि कबीर मगहर में ही उत्पन्न हुए थे और मगहर में ही जाकर परलोक वासी भी। कबीर के मृत्यु स्थान के सम्बन्ध में दो एक मत और हैं। आइने अकबरी[1] में लिखा है कि कबीर की समाधियाँ पुरी और रतनपुर दोनों स्थलों पर हैं। रतनपुरवाली समाधि की चर्चा खुलासा-उत्तवारीख[2] में भी की गई है। इसके आधार पर कुछ विद्वान् यह अनुमान

---

१ आइने अकबरी—कर्नल जेरेट का अनुवाद—भाग २ पृ० १२६, १७१
२ **खुलासाउत्तवारीख—पृ० ४३**

करने लगे हैं कि कबीर पुरी में समाधिस्थ हुए थे।[1] कुछ दूसरे विद्वान् इसी आधार पर रतनपुर को उनका मृत्यु स्थान कल्पित करते हैं। किन्तु किसी स्थल पर कबीर की समाधि का होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि कबीर की मृत्यु भी वहीं हुई थी। किन्हीं पुष्ट प्रमाणों के अभाव में हम मगहर को ही कबीर का मृत्यु स्थान मानेंगे। स्वयं धर्मदास कृत शब्दावली में कब्र सम्बन्धी निम्न-लिखित उक्ति दी हुई है :—

मगहर में एक लीला कीन्हीं हिन्दू तुरुक ब्रतधारी।
कबर खुदाइ के परचा दीन्हों मिटि गयो झगरा भारी॥

देखिए पृष्ठ ४

इससे प्रकट होता है कि कबीर मगहर में ही मृत्यु को प्राप्त हुए थे।

अब प्रश्न यह है कि कबीर मुसलमानी ढंग पर दफनाए गए थे या हिन्दुओं के ढंग पर अग्नि दग्ध किए गए थे। इस सम्बन्ध में लोगों के मत भिन्न-भिन्न हैं कुछ लोगों का अनुमान है कि वे मुसलमामों की तरह दफनाए गए थे। यह बात सम्भवतः समाधियों के कारण कहते हैं। परन्तु मेरी धारणा है कि कबीर का हिन्दुओं के समान अग्नि-संस्कार किया गया था। इसका प्रमाण यह है कि जब वीरसिंह बघेले ने इनकी कब्र को खुदवा कर शव को निकालने की चेष्टा की तो उसे केवल कुछ पुष्पों के अतिरिक्त और कुछ न मिला। इससे यह प्रकट होता है कि योगी हिन्दुओं ने भी सम्भवतः उनके शव पर पड़े हुए फूलों को लेकर समाधि का निर्माण किया होगा क्योंकि उनका शव देहावसान होते ही अग्नि दग्ध कर दिया गया था।

कबीर के अध्ययन का आधार

कहते हैं कि महात्मा कबीर ने 'मसि और कागज' कभी हाथ से नहीं छुए थे। उन्होंने अपनी विद्या-विहीनता स्वयं स्वीकार की है। "विदिया न पढ़उ बाद नहिं जानहु।"[2] ऐसी दशा में उनकी बानियाँ उनके शिष्यों द्वारा ही लिखी

---

१ 'ट्रवेल्स में टैवर्नियर ने भी इस बात का संकेत किया है—भाग २ पृ० २२६

२ संत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा—वि० २

गई होंगी। यह भी सम्भव है कि उनके शिष्य लोग लिखने के बाद उनसे शुद्ध भी करवा लेते हों। अतः प्रामाणिकता की दृष्टि से वे ही रचनाएँ कुछ विश्वसनीय मानी जा सकती हैं जो कबीर के युग की हों या उनकी मृत्युकाल के कुछ वर्षों बाद की प्रतिलिपि हों। इस दृष्टि से कबीर की बानियां के प्रकाशित संग्रहों में डा० श्याम सुन्दर दास द्वारा संकलित 'कबीर ग्रंथावली' और 'संत कबीर' ही प्रामाणिक माने जा सकते हैं। 'कबीर ग्रन्थावली' के संकलनकर्ता ने लिखा है कि ग्रंथावली का संचयन दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है। उनका समय क्रमशः सम्वत् १५६१ तथा सम्वत् १८८१ हैं। विद्वान् संकलन-कर्ता ने यह भी लिखा है कि दोनों प्रतिलिपियों के कालों में यद्यपि ३२० वर्ष व्यवधान है लेकिन फिर भी दोनों में पाठ भेद बहुत ही कम है। इतना अवश्य है कि सम्वत् १८८१ की प्रति में सम्वत् १५६१ वाली प्रति की अपेक्षा केवल १३२ दोहे और पद अधिक हैं। इतने दोहों और पदों का इतने दिनों में प्रक्षिप्त हो जाना आश्चर्यजक नहीं है। सम्वत् १५६१ वाली प्रति कवि के जीवन काल के समीप की है। अतः अवश्य ही अधिक प्रामाणिक होगी। इस प्रति के प्रथम एवं अंतिम पृष्ठ ग्रन्थावली में प्रकाशित किए गए हैं। उसके अंतिम पृष्ठ की अंतिम पंक्ति देखकर ऐसा भ्रम होता है कि वह मूल लिपि कर्ता द्वारा लिखित नहीं है। यह भ्रम इस लेखक को ही नहीं कबीर साहित्य के धुरंधर विद्वान् डा० रामकुमार वर्मा तथा आचार्य हजारी-प्रसाद जी को भी हुआ है,[1] किन्तु केवल इस आधार पर उसे अप्रामाणिक मानना ठीक नहीं। यह बहुत सम्भव है कि लिपिकर्ता अंतिम पंक्ति लिखना भूल गया हो और थोड़े दिन बाद उसके किसी शिष्य ने उसमें उसका लिपि काल लिख दिया हो। यदि हम यह मान भी लें कि वह बाद की प्रतिलिपि है तो भी उसे अप्रामाणिक मानने के लिये इतना ही कारण पर्याप्त नहीं है। दो काल की दो प्रतिलिपियां में नाम-मात्र का पाठ भेद होना उनकी प्रामाणिकता का द्योतक है। लोक सदैव कवि की वास्तविक वाणी को अपरिवर्तित रखने का प्रयत्न किया करता है। इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि इन प्रतियों में कबीर की वास्तविक बानियाँ ही होंगी। इसीलिए हमने इनके आधार पर संकलित कबीर ग्रन्थावली को अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

१ 'कबीर' डा० हजारीप्रसाद जी—पृ० १६ तथा संत कबीर प्रस्तावना पृ० ७

दूसरी पुस्तक जो मुझे सबसे अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है, डा० रामकुमार वर्मा द्वारा सम्पादित 'संत कबीर है'। उसमें सुयोग्य विद्वान ने बड़ी सावधानी के साथ 'ग्रन्थ साहब' में दी हुई कबीर की बानियों का संकलन किया है। ग्रंथ साहब की प्रामाणिकता के विषय में सन्देह उठाने को कोई गुंजायश नहीं है। वह सिक्खों का धर्म ग्रंथ है। इसका संकलन पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव ने सन् १६०४ में किया था। १६०४ का यह पाठ निश्चय ही प्रामाणिक होगा। यह ग्रन्थ सिक्ख में देववत् पूज्य माना जाता है। यहाँ तक कि एक एक शब्द को मंत्र शक्ति से युक्त समझकर उसे पूर्ववत् ही लिखने और साधने का नियम चला आया है। इसमें एक वर्ण का भी अन्तर नहीं हो सकता। अतः इसकी प्रामाणिकता सिद्ध है; इसीलिए मैंने इस ग्रन्थ को भी अपने अध्ययन का आधार माना है।

इन दोनों ग्रन्थों के अतिरिक्त कबीर की बानियों के और भी संग्रह उपलब्ध हैं, जिनमें वेलवेडियर प्रेस के संग्रह ग्रन्थ और बीजक ग्रन्थ सबसे अधिक विचारणीय हैं।

जहाँ तक वेलवेडियर प्रेस के संग्रह ग्रन्थों का सम्बन्ध है, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध कही जा सकती है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित ग्रन्थों की आधारभूत हस्तलिखित प्रतियाँ अभी कबीर साहित्य के मर्मज्ञों के हाथ में नहीं आई हैं। अतः उनकी प्रामाणिकता आदि पर विचार नहीं किया जा सकता है। उनका लिपिकाल भी संकलनकर्ता ने कहीं भी निर्देशित नहीं किया है, जिसके आधार पर कुछ अधिक विचार किया जा सके।

(२) प्रायः इन संग्रहों से ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तविक बानियों को शुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

(३) इन ग्रन्थों के संकलनकर्ता राधास्वामी सम्प्रदाय के हैं। इस मत के लोग कबीर को आदि गुरु मानते हैं। अतः बहुत सम्भव है कि संकलनकर्ता ने कुछ धार्मिक और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से भी कार्य किया हो।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि इन ग्रन्थों में संग्रहीत समस्त बानियाँ अप्रामाणिक हैं। इनमें थोड़ी बहुत बानियाँ अवश्य ही कबीर कथित होंगी। यह बात

दूसरी है कि उनका रूप परिवर्तित हो गया हो, किंतु यह निश्चित करना सरल नहीं कि कौन प्रामाणिक है और कौन अप्रामाणिक। संदिग्धता के कारण मैंने 'कबीर की विचारधारा' के निर्माण में उन्हें आधार नहीं माना है। स्वयं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी 'कबीर' में कबीर के सिद्धांतों के निर्माण में इनको विशेष महत्त्व नहीं दिया है।

'बीजक' कबीर पंथ में सबसे प्रामाणिक रचना मानी जाती है। पूर्ववर्ती विद्वानों ने भी कबीर के विचारों के अध्ययन में इसी को आधार बनाया था, किंतु मैंने निम्नलिखित कारणों से 'कबीर की विचारधारा के विवेचन में उसका उपयोग नहीं किया है।

(१) बीजक के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं। उन सभी संस्करणों में परस्पर बहुत भेद है, जिससे यह पता नहीं चलता कि उसका कितना अंश प्रामाणिक है और कितना प्रक्षिप्त। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विश्वभारती पत्रिका[1] में तथा की साहब ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "कबीर एण्ड हिज फालोअर्स" में बीजक के विविध संस्करणों[2] के रूपों पर विचार किया है। डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने तो 'बीजक' के कुछ अंशों को अधिक प्रामाणिक तथा कुछ को कम प्रामाणिक बतला कर उसकी संदिग्धता विशेष रूप से ध्वनित की है।

(२) बीजक के सम्बन्ध में बहुत सी कथाएँ प्रचलित हैं। जिनमें से एक कथा इस प्रकार हैं। कहते है कि दो भाई कबीर के शिष्य थे। इनके नाम जग्गीदास और भग्गीदास थे। मृत्यु के समय कबीर दास ने बीजक इनकी माता को सौंप दिया। कबीर के सत्यलोक कूच करने के बाद दोनों भाइयों में झगड़ा होने लगा, तब माता को दोनों ही को बीजक का अधिकार देना पड़ा। केवल अंतर इतना ही है कि एक का बीजक "जीव रूप एक अंतर वासा" और दूसरे का "अन्तर्जांहि समूहे एक नारी" से प्रारम्भ होता है। किन्तु इस

१ विश्व भारती पत्रिका वैसाख आषाढ़ २००४ वि० पृ० १००-११५
२ कबीर एण्ड हिज फालोअर्स—पृ० २३-२६

किंवदंती में कुछ विशेष सार नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि दोनों बीजकों में इतना ही भेद नहीं है।

अतः बीजक के रूप के सम्बन्ध में बड़ा सन्देह मालूम पड़ता है। एक किंवदंती और है। कहते हैं कि कबीर दास का भगवान दास नामक एक शिष्य बीजक की प्रति धनौती ले गया। वहाँ वह बहुत दिनों तक महन्तों के साथ रहा। जब भगवान दास हिमालय की किसी गुफा में बीजक को हाथ में लेकर समाधि मग्न था उसी समय किसी सिद्ध ने बीजक को उड़ा देना चाहा। सत्गुरु की कृपा से वह उसे संपूर्ण रूप में प्राप्त करने में समर्थ न हो सका। परन्तु उसने उसका कुछ अंश अवश्य लुप्त कर दिया। बीजक के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। सभी में यही ध्वनित किया गया है कि बीजक अब अपने मूल और प्रामाणिक रूप में प्राप्त नहीं है। बहुत सम्भव है कि हाल में ही विद्वान् इसके बहुत बड़े अंश को सतर्क अप्रामाणिक सिद्ध कर दें। इन्हीं कारणों से मैंने अपनी विवेचना में इसका उपयोग नहीं किया है।

कबीर साहब की बानियों के अनेक संग्रहों में महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय द्वारा संपादित 'कबीर वचनावली' की अच्छी ख्याति है, विद्वानों में इस की प्रतिष्ठा भी है। इसका संग्रह कबीर बीजक, चौरासी अंग की साखी तथा वेलवेडियर प्रेस की पुस्तकों के आधार पर हुआ है।[1] इस लेखक ने उक्त सभी ग्रन्थों को थोड़ा बहुत संदिग्ध होने के कारण अपने अध्ययन का आधार नहीं माना है, अतः इस ग्रन्थ में कबीर वचनावली का भी उपयोग नहीं किया गया है।

इतनी बात तो प्रकाशित ग्रंथों के सम्बन्ध में हुई। कबीर के नाम से पाए जानेवाले सैकड़ों और ग्रंथ उपलब्ध हैं, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाए हैं। इनकी चर्चा समय-समय पर विद्वान् लोग करते आए हैं। विलसन साहब ने केवल आठ ग्रंथ कबीर रचित बतलाए हैं वेस्कट साहब ने कबीर सम्बन्धी ग्रंथों की संख्या ८२ तक पहुँचा दी है। मिश्र बन्धुओं ने कबीर के नाम पर ७५ ग्रंथों की सूची दी है। रामदास गौड़ ७१ ग्रन्थ कबीर रचित मानते हैं। वेंकटेश्वर प्रेस से प्रका-

१ कबीर वचनावली—पृ० २६ मुख बन्ध

शित कबीर सागर में कबीर कृत ४० ग्रन्थों की चर्चा की गई है । डा० रामकुमार वर्मा ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" में खोज रिपोर्टों के आधार पर कबीर के नाम से पाए जानेवाले ६१ ग्रंथों का उल्लेख किया है । नागरी प्रचारणी सभा के अप्रकाशित विवरणों के आधार पर लगभग १३० ग्रन्थ कबीर कृत कहे जा सकते हैं । इनके अतिरिक्त कबीर नाम से सैकड़ों ऐसी बानियाँ भी देश भर में प्रचलित हैं जो किसी भी उपलब्ध लिखित ग्रंथ में नहीं मिलतीं । आचार्य क्षितिमोहन सेन ने ऐसी बानियों का एक अच्छा संग्रह प्रकाशित कराया है । कुछ अन्य विद्वान् भी इन मौखिक बानियों का संग्रह करने में प्रयत्नशील हैं । कबीर कृत इस विशाल साहित्य में यह निर्णय करना कि कौन सी कबीर की वास्तविक बानियाँ हैं, बड़ा कठिन है । इतना तो निश्चय है कि कबीर के नाम से भरे हुए इस विशाल सागर में कबीर कृत सच्चे रत्न कम ही हैं ।

कबीर सम्बन्धी आलोचनात्मक साहित्य :—कबीर की विचार धारा का विवेचन करने से प्रथम उन पर लिखे गये आलोचनात्मक साहित्य पर विहंगम दृष्टि डाल लेना अनपयुक्त न होगा । यह कहना अनुचित नहीं है कि कबीर के अध्ययन की ओर विद्वानों की अभिरुचि कम रही है । यही कारण है कि उनकी बानी और व्यक्तित्व की जितनी अधिक विवेचना होनी चाहिए थी नहीं हो पाई है ।

फिर भी हमें संतोष है कि अब धीरे-धीरे विद्वानों की अभिरुचि कबीर के अध्ययन की ओर बढ़ती जा रही है । आजकल डा० हजारी प्रसाद जी तथा डा० रामकुमार वर्मा कबीर के सूक्ष्म और गम्भीर अध्ययन में संलग्न हैं । इन दोनों विद्वानों ने कई अत्यन्त खोजपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखे हैं । इन ग्रंथों ने निश्चय ही बहुत से लोगों का ध्यान कबीर के अध्ययन की ओर आकर्षित किया है । यहाँ पर स्व० डा० श्यामसुन्दर दास जी व पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय को भी नहीं भुला सकते । इनके द्वारा संकलित "कबीर ग्रंथावली" और "कबीर वचनावली" कबीर के अध्ययन का आधार बनी हुई हैं । डा० रामकुमार वर्मा ने "संत कबीर" में और आचार्य हजारी प्रसाद जी ने "कबीर" में उनके कुछ पदों की टीका टिप्पणी करके मानो कबीर के अध्ययन का द्वार ही खोल दिया है ।

विवेचन की सुविधा के लिए कबीर से सम्बन्धित आलोचनात्मक साहित्य को स्थूल रूप से चार भागों में बाँट सकते हैं।

(१) वे प्राचीन ग्रन्थ जिनमें कबीर के सम्बन्ध में दो एक अवतरण मात्र मिलते हैं। इन ग्रन्थों में प्राप्त सामग्री का विवेचन कबीर के जीवन वृत्त वाले प्रकरण में किया गया है।

(२) दूसरे वह इतिहास ग्रन्थ हैं जिनमें कबीर के सम्बन्ध में यों ही साधारण रूप से विचार प्रकट कर दिए गए हैं। यह इतिहास ग्रन्थ भी दो प्रकार के हैं—एक तो भारतवर्ष के इतिहास ग्रन्थ, दूसरे हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ। यह ग्रन्थ संख्या में अधिक हैं। प्रायः सभी उच्चकोटि के भारतवर्ष के इतिहासों और सभी हिन्दी साहित्य के इतिहासों में कुछ न कुछ अवश्य कबीर के सम्बन्ध में लिखा हुआ मिलता है। इन ग्रन्थों का लक्ष्य कबीर की सूक्ष्म अलोचना करना नहीं है। इनमें प्रायः कबीर की प्रमुख विशेषतायें ही निर्देशित की गई हैं। उन ग्रन्थों में प्रकट किये गए मत प्रायः एकपक्षीय हैं, और सद्समालोचना की दृष्टि से उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। अतः यहाँ पर उनका विवेचन करना अनावश्यक ही होगा।

(३) तीसरे प्रकार के वे ग्रन्थ हैं जिनमें भारतीय धर्म साधना की चर्चा के बीच-बीच में कबीर पर संक्षेप में विचार किया गया है। इन ग्रन्थों में यद्यपि कबीर के सम्बन्ध में बहुत अधिक नहीं लिखा गया है। फिर भी भारतीय धर्म साधना में कबीर का क्या स्थान है। इस बात को स्पष्ट करने की दृष्टि से ये ग्रन्थ अवश्य महत्त्वपूर्ण हैं। इस कोटि के ग्रन्थों में निम्नलिखित ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं :—

१ वैष्णविज्य शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम्स—डा० भण्डारकर।

२ इंडियन थीइज्म—मैकनिकल

३ रिलीजस सैक्ट्स आफ हिन्दूज—विल्सन साहब

४ आउटलाइन्स आफ रिलीजस लिट्रेचर आफ इंडिया—फर्कुहर

५ मेडिवल मिस्टीसिज्म—आचार्य क्षिति मोहन सेन

६ रामानन्द टू रामतीर्थ—नटेसन कम्पनी

७ वैष्णव रिफारमर्स आफ इंडिया—राजगोपालाचारी

८ इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इंडियन कलचर—डा० ताराचन्द

९ सिख रिलीजन—मैक लफ

१० बुद्धिज्म एण्ड हिन्दूइज्म—इलियट

वैष्णविज्म शैविज्म :—नामक ग्रन्थ संस्कृत विद्वान् भंडारकर का लिखा हुआ है। ग्रन्थ में वैष्णव तथा अन्य धर्मों का उदय तथा विकास बड़ी विद्वत्ता के साथ दिखलाया गया है। उसी के मध्य में रामानन्द और कबीर का सारगर्भित विवेचन किया गया है। बीजक की कई रमैनियों का अंग्रेजी में अनुवाद करके कबीर की संसारोत्पत्ति के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार प्रकट किए गए हैं। संसारोत्पत्ति क्रम के साथ-साथ उनके और भी दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

इंडियन थीइज्म :—नामक ग्रन्थ मैकनिकल नाम के एक विद्वान् का लिखा हुआ है। इसमें वैदिक काल से लेकर १८वीं शताब्दी तक की आस्तिक धर्म पद्धतियों पर विचार किया गया है। लेखक ने कबीर पर तीन चार पृष्ठ लिखे हैं। इनमें उसने कबीर के शब्दवाद पर अच्छे तर्क वितर्क भिड़ाए हैं। लेखक उन्हें अद्वैतवादी दार्शनिक कवि मानता है। कबीर के शब्दवाद को समझने के लिये मैकनिकल साहब के मत और विचारों से परिचय प्राप्त कर लेना अनुपयुक्त न होगा।

रिलीजस सैक्ट्स आफ हिन्दूज़ :—विलसन साहब का सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें लेखक ने हिन्दुओं के विविध धार्मिक सम्प्रदायों का खोजपूर्ण विवेचन किया हैं। लेखक ने अनेक सम्प्रदायों के वर्णन के साथ-साथ कबीर और उसके पंथ पर भी कुछ विचार प्रकट किए हैं। कबीर और कबीर पंथ सम्बन्धी विवेचन अत्यन्त संक्षिप्त है। इस ग्रन्थ के लेखक ने स्वयं कबीर के अस्तित्व के सम्बन्ध में ही संदेह उठाया है। कबीर की विवेचना की दृष्टि से यह ग्रन्थ साधारण कोटि का है।

फर्कुहर साहब का "आउटलाइन्स आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया" :—नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ के लेखक ने भारत के धार्मिक साहित्य का विवेचन और विश्लेषण करते हुए गोरखनाथ, रामानन्द और कबीर तथा उनकी रचनाओं का भी वर्णन किया है। कबीर के सम्बन्ध में

लेखक ने कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं कही है। हाँ उन्हें उन्होंने भेदाभेद वादी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। कबीर के विद्यार्थी के लिये पुस्तक उपादेय हो सकती है।

मैडिवल मिस्टीसिज्म :—नामक ग्रंथ के लेखक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् आचार्य क्षितिमोहन सेन हैं। इसके भूमिका-लेखक कवींद्र रवींद्र हैं। यह ग्रन्थ आधार मुकर्जी लेक्चर्स का परिवर्धित स्वरूप है। इसमें सेन जी ने भारत के सन्तों की बानी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। पहले भाषण में प्राचीनता-वादी सन्तों का वर्णन तथा दूसरे भाषण में स्वतंत्र चिंता वाले सन्तों का विवेचन मिलता है। इन स्वतंत्र चिंतकों में कबीर और उनके गुरु रामानन्द को ऊँचा स्थान दिया गया है। लेखक ने कबीर के विषय में कोई बहुत खोजपूर्ण बातें नहीं कही हैं। हाँ इस ग्रंथ की भूमिका और परिशिष्ट अवश्य महत्त्वपूर्ण हैं। भूमिका में भारतीय रहस्यवाद की विशेषताओं पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। परिशिष्ट में बाउल सम्प्रदाय तथा कबीर पर उसके प्रभाव का अच्छा विवेचन मिलता है। इस दृष्टि से पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

रामानन्द टू रामतीर्थ :—नामक एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें उसके रचयिता का नाम नहीं दिया गया है। यह जिस कार्यालय से प्रकाशित हुई है उसका नाम नटेसन है। इसमें रामानन्द, कबीर और नानक आदि सन्तों पर अलग अलग वर्णन मिलते हैं। पुस्तक का लक्ष्य सन्तों की सद्समालोचना प्रस्तुत करना नहीं है। उसमें उनका साधारण परिचय मात्र दिया गया है। पुस्तक बिल्कुल साधारण कोटि की है।

वैष्णव रिफारमर्स आफ इण्डिया :—में कबीर के सम्बन्ध में अधिक वर्णन नहीं मिलता। रामानन्द का वर्णन करते करते कबीर को भी लपेट लिया गया है। कबीर के सुधारक स्वरूप पर बहुत संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। कबीर का सूक्ष्म अध्ययन करनेवाले को यह पुस्तक भी देखनी चाहिये।

इन्फ्लुएंस आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर :—प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर ताराचन्द के उज्ज्वल यश का आधार है। इसी ग्रंथ पर आपको डी० फिल० की उपाधि मिली थी। निश्चय ही यह ग्रन्थ बड़ी विद्वता के साथ लिखा गया है। इस ग्रन्थ में रामानन्द और कबीर के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री प्राप्त

हो सकती है। प्रारम्भ में लेखक ने सूफी मत का बड़ी सूक्ष्मता एवं विद्वता के साथ विवेचन किया है। फिर कबीर को इस्लाम और सूफी मत से पूर्णतया प्रभावित सिद्ध किया गया है। कबीर के विद्यार्थी के लिये इस ग्रंथ का अध्ययन आवश्यक और अनिवार्य है। ग्रंथ अत्यन्त उच्च कोटि का और गंभीर है।

सिख रिलीजन :— मैक्लिफ साहब लिखित यह ग्रंथ ६ भागों में प्रकाशित हुआ है। सिख धर्म की विवेचना के साथ साथ लेखक ने इसमें महात्मा कबीर के जीवन, धर्म दर्शन और उपदेशों की भी चर्चा की है। ग्रंथ विद्वतापूर्ण है और अँगरेजी में सिख धर्म का वर्णन करने वाला श्रेष्ठ ग्रन्थ है।

बुद्धिज्म और हिदूइज्म :—इलियट द्वारा लिखित इस ग्रन्थ में लेखक ने बुद्ध धर्म और हिन्दू धर्म का विकास बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। उन दोनों धर्मों के मूल सिद्धान्तों को भी स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रंथ में थोड़ी सी चर्चा सन्त कबीर की भी मिलती है। हिन्दू धर्म विकास में कबीर और कबीर पन्थ का जो हाथ रहा हो उसे स्पष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। पुस्तक खोजपूर्ण तथा गंभीर है।

(४) चौथे प्रकार के वे ग्रन्थ हैं जिनमें कबीर के व्यक्तित्व विचारों एवं भावों की विषद् विवेचना की गई है। इन्हें स्थूल रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं। एक तो वह जिसमें कबीर की आलोचना भूमिका रूप में प्रस्तुत की गई है और दूसरे वे जो स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में लिखे गए हैं। यह ग्रन्थ हिंदी अंग्रेजी तथा उर्दू तीनों भाषाओं में मिलते हैं। भाषा और समयानुक्रम को दृष्टि में रखते हुए हम यहाँ प्रमुख ग्रन्थों का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

कबीर सम्बन्धी हिन्दी-आलोचनात्मक ग्रन्थ

कबीर मंसूर :—कबीर के अध्ययन का श्रीगणेश सन् १६०० के लगभग मानना चाहिये। कबीर पर सबसे पहली पुस्तक "कबीर मंसूर" सन् १६०२-३ में मानजी मुंगेरजी पीटर द्वारा बम्बई से प्रकाशित हुई थी। वैसे तो यह पुस्तक अपने मूल रूप में सन् १८८७ में उर्दू में पञ्जाब के परमानन्द दास द्वारा लिखी गई थी। किन्तु सन् १६०३ में इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ था। यह

पुस्तक लगभग १५०० पृष्ठों की विस्तृत रचना है। इसमें अनेक कबीर पंथी कहानियाँ एवं सिद्धांत दिये गये हैं। पुस्तक साहित्य की दृष्टि से साधारण कोटि की है, किन्तु कबीर पर प्रथम पुस्तक होने के कारण इसका महत्व अवश्य बढ़ जाता है।

कबीर ज्ञान :—कबीर के अध्ययन में ईसाइयों ने काफी हाथ बँटाया है। यदि उनका दृष्टिकोण संकुचित न होता तो उनकी पुस्तकें अवश्य उपयोगी और सुन्दर होतीं। सन् १९०४ के लगभग किसी बरेली निवासी सुखदेव प्रसाद नामक हिंदू ईसाई द्वारा लिखित 'कबीर ज्ञान' नामक पुस्तक प्रकाश में आई। लेखक का लक्ष्य कबीर पंथ एवं कबीर सिद्धान्तों को ईसाई धर्म की अपेक्षा हेय सिद्ध करना मालूम पड़ता है। दूषित दृष्टिकोण से लिखी हुई होने के कारण पुस्तक सत्य के उद्घाटन में असफल रही है और कोई साहित्यिक मूल्य नहीं रखती।

कबीर साहब का जीवन चरित्र :—यह भी एक कबीर पंथी रचना है। इसका प्रकाशन १९०५ में सरस्वती विलास प्रेस नरसिंहपुर से हुआ था। पुस्तक धार्मिक दृष्टिकोण से लिखी गई है और साधारण कोटि की है।

कबीर कसौटी :—सन् १९०६ में कबीर पंथी सज्जन बाबू लहना सिंह ने 'कबीर कसौटी' नाम की एक पुस्तक लिखी। यह वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुई है। पुस्तक पद्य में है। साधारणतया अच्छी है। किंतु वैज्ञानिक विवेचना के इसमें किंचित् मात्र भी दर्शन नहीं होते। पुस्तक न तो खोजपूर्ण है और न पांडित्यपूर्ण ही।

कबीर चरित्र बोध ग्रन्थ :—यह ग्रन्थ बम्बई के खेमराज श्रीकृष्ण दास के यहाँ से प्रकाशित हुआ था। यह भी कबीर पन्थी ग्रन्थ है। इसमें कबीर और कबीर पन्थ का अत्यन्त अति रञ्जनापूर्ण वर्णन किया गया है। आलोचना की दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

कबीर वचनावली और कबीर ग्रंथावली :—इसी बीच में दो महत्त्वपूर्ण संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित हुए। दोनों के ही संग्रह कर्ता हिन्दी के धुरन्धर विद्वान् थे। दोनों ने ही पुस्तक के प्रारम्भ में भूमिका रूप में कबीर पर महत्त्वपूर्ण आलोचनायें लिखी हैं। इन दोनों संग्रहों के नाम क्रमशः 'कबीर वचनावली' और 'कबीर

ग्रन्थावली' हैं। कबीर वचनावली का प्रकाशन सन् १९१६ में हुआ था। इसके संग्रहकर्ता कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' थे।

कबीर ग्रन्थावली का प्रकाशन सन् १९२८ में हुआ था। इसका संकलन काशी के बाबू श्याम सुन्दर दास जी ने किया था। कबीर वचनावली में भूमिका लेखक ने कबीर के सम्बन्ध में अत्यन्त खोजपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की है। इस ग्रन्थ में कबीर के जीवन-वृत्त, उनके ग्रन्थों और उनके पंथ आदि पर कुछ अधिक विस्तार के साथ विचार किया गया है। किंतु उसमें कबीर के दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धांतों का समुचित विवेचन नहीं पाया जाता। फिर भी भूमिका कम सुन्दर नहीं है। बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा संग्रहीत 'कबीर ग्रन्थावली' में कबीर के आविर्भाव काल, भक्त सन्तों की परम्परा, काल निर्णय, तात्विक सिद्धांत, काव्यत्व, भाषा आदि विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। विवेचना मौलिक और विद्वतापूर्ण होते हुए भी संक्षिप्त है और विशेषकर विद्यार्थियों के उपयोग की है।

कबीर का रहस्यवाद :—इसके बाद सन् १९३१ में 'कबीर का रहस्यवाद' नामक एक सुन्दर पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके लेखक हिन्दी के सरस कवि और विद्वान् डा० रामकुमार वर्मा हैं। यह अपने ढंग की पहली पुस्तक है जिससे कवि के अन्तर्जगत की छानबीन विद्वता के साथ वैज्ञानिक शैली में की गई है। पुस्तक सुन्दर और महत्त्वपूर्ण है।

निष्क्रिय काल :—१९३६ से १९४२ के बीच कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुए। केवल दो तीन छोटी-मोटी पुस्तकें देखने में आईं। इसमें दो तो कबीर पन्थी सज्जनों के द्वारा लिखी गई थीं। वे तीनों पुस्तकें क्रमशः 'कबीर अध्ययन प्रकाश', 'सद्‌गुरु कबीर साहब और उनके सिद्धांत' तथा 'महात्मा कबीर' हैं। प्रथम पुस्तक के लेखक बड़ौदा निवासी मणिलाल तुलसीलाल मेहता हैं। लेखक को कबीर साहित्य का ज्ञान है, यह बात पुस्तक से प्रकट होती है। किन्तु कबीर पंथी होने के कारण लेखक साम्प्रदायिक पक्षपात का परित्याग नहीं कर सका है। दूसरी पुस्तक के लेखक कोई कबीर पंथी साधु हैं। इसका प्रकाशन भी बड़ौदा के कार्यालय से ही हुआ है। पुस्तक धार्मिक दृष्टिकोण से लिखी गई है। साहित्य क्षेत्र में उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। तीसरी पुस्तक के लेखक श्री

हरिहर निवास जी द्विवेदी ने कबीर पर उपलब्ध सामग्री का ही संक्षेप में पिष्ट-पेषण किया है। पुस्तक साधारण कोटि की है और कबीर के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के उपयोग की है।

इन तीनों पुस्तकों के अतिरिक्त इस बीच में डा० रामकुमार वर्मा के कबीर विषयक दो संग्रह ग्रन्थ और प्रकाशित हुए। एक का नाम 'कबीर पदावली' है और दूसरे का नाम 'सन्त कबीर'। 'कबीर पदावली' में कबीर की कुछ सुन्दर पदावलियों का संग्रह भर किया गया है। पुस्तक सरल किंतु विद्वतापूर्ण है। प्रारम्भ में छोटी सी भूमिका लिख दी गई है, वह विद्यार्थियों के बड़े उपयोग की है। 'सन्त कबीर' में डा० साहब ने ग्रंथ साहब में दिये हुए पदों की सरल साहित्यिक टीका प्रस्तुत की है। टीका वास्तव में सुन्दर और विद्वतापूर्ण है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने से कबीर की बानियों की बहुत सी असाधारण उलझनें सुलझ गई हैं। इस ग्रंथ के साथ एक लम्बी चौड़ी भूमिका भी जुड़ी हुई है। भूमिका में लेखक ने कबीर के जीवन का खोजपूर्ण एवं विशद विवेचन किया है। कबीर के जीवन का इतना सार पूर्ण अध्ययन हिन्दी साहित्य में कम हुआ है। संक्षेप में पुस्तक ने कबीर साहित्य के अध्ययन को आगे बढ़ाने में काफी सहायता पहुँचाई है।

सन् १९४१ ई० के आस-पास कबीर पर "कबीर" नामक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाश में आया। इसके लेखक हिन्दी के श्रेष्ठ विद्वान् आचार्य हजारी-प्रसाद जी द्विवेदी हैं। यह ग्रन्थ अत्यन्त पांडित्यपूर्ण एवं खोजमूलक है। इसमें लेखक ने एक ओर तो कबीर पर पड़े हुए विभिन्न प्रभाव का प्रकाण्ड पांडित्य के साथ विवेचन किया है; दूसरी ओर उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिभा और सूझ के साथ प्रतिपादन। कहने की आवश्यकता नहीं है कि अभी तक कबीर पर जितने भी ग्रन्थ लिखे गए हैं उन सबमें यह श्रेष्ठ है। भविष्य में भी इतना खोजपूर्ण और पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ निकल सकेगा, इसमें भी संदेह है। लेखक ने ग्रन्थ के द्वितीय परिवर्धित संस्करण में आचार्य क्षितिमोहन सेन के संग्रह से उन सौ पद्यों को जिनका कवीन्द्र रवीन्द्र ने अँगरेजी में अनुवाद किया है, तथा कुछ और सुन्दर पद्यों का एक संग्रह भी जोड़ दिया है। साथ ही साथ कठिन

बातों को स्पष्ट करने के लिए विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। इससे पुस्तक की उपादेयता और भी अधिक बढ़ गई है।

'कबीर' नामक पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ के अतिरिक्त इधर तीन चार साल के बीच में छोटी-मोटी तीन चार पुस्तकें कबीर पर और भी निकल चुकी हैं। इसमें डा० रामरतन भटनागर की "कबीर एक अध्ययन" तथा महावीर सिंह गहलौत की "कबीर" नामक पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं। यह दोनों ही ग्रन्थ साधारण कोटि के हैं। लेखकों ने ग्रन्थों के विषय-प्रतिपादन में कोई मौलिकता और पांडित्य नहीं दिखलाया है। यह अवश्य है कि पुस्तकें साधारण विद्यार्थियों के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

आजकल भी आचार्य हजारीप्रसाद जी तथा डा० रामकुमार वर्मा कबीर पर खोजपूर्ण कार्य करने में संलग्न हैं। आचार्य जी की तो "कबीर पंथी साहित्य" नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तक निकट भविष्य में ही प्रकाशित होनेवाली है। यह पुस्तकें उच्च कोटि की और खोजपूर्ण हैं। आशा है कि डा० रामकुमार वर्मा जी की कबीर पर नवीन विद्वत्तापूर्ण रचना शीघ्र हीं प्रकाशित होगी।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त कबीर पर समय-समय पर विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे गये हैं। यह प्रायः प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इनमें से कुछ विद्वत्तापूर्ण लेख निम्नलिखित हैं :—

१ "कबीर साहब का जीवन वृत्त"—चन्द्रबली पाण्डेय—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १४ पृ० ५३६
२ "कबीर सिद्धान्त और रहस्यवाद"—सोमनाथ गुप्त—परिषद् निबन्धावली भाग २
३ "कबीर का योग वर्णन"—क्षितिमोहन सेन—कल्याण का योगांक
४ "कबीर और वेदान्तवाद"—कल्याण का वेदान्तांक
५ "कबीर का अलंकारिक दृष्टिकोण"—डा० ओम प्रकाश-साहित्य सन्देश
६ "कबीर साहब का साधना पथ"—उदय शंकर शास्त्री स्वसंवेद्य वर्ष १२ भाग
७ "जिन्द कबीर की संक्षिप्त चर्चा"—विचार-विमर्श सम्मेलन, प्रयाग
८ "कबीर" नामक लेख—इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड इथिक्स।

६ "कबीर जी का समय"—डा० राम प्रसाद त्रिपाठी—हिन्दुस्तानी भाग २, अ० २, पृ० २०७

कबीर सम्बन्धी उर्दू आलोचनात्मक ग्रंथ

सम्प्रदाय :—सन् १९०६ में "सम्प्रदाय" नाम की एक पुस्तक उर्दू में मिशन प्रेस लुधियाना से प्रकाशित हुई। इसके लेखक क्रिश्चियन विद्वान् प्रोफेसर बी० बी० राय थे। पुस्तक एक विद्वान् के द्वारा लिखित होने पर भी खोजपूर्ण एवं पांडित्यपूर्ण नहीं है।

कबीर और उनकी तालीम :—इसके बाद कबीर का अध्ययन उर्दू में कुछ दिनों तक स्थगित सा रहा। कोई महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाश में नहीं आया। केवल दो पुस्तकें ही लिखी गईं। इनमें प्रथम तो शिवब्रत लाल की "कबीर और उनकी तालीम" है। इसकी रचना लगभग सन् १९१२ में हुई थी।

कबीर साहब :—दूसरी पुस्तक प्रयाग के जुतशी साहब की है। इसका नाम 'कबीर साहब' है। यह लगभग सन् १९३० में लिखी गई थी, और तभी हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित हुई थी। दोनों ही पुस्तकें साधारण कोटि की हैं। साहित्यिक खोज एवं वैज्ञानिक विवेचना की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नहीं है।

कबीर पंथ :—यह श्री शिवब्रत लाल लिखित एक कबीर पंथी ग्रंथ है। मिशन प्रेस इलाहाबाद से इसका प्रकाशन हुआ था। इसमें कबीर पंथ का शास्त्रीय एवं सही स्वरूप चित्रित करने की चेष्टा की गई है। जो भी हो ग्रंथ 'कबीर पंथ' की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रारम्भिक प्रयत्न होने के कारण अपना विशेष महत्त्व रखता है।

कबीर सम्बन्धी अंग्रेजी आलोचनात्मक ग्रन्थ

हंड्रेड पोयम्स आफ कबीर :—सन् १९१५ में कबीर के चुने हुए १०० पद्यों का अंग्रेजी अनुवाद लेकर कवीन्द्र रवीन्द्र साहित्य क्षेत्र में आये। इसकी भूमिका लेखिका अंग्रेजी की प्रसिद्ध विदुषी 'ईवीलिन अंडरहिल' हैं। कबीर

के रहस्यवाद का इस महिला ने बड़ी योग्यता से विवेचन किया है। यह विद्वानों के पढ़ने योग्य है।

प्रोफेट्स आफ इण्डिया :—सन १६०४ में श्री मन्मथनाथ गुप्त एम० ए० की अंग्रेजी पुस्तक "प्रोफेट्स आफ इंडिया" का उर्दू अनुवाद बाबू राम नारायन प्रसाद वर्मा द्वारा अहमदी प्रेस अलीगढ़ से प्रकाशित कराया गया। इस पुस्तक से कबीर के अध्ययन को थोड़ा और प्रोत्साहन मिला। सम्भवतः इन्हीं सब पुस्तकों से प्रेरित होकर कानपुर के वेस्कट साहब ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "कबीर एण्ड कबीर पंथ" लिखी।

कबीर एण्ड कबीर पंथ :—सन् १६०७ में रेवरेंड जी० जी० एच० वेस्कट एम० ए० ने 'कबीर एण्ड कबीर पंथ' नाम की प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। इसका प्रकाशन और मुद्रण क्राइस्ट चर्च मिशन प्रेस कानपुर में हुआ था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुस्तक अत्यन्त खोजपूर्ण और विवेचना प्रधान है। पुस्तक अँगरेजी में है और पाश्चात्य आलोचनाओं के ढंग पर लिखी गई है। पुस्तक में कबीर के जीवनवृत्त एवं कबीर पंथ पर विशेष रूप से विचार किया गया है। उनकी विचारधारा अछूती ही छोड़ दी गई है। एकाध स्थलों पर लेख सांप्रदायिक भावना से अभिभूत हो गया है। जिससे पुस्तक का मूल्य कम हो गया है। फिर भी कबीर के विद्यार्थी के लिये पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

कबीर एण्ड हिज़ फालोअर्स :—सन् १६३० के पश्चात् कबीर के अध्ययन की ओर विद्वानों का रुझान पुनः बढ़ा। इसके फलस्वरूप १६३१ में कबीर पर दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए। एक तो रेवेरेण्ड फ०ई०के लिखित "कबीर एण्ड हिज फालोअर्स" और दूसरी डा० रामकुमार वर्मा लिखित "कबीर का रहस्यवाद।" दोनों ही ग्रंथ उच्च कोटि के और महत्त्वपूर्ण हैं। 'की' साहब का ग्रंथ लन्दन विश्व-विद्यालय में डी० लिट् की थीसिस के लिए स्वीकार किया गया था। इस ग्रन्थ में लेखक ने कबीर के जीवनवृत्त और उनके पंथ का विशद और खोजपूर्ण विवेचन किया है। यद्यपि इसमें उनके दार्शनिक सिद्धांतों एवं विचारों पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है किन्तु फिर भी कबीर तथा कबीर पंथ का परिचय प्राप्त करने के लिए पुस्तक उपयोगी है।

निर्गुण स्कूल आफ हिंदी पोयट्री :—सन् १६३६ में संत साहित्य की

श्रेष्ठ पुस्तक "निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री"—प्रकाशित हुई। इसके लेखक प्रसिद्ध प्रतिभाशाली विद्वान् डा० बड़थ्वाल जी थे। यह पुस्तक वैज्ञानिक विवेचन, खोज एवं पांडित्य की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। यद्यपि इसमें लेखक का लक्ष्य निर्गुणिये संतों की बानियों को विवेचना करना था, केवल कबीर की आलोचना करना नहीं; किन्तु फिर भी कबीर के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में अनेक सारगर्भित बातें कही गई हैं। इसमें कोई संदेह नहीं पुस्तक बड़ी उत्तम और उपयोगी है। कबीर सम्बन्धी साहित्य में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कबीर एण्ड हिज बायोग्राफी :—यह पुस्तक आत्माराम एण्ड सन्स लाहौर से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक के रचयिता लाहौर के प्रसिद्ध विद्वान् डा० मोहन सिंह हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने नवीन खोजों का आश्रय लेते हुए कबीर के जीवन वृत्त को लिखने का प्रयत्न किया है। साधारणतया पुस्तक अच्छी है। किन्तु खोज और विवेचना की दृष्टि से उसे पूर्ण तथा मौलिक नहीं कह सकते हैं।

कबीर एण्ड दि भक्ति मूवमेंट :—यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक लाहौर के प्रसिद्ध विद्वान् डा० मोहन सिंह हैं। इसमें लेखक ने भक्ति भावना का भारत में किस प्रकार उदय एवं विकास हुआ इसका अच्छा वर्णन किया है। कबीर ने भक्ति के विकास में कितना हाथ बटाया है यह बात बड़े विस्तार से वर्णित की गई है। पुस्तक वास्तव में विद्वत्तापूर्ण और सुन्दर है।

अन्यान्य भाषाओं में लिखे गए कुछ फुटकर ग्रंथ :—उर्दू, हिन्दी, अँगरेजी, संस्कृत तथा फारसी आदि के अतिरिक्त भी कबीर का अध्ययन और विवेचन कुछ अन्य भाषाओं में भी हुआ है। एक ग्रन्थ तो इटालियन भाषा में मिलता है। इसके लेखक डेनमार्क देश के जीलैण्ड निवासी विशप मुण्टर नाम के कोई पादरी हैं। यह ग्रन्थ अभी तक मेरे देखने में नहीं आया है। अतः इसके सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं लिखा जा सकता है। इसका नाम निर्देश विल्सन साहब ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रिलीजस सेक्टस् आफ़ दि हिन्दूज में किया है।[1]

---

१ रिलीजस सेक्टस आफ दि हिन्दूज़—पृ० ७७-७८

कबीर और कबीर पंथ से सम्बन्धित दो एक ग्रन्थ गुजराती भाषा में भी मिलते हैं । एक ग्रन्थ तो बहुत प्रसिद्ध है । उसका नाम 'कबीर सम्प्रदाय' है । इसके लेखक किशनसिंह चावड़ा हैं । ग्रन्थ साधारण कोटि का तथा साम्प्रदायिक है । इस प्रकार हम देखते हैं कि आजकल कबीर का अध्ययन उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है ।

इस अध्ययन का लक्ष्य

जैसा कि उपर्युक्त कबीर सम्बन्धी साहित्य के आलोचनात्मक निर्देश से स्पष्ट है कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही विद्वानों की अभिरुचि कबीर के अध्ययन की ओर रही है । कबीर के अध्ययन को आगे बढ़ने का श्रेय ईसाई पादरियों को है । कबीर पंथियों ने भी इस कार्य में अच्छा योग दिया है । किन्तु कबीर अध्ययन को वास्तविक प्रेरणा प्रदान करने वाले, कवीन्द्र रवीन्द्र, आचार्य क्षितिमोहन सेन, डा० हजारी प्रसाद, डा० रामकुमार वर्मा, डा० बड़थ्वाल, डा० श्यामसुन्दर दास, डा० की, कविवर हरिऔध आदि विद्वान् ही हैं । इन विद्वानों की रचनाएँ वास्तव में कबीर अध्ययन का आधार स्तम्भ हैं । उन पर प्रासाद खड़े करने का कार्य अवशिष्ट है । इस लेखक का बाल प्रयास इसी दिशा में हुआ है । वह उसे प्रासाद की भूमिका मात्र मानता है । प्रासाद तो किन्हीं सुयोग्यतम विद्वानों द्वारा ही निर्मित किया जायगा ।

कबीर की रचनाओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि उन्होंने अलौकिक प्रतिभा प्राप्त की थी । इसका एक पुष्ट प्रमाण यही है कि उन्होंने 'मसि कागज' से अपरिचित होते हुए भी जिस गम्भीरतम एवं कवित्त्वपूर्ण वाङ्मय को जन्म दिया है उसकी सर्जना अलौकिक प्रतिभा के बिना नहीं हो सकती थी । यह सही है कि उसकी बाह्य-वेशभूषा सधुक्कड़ी ही है, किन्तु उसकी आत्मा जितनी विशाल, गम्भीर और प्राञ्जल है उतनी शायद ही किसी विश्व कवि के काव्य की हो । कहना न होगा कि उसकी इस विशालता के मूल में कवि की दिव्य प्रतिभा ही है ।

संस्कृत आचार्यों[१] ने काव्योत्पादक हेतुओं में सबसे अधिक महत्त्व प्रतिभा को ही दिया है। रुद्रट ने सहजा और उत्पाद्या भेद से प्रतिभा दो प्रकार की मानी है। निश्चय ही कबीर को सहजा प्रतिभा प्राप्त थी। तभी निरक्षर होते हुए भी वे हमारी भाषा के श्रेष्ठ दार्शनिक, विचारक और कवि सिद्ध हुए हैं। डा० राम-कुमार वर्मा ने कबीर की प्रतिभा के सम्बन्ध में बहुत सत्य लिखा है। "इसमें सन्देह है कि कबीर की कल्पना के सारे चित्रों को समझने की शक्ति किसी में आ सकेगी अथवा नहीं। जो हो कबीर का बीजक पढ़ जाने के बाद यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि कबीर के पास कुछ ऐसे चित्रों का खजाना है जिसमें हृदय में उथल-पुथल मचा देने की बड़ी भारी शक्ति है। हृदय आश्चर्यचकित हो कबीर की बातों को सोचता ही रह जाता है"[२] इत्यादि।

दिव्य प्रतिभा से ही अलौकिक विचार रत्नों की सम्भूति होती है। विचार गूढ़तम दार्शनिकता की आधार भूमि है। कबीर ने अपने जीवन में स्वतन्त्र चिन्ता और विचारात्मकता को अत्यधिक महत्त्व दिया था। इसी विचारात्मकता के फल स्वरूप उन्हें 'राम रतन' की प्राप्ति हुई थी। यही विचारात्मकता ही उनकी वाणी में प्राण रूप से परिव्याप्त है। उसी की साकार अभिव्यक्ति उनकी कविता है। हम उनके किसी भी स्वरूप को उनकी विचारात्मकता से अलग करके नहीं देख सकते हैं। यहाँ तक कि उनकी मधुमयी रहस्यभावना भी इस विचारात्त्मकता तथा दार्शनिकता से पिण्ड नहीं छुड़ा सकी है। यही कारण है कि उसमें सिद्धान्त कथन के ढंग की बहुत सी सूखी और नीरस उक्तियाँ भी पाई जाती हैं। एक उदाहरण देखिये—

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तत कथ्यो गियानी॥
—क० ग्रं० पृ० १०३

---

१ देखिए—काव्यालं० १/१५, १/५, १/१०३
काव्य प्रकाश १/३
काव्यानु० पृ० २ टीका
वाग्भटालं० १/३

२ कबीर का रहस्यवाद—पृ० ६ (१९३१)

उनकी इस विचार प्रधानता के कारण उनका कवि स्वरूप गौण पड़ गया है। उन्होंने यह बात स्वयं स्वीकार की है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि उनकी कविता कविता नहीं ब्रम्ह विचार मात्र है।

लोग कहैं यह गीतु है यहु निज ब्रह्म विचार रे।

—क० ग्रं० पृ० २७३

उनकी कविता में आत्म-विचार-मूलक यही आनन्द भरा पड़ा है। इसी कारण यह 'साहित्यिकता' में विरहित होकर भी इतनी मधुर और रसमय है। तभी उसका इतना महत्त्व है। इस लेखक का लक्ष्य कबीर की इसी विचारात्मकता और आध्यात्मिकता के विविध पक्षों का निरूपण करना है। इस प्रबन्ध में कबीर की सम्पूर्ण विचारधारा का व्यवस्थित एवं खोजपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है।

——

दूसरा प्रकरण

कबीर की विचार-धारा को प्रभावित करने वाले उपादान

१ कबीर कालीन परिस्थितियाँ :—
राजनीतिक—सामाजिक—धार्मिक—साहित्यिक।

२ कबीर का व्यक्तित्व।

३ विविध धार्मिक प्रभाव :—
श्रुति ग्रन्थ—वैष्णव मत—रामानन्द और कबीर—बौद्ध-धर्म—वज्रयानी और सहजयानी सिद्ध—नाथ संप्रदाय—कुछ अन्य प्रभाव—इसलाम और सूफी संप्रदाय—समस्त धार्मिक प्रभावों पर विहङ्गम दृष्टि—प्रभाव की क्रिया (रचनात्मक)—प्रभाव की प्रतिक्रिया (विध्वंसात्मक)—कबीर के धार्मिक सिद्धान्तों की प्रखरता में उनका योग—धार्मिक सिद्धान्तों का अन्तिम स्वरूप।

१—कबीर कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

भारत में चौदहवीं शताब्दी के मध्य भाग में तुगलक बादशाहों का प्रभुत्व था। मोहम्मद तुगलक (१३२५-५३) का समय भारत की प्रजा के लिए कष्ट का ही समय था। राजधानी परिवर्तन, फारस विजय कामना, ताम्रसिक्कों का प्रचार और नृशंस मानव हिंसा आदि बातें जनता के लिए बड़ी दुखदायी और घातक सिद्ध हुईं। चारों ओर विनाश और निराशा का ही तांडव हो रहा था। दुर्भिक्ष मानों इस तांडव में सहयोग दे रहा था। देश में सर्वत्र दुःख, क्लान्ति और अशांति ही दिखलाई दे रही थी।

मुहम्मद तुगलक के पश्चात् फिरोज शाह तुगलक का शासन काल आया। राजपूतनी के गर्भ से संभूत, यह सुलतान अत्यन्त संकीर्ण-हृदय और धर्मान्ध था। कहते हैं कि उसने एक ब्राम्हण को केवल यह कहने पर कि उसका धर्म भी इस्लाम के समान श्रेष्ठ है, जिन्दा जलवा दिया था। इसलामी शासन के इतिहास में प्रथम बार इस बादशाह ने ही ब्राम्हणों पर पोल टैक्स लगाया था।[1] यह आचरण भ्रष्ट भी था। उसने अपनी धर्मान्धता के कारण न मालूम कितने निर्दोष हिन्दुओं को तलवार के घाट उतार दिया। फिरोज के बाद जो दूसरे सुलतान सिंहासनारूढ़ हुए, वे भी अत्यन्त विलासप्रिय और क्रूर थे। देश की ऐसी ही दुर्दशा के समय तैमूर (१३९८) का आक्रमण हुआ। हिन्दुओं की बची खुची प्रतिष्ठा और शक्ति इस युद्ध की बर्बरता से परास्त हो गई। तैमूर का हमला वास्तव में भारत के लिए और विशेषकर हिन्दुओं के लिए कठोर वज्रपात था। उसने भारत पर अपने आक्रमण के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए स्वयं लिखा है कि 'भारत पर आक्रमण करने का मेरा लक्ष्य काफिरों को दण्ड देना, बहुदेव वाद और मूर्ति पूजा का अन्त करके गाजी और मुवाहिद बनना है'।[2] वास्तव में इस धर्मान्ध ने अपने इस लक्ष्य की पूर्ति जी खोलकर की। इतिहासकारों का कहना है कि तैमूर के सिपाहियों ने लाखों निरीह हिन्दुओं की हत्या की थी। कहते हैं कि भारत से लौटते समय उसका एक-एक सिपाही सौ-सौ स्त्री, पुरुष और बच्चों को गुलाम बनाकर ले गया था।[3]

कहना न होगा कि तैमूर के आक्रमण से हिन्दू धर्म और हिंदू जाति की नींव काँप उठी। देश में दारिद्र्य, अशांति, क्लान्ति और निराशा के भयंकर दृश्य दिखाई पड़ने लगे। अनाचार और आचरण भ्रष्टता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई।

थोड़े दिनों बाद दिल्ली का शासन सूत्र लोदी वंश के हाथ में चला गया। बहलोल लोदी ने एक बार पुनः देश को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया,

---

१ मेडिवल इंडिया—२१०-२१२

२ एलियट एण्ड डाउसन—वाल० थर्ड पृ० ३१७

३ मेडिवल इंडिया—पृ० ३३७

किन्तु उसके उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी ने अपनी अदूरदर्शिता और धर्मान्धता से बहलोल के प्रयत्न पर पानी फेर दिया। उसकी धर्मान्धता के सम्बन्ध में प्रायः बोधन ब्राह्मण वाली कथा उद्धृत की जाती है। कहते हैं कि उसने बोधन[१] को अकारण ही इसलाम स्वीकार न करने पर मृत्यु के घाट पर उतार दिया था। सिकन्दर लोदी के अत्याचारों का वर्णन करते हुए टिट्स ने अपने "इंडियन इसलाम" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि इसलाम धर्म के प्रचार में उसका उत्साह इतना अधिक था कि उसने एक एक दिन में १५०० हिन्दुओं तक की हत्या करवाई थी।[२] (कबीर को भी मरवा डालने का प्रयत्न यदि किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।) इतिहासकार शर्मा ने लिखा है कि उसने मन्दिर तुड़वा कर सरायें बनवाई थीं। उसकी आज्ञा थी कि यमुना में कोई स्नान न करने पावे। मन्दिरों की मूर्तियाँ कसाइयों को दे दी जाती थीं।[३]

इन राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप भारतीय जीवन और समाज में निम्नलिखित प्रभाव दिखलाई पड़ने लगे :—

(१) धर्म सुधार की भावना जाग्रत हुई। उसी के फलस्वरूप गोरखनाथ[४] जी ने नाथ पंथ चलाया। दक्षिण में लिंगायत और सिद्धरा आदि पन्थों का भी उदय इसी धर्म सुधार भावना के कारण हुआ था। इन सब का लक्ष्य हिन्दू धर्म और इसलाम में सामंजस्य स्थापित करना था। कबीर की विचारधारा भी ऐसा ही लक्ष्य लेकर चली थी।

(२) पर्दा प्रथा समाज में दृढ़ होती गई। कुछ तो मुसलमानों की देखा

---

१ इलियट एण्ड डाउसेन ने लोधन नाम दिया है—प्रो० एच० एच० विलसन का मत है कि वह कबीर का शिष्य था।

२ इंडियन इस्लाम टिटस—पृ० ११-१२

३ क्रिसेंट इन इंडिया पृ० १९२—एस० आर० शर्मा—देखिये ३ इलियट एण्ड डाउसेन वाल० चौथा पृ० ४४७

४ डा० बड़थ्वाल जी का यही मत है। देखिये आप की निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री में परिशिष्ट में गोरखनाथ पर नोट—

देखी और कुछ इस भावना से कि मुसलमान स्त्रियों को देख मोहित हो बलात्कार न कर बैठें। हिन्दुओं में भी पर्दा-प्रथा का प्रचार बढ़ गया।

(३) हिन्दू समाज में निरुत्साह और निराशा फैल गई। इसके फलस्वरूप धर्म की ओर उनको अभिरुचि बढ़ने लगी। धर्म भी सगुणोपासना में असमर्थ होने के कारण निर्गुणोपासना की ओर झुका।

(४) हिन्दू लोग राजनीति से उदासीन हो चले। उनका जीवन दारिद्रय या और निराशा में ही बीतने लगा। इसी एकान्तिकता और निवृत्यात्मकता से प्रेरित हो उन्होंने निर्गुण ब्रम्ह की उपासना प्रारम्भ की।

सामाजिक परिस्थितियाँ :—कबीर के समय में समाज की दशा बड़ी शोचनीय थी। हिन्दू और मुसलमान, इन दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यावहारिक सभी बातों में आडम्बर बढ़ता जा रहा था। दोनों ही असत्य एवं मिथ्यात्व के पुजारी होते जा रहे थे। सभी क्षेत्रों में काली लकीरें दिखाई देने लगी थीं। इसी के फलस्वरूप जाति तथा देश में सर्वत्र अस्त-व्यस्तता और विशृंखलता फैली हुई थी। इतिहासकारों ने इसका सुन्दर चित्रण किया है।

संक्षेप में हिन्दू समाज की दशा अत्यन्त निराशाजनक थी। यवनों के, देश में विजयी जाति के रूप में बस जाने पर हिन्दू जनता विजित जाति होने के कारण कुछ हेयता और निराशा की भावना का अनुभव करने लगी थी। यवन बादशाहों की स्वेच्छाचारिता, अत्याचार तथा क्रूरता आदि दानवी वृत्तियों ने हिन्दू जाति को और भी हेय बना दिया। उनमें अब न तो स्वाभिमान ही रह गया और न आत्म प्रतिष्ठा की भावना ही। धर्मान्ध मुसलमान बादशाहों द्वारा अपने सामने अपने उपास्य देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़ा जाता देख उनका ईश्वरीय विश्वास भी शिथिल हो चला। साथ ही मूर्ति पूजा और बहुदेव-वाद के प्रति भी उनकी श्रद्धा बहुत कम हो गई। देश में निराशावाद के पैर दृढ़ता से जम गए।

वर्णाश्रम व्यवस्था हिन्दू धर्म का दृढ़ स्तम्भ है। यवनों के प्रारम्भिक आक्रमणों के साथ साथ यह स्तम्भ भी दृढ़तर होता गया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेदभावना और भी अधिक बढ़ गई। डा० कुरैशी ने हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था तथा उसके प्रभाव का अच्छा वर्णन

किया है।[1] उनका यहाँ तक कहना है कि द्विज लोग शूद्र और म्लेच्छों की छाया से घृणा करते थे। जो भी हो कबीर के समय में इस भेदभावना के प्रति प्रतिक्रिया जाग्रत हो चली थी। इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप शूद्र के ब्राह्मण तक शिष्य होने लगे थे।[2] कबीर की विचारधारा में भी वर्ण व्यवस्था के प्रति यही प्रतिक्रिया दिखाई देती है।

इस प्रकार कबीर के समय में हिन्दू समाज अपनी घोर हीनावस्था में था। उसमें न तो किसी प्रकार का उत्साह अवशेष रह गया था और न कोई स्फूर्ति ही। उसमें शिक्षा और सभ्यता दोनों का अभाव था। यवनों के भावों और संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा था। हिन्दू संस्कृति और भाषा दोनों ही पूर्णतया उपेक्षित हो चली थी। साधारण जनता में शिक्षा का अभाव था। समुचित शिक्षा के अभाव में अनेक प्रकार के अंध विश्वास और आडम्बर समाज में प्रचार पाते चले जा रहे थे। धर्म के ठेकेदारों की तूती बोल रही थी। धर्म के नाम पर समाज में अनेक कुप्रथाएँ फैल गई थीं। हिन्दू समाज के इस विकृत रूप के प्रति कबीर की आत्मा विद्रोह कर उठी। उनकी वाणी में इस विद्रोह-भावना की अच्छी अभिव्यक्ति मिलती है।

यवन समाज की दशा हिन्दू समाज से भी अधिक शोचनीय थी। यवन विजयी जाति के होने के कारण अत्यन्त अभिमानी और वैभवशाली थे। धीरे-धीरे वे अपने प्राचीन आदर्शों से पतित होने लगे। डा० ईश्वरी प्रसाद ने यवनों की दशा का चित्रण करते हुए लिखा है कि यवन जाति अत्यन्त आचारण भ्रष्ट हो चली थी। बड़े-बड़े यवन सामंत अब प्रसिद्ध योद्धा न होकर पदाभिलाषी अमीर भर रह गये थे। उनमें विलासप्रियता तो मानों कूट-कूटकर भर गई थी। कहते हैं कि फीरोज तुगलक के मन्त्री खाने जहाँ ने अपने अन्तःपुर में विभिन्न जातियों की २००० से अधिक स्त्रियाँ रख छोड़ी थीं। मद्यपान और द्यूतक्रीड़ा तो उस युग की साधारण दुर्बलताएँ थीं। छल-कपट और जालसाजी इत्यादि की भी

---

१ देखिए—एडमिनिस्ट्रेशन सुलतानेट आफ देहली—डा० कुरैशी पृ० २२७
२ इन्फ्लुएंसस आफ इसलाम आन इंडियन कल्चर—डा० ताराचन्द—पृ० १०४

उस युग में कमी न थी। फीरोजशाह के समय में काजरशाह ने जो मुद्रा विभाग का मुखिया था, प्रपंच करके बहुत सा धन अर्जित किया था। इस प्रकार यवन समाज आचारण भ्रष्टता की दृष्टि से अपनी पराकाष्ठा पर था।

इसी समय कुछ ऐसे संत समाज-सुधारक सामने आए, जिन्होंने दोनों समाजों को सुधार कर एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। इन संतों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। दोनों ही सारग्राही महात्मा थे तथा जाति और धर्म के संकुचित घेरे से ऊपर उठे हुए थे। ऐसे सन्तों में रामानन्द, कबीर तथा जायसी आदि प्रमुख थे। ये दोनों वर्गों से अपने शिष्य बनाते थे और सब प्रकार से ऐक्य भावना को प्रोत्साहन देते थे। उपर्युक्त सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप इन संतों में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं :—

(१) एक सामान्य-धर्म पद्धति के प्रवर्तन की प्रवृत्ति।

(२) मिथ्याडम्बर का विरोध—वर्ण व्यवस्था आदि की उपेक्षा।

(३) विलासिता के प्रति घृणा।

धार्मिक परिस्थितियाँ :—यवनों के अत्याचार और राज्य लिप्सा ने हिन्दू राजाओं की शक्ति को पूर्णतया जर्जरित कर दिया। वीरता की यदि कोई चिनगारी उदय भी हुई तो वह या तो स्वयं बुझ गई या बुझा दी गई। हिन्दुओं के मानवी अधिकार भी छीन लिये गए। उन्हें न तो जीवन को सुख से बिताने की आज्ञा थी और न स्वतन्त्रता पूर्वक उपासना ही करने की। आत्मोन्नति, स्वदेशोन्नति तथा स्वधर्मोन्नति के मार्ग से ढकेले हुए हिन्दू आत्म रक्षा के लिये ईश्वर की शरण में गए।

कबीर के युग में भारतीय धर्म व्यवस्था अत्यन्त अस्त-व्यस्त एवं विशृंखल थी। 'अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग' वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ हो रही थी। विवेचन की सुविधा के लिए हम कबीर कालीन धार्मिक परिस्थितियों को दो भागों में बाँट सकते हैं :—

(१) सामान्य जनता में प्रचलित अनेक आस्तिक एवं नास्तिक पंथ और पद्धतियाँ।

(२) वे आस्तिक पद्धतियाँ जो उच्च वर्ग की जनता में मान्य थीं। इन धर्म पद्धतियों के प्रवर्तक तथा प्रतिपादक अधिकतर शास्त्रज्ञ आचार्य लोग थे।

जगत्गुरु शङ्कराचार्य का उदय भारत के धार्मिक इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। उनके प्रभाव से सोया हुआ ब्राह्मण धर्म फिर एक बार जाग उठा। उसे उद्बुद्ध देखकर विलासप्रिय बौद्ध-धर्म के पैर उखड़ गए। शास्त्रज्ञ विद्वानों में उनका नाम कम हो गया। वह अनेक सामान्य सामाजिक धर्म पद्धतियों से सामञ्जस्य स्थापित कर अनेक प्रकार की नास्तिक धर्म पद्धतियों के रूप में—जिनमें सहजयान, वज्रयान, निरंजन पंथ और बाउल सम्प्रदाय आदि प्रमुख हैं, साधारण जनता में फैल गया। छठीं शताब्दी से लेकर ११वीं शताब्दी तक इन नास्तिक मतों का अत्यधिक बोल-बाला रहा। सिद्ध इन्हीं नास्तिक मतों से सम्बन्ध रखते थे। इनकी विशेषताओं का उल्लेख दूसरे स्थल पर हो चुका है। अतः यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि इन दूषित नास्तिक धर्म पद्धतियों ने भारत का बड़ा उपकार किया है। समाज के नैतिक पतन का प्रमुख कारण ये ही वाममार्गीय दूषित बौद्ध पद्धतियाँ ही थीं। अच्छा हुआ कि ११वीं शताब्दी के लगभग यवनों के प्रभाव से इन दूषित धर्मों के प्रति प्रतिक्रिया जाग्रत हो गई और उत्तरी भारत में आचरण प्रवण नाथ पंथ का तथा दक्षिण में वैष्णव और लिंगायत आदि धर्मों का उदय हो गया; नहीं तो भारत और भी अधिक दीनावस्था को पहुँच गया होता। कबीर तथा उनके गुरु रामानन्द ने इस प्रतिक्रिया को और भी अधिक मूर्तरूप दिया।

दूसरी धारा शास्त्रज्ञ आचार्यों की थी। इन आचार्यों की परम्परा का प्रवर्तन शंकराचार्य से ही समझना चाहिए। किन्तु शंकराचार्य तथा उनके परवर्ती आचार्यों में सिद्धांत सम्बन्धी मौलिक अन्तर है। परवर्ती सभी आचार्यों का उदय शंकराचार्य की विचारधारा की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इन परवर्ती आचार्यों में रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य तथा वल्लभाचार्य प्रमुख हैं। इन सभी आचार्यों ने अपने अलग-अलग दार्शनिक वाद प्रवर्तित किए। सभी ने अपने-अपने मतों को पुष्ट करने के लिए प्रस्थान त्रयी पर भाष्य भी लिखे। केवल शंकराचार्य को छोड़कर जिन्होंने साधना में ज्ञान को अत्यधिक महत्त्व दिया है बाकी सभी आचार्यों ने भक्ति की विशिष्टता प्रतिपादित की है। संक्षेप में यहाँ पर इन आचार्यों के मतों का निर्देश करना आवश्यक है।

शङ्कराचार्य :—इनका जन्म दक्षिण भारत में मालाबार की पूर्णा नदी के

तटवर्ती कलादी नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम सुभद्रा बताया जाता है। कहते हैं कि शंकराचार्य जी भगवान् शंकर के आशीर्वाद के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे। इनके जन्मकाल आदि के समय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग तो उन्हें ईसवी पूर्व तक में ले जाते हैं, किन्तु सर्वमान्य मत है कि यह ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे।[1] शंकराचार्य जी विश्व के अद्वितीय प्रतिभाशाली महापुरुष थे। उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है :—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥

अर्थात् आठ वर्ष की अवस्था में तो आपने चारों वेद कण्ठस्थ कर लिए थे। बारह वर्ष की आयु में वे सर्वशास्त्र पारंगत विद्वान् हो गए थे। सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने प्रस्थान त्रयी पर भाष्य लिख डाला था। बत्तीस वर्ष की आयु में वे समाधिस्थ हो गए थे। आजकल लगभग २७२ ग्रन्थ शंकराचार्य रचित माने जाते हैं। किन्तु इनमें कौन प्रामाणिक है कौन अप्रामाणिक यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

स्वामी शंकराचार्य अद्वैत वेदान्त के प्रधान प्रतिपादक माने जाते हैं। माया-वाद के भी ये ही प्रधान आचार्य थे। अद्वैत सिद्धांत संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जाता है।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथ कोटिभिः।
सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या ब्रह्मोजीवैव नापरम्॥

अर्थात् परमार्थ सत्ता रूप ब्रह्म अद्वैत और सत्य तत्त्व है। जगत् मिथ्या है। ब्रह्म और जीव में कोई तात्विक भेद नहीं है। आचार्य जी के मत को स्पष्ट करने के लिए यहाँ पर हम वेदान्त की तत्त्व मीमांसा कर लेना चाहते हैं।

सबसे प्रथम आत्म तत्त्व विचारणीय है। आचार्य आत्मा को स्वयं सिद्ध

---

१ साउथ इण्डियन पैल्योग्राफी—बर्नेल—पृ० ३७-१११
और देखिए 'लिस्ट आफ एन्टीकिटीज मद्रास सिवेल—पृ० १७७

प्रत्यय मानते हैं। उनके मतानुसार संसार अनुभूति पर आधारित है। अनुभव के आधार पर जगत के समस्त व्यवहार चलते हैं। अनुभव के मूल में आत्मा की सत्ता स्वतः सिद्धरूप से अवस्थित रहती है।[१] आचार्य आत्मा को ज्ञान रूप भी मानते हैं। ऐतरेयो पनिषद् (२।१) में इस बात को सुन्दर ढंग से ध्वनित किया गया है। आचार्य के मतानुसार आत्मा स्वयंसिद्ध ज्ञानरूप होते हुए भी अद्वैत रूप है। तैतरेय उपनिषद् के २।१ भाष्य में इस बात का स्पष्टीकरण है। इसी अद्वैत तत्त्व को प्रतिष्ठा अद्वैतवाद का प्राण है।

शंकरमत में निर्विकल्पक, निरुपाधि तथा निर्विकार सत्ता का नाम ब्रम्ह है। वेदों में निर्गुण और सगुण ब्रम्ह के दोनों स्वरूप वर्णित हैं, किन्तु शंकर का प्रतिपाद्य उपनिषदों का निर्गुण ब्रह्म हो है। आचार्य ने ब्रम्ह का निरूपण दो प्रकार के लक्षणों से किया है—स्वरूप लक्षण से और तटस्थ लक्षण से। स्वरूप लक्षणों में ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप निरूपित किया गया है। तटस्थ लक्षणों में ब्रह्म के कतिपय कालावस्थाई गुणों का निर्देश करने का प्रयत्न किया गया है। उनके मतानुसार ब्रह्म जगत का कारण ज्ञान स्वरूप और पदार्थान्तर से अविभक्त है। वह सतचित् और आनन्द रूप है। यह हुआ ब्रह्म का स्वरूप लक्षण। यही ब्रम्ह मायावच्छिन्न होने पर सगुण ब्रम्ह कहलाता है। यह ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है।

अब प्रश्न यह है कि निर्विशेष ब्रम्ह से सविशेष जगत की उत्पत्ति कैसे हुई? आचार्य ने इस प्रश्न को स्पष्ट करने के लिये माया की कल्पना की है। आचार्य जी के मत में माया और अविद्या दोनों एक ही हैं।[२] शंकर का यह माया तत्त्व अनिर्वचनीय है। उसे हम सत् या असत् कुछ नहीं कह सकते। सत् इसलिये नहीं कह सकते हैं कि वह ब्रम्ह के समान त्रिकाल वाधिता से रहित नहीं है। माया के प्रत्यक्ष प्रतीयमान होने के कारण असत् भी नहीं कह सकते। अतएव उसे अनिर्वचनीय कहना ही तर्क संगत है। आचार्य ने माया की दो शक्तियों की कल्पना की है—आवरण और विक्षेप। आवरण शक्ति ब्रम्ह के शुद्ध स्वरूप को

---

१ अध्ययन कीजिए—ब्रह्मसूत्र २।३।७ शां० भाष्य

२ शारीरिक भाष्य—१/४/३

ढक लेती है तथा विक्षेप शक्ति से इस प्रपंचात्मक जगत की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य के मतानुसार मायोपाधिक ब्रम्ह ही जगत का कारण है। जिस प्रकार मकड़ी अपने जाल का निमित्त और उपादान कारण दोनों ही होती है उसी प्रकार ब्रम्ह भी जगत का उभय कारण रूप है।

जीव की व्याख्या करते हुए[1] आचार्य ने लिखा है कि शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्यक्ष और कर्म फल का भोक्ता आत्मा ही जीव कहलाता है। यह आत्मा नित्य है, उसकी कभी उत्पत्ति नहीं होती। इस आत्मा का ब्रह्म से स्वभावगत ऐक्य है। अतः आत्मा भी चैतन्य स्वरूप हुआ। आचार्य आत्मा को भी विभु ही मानते हैं अणु नहीं। जीव की प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुखी और वहिर्मुखी दोनों हैं। वहिर्मुखी होने पर वे जीव को संसारोन्मुख करती हैं और अन्तर्मुखी होने पर वे ईश्वरोन्मुख करती हैं। अत्यन्त संक्षेप में यही शांकर मत है। कबीर की विचारधारा पर शांकर मत का अच्छा प्रभाव है। कबीर वास्तव में वेदान्ती ही हैं। उनका वेदान्त शंकर के अधिक समीप होते हुए भी रामानुज से थोड़ा प्रभावित है तथा अपनी कुछ अलग विशेषताएँ रखता है। अतः हम उन्हें किसी आचार्य विशेष का पूरा अनुयायी नहीं कह सकते। साथ ही विविध आचार्यों के मतों को जाने विना हम कबीर को समझ भी नहीं सकते।

स्वामी रामानुजाचार्य :—मध्यकालीन प्रायः सभी सन्त शंकर और रामानुज दोनों से प्रभावित हुए हैं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि एक का मत सैद्धान्तिक पराकाष्ठा पर पहुँच गया है, दूसरे का व्यावहारिकता की साधारण भूमि पर स्थित है। सन्त कवि अपने मत में दोनों का समन्वय करना पसन्द करते थे। कबीर ने भी अपने सन्त सम्प्रदाय की इस प्रवृत्ति का अनुसरण किया है। उन पर शंकर और रामानुज दोनों का ऋण है। अतः रामानुज के सिद्धान्तों का संक्षिप्त संकेत कर देना आवश्यक है।

स्वामी रामानुजाचार्य शंकराचार्य के लगभग दो सौ पचास वर्ष बाद हुए थे। वर्तमान पेरुम्बुधूरम नामक स्थान इनका जन्म स्थान बतलाया जाता है। इनके पिता का नाम केशव सोमयाजी और माता का नाम कान्ति-

---

१ वे० शा० भाष्य—२/३/१७

मति था। इसके मतावलम्बी इन्हें श्री संकर्षण का अवतार मानते हैं। पहले यह काञ्चीपुर नामक नगर के परम प्रसिद्ध विद्वान् यादव प्रकाश के पास वेदान्त का अध्ययन करते थे, किन्तु यादव प्रकाश अत्यन्त प्रतिभाशाली बालक रामानुज की जिज्ञासा तृप्ति न कर सके। अतः इन्होंने कुछ अन्य वैष्णव आचार्यों से विद्याध्ययन करने की चेष्टा की। पत्नी से मतभेद होने पर इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। चोल नरेश के अत्याचारों से तंग आकर ये मैसूर देश में चले आए। शंकर के समान इन्होंने भी प्रस्थान त्रयी पर सुन्दर भाष्य लिखा है, जो आजकल श्री भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें इन्होंने विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया है। इस भाष्य के अतिरिक्त आपने वेदार्थ संग्रह, वेदान्त सार, वेदांत प्रदीप, गद्यत्रय, गीता भाष्य आदि अन्य सुन्दर ग्रंथ भी लिखे हैं।

शङ्कराचार्य और रामानुजाचार्य दोनों ही श्रुति प्रामाण्यवादी हैं, किन्तु दोनों की व्याख्याओं और प्रक्रियाओं में अन्तर है। रामानुज ब्रह्म की व्युत्पत्ति बतलाते हुए कहते हैं कि बृह् धातु में मनिन् प्रत्यय के लगने से ब्रह्म शब्द की सिद्धि हुई। मनिन् प्रत्यय होने से उसमें तीन का समावेश होता है। इस बात को उन्होंने श्रुति और स्मृति दोनों से प्रमाणित भी किया है। ब्रह्म की इस प्रकार व्युत्पत्ति करके आचार्य ने ब्रह्म का चिदचिद् विशिष्टत्व ध्वनित किया है।

रामानुज दर्शन में तीन पदार्थ माने गए हैं—चित्, अचित् और ईश्वर। अर्थ भोक्ता जीव है। अचित् भोग्य जगत का पर्यायवाची है। ईश्वर को सर्वान्तर्यामी विभु कहते हैं। आचार्य के मतानुसार जीव तथा जगत नित्य तथा स्वतंत्र पदार्थ हैं, तथापि वे ईश्वर के आधीन हैं। अन्तर्यामी रूप से ईश्वर दोनों के भीतर विराजमान है। इसका अर्थ यह हुआ कि चित् और अचित् ब्रम्ह के प्रकार हुए। वास्तव में ब्रम्ह और चित् तथा अचित् में अंगागि सम्बन्ध है। रामानुज के मतानुसार सगुण ब्रह्म ही उपनिषद् प्रतिपाद्य है। आचार्य का विश्वास है कि ईश्वर सजातीय विजातीय भेद से शून्य होने पर भी स्वगत भेद सम्पन्न है। अब प्रश्न है कि ईश्वर तथा चिदचित् में किस प्रकार का सम्बन्ध है। आचार्य ने इसमें 'अपृथक् सिद्ध नामक' सम्बन्ध स्वीकार किया है। यह न्याय वैशेषिक के समवाय सम्बन्ध से भिन्न होते हुए भी मिलता-जुलता है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि समवाय सम्बन्ध बाह्य प्रधान है किन्तु यह पूर्ण अन्तर है। इसको हम

विशेषण विशेष्य सम्बन्ध भी मान सकते हैं। श्री भाष्य में ईश्वर को विशेष्य तथा चित् चिद् को विशेषण माना गया है।[1] इसीलिए इसका नाम विशिष्टाद्वैतवाद पड़ा है। ईश्वर ही इस जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। यह कारणता विशिष्टाद्वैत के अनुसार स्वेच्छा जन्य है। ईश्वर लीला के लिए इसकी सृष्टि करते हैं और संहार भी। प्रलयकाल में जीव और जगत सूक्ष्म रूप में परिणत हो जाते हैं। इसी अवस्था में सूक्ष्म चिद्चिद् विशिष्ट ब्रम्ह 'कारणावस्थ ब्रम्ह' कहलाता है। सृष्टि काल में स्थूल रूप धारण करने पर कार्यावस्थ ब्रम्ह कहलाता है। यही कार्य-कारण भाव परिणामवाद का मूल है। विशिष्टाद्वैतवादी परिणामवादी ही होते हैं।

चित् का निरूपण करते हुए आचार्य ने लिखा है कि वह देहेन्द्रिय मन प्राण बुद्धि से विलक्षण, अजड़, आनन्द रूप, नित्य अणु, अव्यक्त, अचिन्त्य, निर्विकार तथा ज्ञानाश्रय है।[2] यह जीव ईश्वर के द्वारा नियमित किया जाता है। जीव अपने शेषत्व गुण के कारण अपने समस्त कार्यकलापों के लिए ईश्वर पर सब प्रकार से आश्रित रहता है। रामानुज के मतानुसार जीव अनन्त और अणुरूप है। इतना होते हुए भी जीव ब्रम्ह से पृथक् नहीं है। पृथकत्व तो केवल गुणों का है। श्वेताश्वतर श्रुति में यह बात बार बार ध्वनित की गई है।[3] रामानुज ने तत्वमसि की व्याख्या भी अपने ढंग पर की है। उनके मतानुसार तत् ईश्वर का वाचक है और त्वं अचित् विशिष्ट जीव वाले शरीर का समानार्थक है।

रामानुज के मतानुसार अचित् ज्ञानशून्य विकारास्पद वस्तु है। अचित् तत्व के तीन भेद भी माने गए हैं—शुद्ध सत्व, मिश्र सत्व और सत्वशून्य। शुद्ध सत्व ही नित्य विभूति है, मिश्र सत्व ही माया या अविद्या है, सत्व शून्य तत्व ही काल है। जगत को रामानज सत्य रूप मानते हैं।

शंकर के समान मुक्ति प्राप्त करना रामानुज का भी लक्ष्य था, किन्तु दोनों

---

१ श्री भाष्य—२/१/६

२ तत्वत्रय—पृ० ४

३ श्वेताश्वतर—१/६

के साधनों में अन्तर है। शंकर ने ज्ञान को विशेष महत्त्व दिया है किन्तु रामानुज भक्ति और प्रपत्ति को ही प्रमुख साधन मानते हैं।

मध्यकालीन सन्तों पर रामानुज की भक्ति और प्रपत्ति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। कबीर भी इससे अछूते नहीं बचे हैं। रामानुज की चित् सम्बन्धी भावना भी कबीर को प्रभावित किए हुए थी। अगले अध्यायों में इन सबका विवेचन किया जायगा।

शंकर और रामानुज के अतिरिक्त माधवाचार्य और निम्बार्काचार्य की विचारधारा भी बहुत से रसिक भक्तों को प्रभावित किए हुए थी। विष्णु स्वामी के मत का अनुकरण भी कई भक्त कवियों ने किया है। किन्तु इन आचार्यों की छाप प्रधानतया सगुणोपासक कवियों और भक्तों पर दिखाई पड़ती है। निर्गुणिया कवि शांकर मत से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। उन पर रामानुज के सिद्धान्तों की छाया भी यत्र-तत्र ढूँढ़ने पर मिल जाती है। फिर भी आध्यात्मिक वातावरण के निर्माण में माधवाचार्य, निम्बार्काचार्य तथा विष्णु स्वामी आदि आचार्यों का अच्छा हाथ था। अतः अत्यन्त संक्षेप में यहाँ पर उनका भी निर्देश कर देना अनुपयुक्त न होगा।

माधवाचार्य :—(१२५४-१३३३) ये द्वैतवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका मत माध्वमत या ब्रम्ह सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इनका जन्म दक्षिण में किसी उडपी नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम मधिजी भट्ट तथा माता का नाम वेदवती था। ११ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने संन्यास ले लिया था। इन्होंने लगभग ३७ ग्रन्थ लिखे थे, किन्तु प्रस्थानत्रयी पर लिखा हुआ इनका भाष्य सबसे अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है।

इनके मतानुसार परमात्मा ही साक्षात विष्णु हैं। वह अनन्त गुण परिपूर्ण हैं। उनमें सजातीय तथा विजातीय आदि विविध तत्त्व विद्यमान हैं। वे जीव जगत से सर्वथा विलक्षण हैं। वे एक होकर भी नाना प्रकार के रूप धारण करते हैं। लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति है, वह परमात्मा के अधीन होते हुए भी उससे भिन्न है। उनके मत में जीव अज्ञानादि दुःखों से युक्त तथा सांसारिक होता है। मुक्ति प्राप्त करना ही जीव का चरम लक्ष्य होता है। मुक्त होने पर वह परम साम्य को प्राप्त होता है। भक्ति को ये भी साधन रूप मानते हैं। संक्षेप में

यही माध्व मत है। मध्यकाल की विचारधारा को इस मत ने प्रभावित किया है।

निम्बार्क मत :—द्वैताद्वैत मत के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य का जन्म लगभग सं० १२१६ में हुआ था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनका वास्तविक नाम नियमानन्द था। निम्ब के वृक्ष पर रात्रि में अर्क के दर्शन कराने के कारण इनका नाम निम्बार्क पड़ा था। इनके ग्रन्थों में वेदान्त पारिजात सौरभ, दश श्लोकी, श्रीकृष्णास्तव बहुत प्रसिद्ध हैं। दश श्लोकी में तो संक्षेप में निम्बार्क मत का अच्छा वर्णन किया गया है। निम्बार्क मत के अनुसार ब्रह्म अद्वैत और द्वैत दोनों है। जीव और ब्रह्म में अशांशि भाव सम्बन्ध है। जहाँ तक कर्तृत्व का सम्बन्ध है जीव स्वतंत्र है, किन्तु भोग प्राप्ति के लिए वह ईश्वराश्रित है। अतः ईश्वर नियन्ता हुआ और जीव नियम्य। परिमाण में अणु है विभु नहीं। वह हरि का अंश रूप होते हुए भी विविध है। निम्बार्क मत में अचित के तीन रूप कल्पित किए गए हैं। (१) प्राकृत—महततत्त्व से लेकर महाभूत तक प्रकृति से उत्पन्न जगत, (२)—अप्राकृत—प्रकृति के राज्य से बहिर्भूत जगत, (३) काल—यह अखण्ड रूप कार्यरूप से अनित्य है। निम्बार्क मत में सगुण ईश्वर का ही प्रतिपादन किया गया है। वह अविद्यास्मितादि दोषों से रहित अशेष ज्ञान, बल आदि कल्याण गुणों का स्थान है। निम्बार्क मत में क्लेषों से मुक्त होने का साधन प्रपत्ति मूल भक्ति ही मानी गई है। इसी के सहारे जीव भगवदनुग्रह प्राप्त करता है यही निम्बार्क मत है।

विष्णुस्वामी :—ये सम्भवतः दक्षिण निवासी ब्राह्मण थे। इनका जन्म लगभग १३२० ई० में माना जाता है। ये माध्व मत के ही आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने अद्वैतवाद से माया को निकालने की चेष्टा की है। विष्णुस्वामी ने राधा और कृष्ण भक्ति को विशेष महत्त्व दिया है। विद्यापति चण्डीदास आदि कवियों पर इनका ही प्रभाव ढूँढ़ा जा सकता है। कबीर पर इनका प्रभाव बिल्कुल न था। अतः हमने इनका वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया है।

इन आचार्यों के अतिरिक्त उनके अनेक शिष्य प्रशिष्य भी थे जो अपने-अपने मत का लोक में प्रचार कर रहे थे। इनके प्रचार के फलस्वरूप देश में अद्वैतवाद और मायावाद के साथ भक्ति भावना का अच्छा सम्मिश्रण हुआ। इसी सम्मिश्रण

की छाया हमें परवर्ती सन्तों की कविता में मिलती है। यह लोग एक ओर तो संसार को स्वप्नवत् और माया कहकर वैराग्य और ज्ञान भावना को उत्तेजित करते थे, और दूसरी ओर भक्ति को सम्भ्रांत साध्य कहकर भक्ति को अत्यधिक महत्त्व देते थे। इसी प्रकार इनमें शंकर के निर्गुणवाद तथा परवर्ती आचार्यों के सगुणवाद का अच्छा सम्मिश्रण हुआ है।

कहना न होगा कि इन दार्शनिक मतवादों से जनता को अधिक लाभ नहीं पहुँच सका, क्योंकि यह साधारण जनता की समझ के बाहर थे। दूसरे प्रत्यक्ष परस्पर विरोधी से लगते थे। जनता नहीं समझ पाती थी कि इनमें किसका अनुसरण श्रेयस्कर होगा। उसे निराश होकर पुरोहितों द्वारा निर्देशित मार्ग पर ही चलना पड़ा। पुरोहितों ने भी इस अवसर का अच्छा सदुपयोग किया। उन्होंने अपने पांडित्य प्रदर्शन के लिये आडम्बर की खूब वृद्धि की। फलस्वरूप धर्म केवल वाह्याडम्बरमात्र रह गया। कबीर वाणी में इस वाह्याडम्बर प्रधान धर्म की अच्छी प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है।

यद्यपि इस्लाम में वाह्याडम्बरों के लिए बहुत कम अवकाश है, फिर भी मुल्लाओं के प्रभाव से उसमें भी आडम्बर आ ही गए। दूसरे इस्लाम की "अजान" "हलाल" आदि बातें कुछ ऐसी हैं, जिनमें कोई बुद्धिवादिता नहीं दिखलाई पड़ती है। अतः कबीर ने हिन्दू धर्म के साथ इस्लाम को भी अच्छी तरह से समेटा है और उसकी भी उन्होंने अच्छी धज्जियाँ उड़ाई हैं।

इस प्रतिक्रियात्मक प्रभाव के अतिरिक्त कबीर की विचारधारा पर कुछ क्रियात्मक प्रभाव भी प्रत्यक्ष परिलक्षित होते हैं। इनमें सबसे प्रमुख प्रभाव कुछ संतों के हैं। कबीर को प्रभावित करनेवाले इन सन्तों में नामदेव, जयदेव तथा गोरखनाथ सबसे प्रमुख हैं। डा० मोहन सिंह ने तो स्पष्ट ही लिखा है कि कबीर की भाव प्रवणता तथा वर्णनशैली दोनों ही नामदेव और गोरखनाथ से प्रभावित हैं।[1] कबीर पर सन्त नामदेव की विचारधारा के प्रभाव का एक कारण यह भी था कि इन्होंने उनके आराध्य देव पंढरपुर के श्री विठोवा जी के दर्शन किए थे। विठोवा जी की मूर्ति से अमूर्त ब्रह्म के उपासक कबीर को कुछ न कुछ प्रेरणा

१ कबीर एण्ड दि भक्ति मूवमेंट—डा० मोहन सिंह—भाग १—पृ० ४८

अवश्य मिली होगी। मेरा अनुमान है कि कबीर में भक्ति भावना के अत्यधिक स्फुरण का एक यह भी कारण था। उनकी वाणी में सन्त नामदेव की भक्तिमयी आध्यात्मिक स्फूर्ति मिलती है। तभी तो विद्वानों ने कबीर पर नामदेव के प्रभाव को निःसंकोच रूप से स्वीकार किया है। आगे हम नामदेव की विचारधारा के प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयत्न करते हैं।

सन्त नामदेव :—महाराष्ट्र के सन्तों में सन्त नामदेव अग्रगण्य माने जाते हैं। डा० भंडारकर के मतानुसार इनका जन्म नरसी वमनी नामक स्थान में सं० १३२७ (सन् १२७०) में हुआ था।[1] इनके पिता का नाम दशमेती था। यह दर्जीगीरी का कार्य करते थे। भक्तमाल में इन्हें छीपा जाति का कहा गया है।[2] आदि ग्रन्थ में छीपा जाति को "हीनड़ी जाति" माना गया है। इधर कुछ लोगों ने छीपा जाति को क्षत्रियों के अन्तर्गत समेटने की चेष्टा की है।[3] सम्भव है उनके पिता के दर्जी होने के कारण ही लोग छीपा जाति को हेय समझने लगे हों। कहते हैं कि इनका बाल्यकाल खेलकूद में ही व्यतीत हुआ था। इन्हें पढ़ाने का प्रयत्न तो अवश्य किया गया था, किन्तु इनका मन न लग सका। फिर आठ वर्ष की अवस्था में इनका पाणिग्रहण संस्कार भी गोविन्द शेट की सुपुत्री राज बाई से सम्पन्न हो गया था। अतः उनका वैवाहिक जीवन उनके पढ़ने में अवश्य बाधक हुआ होगा। इनके बाल्यकाल के साथ बहुत सी अलौकिक कथाएँ जोड़ दी गई हैं, जिन्हें हम भक्तों की श्रद्धा भावना मात्र कह सकते हैं।[4] मैकलिफ साहब के मतानुसार अपनी युवावस्था में ये कुछ कुसंगति में पड़ जाने के कारण डकैत बन गये थे।[5] बहुत सम्भव है कि विविध कुटुम्बी होने के कारण तथा कुछ पढ़े लिखे न होने के कारण ही उन्हें यह दुष्ट कार्य करना पड़ा

---

१ वैष्णविज़्म एण्ड शैविज़्म—भण्डारकर—पृ० ९२

२ भक्तमाल सटीक—लखनऊ—१९१३ पृ० ३०७

३ नामदेव वंशावली—नन्हें लाल वर्मा—पृ० १-६ भूमिका

४ देखिए जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी अप्रैल १९२०—पृ० १८६

५ दि सिख रिलीजन—भाग ६—पृ० २०

हो। किन्तु बाद की एक घटना से इनका हृदय परिवर्तित हो गया और पंढरपुर में जाकर विठोवा भगवान् के परम भक्त बन गये।

विसोवा खेचर नामक एक संत नामदेव जी के गुरु कहे जाते हैं। मैकनिकल साहब[१] ने उनके सम्बन्ध में एक मनोरंजक कथा उद्धृत की है। कहते हैं कि जब नामदेव जी विसोबा खेचर के प्रथम बार दर्शन करने गए तो देखा कि वे मंदिर में शिवलिङ्ग के दोनों ओर पैर डाले पड़े हुए हैं। इन्हें आश्चर्य हुआ उन्होंने उनके पैर हटाने की चेष्टा की किन्तु उनके पैरों के साथ शिवलिंग भी घूमने लगी। वे उनके माहात्म्य को देखकर उनके चरणों पर गिर पड़े।

नामदेव जी का सारा जीवन पर्यटन में हो बीता था। कहते हैं कि देहली में उनकी मुहम्मद विन तुगलक से भी भेंट हुई थी।[२] किन्तु इस घटना के कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं। नामदेव जी एक बार जीवन के उत्तर काल में पंजाब भी गए थे।[3] नमियाना तालाब का सम्बन्ध इन्हीं नामदेव से बताया जाता है। उत्तर भारत की विचारधारा पर निश्चय ही नामदेव का व्यापक प्रभाव पड़ा होगा। मैकलिफ साहब[४] का यह कहना कि नामदेव ने पंजाब में जो पद बनाए थे वे आदि ग्रन्थ में संकलित हैं, सत्य से बहुत दूर नहीं हैं। इनकी निर्वाण तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। सेन जी ने इनकी मृत्यु सं० १३२१ में बतलाई है। मराठी इतिहासकारों के अनुसार उनकी मृत्यु सं० १४०७ में हुई थी।[५] निश्चित प्रमाणों के अभाव में कोई निश्चित तिथि का निर्देश करना कठिन है। नामदेव जी की हिन्दी रचनाएँ बहुत कम हैं। ६२ पद तो ग्रन्थ साहब में मिलते हैं तथा कुछ और मिलाकर हिन्दी पदों की संख्या २१० तक हो जाती है। विद्वानों का अनुमान है कि इनकी मराठी रचनाएँ युवाकाल की हैं और हिन्दी रचनाएँ वृद्धावस्था की हैं। कहते हैं कि नामदेव अपने युवा-

---

१ इंडियन थीइज़्म—पृ० ११४

२ नामदेव—जी० ए० नटेसन मद्रास—पृ० २०

३ मिडिवल मिस्टीसिज़्म—सेन ५६

४ सिख रिलीजन भाग ६—पृ० ४०

५ ” ” ” पृ० ३४

काल में सगुणोपासक थे, किन्तु बाद में निर्गुणवादी हो गए। उनके हिन्दी पदों से उनकी निर्गुणवादिता ही स्पष्ट होती है। नामदेव और उनकी रचनाओं का कबीर और उनकी बानी पर स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है। संक्षेप में नामदेव से कबीर को निम्नलिखित बातें विरासत में मिली हुई जान पड़ती हैं, क्योंकि दोनों ही में वे समान रूप से मिलती हैं।

(१) कर्म और वैराग्य का सुन्दर समन्वय
(२) भेदभाव विहीनता
(३) ब्रह्म की निर्गुणता
(४) अनन्य प्रेम भावना
(५) सर्वात्मवाद और अद्वैतभावना
(६) निर्गुण भक्ति
(७) नामसाधना
(८) सेव्य सेवक भावना

(१) कर्म और वैराग्य का सुन्दर समन्वय :—नामदेव भारत के प्राचीन संतों के समान कोरे वैरागी न थे। ग्रन्थ साहब[1] में दिए हुए एक पद से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भजन के साथ-साथ कर्म करना भी वे बड़ा आवश्यक समझते थे। नामदेव की प्रवृत्ति कबीर और नानक आदि परवर्ती सन्तों में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती थी।

(२) भेद-भाव विहीनता :—जिस भेद-भाव विहीनता का बीजारोपण स्वामी रामानुजाचार्य[2] ने किया था तथा जो भागवत[3] में भी यत्र तत्र प्रतिध्वनित मिलती है, सन्त नामदेव ने हीन जाति का होने के कारण उसका निराकरण किया। उनकी वाणी में यह बात अनेक स्थलों पर ध्वनित की गई है। अपनी गुरु परम्परा में से प्राप्त इस बात का अनुसरण महात्मा कबीर ने भी किया है।

---

१ ग्रं० सा०—पृ० १३७५-६

२ इन्फ्लुएंस आफ इसलाम आन इंडियन कल्चर में—डा० ताराचन्द ने रामानुज का विवेचन करते हुए लिखा है।

३ भागवत १/१०

(३) ब्रह्म की निर्गुणता :—ऐसा प्रसिद्ध है कि सन्त नामदेव पहले मूर्ति-पूजक और सगुणवादी थे, किन्तु बाद को वह कट्टर निर्गुणवादी हो गए थे। ग्रन्थसाहब में पृष्ठ ४८५ के प्रथम द्वितीय पदों से यही बात प्रकट होती है। कबीर की निर्गुणता के सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है।

(४) सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद :—निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते-करते अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद की प्रतिष्ठा स्वयं हो जाती है। ग्रन्थसाहब के पृ० ४८१ के पदों से तथा पृ० ८७२ और ८७३ पर दिए पदों से यही बात प्रकट होती है। कबीर में भी सर्वत्र सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद का प्रतिपादन मिलता है।

खालिक, खलक, खलक में खालिक, सब घट रह्यो समाई।

इत्यादि क० ग्रं० पृ० ६८

(५) अनन्य प्रेम साधना :—इनकी रचनाओं में सर्वत्र अनन्य प्रेम साधना को ही महत्त्व दिया गया है। एक स्थल पर वे लिखते हैं "हे राम! तुम्हारी मूर्ति और नाम मुझे उसी प्रकार अनन्य भाव से प्रिय हैं, जिस प्रकार मारवाड़ी को जल, ऊँट को लता, मृग को नींद, पृथ्वी को वृष्टि, भ्रमर को फूलों की गन्ध, कोयल को आम की बौर तथा चकई को सूर्योदय प्रिय होते हैं" इत्यादि।[१] सन्त नामदेव की वाणी का यही मूल भाव है। महात्मा कबीर ने भी इसी अनन्य प्रेम भावना को नामदेव के ढंग पर ही अपनाया है।

(६) निर्गुण भक्ति :—भागवत में तो निर्गुण भक्ति सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। नामदेव में यही निर्गुण भक्ति भावना पाई जाती है। ग्रन्थसाहब में पृ० ६५६ में दिए हुए पदों को पढ़ने से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। महात्मा कबीर की भक्ति भी निर्गुण भक्ति ही थी। उनकी भक्ति का विवेचन करते समय यही बात प्रायः स्पष्ट कर दी गई है।

(७) नामसाधना :—यों तो नामसाधना भक्ति क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही प्रचलित है, किन्तु नामदेव ने उसको बहुत अधिक महत्त्व दिया था।[२] कबीर ने

---

१ ग्र० सा०—११६२ पृ०

२ ग्रं० सा०—पृ० ८७२

उनका इस दिशा में पूरा अनुसरण किया है। उन्होंने भक्ति क्षेत्र में नाम जप को विशेष महत्त्व दिया है।

(८) सेव्य-सेवक भाव :—भक्तों में सेव्य-सेवक भाव सदैव से ही सामान्य रहा है। ग्रन्थ साहब में पृ० ११३७ पर दिए गए पद इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं, जैसा कि कबीर की भक्ति भावना का विवेचन करते समय बताया गया है कि उन्होंने भी सेव्य-सेवक भाव पर विशेष जोर दिया है।

जयदेव :—महात्मा कबीर ने नामदेव के साथ-साथ जयदेव का बड़े सम्मान के साथ उल्लेख किया है।[1] अब प्रश्न यह है कि जयदेव कौन थे। संस्कृत साहित्य में कई जयदेवों का जिक्र आया है।[2] किन्तु इन सब में गीत गोविन्दकार की सबसे अधिक ख्याति है। कदाचित् इन्हीं के दो पद आदि ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। भक्तमाल[3] में भी इन्हीं का वर्णन किया गया है। प्रियादास[4] ने इन्हीं का विस्तार से निरूपण किया है। उन्हें राजा लक्ष्मण सेन का दरबारी कवि[5] माना जाता है। राजा लक्ष्मण सेन का राज्यकाल सन् ११७९ से लेकर १२०५ तक निश्चित किया गया है।[6] अतः जयदेव का समय भी यही मानना चाहिए। इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ लोग तो अजय नदी तटवर्ती केन्दुली नामक स्थान को, जो बंगाल के वीरभूम जिले में है, मानते हैं। यहाँ इनकी समाधि भी है। प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला भी लगता है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह उड़ीसा के केन्दुली सासन नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। जयदेव की वाणी का माधुर्य इस बात का पूर्ण द्योतक है कि वे बंगाली ही थे।

---

१ कलि जागे नामा जैदेव (व २)
२ ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—पृ० १९२-९५
३ भक्तमाल सटीक—पृ० ३२७
४ प्रियादास टीका ३१८-३४६ पृ०, भक्तमाल सटीक
५ देखिए—श्री मद्भागवत—३२वें अध्याय—८वें श्लोक के भावार्थ पर वैष्णव तोषणी टीका, तथा-
जयदेव चरित—रजनीकांत—पृ० १२
६ डा० मजूमदार—दि हिस्ट्री आफ बंगाल—भाग १ पृ० २३१

इतनी श्रुति-मधुर भाषा और किसी प्रांत का व्यक्ति लिख ही नहीं सकता। संभवतः उड़ीसा में गीत गोविन्द का अत्यधिक प्रचार होने के कारण[1] ही लोगों ने उन्हें उड़ीसा वासी कहना प्रारम्भ कर दिया है। जयदेव के हिन्दीवाले पद श्री गुरु ग्रन्थ साहब के राग गूजरी और राग मारू में ही मिलते हैं। इन पदों से जयदेव की भक्ति भावना और वाणी के सम्बन्ध में कोई नई बात नहीं मिलती। मेरी समझ में महात्मा कबीर ने जयदेव को राधा कृष्ण का महान् भक्त समझ कर ही उनके प्रति इतनी श्रद्धा प्रकट की है। वास्तव में जयदेव की भावातिरेकता के अतिरिक्त और किसी बात का प्रभाव उन पर नहीं परिलक्षित होता।

गोरखनाथ :—कबीर की विचारधारा पर गोरखनाथ और उनके सिद्धांतों की अमिट छाप पड़ी है। गोरखनाथ पंथ के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। अतः उनकी विचारधारा और सिद्धांतों का जो प्रभाव कबीर पर परिलक्षित होता है उसका निर्देश तो नाथ पन्थ का विवेचन करते समय किया गया है। यहाँ पर हम गोरखनाथ पर स्वतन्त्र रूप से थोड़ा सा विचार करेंगे।

गोरखनाथ जी का अभी तक कोई प्रामाणिक विवरण प्रकाश में नहीं आया है। इस विषय पर अभी और खोज करने की आवश्यकता है। गोरख के उदय-काल के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। शुक्ल जी ने इनका समय १००० ई० से लेकर १२०० ई० के मध्य में माना है।[2] डा० शहीदुल्ला[3] इन्हें आठवीं शताब्दी का मानते हैं। डा० फर्कुहर ने इनका समय[4] सन् १२०० ई० के लगभग निश्चित किया है। डा० बड़थ्वाल[5] तथा आचार्य हजारी प्रसाद[6] इनका समय दसवीं शताब्दी के लगभग ही मानते हैं। राहुल जी ने इनका समय ८४५ के

---

१ हिस्ट्री आफ उड़ीसा डा० बनर्जी—भाग १ में—पृ० ३३४ पर देखिए

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास—पृ० १२

३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० १५१

४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० १५१

५ निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री—पृ० ६

६ नाथ सम्प्रदाय—पृ० ६६

लगभग निश्चित किया है।[१] मेरी समझ में गोरखनाथ का उदय बारहवीं शताब्दी में हुआ था। नाथ पंथ का उदय वासना प्रधान सिद्धमत की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। सिद्धमत के उपसम्प्रदाय वज्रयान और सहजयान बारहवीं शताब्दी तक प्रबल रूप से प्रचलित थे। गोरख इनके ह्रास युग में ही हुए होंगे। फिर बारहवीं शताब्दी से पहले के किसी कवि में गोरख की विचारधारा की छाया नहीं मिलती। गोरख का व्यक्तित्व बड़ा विशिष्ट था। उससे प्रभावित हुए बिना कोई भी कवि या महापुरुष नहीं रह सकता था। अतः गोरख का समय बारहवीं शताब्दी मानना अधिक उपयुक्त है। इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। योग सम्प्रदायाविष्कृति में[२] गोदावरी तट स्थित किसी चन्द्रगिरि नामक स्थान को इनकी जन्मभूमि कहा गया है। एक दूसरे ग्रन्थ में किसी वड़व नामक स्थान को इनकी जन्मभूमि सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। यह स्थल कहीं दक्षिण में है। बंगाली लोग गोरख को बंगाली ही मानते हैं। इसी प्रकार विविध मत हैं। मेरा अनुमान है कि गोरखनाथ कहीं नैपाल में उत्पन्न हुए थे इस अनुमान के कई आधार हैं। गोरखनाथ जी का सबसे अधिक प्रभाव नैपाल में ही पहले भी था और अब भी है। यदि वे पहाड़ी न होते तो नैपाल आदि में इनका इतना प्रभुत्व न होता। इनकी जाति के सम्बन्ध में भी मतभेद है। डा० हजारी प्रसाद[3] का अनुमान है कि वे ब्राह्मण थे। मेरी समझ में वे किस वर्ण व्यवस्था से सम्बन्ध न रखने वाले बौद्ध थे। बाद में शैव और योग मतों से प्रभावित होकर उन्होंने एक नवीन विचारधारा का प्रवर्तन किया। इस नवीन विचारधारा में सबसे अधिक महत्त्व आचरण प्रवणता को दिया गया। यह आचरण प्रवणता गोरख को पातञ्जल योग से मिली होगी।

आजकल गोरखनाथ के नाम पर एक विस्तृत साहित्य उपलब्ध है। डा० हजारी प्रसाद ने २८ ग्रन्थ तो संस्कृत के गोरख कृत बतलाए हैं[४] तथा ४० हिन्दी

---

१ **हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन—पृ० १५**

२ **योग सम्प्रदायाविष्कृति—पृ० २३-२४**

३ **नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद—पृ० ९६-९८**

४ **नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद—पृ० ९८**

ग्रन्थों की सूची दी है। इनमें से कौन ग्रन्थ प्रामाणिक है और कौन अप्रामाणिक यह निश्चित करना बड़ा कठिन है।

डा० बड़थ्वाल जी ने इनकी प्रामाणिकता पर विचार करके गोरख बानीसंग्रह का संकलन किया है। मेरी समझ में गोरखनाथ के विचारों के अध्ययन के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयुक्त है।

गोरखनाथ जी के दार्शनिक सम्प्रदाय के सम्बन्ध में भी मतभेद है। राहुल सांकृत्यायन उन्हें वज्रयान का सिद्ध मानते हैं[१] अन्य विद्वान् उन्हें नाथ सम्प्रदाय का स्तम्भ सिद्ध करते हैं। नाथ पंथियों में वे ईश्वर के समान पूज्य माने जाते हैं। यद्यपि नाथ पंथ में अन्य नाथों की विचारधारा का मिश्रण मिलना है किन्तु सबसे स्पष्ट धारा गोरखनाथ के चिन्तन की है। स्थूलरूप से गोरखनाथ जी ने नाथ पंथ को निम्नलिखित तत्त्व दिए थे :—

(१) मन साधना, प्राण साधना और इन्द्रिय साधना
(२) पातञ्जल योग
(३) आचार प्रवणता

नाथ सम्प्रदाय का वर्णन करते समय इन तत्त्वों पर विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ पर तो केवल संकेत मात्र करना अभीष्ट था। कबीर पर गोरखनाथ के उपर्युक्त तीनों तत्त्वों का पूरा प्रभाव पड़ा है। नाथ सम्प्रदाय के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जायगी। इन तत्त्वों के अतिरिक्त कबीर पर गोरख की भाषा शैली का बहुत बड़ा ऋण है। कबीर की विचारधारा और भाषा शैली गोरख से बहुत मिलती-जुलती है। दोनों की तुलना करने से ऐसा प्रतीत होता है कि गोरख कबीर के कुछ ही पहले हुए थे। कबीर ने उनका अनुसरण किया। फलतः उनका उन पर इतना प्रभाव परिलक्षित होता है।

यह तो हुई हिन्दू धर्म और धर्माचार्यों की सामान्य स्थिति, अब थोड़ा इस्लाम धर्म की दशा पर विचार कर लेना है; क्योंकि कबीर पर तो दोनों धर्मों की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है। कबीर से कुछ पहले ही सूफी धर्म अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। फारस के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि जलालउद्दीन

---

१ **'मन्त्रयान, वज्रयान और चौरासी सिद्ध' गंगा पुरातत्वाङ्क** २२१ **पृ०** ४७१

रूमी १२०७ ई० में उत्पन्न हुए, उन्होंने मुसलमानों में रहस्य भावना, पवित्र जीवन आदि की एक ऐसी लहर पैदा कर दी कि सारा इस्लामी वातावरण उनकी रहस्यमयी ध्वनि से गूँज उठा। इसका परिणाम यह हुआ कि सूफियों के अनेक सम्प्रदाय और उपसम्प्रदाय उठ खड़े हुए। इनमें से कबीर से पहले उदय होनेवाले सम्प्रदायों में चिश्ती और सुहरावर्दी प्रमुख हैं। चिश्ती सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक ख्वाजा आबू अबदुल्ला चिश्ती थे। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती (११४२-१२३६) ने इसका प्रचार भारतवर्ष में किया था। सुहरावर्दी सम्प्रदाय को प्रचार देने वालों में बहाउद्दीन जकारिया प्रमुख हैं। यह मुलतान में उत्पन्न हुए थे। इनकी मृत्यु १२६६ ई० में हुई थी। इस सम्प्रदाय का प्रभाव भारतवर्ष में बड़ा व्यापक दिखाई पड़ा। बंगाल, बिहार, गुजरात सभी स्थलों पर इसके अनुयायी मिलते हैं। कबीर के उदय से पहले ही सूफियों का प्रभाव सारे देश में परिलक्षित होने लगा था। कबीर, यही कारण है, थोड़ा बहुत सूफी भावना से भी प्रभावित हुए हैं। सूफी धर्म का प्रभाव दिखलाते समय यह बात और स्पष्ट कर दी जायगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की विचारधारा को प्रभावित करने वाली धार्मिक परिस्थितियाँ अपनी जटिलता में विद्यमान थीं। कबीर उनसे अछूते नहीं बच सके थे। उन सब का प्रभाव उन पर पड़ा है।

साहित्यिक परिस्थितियाँ :—कबीर का साहित्य से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। जो कहता है "विद्या न पढ़ूँ वाद नहीं जानूँ" (क० ग्रं० पृ० १३५) उसे साहित्य से क्या प्रयोजन है ? उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि उन्हें साहित्य शास्त्र और काव्य शास्त्र का थोड़ा सा भी ज्ञान न था। हाँ, जहाँ तक धार्मिक साहित्य का सम्बन्ध है, कबीर ने उसका मनन किया था। स्वयं पढ़ कर नहीं, दूसरों से सुन कर। अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेक स्थलों पर उपनिषद्, गीता, भागवत और योग वशिष्ठ आदि ग्रंथों के नाम दिए हैं। इन ग्रंथों का उन्हें सुना सुनाया अच्छा ज्ञान था। कबीर का जीवन साहित्य जगत से एक प्रकार से विच्छिन्न ही था। पंडित लोग जो प्रायः कवि और साहित्य मर्मज्ञ होते थे, उनसे उनका विरोध ही रहता था। अतः यहाँ पर साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन आवश्यक ही है।

महात्मा कबीर का व्यक्तित्व

विचारों की जननी बुद्धि है। जैसी जिसकी बुद्धि होती है, वैसे उसके विचार होते हैं। बुद्धि का व्यक्तित्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्यक्तित्व, स्वभावगत शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का समष्टि स्वरूप है। स्वभाव, शरीर तथा मन आदि का निर्माण कुछ तो पूर्व जन्म के संस्कारों पर और कुछ इस जन्म की परिस्थितियों पर अवलम्बित रहता है। कबीर की इस जन्म की परिस्थितियों का विश्लेषणात्मक वर्णन हम पीछे कर चुके हैं। यहाँ उनकी स्वभावगत और मनोगत विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे।

जिन दिनों महात्मा कबीर का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों देश में अनेक धार्मिक मत और साधनाएँ प्रचलित थीं। इन सभी में वाह्याडम्बरों की प्रधानता थी। ये सब मायाजाल में आवद्ध थे।[1] सर्वत्र असत्य और मिथ्यावाद का ही बोलबाला था। कबीर के शब्दों में सब लोग "पेड़ छाँड़ि सब डाली लागे" हुए से थे।[2] कबीर इन मिथ्याडम्बरों के प्रति प्रतिक्रिया का भाव जन्म से लेकर ही अवतीर्ण हुए थे। प्रतिक्रिया की यह भावना सहज होने के कारण असाधारण थी। जिस प्रकार आडम्बर और असत्य का प्रचार बढ़ा था, उसी प्रकार उसकी प्रतिक्रिया भी अति प्रचण्ड रूप धारण करके उदय हुई। वाह्याडम्बर और असत्य के प्रति उद्भूत प्रतिक्रिया ही कबीर से हृदय की क्रान्ति भावना थी। यह क्रान्ति

---

१ ऐसौ देखि चरित मन मोह्यौ मोर,
ताथैं निस बासुरि गुन रमौं तोर ॥ टेक ॥
इक पढ़हिं पाठ इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरन्तर रहैं निवास।
इक जोग जुगति तन हूँहि खींन, ऐसैं रामनाम संगि रहैं न लीन।
इक हूँहि दीन इक देहि दान, इक करैं कलापी सुरापान।
इक तन्त मन्त औषध बांन, इक सकल सिद्ध राखैं अपान।
इक तीर्थ व्रत करि काया जीति, ऐसैं रामनाम सूँ करैं न प्रीति।
इक धोम घोटि तन हूँहि स्याम, यूं मुकति नहीं बिन राम नाम।
क० ग्रं० पृ० २१६

२ क० ग्रं० पृ० १९८

भावना कबीर के व्यक्तित्व की सबसे प्रमुख विशेषता है। कबीर की जितनी भी विशेषताएँ हैं, उन सबके वास्तविक रूप को हम तभी समझ सकते हैं, जब यह स्मरण रखें कि कबीर क्रान्ति की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने देश में, धर्म में, समाज में, दर्शन में, साधना में, सभी क्षेत्रों में क्रान्ति की जो धारा बहाई थी, उससे निश्चय ही उन क्षेत्रों के कालुष्य बह गए। उनके क्रान्तिपूर्ण व्यक्तित्व के प्रभाव से धर्म, समाज आदि क्षेत्रों में जो स्वच्छता आई, उसे देखकर बहुत से विद्वानों ने उन्हें समाज सुधारक और धर्म सुधारक कहना प्रारम्भ कर दिया है। वास्तव में कबीर ने कभी सुधारक बनने की चेष्टा नहीं की थी। उनका संबंध व्यक्तिगत साधना से अधिक था और समष्टिगत साधना से कम। यह बात दूसरी है कि उन्होंने ईश्वर प्रेरित कर्तव्य[1] समझकर कभी उपदेश वृत्ति ग्रहण कर ली हो। किन्तु उनके जीवन का लक्ष्य सुधार करना न था, उपदेश देना मात्र था। किन्तु क्रांति उनके जीवन का अंग बन गई थी। उन्होंने समझ लिया था कि धर्म में, समाज में और लोक में जो मिथ्याडम्बर है, उसका उन्मूलन करने के लिए क्रान्ति परमावश्यक है। इसी धारणा ने उनकी क्रान्ति भावना को अतिरूप प्रदान कर दिया था। वे डंके की चोट पर कहते थे :—

पंडित मुल्ला जो लिख दिया,
छाँड़ि चले हम कछु न लिया। (क० ग्रं० पृ० २६२)

जीवन और जगत में मिथ्याडम्बर फैलाने वाले कौन थे—पंडित और मुल्ला। तभी तो कबीर उनसे इतने रुष्ट थे। यह सत्य के सच्चे प्रचारक कबीर को शोभा भी देता था।

कबीर की इस क्रान्ति भावना ने कबीर को स्वभाव से ध्वंसात्मक बना दिया था। कबीर पूर्व निश्चित किसी भी मान्यता को मानने के लिये तैयार न थे। यही कारण है कि उन्होंने न तो इस्लाम धर्म स्वीकार किया और न हिन्दू धर्म ही।

यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है। कबीर को क्रान्ति भावना किसी कामना से प्रेरित नहीं हुई थी। वह उनकी स्वभावगत विशेषता थी; उनके

---

१ क० ग्रं० पृ० १९६ पद ३१८

हृदय की प्रधान प्रवृत्ति थी, जो सम्भवतः अनन्य सत्य निष्ठा के कारण प्रादुर्भूत हुई थी। कबीर का सारा जीवन सत्यानुभूति, सत्य प्रचार और सत्य के प्रयोगों में बीता था। जहाँ कहीं भी उन्हें सत्य तत्त्व के दर्शन होते थे, वे सहर्ष स्वीकार कर उसकी प्रतिष्ठा और प्रचार करते थे। इसके विपरीत वे असत्य आडम्बर के कट्टर विरोधी थे। जहाँ कहीं भी जिस किसी रूप में वह उन्हें दिखाई दे जाता था, वे उसकी खूब खिल्ली उड़ाते थे और उसका जोरदार शब्दों में खण्डन करके अन्त में उसे धराशायी कर देते थे। कबीर का सारा जीवन असत्य और आडम्बर से युद्ध करने में बीता था। इसके लिये अपना सब कुछ छोड़ना पड़ा। पर वे कभी हताश नहीं हुए और न कभी पीछे हटे। यह दृढ़ता उनकी वह महान् विशेषता है, जो उन्हें भारत के स्वतन्त्र विचारकों में सबसे ऊँचा स्थान देती है। सत्य तो यह है कि असत्य से युद्ध करते-करते ही वे कुछ चिड़चिड़े, कुछ अक्खड़, मस्त मौला और फक्कड़ हो गए थे। ऐसा होता भी क्यों न? जिसका सारा जीवन ही युद्ध में बीता हो वह दुनिया की कहाँ तक परवाह करता। महात्मा कबीर ने "सूरा तन कौ अंग"[1] नामक अङ्ग में असत्य से युद्ध करने वाले सूर का जो वर्णन किया है, वही उन पर भी लागू होता है। सच्चे सूर का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि सच्चा सूर चाहे युद्ध करते-करते 'पुरजा पुरजा' अर्थात् टुकड़ा-टुकड़ा होकर युद्ध क्षेत्र में गिर पड़े, किन्तु वह फिर भी युद्ध नहीं छोड़ता। उसे दो दलों के बीच युद्ध करते समय मरने जीने की चिन्ता नहीं रह जाती।[2]

जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद जी ने लिखा है कि अक्खड़ता कबीर को खान्दानी विरासत के रूप में मिली थी। उनके वंश का लगाव योगियों और सिद्धों से बना हुआ था। अक्खड़ता उन योगियों और सिद्धों की प्रधान सम्पत्ति थी। संगति प्रभाव से यह सम्पत्ति कबीर को प्राप्त हुई थी। वैसे भी कबीर जैसे महायोद्धा का अक्खड़ होना स्वाभाविक के साथ आवश्यक भी था। सम्भवतः यही कारण है कि कबीर की जितनी अक्खड़ता उनकी खण्डनात्मक उक्तियों में

---

१ क० ग्रं० पृ० सूरा तन का हेत ६८
२ क० ग्रं० ६८ साखी १, १०

मिलती है, उतनी अन्य किसी प्रकार की उक्तियों में नहीं। भक्ति क्षेत्र में तो वे विनय और नम्रता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं।[१] आप राम का कुत्ता बनने में भी संकुचित नहीं होते।[२] यही उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। जैसा कि अभी कहा है कि कबीर की अक्खड़ता की अभिव्यक्ति अधिकतर उनकी खण्डनात्मक उक्तियों में हुई है।

वे समाज को धोखा देने वालों को किसी प्रकार भी क्षमा करने के लिये तैयार नहीं हैं। एक ओर तो वे मियाँ साहब[३] को फटकारते हैं और दूसरी ओर "पंडिया" की खबर लेते हैं। मूर्खों की तो वे भर्त्सना करने में नहीं हिचकते।[४]

कबीर की अक्खड़ता बहुत कुछ उनकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता का भी परिणाम कही जा सकती है। जिसे वे सत्य समझते थे, उसे वे स्पष्ट शब्दों में कहे बिना नहीं रहते थे।

इस स्पष्टवादिता की अभिव्यक्ति उनकी सुधारात्मक उक्तियों में विशेष प्रकार से हुई। वे यह कहने में कि पण्डित झूठ बात बोलते हैं, रत्ती भर नहीं हिचकते— 'पण्डित वाद वदन्ते झूठा'। कबीर अक्खड़ ही नहीं, फक्कड़ और घुमक्कड़ भी थे। सत्य के सच्चे उपासक साधु को ऐसा होना भी चाहिए। उन्हें दुनिया

---

१ कबीर चेरा संत का दासनि का परदास।
कबीर ऐसे ह्वै रह्या ज्यूं पाऊँ तलि घास।
रोड़ा ह्वै रहु वाट का तजि पाखंड अभिमान।
ऐसा जे जन ह्वै रहै ताहि मिले भगवान॥ (क० ग्रं० पृ० ६५)

२ कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचै तित जांउँ॥
(क० ग्रं० पृ० २०)

३ मीयाँ तुम्ह सौ बोल्यां बणि नहिं आवे।
हम मसकीन खुदाई बन्दे तुम्हरा जस मनि भावे॥ टेक॥
अलह अवलि दीन को का साहिब जोर नहीं फुरमाया
(क० ग्रं० पृ० १७४)

४ पंडिया कौन कुमति तुम लोग। इत्यादि (क० ग्रं० पृ० ३०२)

से क्या मतलब ? उनकी सारी सम्पत्ति तो राम नाम है। उसी को पाकर वे कृत-कृत्य हो गए। मस्त मौला कबीर को सांसारिक सम्पत्ति की आवश्यकता भी क्या थी ? उनकी अक्खड़ता तो देखिए, अपना घर जलाकर अपने साथियों के घर जलाने में नहीं हिचकते :—

हम घर जाल्या आपणां, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौ तास का, जे चलै हमारे साथि ॥
(क० ग्रं० पृ० ६७)

किन्तु कबीर की अक्खड़ता नीरस और शुष्क नहीं है। वह प्रेम जनित है। उनके हृदय में जो सत्य के प्रति अनन्य प्रेम है उसने ही तो असत्य के प्रति उन्हें इतना अक्खड़ बना दिया है। वे अपने समान प्रेमी की खोज में घूमते हैं। किन्तु सत्य से प्रेम करनेवाला उन्हें कोई दिखाई नहीं देता है :—

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौ प्रेमी मिलै न कोइ।
प्रेमी को प्रेमी मिलै तब सब विष अमृत होइ ॥
(क० ग्रं० पृ० ६७)

इतना अक्खड़ और फक्कड़ होते हुए भी कबीर अत्यन्त सरल, विनम्र, सदाचरण प्रिय और कर्तव्य परायण थे। उनका दृढ़ निश्चय था कि 'काम क्रोध, तृष्णा तजे ताहि मिले भगवान'।

कबीर की सबसे बड़ी विशेषता उनकी बुद्धिवादिता थी। उनके समस्त धार्मिक विश्वास इसी बुद्धिवादिता पर टिके हुए हैं। उन्होंने किसी बात को सत्य इसलिए स्वीकार नहीं किया कि लोक और वेद में प्रतिष्ठा है। लोक और वेद का प्रमाण तो उन्हें मान्य ही नहीं। उसे वे अज्ञान का कारण समझते हैं। उन्हें तो इस बात से प्रसन्नता रहती थी कि गुरु की कृपा से वे लोक और वेद से मुक्त हो गए।[1] कबीर की बुद्धिवादिता तर्क पर आधारित न होकर अनुभूति पर आधारित थी। वह उनकी अपनी विशेषता थी। तर्क के तो वे कट्टर

१ पीछैं लाग्या जाय था लोक वेद के साथि।
आगे थे सत गुरु मिल्या दीपक दीया हाथि ॥ क० ग्रं० पृ० २।११

विरोधी थे। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जो लोग तर्क से द्वैत और अद्वैत भाव स्थिर करना चाहते हैं उनकी बुद्धि बड़ी स्थूल है।[1]

सत्य निरूपण में वे तर्क के अतिरिक्त किसी प्रकार के पक्षपात की बात भी पसन्द नहीं करते थे। समरसता उनके जीवन की प्रधान विशेषता थी। धर्म में, समाज में और जीवन में सर्वत्र ही वे समरसता का ही प्रचार और प्रसार चाहते थे। जिस प्रकार धर्म में उन्हें पक्षापक्षी की भावना अशोभन लगती थी, उसी प्रकार समाज में उन्हें जाति भेद की बात भी नहीं पसन्द थी।[2] समत्व की भावना उन्हें इतनी अधिक प्रिय थी कि वे समदर्शी को भगवान् की प्रतिमूर्ति समझते थे।[3] कुछ लोगों ने सन्त कबीर पर अभिमानी होने का दोषारोपण किया है। निश्चय ही उनकी कुछ उक्तियों में प्रत्यक्ष रूप से अभिमान की झलक दिखाई पड़ती है किन्तु यदि थोड़ा और गम्भीरता से विचार किया जावे तो स्पष्ट हो जावेगा कि जिसे लोग अभिमान समझते हैं, वह उनके आत्मविश्वास की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति है। कबीर की आत्मा जिस बात का विश्वास दिलाती थी, वे उसे आत्मविश्वास के साथ कह देते थे।

यदि भगवान् की प्राप्ति होने के पश्चात् उनके हृदय में यह भावना उठी कि अब वे अमर हो गए हैं तो वे उसकी घोषणा में संकोच और हिचक नहीं दिखला सकते थे।

हम न मरे मरि है संसारा।
मिला हमहिं कि जियावनहारा॥ (क० ग्रं० परिशिष्ट)

इस प्रकार से हम देखते हैं कि कबीर का व्यक्तित्व बड़ा विशिष्ट और विचित्र है। वह न मालूम कितनी सत्य और विषम बातों का मिलन विन्दु है। सत्य के उस अनन्य उपासक में श्रेष्ठ दार्शनिक बुद्धिवादिता और चिन्तना, कट्टर क्रांतिकारी की क्रांति और कठोरता, अनन्य भक्ति की विनम्रता और प्रेमानुभूति, सच्चे आलोचक की स्पष्टवादिता, सच्चे साधु की आचरण-प्रियता, आदर्श पुरुष

---

१ कहै कबीर तरक दोई साधै ताकि मति है मोटी। क० ग्रं० १०५

२ एक जोति ते सब जग उतपना का बामन का सूद्रा॥ क० ग्रं० पृ० २७२

३ लोहा कंचन सम जानहि ते मूरति भगवान॥

की कर्तव्य परायणता, योगियों की अक्खड़ता तथा पक्के फकीर की अक्खड़ता थी। आचार्य जी ने सत्य ही लिखा है कि "हजार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक नहीं उत्पन्न हुआ[1]"।

कबीर की विचारधारा का प्रभावित करनेवाले विविध धर्म और दर्शन

कबीर सारग्राही महात्मा थे। जहाँ कहीं भी उन्हें सत्य तत्त्व की उपलब्धि हुई, उसे उन्होंने सहर्ष ग्रहण किया है। यही कारण है कि उनकी विचारधारा अनेक मतों, ग्रन्थों, सन्तों और सम्प्रदायों से प्रभावित है। कबीर को समझने के लिये उन पर पड़े हुए इन सबके प्रभावों को यत् किंचित् जानना आवश्यक है।

श्रुति ग्रन्थ :—श्रुति ग्रंथ भारतीय धर्म व्यवस्था के प्राण हैं। "वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ" "वेदो हि अखिलो धर्ममूलम्" वाली उक्तियाँ इस बात को पूर्णतया पुष्ट करती हैं। यही कारण है कि भारत की कोई भी धर्म पद्धति ऐसी नहीं है जिन पर इन श्रुति ग्रंथों का थोड़ा बहुत ऋण न हो। यहाँ तक कि इनका कट्टर विरोध करनेवाले नास्तिक बौद्ध भी इनके प्रभाव से न बच सके थे।[2] महात्मा कबीर तो इसमें थोड़ी बहुत आस्था भी रखते थे। एक स्थल पर[3] उन्होंने उनके प्रति श्रद्धाभाव प्रकट किया है। अतः उन पर इनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

विद्वानों ने स्थूल रूप से वेद को चार भागों में विभाजित कर रखा है। वे क्रमशः संहिता, ब्राह्मण और अरण्यक तथा उपनिषद् कहलाते हैं। संहिताओं में अधिकतर वैदिक देवताओं की स्तुतियाँ संग्रहीत हैं। ब्राह्मणों में कर्म काण्ड का वर्णन मिलता है। अरण्यकों में विविध उपासनाओं की चर्चा है। उपनिषदों में ज्ञान कांड का विवेचन है। भारत में सबसे अधिक उपनिषदों की चर्चा होती रही है। यह उपनिषद् संख्या में बहुत अधिक थे। कहते हैं कि ऋग्वेद की २१,

---

१ "कबीर" हजारी प्रसाद द्विवेदी—उपसंहार

२ डा० कर्न लिखित 'मैनुएल आफ बुद्धिइज़्म' देखिये

३ वेद कतेब कहहु मत झूठा, झूठा जो न विचारे क० ग्रं० पृ० २२३

यजुर्वेद की १०२, सामवेद की १००० और अथर्वेद की ६ शाखायें प्रशाखायें थीं। इन सभी शाखाओं से संबंधित उपनिषद् भी रहे होंगे, केवल मुक्तिकोपनिषद् में १०८ उपनिषदों के नाम दिये हैं।

डा० वेलवेलकर और रानडे ने अपने भारतीय तत्वज्ञान के इतिहास में उपलब्ध उपनिषदों की संख्या दो तीन सौ के लगभग मानी है।[1] अतः यह स्वाभाविक ही था कि इतनी संख्या में पाये जाने वाले इन ग्रंथों का भारतीय विचार धारा पर अक्षुण्ण प्रभाव पड़े। कबीर मध्यकालीन धर्म संबंधी विचारधारा के अधिनायक थे। अतः उनका इससे प्रभावित होना स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य भी था। यह बात दूसरी है कि उन्हें पाखंड पूर्ण ब्राह्मण धर्म का प्रधान अंग जानकर अनजान में गर्हित कर दिया हो या गीता के समान ब्रह्मज्ञान की अपेक्षा में उन्हें हेय सिद्ध करने के लिये ऐसा किया हो।

उपनिषद् साहित्य की सृष्टि कर्मकांड प्रधान ब्राह्मण साहित्य की प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी। यही कारण है कि इसमें स्थान-स्थान पर बहुदेव वाद तथा कर्मकांड की विरोध भावना पाई जाती है। पाखण्ड पूर्ण ब्राह्मण और इस्लाम धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में प्रवर्तित कबीर की विचारधारा पर उक्त औपनिषदिक विरोध भावना की छाया पाई जाती है। उन्होंने स्थान-स्थान पर कर्मकांड, मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना का खण्डन किया है।

उपनिषदों को वेदान्त अर्थात् ज्ञान की चरम सीमा कहा जाता है। उनमें अद्वैत वेदान्त एवं अध्यात्म शास्त्र के गूढ़ातिगूढ़ सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा मिलती है। कबीर की विचारधारा पर इन सिद्धान्तों का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। कबीर के आध्यात्मिक विचारों का विवेचन करते समय औपनिषदिक अध्यात्म चिन्तन का प्रभाव भी निर्देशित किया गया है। यहाँ पर हम संक्षेप में यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि उन पर श्रुतियों के अद्वैतवाद का कितना प्रभाव है।

---

१ भारतीय तत्वज्ञान का इतिहास—रानडे और वेलवेलकर भाग २—पृ० ८७

वहुत से सम्भ्रान्त विद्वानों ने कबीर को इस्लामिक एकेश्वरवाद से[1] प्रमावित माना है, जब कि कुछ दूसरे विद्वानों ने उनके एकेश्वरवाद को वैष्णवी सिद्ध[2] करने की चेष्टा की है, किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जावे तो इस प्रकार की धारणाएँ भ्रमपूर्ण मालूम पड़ेंगी। कबीर की ब्रह्म सम्बन्धी धारणा कदापि एकेश्वरवादी नहीं है। वह पूर्ण रूप से वैदिक अद्वैतवाद के साँचे में ढलकर निकली है। उसमें स्थान-स्थान पर एकत्व का जो आग्रह दिखलाई पड़ता है वह वैदिक अद्वैतवाद के अनुकरण पर है। उसमें इस्लामी या वैष्णवी एकेश्वरवाद का प्रभाव मानना उचित नहीं। मुसलमान और वैष्णव दोनों ही ईश्वर की साकार भावना स्वीकार करते हैं। कबीर को यह साकार भावना मान्य नहीं थी। उनका ब्रम्ह न तो इस्लामी खुदा के समान सातवें आसमान में अपने सिंहासन पर आरूढ़ है। उनके खुदा के समान न उसके मुख है, न दो हाथ ही। वह वैष्णवों के विष्णु के समान चतुर्भुजी भी नहीं है। वह उपनिषद् के ब्रम्ह के समान अनिर्वचनीय तत्त्व रूप है।

जाकै मुह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप वास थैं पातरा ऐसा तत्त अनूप॥ (क० ग्रं० पृ० ६०)

यह तत्त्व रूप ब्रह्म यदि कहीं साकार भी हुआ है तो "प्रेम रूप" में या विराट् ब्रह्म के रूप में। विराट् ब्रह्म की भावना पूर्ण वैदिक है। निराकार ब्रह्म की अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र है। अतः स्पष्ट है कि कबीर का ब्रह्म इस्लामी या वैष्णवी अर्थ में साकार ईश्वर नहीं है। हम केवल "एक" शब्द के आधार पर उन्हें एकेश्वरवादी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि एकत्व की भावना वैदिक अद्वैतवाद की आधारभूमि है।[3] वेद की अनेक उक्तियाँ इसका प्रमाण हैं। कबीर ने यदि उसको आश्रय दिया तो वह अद्वैतवाद के अनुकूल ही था।

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ६६
२ कबीर वचनावली— पृ० ६१—हरिऔध
३ एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वनिमाहु :
ऋ० सं० म०. २ अ० ३ व० २३ म० ४६

कबीर ने सर्वत्र वेदों की भाँति ब्रह्म की एकता और अद्वैतता दोनों एक साथ ध्वनित की है।

हम तो एक एक करि जाना
दोइ कहै तिनही को दोजग, जिन नाहिन पहचाना। टेक।
एकै पवन एक ही पानी एक जोति संसारा
एकहि खाक घड़े सब भाँडे एकहि सिरजनहारा॥
जैसै बाढ़ी काष्ट ही काटै अगिनि न काटै कोई!
सब घटि अन्तर तूही व्यापक धरै सरुपै सोई॥

इत्यादि क० ग्रं० पृ० १०५.

उपनिषदों में ज्ञानकाण्ड के अतिरिक्त योग और भक्ति की भी चर्चा मिलती है। कबीर ने भी इन तत्त्वों को अपनी धर्म साधना में ऊँचा स्थान दिया है। उपनिषदों में वर्णित "अध्यात्म योग" राजयोग का रूपान्तर कहा जा सकता है। राजयोग-साधना मनोजय से सम्बन्धित है। वैसे भी उपनिषदों में योग को "स्थिर इन्द्रिय धारणा"[1] कहा गया है। इन्द्रियों का स्वामी मन है। अतः इसको सर्व प्रथम साधना चाहिए। इसलिए उपनिषदों में मनोपासना एवं मनोजय आदि पर अधिक जोर दिया गया है।[2] उपनिषदों की भाँति कबीर ने भी मन-साधना को अत्यन्त आवश्यक ठहराया है। कबीर का योग सम्बन्धी अन्तिम सिद्धांत मनोजय ही है। यही कारण है कि प्रसिद्ध विद्वान् "तारक नाथ सान्याल"[3] उन्हें राजयोगी मानते हैं।

<u>कबीर और वैष्णव मत</u> :—कबीर ने अपनी रचनाओं में वैष्णवों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इन प्रशंसात्मक पंक्तियों को देखकर यह सरलता से अनुमान किया जा सकता है कि जिन वैष्णवों की उन्होंने इतनी प्रशंसा की है उनके मत एवं सिद्धान्तों से कुछ न कुछ प्रभावित अवश्य हुए होंगे। उनकी रचनाओं का अध्ययन करने पर यह अनुमान बहुत कुछ सही उतरता है।

---

१ कठ० २।६।११
२ श्वेता० २।१०, १२
३ देखिए कल्याण का योगाङ्क—पृ० ६३०

स्वभाव से सतोगुणी वे महात्मा वैष्णवों की साहित्यिकता पर अत्यन्त मुग्ध थे। यही कारण है कि उन्होंने उसके सारभूत सिद्धांत सहर्ष आत्मसात् कर लिये थे।

वैष्णव मत अत्यन्त प्राचीन है। भगवान् विष्णु और उनके अवतारों की उपासना ही इस मत का प्रधान अंग है। इसको समझने के लिए भगवान् विष्णु के स्वरूप पर स्वल्प विचार कर लेना चाहिए। ऋग्वेद में विष्णु से सम्बन्धित ६ या ७ सूक्त हैं। मैकडानेल के मतानुसार ऋग्वेद में विष्णु एक साधारण देवता के रूप में चित्रित किये गए हैं।[1] कहीं-कहीं पर वे सूर्य की शक्ति के साकार स्वरूप भी माने गए हैं। ऋग्वेदिक विष्णु का अध्ययन करने पर हमें मालूम होता है कि अन्य देवताओं की अपेक्षा उनमें मानवोचित गुणों का अधिक समावेश है।[2] उनमें अत्यन्त व्यापकत्व, अतुलनीय पराक्रम, विश्व धारण सामर्थ्य, अमृतत्व, पोषण शक्ति, अवतार धारणा शक्ति आदि की प्रतिष्ठा मिलती है। आगे चलकर उन्हीं गुणों का विकास होता गया, इनके सर्वाङ्गीण एवं सर्वतोमुखी दिव्यालोक के सामने अन्य देवताओं का प्रकाश मन्द पड़ने लगा। यहाँ तक कि प्रकाश पुंज भगवान् सूर्य को भी अपना अन्तर्भाव उन्हीं में करना पड़ा। धीरे-धीरे इनका महत्त्व इतना बढ़ा कि वे ब्रह्म के प्रतिरूप कहे जाने लगे। ब्राह्मणों में उन्हें[3] देवाधिदेव कहा गया। यजुर्वेद ने उन्हें यज्ञस्वरूपी कहकर ब्रह्म के समकक्ष प्रतिष्ठित किया है। उसमें भगवान् की (शील, शक्ति और सौंदर्य) इन तीनों विभूतियों की प्रतिष्ठा मिलती है। इस प्रकार विष्णु के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का अच्छा विकास हुआ।

वैष्णव मत को अपने विकास काल में अनेक परिवर्तनों में से होकर गुजरना पड़ा। भारत के प्रसिद्ध विद्वान् डा० भण्डारकर[4] ने इसका संक्षेप में अच्छा विवेचन किया है। उनके मतानुसार इसका प्रारम्भिक नाम एकान्तिक धर्म था।

---

१ देखिए वैदिक रीडर मेकडानल—विष्णु का वर्णन

२ ऋ० २/१/२/२१. १५४ सूक्त

३ एतरेय ब्राह्मण १/१.

४ देखिए डा० भण्डारकर कृत "वैष्णविज़्म, शैविज़्म" इत्यादि पृ० ९८-१००

भगवद्गीता इसका प्रमुख आधार ग्रन्थ था। इस एकान्तिक धर्म ने शीघ्र ही साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया और पांचरात्र या भागवत् धर्म के नाम से प्रसिद्ध हो चला। इसके प्रमुख अनुयायी सात्वत जाति के क्षत्री थे। अतः लोग इसे सात्वत धर्म के भी नाम से अभिहित करने लगे। ई० पू० चौथी शताब्दी में मेगस्थनीज ने इसे इसी रूप में पाया था। इसके पश्चात् प्रचलित नारायणी धर्म से इसका सम्मिलन हुआ। आगे चलकर उस पर योग और सांख्य दर्शनों का भी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार इसका क्रमशः विकास होता गया।

वैष्णव धर्म अपने इस रूप में चौथी शताब्दी तक चलता रहा। पाँचवीं शताब्दी के मध्य में इसका प्रभाव काफी कम हो चला। छठीं व सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का पतन होने पर अलवार भक्तों के रूप में इसका पुनः स्फुरण हुआ। मध्य युग के प्रसिद्ध आचार्यों ने इसकी शाखाओं को खूब पल्लवित किया। यह आचार्य क्रमशः शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य थे। शंकराचार्य के प्रभाव से तो वैष्णव धर्म में माया की छाया दिखलाई दी और रामानुजाचार्य के प्रभाव से इसमें भक्ति के तत्त्व का चरम विकास हुआ।

वैष्णव धर्म का अपना विस्तृत साहित्य है। महाभारत का नारायणीयोपाख्यान, गीता, भागवत, नारदभक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्ति सूत्र, विष्णु पुराण, पद्म संहिता और लक्ष्मी तंत्र आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त भी अनेक पांचरात्र आगम प्रसिद्ध हैं। पद्म संहिता में १०८ आगमों का निर्देश है। इन सभी ग्रन्थों के आधार पर वैष्णव धर्म के निम्नलिखित प्राणभूत सामान्य तत्त्व ठहरते हैं :—

(१) विष्णु के विविध नामों का प्रयोग।

(२) उपास्य के रूप में विष्णु के ही निर्गुण या अवतारी सगुण स्वरूपों की प्रतिष्ठा।

(३) भक्ति और उपासना तत्त्व।

(४) योग तत्त्व (इसके अन्तर्गत सदाचारों का भी समावेश हो जाता है)।

(५) तात्विक दृष्टि से माया का विरोध और व्यावहारिक दृष्टि से उसकी मान्यता।

(६) प्रवृत्यात्मकता।

(७) वर्ण व्यवस्था का विरोध।

बहुत से लोगों की धारणा है कि वैष्णव धर्म में निराकार एवं निर्गुण ब्रह्म का कोई स्थान नहीं है। इसका कारण वे यही बतलाते हैं कि भक्ति का आलम्बन निर्गुण ब्रह्म नहीं हो सकता, किन्तु इस प्रकार की धारणा अत्यन्त भ्रांतिपूर्ण है। वैष्णव धर्म के सभी ग्रन्थों में भगवान् के दोनों स्वरूपों का वर्णन मिलता है। भागवत में कई स्थानों पर निर्गुण ब्रह्म का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनमें इसी को विष्णु का परम पद कहा गया है।[१] इस निर्गुण परमेश्वर का आदि अवतार पुरुष है।[२] यही आदि पुरुष नारायण के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह पुरुषस्वरूप विराट् एवं त्रिगुणात्मक है। ये ही आदि पुरुष जगत की सृष्टि के रजोगुणी अंश से ब्रह्मा के रूप में व्यक्त हुए। उन्हीं के सतोगुण अंश से विष्णु का उदय हुआ। पुनः तमोगुण अंश से रुद्र की सम्भूति हुई। इस प्रकार एक ही पुरुष गुणत्रय का आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न नामों को धारण करता हुआ जगत की उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय की व्यवस्था करता है। पुरुषावतार और गुणावतार के पश्चात् मन्वन्तरावतार, कल्पावतार, युगावतार आदि स्वल्पावतारों की व्यवस्था कल्पित की गई है। वैष्णव मत में इन सब प्रकार के अवतारों का अच्छा सम्मान है। इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से सगुण भगवान् का क्रमशः विकास हो गया। भागवत ही नहीं विष्णु पुराण[३] 'नारद पांचरात्रान्तर्गत और आनन्द संहिता' में भी भगवान् के मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों का वर्णन मिलता है।

कहना न होगा कि कबीर ने भगवान् के निराकार स्वरूप को ही अपना उपास्य माना है। उन्होंने रामानन्दी दाशरथि राम को निर्गुण और निराकार राम में परिवर्तित कर लिया। जहाँ तक अवतार का सम्बन्ध है कबीर ने प्रत्यक्ष रूप में उसका सदैव विरोध किया है। अवतार से कबीर का अर्थ कल्पावतारादि से ही है। पुरुषावतार को वे अवतार रूप में नहीं ग्रहण करते हैं। वे उसे

---

१ भाग २/६/४१

२ भाग ११/४/३

३ विष्णु पुराण ६/७/४७

भगवान् का निर्गुण रूप ही मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने अनेक स्थलों पर पुरुष के विराट् स्वरूप का वर्णन बहुत कुछ गीता एवं ऋग्वेदादि की पद्धति पर ही किया है।

कोटि सूर जाके परगास, कोटि महादेव अरु कबिलास।
दुर्गा कोटि जाकै मर्दन करै, ब्रह्मा कोटि बेद उच्चरै॥
(क० ग्रं० पृ० २७८)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की उपास्य-धारणा वैष्णव मत के अनुकूल है।

वैष्णव मत का दूसरा प्रमुख उपादान भक्ति तत्त्व है। आगे चलकर रामानुज और रामानन्द के प्रभाव से उसमें प्रपत्ति[1] को महत्त्व दिया जाने लगा। वैष्णव ग्रन्थों में भक्ति की अत्यधिक महिमा गाई गई है। भागवत में स्पष्ट ही लिखा है कि कामलोभादि क्लेशों से संतप्त मन जितना भगवान् की भक्ति द्वारा शान्त होता है उतना यज्ञ, नियमादि तथा योग द्वारा नहीं।[2] नारद भक्ति सूत्र में स्पष्टतः भगवत भक्ति को ज्ञान योग कर्मादिकों से श्रेष्ठ बतलाया गया है।[3] पांचरात्र संहिता में एक स्थल पर-यहाँ तक कहा गया है कि जिस प्रकार से महारानी के पीछे चेरियाँ चलती हैं, उसी प्रकार से मुक्ति भक्ति का अनुसरण करती है। वैष्णव धर्म की इस भक्ति में प्रेम का बिशेष महत्त्व है। वैष्णव धर्म का प्रेम प्रधान भक्ति तत्त्व कबीर को पूर्ण मान्य है। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर भक्ति की महिमा का वर्णन किया है।

इस ग्रन्थ के अन्य प्रकरण में उसके विविध अंगों का विवेचन किया गया है। उनकी भक्ति पूर्ण वैष्णवी थी। इस क्षेत्र में वे नादर के पूर्ण अनुयायी थे। यह उन्होंने कई स्थलों पर स्वीकार भी किया है "भगति नारदी मगन कबीरा"[4]

१ एन्फ्लुएन्स आफ इसलाम—पृ० १०२

२ भाग १/६/३६

३ नारद भक्तिसूत्र २५

४ क० ग्रं० पृ० ३२७

और भी "भगति नारदी हृदय न आई काछि कूछ तन दीना"।[1] उनके भक्ति स्वरूप का विशद विवेचन "भक्ति भावना" के अन्तर्गत किया जावेगा।

वैष्णव मत पर पातंजल योग का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। महाभारत में पांचरात्र की व्याख्या करते समय उसमें स्पष्टतया योग का समावेश किया गया है। सम्भवतः यही कारण है कि योग प्रतिपादक आगमों की उपासना-विधियों का प्रभाव वैष्णव मत पर पड़ा। उन्हीं के प्रभाव से वैष्णव मत में भी अनेक उपसंप्रदाय प्रवर्तित हुए हैं। वैष्णव धर्म के प्रायः आधारभूत ग्रन्थों में योग का अच्छा वर्णन मिलता है। भागवत के दूसरे स्कन्ध के प्रथम और द्वितीय अध्याय में तथा तीसरे स्कन्ध के २५वें तथा २८वें अध्याय में कपिल जी की अपनी माता देवहूति के प्रति योग का उपदेश उल्लेखनीय है। एकादश स्कन्ध के १३वें अध्याय में सनकादिकों को हंस रूपधारी भगवान् के द्वारा किया हुआ योग वर्णन विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों पर योग का अच्छा वर्णन मिलता है।

किन्तु भागवत के योग वर्णन में तथा पतंजलि के योग वर्णन में थोड़ा सा अन्तर है। योग सूत्र में यम नियमों के क्रमशः पाँच-पाँच भेद ही बतलाये गये हैं, किन्तु भागवत में उनकी संख्या बारह तक पहुँच गई है। भागवत में वर्णित यम क्रमशः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, ह्री, असंचय, अस्तित्व, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा और अभय हैं।[2] इससे स्पष्ट है कि वैष्णव धर्म में सदाचारों को विशेष महत्त्व दिया गया है। उनमें शील, क्षमा, उदारता, संतोष, धैर्य, दीनता, दया और सत्यता आदि का उपदेश स्थान-स्थान पर वर्णित मिलता है। उनकी स्त्री-निन्दा सम्बन्धिनी उक्तियाँ भी सदाचार प्रियता से ही सम्बन्धित हैं और बहुत कुछ भागवत[3] के आदर्श पर हैं।

---

१ क० ग्रं० पृ० १८३

२ श्रीमद्भागवत—११/१६/३३

३ देखिए—श्रीमद्भागवत ११/२६/२०-२१

" " ११/८/८

यह तो यमनियम की बात हुई। योग के अन्य अंग आसन[१] प्राणायाम[२], प्रत्याहार[३], धारणा[४], ध्यान[५], और समाधि[६] आदि के भी भागवत में भूरि-भूरि वर्णन मिलते हैं। कबीर तो सिद्ध योगी थे। उनमें अष्टांग योग के सभी अंगों का वर्णन मिलता है। यह बात अवश्य है कि वह व्यवस्थित नहीं है। योग के इन सभी अंगों का निर्देश उनकी "यौगिक साधना" का वर्णन करते समय किया जावेगा।

वैष्णव मत में एक ओर तो भक्ति तत्त्व के आगे माया तत्त्व मान्य नहीं है। वैष्णव आचार्य रामानुज ने माया ऐसी वस्तु ही नहीं मानी है। दूसरी ओर उनके ग्रन्थों में माया के सुन्दर वर्णन मिलते हैं। उदाहरण के लिए भागवत को ही ले लीजिए। देखिए माया का उसमें कितना स्पष्ट वर्णन है :—

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत् न प्रतीयेत् चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥ (२/६/३३)

अर्थात् जो अर्थ (वस्तु) न होने पर भी प्रतीत होता है, जैसे सीप में रजत और जो आत्मा में प्रतीत नहीं होता उसको आत्मा की माया समझना चाहिए। इसी प्रकार और अनेक स्थलों पर माया का उल्लेख मिलता है। वैष्णव मत में माया की प्रतिष्ठा शंकर के मायावाद के फलस्वरूप हुई है। महात्मा कबीर ने भी भक्ति के साथ माया का वर्णन किया है। इसे हम वैष्णव मत के विरुद्ध नहीं मान सकते हैं। कबीर के माया सम्बन्धी सिद्धान्तों का वर्णन उनके "माया वर्णन" के अंतर्गत विशद रूप में किया गया है। अतः यहाँ पर हम इस प्रसंग को बढ़ाना नहीं चाहते।

प्रवृत्यात्मकता वैष्णव मत की दूसरी प्रमुख विशेषता है। अपने प्रारम्भिक

---

१ ३/२८/८ और, ११/२३/१८, १९
२ भाग २/१/१७
३ ,, २/१/१८
४ ,,
५ ,, ३/२८/२१
६ ,, ३/२८/३४-३६

स्वरूप में यह मत एकान्तिक और लोकवाह्य ही था। किन्तु जब से इसमें लोक रक्षक और और लोक रंजक भगवान् राम की प्रतिष्ठा हुई, तब से यह मत भी प्रवृत्यात्मक हो गया। कबीर पर भी वैष्णव मत की इस प्रवृत्यात्मकता का प्रभाव पड़ा है। इसी प्रभाव के फलस्वरूप वे लोक संग्रह करना ईश्वर प्रेरित कर्तव्य समझते थे।

मोहि अग्या दई दयाल दया कर काहू को समझाय।

(क० ग्रं० पृ० १६६)

यहाँ पर एक और प्रश्न उठ खड़ा होता है, वह यह है कि उनकी इस प्रवृत्यात्मकता का उनकी वैराग्य भावना या निवृत्यात्मकता से मेल कैसे बैठाया जा सकता है। मेरी समझ में कबीर स्वयं साधु मत के अनुयायी थे। साधुमत में वैराग्य भाव का ऊँचा स्थान है, इसीलिए उनमें इसकी प्रतिष्ठा मिलती है। साधुओं को उपदेश देते हुए उन्होंने निवृत्यात्मकता की ही शरण ली है। किन्तु लोक में साधुओं की अपेक्षा साधारण लौकिक लोगों की संख्या अधिक है। उनके लिए उन्होंने प्रवृत्ति मार्ग का रूप सामने रखते हुए लोक संग्रह करने की चेष्टा की है। दूसरी बात यह है कि कबीर की लोक संग्रह की भावना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं थी। वह तो ईश्वरीय प्रेरणा का परिणाम है। तीसरे वैराग्य से कबीर का तात्पर्य ज्ञान और मन शुद्धि की प्राप्ति है।

कबीर जाग्या ही चाहिए।
क्या गृह क्या वैराग। (क० ग्रं० पृ० २०६)

चौथी बात यह भी है कि वे सहजमार्गी थे। सहजमार्ग में प्रवृत्यात्मकता और निवृत्यात्मकता का सुन्दर सामंजस्य मिलता है।

उत्तर मध्यकाल में वैष्णव मत में एक और विशेषता आ गई थी, वह थी भक्ति में वर्णव्यवस्था की उपेक्षा। रामानुज[1] ने वर्णव्यवस्था की जिन श्रृंखलाओं को ढीला किया था, रामानन्द ने उन्हें बहुत कुछ उन्मुक्त[2] कर दिया। वैष्णव

---

१ इन्फ्लुएंस आफ इसलाम—पृ० १०१

२ देखिए "एन आउटलाइन आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इंडिया," पृ० ३१५

मत की यह विशेषता कबीर में भी पाई जाती थी। उन्होंने सर्वत्र वर्णव्यवस्था के विष से सन्तप्त जनता में आशा रूपी जीवन का संचार किया था।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर में वैष्णव मत के सारभूत तत्त्व सभी विद्यमान हैं। अतः यह कहना कि उनमें वैष्णवों के केवल प्रपत्ति और अहिंसा तत्त्व ही मिलते हैं, अधिक उपयुक्त नहीं है। इसमें भी कहीं अयुक्त यह भी कहना है कि कबीर के राम रामानन्द के राम से भिन्न हैं। अतः कबीर को वैष्णव[२] सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं ले सकते। हम ऊपर दिखला चुके हैं कि कबीर के उपास्य वैष्णव मत के विरुद्ध नहीं हैं। निर्गुण राम का उपासक होने के कारण उन्हें वैष्णव न मानना उस महात्मा के साथ अन्याय करना है। वास्तव में वे स्वभाव और विचार दोनों से वैष्णव थे।

<u>रामानन्द और कबीर</u> :—कबीर और रामानन्द का सम्बन्ध अत्यंत विवाद-ग्रस्त है। डा० भंडारकर[३] तथा डा० मोहन सिंह[४] जैसे विद्वान् कबीर और रामानन्द के गुरु शिष्य सम्बन्ध को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। डा० मोहन सिंह का तो यहाँ तक कहना है कि कबीर के कोई सांसारिक गुरु नहीं थे, किन्तु कबीर की रचनाओं से स्पष्ट प्रमाणित है कि उनके गुरु कोई महापुरुष ही थे। रामानन्द के अतिरिक्त और कौन से महापुरुष ऐसे थे जो उनके गुरु हो सकते थे? इसके विपरीत प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० श्यामसुन्दर दास जी तथा शंकरदयाल श्रीवास्तव[५] कबीर को रामानन्द का शिष्य मानने के पक्ष में हैं।[६]

---

१ क० ग्रं० २८२—पद ६१

२ शुक्ल का इतिहास—पृ० ७६

३ वैष्णविज़्म तथा शैविज़्म आदि—भंडारकर द्वारा—प्रथम अध्याय

४ कबीर एण्ड हिज बाइग्राफी—पृ० ११, १४

५ स्वामी रामानन्द और प्रसंग परिजात हिन्दुस्तानी—अक्टूबर १९३२
पृ० ४०-८९

६ कबीर ग्रन्थावली, भूमिका—पृ० २७

मेरी अपनी धारणा यही है कि कबीर रामानन्द के ही शिष्य थे। भक्तमाल[1] दबिस्तान[2] और तजकीरुल फुकरा नामक ग्रन्थों में यह बात स्वीकार की गई है। तीनों ही ग्रंथ ऐसे हैं, जिन पर थोड़ा बहुत विश्वास करना पड़ता है। दूसरे कबीर की बहुत सी उक्तियों से उनका रामानन्द का शिष्य होना ध्वनित होता है। निम्नलिखित साखी में उन्होंने स्पष्ट ध्वनित किया है कि राम नाम के दाता रामानन्द जी को गुरु मन्त्र की गुरु दक्षिणा में वे कौन सी वस्तु दें जिससे उन्हें सन्तोष हो सके।

रामनाम कै पटंतरै, देबे कौं कुछ नाहिं।
क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माहिं।। (क० ग्रं० पृ० १)

यदि हम इन सब उक्तियों को अप्रामाणिक मानें तो दूसरी बात है, किन्तु कबीर के सम्भ्रांत आलोचकों ने इन्हें प्रामाणिक मानने में हिचकिचाहट नहीं दिखलाई है। तीसरे कबीर की विचारधारा रामानन्द की विचारधारा से बहुत मिलती-जुलती है। इस साम्य को स्पष्ट करने के लिए रामानन्द जी की विचारधारा पर विचार करना परमावश्यक है। रामानन्द के दार्शनिक विचारों का विवेचन करने से प्रथम उनके जीवन वृत्त कालादि पर संक्षेप में विचार कर लेना परमावश्यक है।

अत्यन्त खेद की बात है कि जो रामानन्द मध्यकालीन विचारधारा के अधिनायक हैं, और जिनका नाम वैष्णवों के लिए नया प्रस्थान माना जाता है,[3] उनके काल, जीवन एवं सिद्धान्तों के विषय में कोई निश्चित विवरण नहीं मिलता है।

रामानन्द के जन्मकाल के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। भक्तमाल सटीक में रामानन्द की जन्म तिथि सम्वत् १३५६ दी गई है। इस तिथि को डा० भंडारकर ने भी स्वीकार किया है।[4] ग्रियर्सन इनका जन्म काल १२९९ ई० मानते

१ भक्तमाल छप्पय ३१

२ पृ० ११-१४

३ इंडियन थीइज़्म बाई मैकनिकल—पृ० ११२

४ वैष्णविज़्म शैविज़्म—पृ० ६६

हैं ।[१] फर्कुहर ने इनका समय १४००-१४७० ई० माना है[२] जो कुछ हो इतना तो अवश्य निश्चित है कि रामानन्द चौदहवीं शताब्दी के उत्तरकाल में हुए थे। इसी प्रकार रामानन्द का प्रामाणिक जीवन वृत्त भी नहीं मिलता है। यों तो भक्तमाल के अतिरिक्त भी इनका जीवन चरित्र श्री बाल्मीकि संहिता, श्री रामानन्द दिग्विजय, तत्त्वं प्रकाशिका (रघुवराचार्य कृत) तथा आनन्द भाष्य की भूमिका आदि ग्रंथों में भी मिलता है, किन्तु यह सब वर्णन इतने अलौकिक एवं अतिरञ्जनापूर्ण हैं कि सहसा उन पर विश्वास नहीं होता।

रामानन्द रचित ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी मतभेद है। ग्रन्थ साहब में रामानन्द के केवल दो भजन दिये हैं। उनसे उनके सिद्धान्तों आदि का कुछ निश्चयात्मक पता नहीं लगता है। साधारणतया रामानन्द रचित कई ग्रन्थ बतलाए जाते हैं। इनमें श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर और श्री रामार्चन पद्धति प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त विशिष्टाद्वैत परिष्कार तथा रामरक्षा स्तोत्र और योग चिंतामणि आदि कई और ग्रन्थ रामानन्द के गले मढ़े जाते हैं। कहते हैं कि प्रस्थान त्रयी पर अन्य आचार्यों की भाँति उन्होंने भी एक भाष्य लिखा था, जो आजकल आनन्द भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु इन ग्रंथों में कौन प्रामाणिक है और कौन अप्रामाणिक, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। अभी हाल में ही एक 'प्रसंग पारिजात' नामक ग्रंथ[३] का पता चला है। इसमें किसी चेतन दास साधु ने रामानन्द की चरितावली और उपदेशों को लिपिबद्ध किया है। अभी तक यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है, अतः कुछ निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। अतः इनके विचारों और सिद्धांतों के विवेचन के लिये हम इन ग्रन्थों को आधार रूप में नहीं ले सकते हैं। डा० फर्कुहर[४] ने रामानन्द के सिद्धांतों पर

---

१ जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी—१९२०—पृ० ३२३

२ एन आउटलाइन आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इंडिया

३ स्वामी रामानन्द और प्रसंग पारिजात—शंकरदयाल श्रीवास्तव हिंदुस्तानी अक्टूबर—पृ० ४०८-९

४ डा० जे० एन० फर्कुहर—"दि हिस्टारिकल पोजीशन आफ रामानन्द" [दि जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड १९२२—पृ० ३७३-८०]

प्रकाश डालने की चेष्टा की है, किन्तु उनका कोई पुष्ट आधार नहीं है। यह बात कि वे अध्यात्म रामायण से बहुत अधिक प्रभावित थे, केवल अनुमान-मूलक है।

कोई भी शिष्य अपने गुरु से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। रामानंद इस नियम के अपवाद नहीं हैं। उनके ऊपर भी उनके गुरु की परम्परा का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

रामानन्द रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में हुए थे। रामानुज विशिष्टा-द्वैत के प्रधान प्रतिपादक हैं। शंकराचार्य के समान ही इन्होंने भी प्रस्थान त्रयी पर भाष्य लिखे हैं। यह शंकर के माया, मिथ्यात्ववाद और अद्वैतवाद दोनों को झूठे मानते हैं। इनके मतानुसार जीव, जगत और ईश्वर यह तीन तत्त्व यद्यपि भिन्न हैं, तथापि जीव (चित्) और जगत (अचित्) यह दोनों एक ही ईश्वर के शरीर हैं। इसीलिए चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर एक ही है और ईश्वर शरीर के इस सूक्ष्म चित् और अचित् से ही फिर स्थूल चित् और स्थूल अचित् अर्थात् उनके जीवों और संसारों की सृष्टि होती है। उन्होंने साधना में भक्ति को विशेष महत्त्व दिया है।

रामानुज की ही शिष्य परम्परा में राघवानन्द हुए जो रामानन्द के गुरु थे। राघवाचार्य से रामानन्द का सीधा सम्बन्ध है। राघवानन्द ने रामानुज की भक्ति का सम्मिश्रण योग से किया। यह बात उनकी 'सिद्धांत पंत्रमात्रा' नाम की पुस्तक से स्पष्ट हो जाती है। डा० बड़थ्वाल ने अपने एक लेख में इसका बड़ा सुन्दर विवेचन किया है।[1] कहते हैं कि राघवानन्द ने अपनी योग विद्या के बल से अपने शिष्य रामानन्द को मृत्यु के मुख से बचाया था। कहा जाता है कि स्वामी रामानन्द पहले किसी अद्वैती[2] गुरु के चेले भी थे। आध्यात्म रामायण की साक्षी से भी यह बात पूर्णतया पुष्ट हो जाती है। सम्भवतः यही कारण है कि उनमें एक ओर तो रामानुज की शिष्य परम्परा में होने के कारण भक्ति तत्त्व का समावेश हुआ और दूसरी ओर अपने अद्वैती गुरु के प्रभाव के फलस्वरूप

१ योग प्रवाह—पृष्ठ १ से २३ तक
२ योग प्रवाह—पृष्ठ १

उनमें अद्वैतभाव की छाप लग गई है। योग और प्रेम का मिश्रित स्वरूप तो इन्हें अपने बाद में होने वाले गुरु राघवानन्द से प्राप्त ही हुआ होगा। इन्हीं सब बातों का प्रभाव उनके शिष्यों पर भी पड़ा। सम्भवतः यही कारण है कि उनके कबीर ऐसे शिष्यों में विशिष्टाद्वैती भक्ति के साथ अद्वैतवाद की भी प्रतिष्ठा मिलती है और प्रेम के साथ योग का सम्मिश्रण दिखाई देता है। कबीर को रामानन्द से एक वस्तु और प्राप्त हुई थी, वह है राम नाम। मेरा अनुमान है कि रामानन्द ने साधारण जनता को भक्ति के लिये सगुण राम का उपदेश दिया था और साधना में यौगिक निर्गुण राम को आराध्य ठहराया था। सम्भवतः उनके भक्ति क्षेत्र का सगुण राम और योग क्षेत्र का निर्गुण राम ज्ञान में आकर द्वैताद्वैत विलक्षण हो गया था। कबीर ने इस बात में रामानन्द का पूरा अनुसरण किया था। उन्होंने अपनी भक्ति के लिए 'पुरुषावतारादि' का आश्रय लिया है। योग क्षेत्र में वे शून्यवासी निर्गुण राम के साधक थे ही; किन्तु ज्ञान क्षेत्र में उसका ब्रह्म उपनिषदों और योगियों के ब्रह्म के समान द्वैताद्वैत विलक्षण और परात्पर हो गया है।

रामानन्द ने उपासना क्षेत्र में एक बड़ा आवश्यक कार्य किया था। उन्होंने भक्ति मार्ग में वर्णव्यवस्था हो हेय ठहराकर[1] उसका द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिया था। स्वयं उनके ही शिष्यों में जाट, जुलाहे और नाई आदि सभी जाति के लोग थे। उन्होंने स्त्रियों को भी अपनी शिष्या स्वीकार किया था। ऐसी किम्वदन्ती है कि रामानन्द की शिष्याओं में एक वेश्या भी थी, कबीर इस दिशा में अपने गुरु से भी आगे बढ़ गए। उन्होंने वर्णव्यवस्था का मूलोच्छेद कर डालने का ही प्रयत्न किया है।

रामानन्द जी ने हिन्दी की बड़ी सेवा की थी। उनसे पहले सिद्धान्तों और मतों के प्रतिपादन के लिए संस्कृत ही उपयुक्त समझी जाती थी। आपने प्रथम बार संस्कृत के स्थान पर हिन्दी को महत्त्व दिया। यही कारण है कि कबीर ने भी संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी को ही महत्त्व प्रदान किया। उनकी शिष्य परम्परा

---

१ एन आउटलाइन आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इंडिया बाई फर्कुहर—
पृष्ठ ३२९

में होने वाले गोस्वामी जी ने संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् होते हुए भी हिन्दी भाषा में ही रघुनाथ गाथा का वर्णन किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि महात्मा कबीर की विचारधारा अपने गुरु रामानन्द से अत्यधिक मेल खाती है।

<u>कबीर पर बौद्ध धर्म की छाया :</u>—बौद्ध धर्म विश्व का एक प्रशस्त धर्म है। किसी समय सारे संसार पर उसका प्रभुत्व था। विश्व के समस्त महान् धर्म उसके आगे नतमस्तक थे। उसके दिव्यलोक के सामने विश्व का प्राचीनतम और श्रेष्ठ वैदिक धर्म भी मलिन पड़ चला था। देश भर में उसी का प्रचार और प्रसार था। इस बौद्ध धर्म का भारतीय जीवन और विचारधारा पर व्यापक एवं अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा है। स्वयं इसके प्रतिद्वन्द्वी ब्राह्मण धर्म के अनुयायी भी उनके प्रभाव से अछूते नहीं बचे हैं। यदि कबीर ऐसे सारग्राही महात्मा पर उसका कुछ थोड़ा प्रभाव पड़ गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कबीर का अध्ययन करने पर हमें मालूम भी पड़ता है कि बौद्ध धर्म की बहुत सी बातें कबीर की बानियों में यत्र-तत्र ध्वनित मिलती हैं। यहाँ पर संक्षेप में उनका निर्देश करने का प्रयत्न किया जाता है।

यह निर्विवाद है कि लगभग ४५० ई० पूर्व वैदिक ब्राह्मण धर्म का पूर्ण विकास हो चुका था। उसके कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों काण्डों पर अनेकानेक ग्रंथों की रचना हो चुकी थी। ब्राह्मण धर्म के विकास के साथ-साथ ब्राह्मणों का भी प्रभुत्व पूर्ण-रूप से स्थापित हो गया था। एक ओर तो यज्ञादि के विधान के फलस्वरूप समाज में हिंसा आदि कुछ दानवी वृत्तियाँ अट्टहास करने लगीं। दूसरी ओर ब्राह्मणों में ब्रह्मवाद के मिथ्या प्रभाव के फलस्वरूप अहंमन्यता बढ़ चली। धर्म को इस प्रकार विकृत एवं जाति विशेष की वस्तु बनते देख कुछ विचारशील विद्वानों में उसके प्रति प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। इसी प्रतिक्रिया की भावना के फलस्वरूप भारत में बौद्ध धर्म का जन्म हुआ।

बौद्ध धर्म का उदयकाल निश्चित करने के लिये हमें भगवान् बुद्ध के समय पर विचार करना पड़ेगा, क्योंकि उसके प्रथम पुरस्कर्ता और प्रधान प्रवर्तक वे ही थे। अनुमान यह है कि बौद्ध धर्म भगवान् बुद्ध के निर्माणकाल तक अवश्य प्रचलित हो गया होगा। भगवान् बुद्ध के निर्माण काल के सम्बन्ध में विद्वानों में

मतभेद है। मैक्समूलर ने उनका समय ४७३ ई० पूर्व बतलाया है।[1] परन्तु डा० गायगर[2] ने अनेक तर्क वितर्कों के पश्चात् उनका निर्वाणकाल लगभग ४८३ ई० पूर्व निश्चित किया है। जो भी हो यह स्पष्ट रूप से अनुमान किया जा सकता है कि बौद्ध धर्म का प्रचार ईसा से ४५० वर्ष (शताब्दी) पूर्व आरम्भ हो गया था। उत्थान पतन की अनेक कलाबाजियाँ खाता हुआ यह बौद्ध धर्म महाराज अशोक के समय में अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। इस समय भारत के इस धर्म विशेष को विश्व धर्म बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय तक यह धर्म अपने १८ उपविभागों में बँट चुका था।[3] इससे स्पष्ट है कि २५० ई० पूर्व बौद्ध धर्म अपने विकास की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुका था।

बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास जटिल होते हुए भी मनोरंजक है। यहाँ पर मेरा लक्ष्य उसके इतिहास का वर्णन करना नहीं है। मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि बौद्ध धर्म में समय-समय पर घोर परिवर्तन होते रहे हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप ही उसमें अनेक शाखायें प्रशाखायें निकली हैं। परिणाम यह हुआ है कि उसके मौलिक सिद्धान्तों को अक्षुण्ण बनाये रखना कठिन हो गया। बौद्ध धर्म जिन आदेशों को लेकर चला था वे शिथिल पड़ गये। उनके शिथिल पड़ते ही भारत में उसके पैर उखड़ गये। यहाँ तक कि वह लुप्तप्राय ही हो गया।

बौद्ध धर्म का अपना एक विस्तृत साहित्य है, जिसमें उस धर्म की सभी शाखाओं प्रशाखाओं के सभी अंगों का विवेचन किया गया है। यहाँ उनका विवरण देना कठिन ही नहीं अनावश्यक भी है। यहाँ पर मैं केवल उन्हीं मौलिक सिद्धान्तों और तत्त्वों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा जिनसे सन्त कबीर कुछ न कुछ प्रभावित हुए हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अनात्मवादी बौद्ध धर्म आत्मवादी ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुआ था। अतः बौद्ध धर्म में वैदिक

---

१ सेक्रेड बुकस् आफ दि ईस्ट सिरीज की भूमिका देखिए

२ दी महावशम् डा० गायगर इण्ट्रोडक्शन

३ पुरातत्त्व निबन्धावली— पृ० १२१

धर्म के यज्ञ, यागादि निषिद्ध ठहराये गये, परन्तु आचरण की दृष्टि से बौद्ध लोग ब्राम्हण धर्म से बहुत दूर न जा सके। उपनिषदों का संन्यास मार्ग उन्हें भी मान्य हुआ। आगे चलकर जब देश की विचारधारा पर लोक-संग्रह-प्रधान श्रीमद्भगवद्गीता का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होने लगा तो बौद्धों ने भी अपने संन्यास भाव को कुछ शिथिल कर दिया। उसके स्थान पर उनमें धीरे-धीरे लोक संग्रह के भाव का समावेश हो चला। परन्तु वे उस रूढ़ीवादी अपनी प्राचीन संन्यास प्रधान पद्धति का परित्याग न कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म की दो शाखायें हो गईं—एक तो नवीन लोक-संग्रह-प्रधान, दूसरी प्राचीन संन्यास प्रधान। नवीन मत वाले अपने मत को महायान के नाम से और प्राचीनमत को हीनयान के नाम से पुकारने लगे। कालान्तर में इन दोनों के भेदोपभेद होते गये। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म १८ उपसंप्रदायों में विभक्त हो गया।

महायान धर्म के प्रधान पुरस्कर्ता और प्रतिपादक नागार्जुन माने जाते हैं। यह नागार्जुन दक्षिण के निवासी थे और अब भी उनका स्थान मद्रास प्रान्त के गण्टूर जिलान्तर्गत नागार्जुनी कोण्डा[1] बतलाया जाता है। उस समय दक्षिण भारत में आंध्र राजाओं का आधिपत्य था। इन आंध्र राजाओं का समय ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी तक निश्चित किया गया है। इन राजाओं ने अपनी नवीन राजधानी धान्यकटक में स्थापित की थी। नागार्जुन बहुत काल तक इसी धान्यकटक में रहते रहे होंगे। यह सभी आंध्र नरेश अधिकतर बौद्ध मतावलम्बी थे। संभवतः उन्हीं की प्रेरणा पाकर नागार्जुन ने अपने नवीन मत का प्रचार किया होगा।

जिस समय दक्षिण में इस प्रकार महायान का प्रचार और प्रसार हो रहा था उसी समय उत्तरी भारत में हीनयान अपने हीनावस्था के दिन काट रहा था, क्योंकि १५० ई० से लेकर गुप्त काल तक सभी राजा लोग शैव या वैष्णव मतावलम्बी थे। उनके शासन काल में बौद्ध धर्म के संस्कृत स्वरूप का समुचित विकास न हो सका। महायान धर्म सातवीं शताब्दी के लगभग दक्षिण भारत

---

१ गंगा पुरातत्वाङ्क—पृ० २१८

तक ही सीमित रहा। सातवीं शताब्दी में इसका प्रवेश उत्तरी भारत में होने लगा था।[1]

नागार्जुन ने सम्भवतः श्री पर्वत पर अपने पंथ का केन्द्र स्थापित किया था। इस श्री पर्वत के समीपवर्ती प्रान्त में महायान के पाँच उपसम्प्रदायों के भग्नावशेष उन सम्प्रदाओं के देवी देवतायों की जीर्ण शीर्ण मूर्तियों के रूप में आज भी पाए जाते हैं। इससे यह पता चलता है कि महायान मत के अनेक भेदोपभेदों का भी प्रचार देश में हो चला था। अनुमान यह है कि विभिन्न भेदोपभेदों ने अपने प्रचार और प्रसार के हेतु लोक में प्रचलित बहुत सी विकृत धर्म पद्धतियों से अपना सामञ्जस्य स्थापित किया होगा। छठी या सातवीं शताब्दी में उदय होने वाली वज्रयान, सहजयान और निरञ्जन पंथ आदि ऐसे ही दूषित सम्प्रदाय थे। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि महायान मत अपने मूल रूप में अत्यन्त उच्च एवं सात्विक था। इसको हम बौद्ध धर्म का परिष्कृत एवं शुद्ध रूप कह सकते हैं।

यों तो हीनयान और महायान दोनों ही बौद्ध धर्म के दो स्वरूप हैं उसी के दो सम्प्रदाय हैं। किन्तु फिर भी उनमें कुछ स्थलों पर वैषम्य और साम्य है। यहाँ पर संक्षेप में उनका संकेत कर देना अनुपयुक्त न होगा।

१—हीनयान पूर्ण रूप से निरीश्वरवादी था किन्तु महायान में प्रच्छन्न रूप से ईश्वर की भावना का समावेश हुआ। डा० विनय तोष भट्टाचार्य के मतानुसार शून्य परमात्मा अथवा समष्टि चेतन का पर्याय है।[2]

२—हीनयान निवृति प्रधान धर्म पद्धति है, किन्तु महायान मत में लोक संग्रह एवं प्रवृत्यात्मकता को भी स्थान दिया गया है।

३—हीनयान पूर्ण रूप से ज्ञान और वैराग्य प्रधान रहा, किन्तु महायन में भक्ति भावना को ही महत्त्व दिया गया।

४—हीनयान में योग का स्थान नहीं के बराबर था, किन्तु महायान और दूसरी शाखाओं प्रशाखाओं में इसका प्रचार अधिक हुआ।

---

१ वाटरयुग्रान चियांग—वाल पहला—पृ० २९-३०

२ बौद्ध धर्म में योग—योगांक (कल्याण) पृ० २८०

५—हीनयानी पाली ग्रंथों में विश्वास करते थे, महायानी संस्कृत ग्रंथों में। हीनयान और महायान में इन विषमताओं के होते हुए भी कुछ साम्य हैं। उनको संक्षेप में इस प्रकार निर्देश कर सकते हैं :—

१—दोनों ही पूर्ण रूप से बुद्धिवादी हैं। भिक्षुकों को पुद्गल शरण नहीं युक्ति शरण होनी चाहिए। यह बात दोनों को समान रूप से मान्य है।

२—दोनों को चारों "आर्य सत्य" पूर्ण रूप से मान्य हैं।

३—शून्य और नश्वरता की भावना दोनों में ही कुछ हेर-फेर के साथ स्वीकार की गई है।

४—तत्त्व का अनत्तरत्व आत्मा तथा परमात्मा सम्बन्धी प्रश्नों की उपेक्षा दोनों में समान रूप से पाई जाती है।

५—मध्यम मार्ग का अनुसरण दोनों को ही मान्य है।

६—काया क्लेशमय उग्रतप से दोनों ही सहमत नहीं हैं।

७—वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था दोनों को मान्य नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश से कबीर का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे बौद्ध धर्म और विशेषकर उसके महायानी स्वरूप से बहुत प्रभावित थे। सत्यान्वेषी कबीर ने बौद्ध धर्म के प्रधान पण्डितों से उनके मौलिक सिद्धांतों का अध्ययन अवश्य किया होगा।

बौद्धों की बुद्ध चारिता कबीर की विचारधारा में प्राण रूप से विद्यमान है। उनका प्रत्येक शब्द प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित है। उनकी प्रत्येक धारणा तर्क संगत है। लोक और वेद के अन्धानुसरण से उन्हें विशेष घृणा थी।

पीछे लागा जाइ था लोक वेद के साथ।
आगे थे सदगुत मिल्या दीपक दीया हाथ ॥ (क० ग्रं० पृ० २)

कहीं-कहीं पर तो उनकी बुद्धिवादिता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। ऐसे ही स्थलों पर कबीर क्रांतिदर्शी महात्मा के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। यहाँ तक कि मुल्ला और पंडित दोनों के विरोधी बन गये हैं।

पंडित मुल्ला जो लिख दीया,
छाड़ि चले हम कछू न लीया। (क० ग्रं० परिशिष्ट)

उनकी यह बुद्धिवादिता दृढ़ विश्वास पर टिकी हुई है। उनका यह दृढ़ विश्वास उनकी उक्तियों में आत्मविश्वास के रूप में व्यक्त हुआ है। उनकी ऐसी ही आत्मविश्वासभरी उक्तियों को पकड़ कर कुछ आलोचकों ने उन पर आत्माभिमान का दोषारोपण किया है। वास्तव में उस दिव्य महात्मा में व्यक्ति विरोध और आत्माभिमान लेश मात्र को भी न था। उस विश्व बन्धु ने समाज के अन्धानुगामी ठेकेदारों का विरोध विश्व कल्याण भावना से प्रेरित होकर किया है, किसी भेद भाव से नहीं।

बौद्ध धर्म के चार मूल तत्त्व माने गये हैं। उनकी सभी शाखाओं और प्रशाखाओं में उनका समावेश किसी न किसी रूप में अवश्य किया गया है। सभी बौद्धों को यह मान्य है। बुद्ध भगवान् ने इन्हें आर्यसत्य[1] की संज्ञा दी है। वे क्रमशः इस प्रकार हैं :—

(१) दुःख :—अर्थात् सांसारिक दुख के अस्तित्व की भावना। बौद्ध यद्यपि आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते हैं, किन्तु वे सभी यह अवश्य मानते हैं कि कर्म विपाक के कारण नाम रूपात्मक देह को इस नाशवान् जगत के प्रपंच में फँसकर बार-बार जन्म लेना पड़ता है। उनके मतानुसार पुनर्जन्म के इस चक्र के कारण ही सारा संसार दुखमय है।

(२) समुदय :—इसका अर्थ है दुख का कारण। भिक्षु का यह परम कर्तव्य है कि वह सांसारिक दुखों के कारणों की खोज कर उनका निर्देश सबके समक्ष करे। बौद्ध ग्रंथों में प्रायः तृष्णा और कामना ही दुख के कारण माने गये हैं।

(३) निरोध :—दुख के निवारण करने वाले प्रयत्नों और साधनों को निरोध की संज्ञा दी गई है।

(४) मार्ग :—दुख के निवारण करने वाले प्रयत्नों और साधनों की साधना पद्धतियों को कहते हैं। वैराग्य तथा संन्यास का प्रायः मार्ग के रूप में ही बौद्ध ग्रन्थों में वर्णन किया जाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर पर इन सत्यों का यथेष्ट प्रभाव

---

१ भारतीय दर्शन—बलदेव प्रसाद उपाध्याय—पृ० १७६

परिलक्षित होता है। वे संसार को दुखमय तो मानते ही हैं, साथ ही साथ उन्हें हिन्दू धर्म का जन्मान्तर वाद भी मान्य हैं।[1] उनका विकास वाद उनके जन्मान्तर वाद की ही पुष्टि करता है। इसी प्रकार कर्म विपाक[2] को भी कबीर मानते हैं। परन्तु यह अवश्य था कि भगवान के महान् भक्त होने के कारण उनकी भक्ति में भी उन्हें अटल विश्वास था।[3]

द्वितीय आर्य सत्य समुदय से सम्बन्धित उक्तियों की भी कबीर में कमी नहीं है। उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर सांसारिक दुखों के कारण भूत मूल तत्त्वों—कामना और तृष्णा[4]—का निर्देश मिलता है। इसी प्रकार तृतीय आर्य सत्य "निरोध" की भी उनमें सम्यक् अभिव्यक्ति मिलती है।[5]

बौद्ध धर्म के अनुरूप कबीर ने भी दुख निरोधात्मक मार्ग के रूप में विस्तृत साधना पद्धतियों का वर्णन किया है। कबीर पर देश की समस्त तत्कालीन विचार-धाराओं और साधना पद्धतियों का प्रभाव पड़ा था, जिनके फलस्वरूप उनके द्वारा मार्ग रूप में निर्देशित साधना क्रम एक नहीं है। उसमें साधनाओं की कई धाराओं का सम्मिश्रण हुआ है। उन्होंने दुःख निवारण के हेतु कई मार्ग निर्देशित किए हैं। कहीं पर भक्ति विवेचन है तो कहीं यौगिक प्रक्रियाओं का निर्वचन। इसी प्रकार कहीं पर वे संन्यास का संकेत करते हैं कहीं पर ज्ञान का आदेश। कबीर के संन्यास मार्ग के सम्बन्ध में एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए। यह उसे हीनयानी बौद्धों की भाँति निवृत्यात्मक एवं एकांतिक नहीं मानते हैं,

---

१ धावत जोनि जनमि भ्रमि थाक्यो, अब दुख करि हम हार्यो रे॥ क० ग्रं० पृ० २६२

२ कर्म फाँस जग जाल पसारा ज्यों धीवर मछली गहि मारा॥ क० ग्रं० पृ० २२८

३ हरि हृदय एक ग्यांन उपाया ताथैं छूटि गई सब माया॥ क० ग्रं०—पृ० १८१

४ क० ग्रं० पृ० ३३/१४, १५

५ जैसें माया मन रमै, यूं जे राम रमाइ।
तारा मंडल छांडि करि, जहां के सोतहां जाइ॥ क० ग्रं०—पृ० ६

उनके विराग भाव पर महायानियों के लोक-संग्रहात्मक विचारों का भी प्रभाव पड़ा है। सम्भवतः गीता के प्रभाव से लोकसंग्रह का यह भाव दृढ़ हो गया था और वे समाज को सन्मार्ग पर लाना ईश्वर प्रेरित कर्तव्य मानने लगे थे।[1] यहाँ पर यह भी बता देना अनुचित न होगा कि कबीर पर महायानियों की भक्ति भावना का भी प्रभाव पड़ा है।[2] इसलिए उन्होंने साधना में भक्ति को अत्यधिक महत्त्व दिया है।

एक बात और ध्यान देने की है। कबीर का अन्तिम लक्ष्य वैराग्य की प्राप्ति करना मात्र न था। वे वासना क्षय और आत्म संस्कार में विशेष विश्वास रखते थे। यदि कोई व्यक्ति वैराग्य के बिना ही अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है तो उसके लिये वैराग्य की कोई आवश्यकता नहीं। वे स्पष्ट कहते हैं कि :—

"बनह् बसे का कीजिये जे मन नहीं तजै बिकार।"[3]

और भी

"कहै कबीर जाग्या ही चहिये क्या घर क्या बैराग रे।"[4]

कबीर को बौद्धों का क्षणिकवाद[5] तो मान्य है ही। साथ ही वे उनके शून्यवाद[6] से भी प्रभावित हुए हैं। यह अवश्य है कि शून्य की धारणा उन्होंने

---

१ मोहि आग्या दई दयाल दया करे, काहू को समझाइ।
कहै कबीर मैं कहि कहि हारयौ अब मोहि दोष न लाइ॥
क० ग्रं० पृ० १९६

२ जब लग भाव भगति नहिं करिहौं, भवसागर क्यों तरिहौं।
क० ग्रं० पृ०—२४५

३ क० ग्रं० पृ०—१६०

४ क० ग्रं० पृ०—२०६

५ क्या माँगौं कुछ थिर न रहाई—क० ग्रं० पृ० ३२२

६ देखिए के क्षिति मोहन सेन का—"दि कन्सरेशन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ शून्यवाद इन मेडिवल इंडिया" विश्वभारती क्वाटरली न्यू सीरीज का प्रथम भाग

अपने ढंग पर की है। उसका प्रयोग उनमें विविध रूपों और अर्थों में हुआ है। महायानियों में शून्य, परमात्मा या समष्टि चेतन का पर्याय[1] माना जाता है। इसमें शून्य, विज्ञान और महासुख ये तीनों गुण माने गए हैं। कबीर ने शून्य का प्रयोग बौद्धों के इस अर्थ में तो किया ही है,[2] साथ ही योगियों के शून्य के आधार पर वे उसका प्रयोग ब्रह्मरन्ध्र के अर्थ में भी करते हैं।[3] इन दो अर्थों के अतिरिक्त भी उनका शून्य शब्द और भी कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

अनक्षर तत्त्व के सम्बन्ध में वैदिक ऋषियों ने जिस मौन मार्ग का अनुसरण किया है, तथागत ने भी उसी भाँति मौन का महत्त्व प्रतिपादित किया है। नागार्जुन ने महायान विंशक में परम तत्त्व को वाच्यावाच्य अर्थात् वचन के द्वारा अकथनीय कहा है। बोधिचर्यावतार[4] में भी बुद्ध प्रतिपादित धर्म को अनक्षर कहा गया है। इसी प्रकार आचार्य चन्द्रकीर्ति ने भी कहा है "आर्यों के लिए परमार्थ मौन रूप है"।[5] बौद्धों और उपनिषदों की भाँति कबीर ने भी तत्त्व को बहुत कुछ अनिर्वचनीय कहा है—

भारी कहौं त बहु डरौं हलका कहूँ तौ झूठ।
मैं का जांणों राम कूं नैनूं कबहुँ न दीठ॥

(क० ग्रं० पृ० १७)

कबीर पर बौद्धों के मध्य मार्ग का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। बौद्ध लोग दो अन्तों को छोड़कर मध्यमार्ग का अनुसरण करना श्रेयस्कर मानते हैं। उनका सिद्धांत है कि आत्मा परमात्मा आदि आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर यदि सत्तात्मक

---

१ 'बौद्ध धर्म में योग'—डा० विनय तोष भट्टाचार्य—कल्याण का योगांक—पृ० २८०

२ "सुन्न हि सुन्न मिला समदर्सी पवन रूप होइ जावेंहिंगे ॥"—क० ग्रं० पृ० २७१

३ "सुन्न गुफा महि आसण वैसण कलप विवर्जित पंथा"—क० ग्रं० पृष्ठ ३२८

४ 'बोधिचर्यावतार'—पृष्ठ ३३५

५ माध्यमिक वृत्ति—पृष्ठ २१

रूप से दिया जाए तो शाश्वतवाद होगा और यदि निषेधात्मक दिया जाए तो उच्छेदवाद होगा। बौद्ध उच्छेदवाद और शाश्वतवाद दोनों में आस्था नहीं रखते।[1] अतएव इन दोनों के मध्य का मार्ग प्रशस्त मानते हैं। उसे यह मध्या प्रतिपदा के नाम से अभिहित करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि बौद्धों के इस मध्य मार्ग का अनुसरण कबीर ने अपने ढंग पर किया है। वे इससे यहाँ तक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपनी बानी का एक अंग ही इसके आधार पर बना डाला है। 'मधि का अंग' तो मध्य मार्ग की प्रणाली पर ही है। मध्य मार्ग की पद्धति पर उन्होंने ईश्वर का निरूपण किया है।

जहाँ बोल तहँ आखर आवा जहँ अबोल तहँ मन न रहावा।
बोल अबोल मध्य है सोई जो है सो कछु लखै न कोई॥

(क० ग्रं० पृ० २२)

यह सही है कि बौद्ध लोग वैराग्य की भावना को अधिक महत्त्व देते हैं, किन्तु वे काया क्लेशमय उग्र तप में अधिक विश्वास नहीं करते।[2] कबीर को बौद्ध धर्म का यह तत्त्व पूर्णतया मान्य था। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है :—

"भूखे भगति न कीजै अपनी माला लीजै॥"

(क० ग्रं० परिशिष्ट)

बौद्ध धर्म, वर्णाश्रम-धर्म-विशिष्ट ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में उदय हुआ था। अतः उसमें वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था नहीं थी। बौद्ध धर्म साम्यवाद का प्रेरक था। इस बात का भी कबीर पर पूरा प्रभाव पड़ा है। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म[3] की उपेक्षा की है और साम्यवाद[4] का प्रतिपादन किया है।

---

१ अस्तीति शाश्वत आहो नास्तीति उच्छेद दर्शनम्।
तस्मात् अस्तित्वे नास्तित्वे नाश्रयिषे विचक्षणः॥

माध्यामिकारिक—१९-१०

२ देखिए महावग्ग—४/१/१६

३ कबीर का ठाकुर अनदविनोदी जाति न काहू की मानी। क० ग्रं०—पृष्ठ ३१९

४ देखिए क० ग्रं० पृ० ८८ पद पाँचवीं और छठीं पंक्ति

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर पर बौद्ध विचारधारा और सिद्धान्तों का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। परन्तु यहाँ पर दोनों के मौलिक विभेद को स्पष्ट कर देना परमावश्यक है। जहाँ पर कबीर ने बौद्धों के बहुत से तत्त्वों को आत्मसात् किया है वहीं वे उसके प्राणभूत तत्त्व अनीश्वरवाद और अनात्मवाद के कट्टर विरोधी भी हैं। इसका कारण उनकी अटूट आस्तिकता है। यही कारण है कि जब उन्होंने नास्तिक धर्म पद्धतियों का विरोध किया है तो बौद्धों को भी समेट लिया है।

जैन बौद्ध अरु साकत सैनां,
चारबाक चतुरंग बिहूँना। (क० ग्रं० पृ० २४०)

अब प्रश्न यह है कि क्या कबीर में बौद्ध धर्म की यह सब बातें सीधे उसी से आई हैं या किन्हीं और माध्यमों से। इस सम्बन्ध में दो मत हो सकते हैं। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि कबीर सारग्राही महात्मा थे। प्रत्येक प्रमुख धर्म के सारभूत तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करना उनके जीवन का लक्ष्य था। अतः बहुत सम्भव है कि उन्होंने किसी बौद्ध पंडित के पास जाकर उससे मूल सिद्धान्तों का श्रवण किया हो। किन्तु कुछ विद्वान् उसके विरोध में यह तर्क देते हैं कि कबीर के समय में बौद्ध धर्म का पूर्ण ह्रास हो चुका था। बौद्ध लोग ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते थे। ऐसी दशा में कबीर पर बौद्ध धर्म के सीधे प्रभाव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उनका कहना है कि बौद्ध धर्म की जो कुछ दो चार बातें कबीर में दिखाई पड़ती हैं वे उन्हें सिद्धों और नाथों के माध्यम से मिली थीं। लेखक भी इस मत के पक्ष में अधिक है। यह बात दूसरी है कि उन्होंने कुछ बातें बौद्ध पंडितों से भी सुन ली हों।

<u>वज्रयानी और सहजयानी सिद्ध</u> :—कबीर का सिद्धों की परम्परा से भी सम्बन्ध है। इनका समय ७०० संवत् से लेकर १२५७ संवत् तक माना गया है।[१] यह संख्या में ८४ थे। बहुत सम्भव है कि इन सिद्ध लोगों का निर्वासित बौद्ध भिक्षुओं की परम्परा से कुछ सम्बन्ध रहा हो। भगवान् बुद्ध के निर्वाण

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० ४६

के पश्चात् बौद्ध धर्म को सुदृढ़ और संयमित करने के लिए तीन विराट सभायें हुई थीं। इन सभाओं में हजारों की संख्या में[1] बौद्ध भिक्षु बौद्ध धर्म से निर्वासित किये गए थे। कोई आश्चर्य नहीं आगे चलकर इन्हीं निर्वासित भिक्षुओं ने अपने स्वतंत्र सम्प्रदाय प्रवर्तित किये हों, सहजयान और वज्रयान का उनसे ही कुछ सम्बन्ध हो। सिद्ध लोग अधिकतर वज्रयानी या सहजयानी ही थे।

सहजयान का प्रवर्तन विधि विधान प्रधान ब्राह्मण और बौद्ध धर्म की प्रतिक्रिया रूप में समझना चाहिए। यही कारण है कि इसमें दोनों के प्रति विरोध भावना पाई जाती है। सहजयान अपने मूल रूप में सात्विक ही था। प्रसिद्ध सहजयानी सिद्ध सरहपा के सम्बन्ध में किम्वदन्ती है कि वे पहले नालंदा विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित पंडित थे। इसी प्रकार नरोपा सुप्रसिद्ध दीपङ्कर श्री ज्ञान के गुरु थे।[2] किन्तु बौद्ध और ब्राह्मण धर्म की पाखण्ड पूर्णता को देखकर उनकी आत्मा काँप उठी और वे उसका मूलोच्छेदन करने में लग गये। इसके लिये उन्होंने सब कुछ त्याग कर सहजयान के रूप में अपनी विचारधारा का प्रचार किया। ये जीवन की स्वाभाविक गति में विश्वास करते थे। बौद्ध बिहारों का अस्वाभाविक जीवन उन्हें पसन्द न था। जीवन की स्वाभाविक गति में भोग का भी थोड़ा बहुत स्थान है। अतः इन सिद्धों ने "धर्माविरुद्ध काम" को अपनी साधना में स्थान दिया है। आगे चलकर भोग को साधना में आवश्यक समझा जाने लगा।[3] वज्रयानियों ने इन सहजयानी[4] सिद्धों के सिद्धान्तों का अर्थ के स्थान पर खूब अनर्थ किया है। सहजयानियों में वज्र का अर्थ 'प्रज्ञा'

---

१ देखिए "बुद्ध जी का जीवन चरित्र" राकहिल द्वारा लिखित तथा मौर्य साम्राज्य का इतिहास पृ० ५१४, तथा देखिए बौद्ध कालीन भारत—जनार्दन भट्ट—पृ० ३६६-७ प्रथम सभा में दस हजार भिक्षु (महा वंश ४/१) दूसरी सभा में अनेक भिक्षु, तीसरी सभा में आठ हजार भिक्षु निर्वासित किये गये थे।

२ चौरासी सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय—कल्याण योगाङ्क—पृ० ४७१

३ "हिन्दी काव्य धारा" राहुल सांकृत्यायन—पृ० ६ दोहा नं० ४५

४ हिस्ट्री आफ बंगाल डा० रमेशचन्द्र भाग—१ पृ० ४२०

माना जाता था, जो हिन्दू तंत्र की शक्ति का बोधक कहा जा सकता है।[1] वज्र-यानियों में आकर यहाँ वज्र शब्द पुंसेन्द्रिय का पर्याय बन गया।

सहजयानियों के प्रसिद्ध पाँच 'कुल' या वर्ग जिन्हें डोबी, नटी, रजकी, चाण्डली व ब्राह्मणी कहा जाता था, वज्रयानियों की साधना में पाँच प्रकार की स्त्रियों के वाचक हो गये। सहजयानी सरहपा का दृढ़ विश्वास था कि वज्र-यानियों की कमल (स्त्रीन्द्रिय) कुलिश (पुंसेन्द्रिय) साधना केवल कामोपभोग का साधन मात्र है। वह केवल उस अनन्त और अनिर्वचनीय सुख का आंशिक द्योतक है[2], किन्तु वज्रयानी लोगों ने कमल कुलिश साधना को ही साध्य मान लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनमें घोर अनाचार की वृद्धि हो चली। इसी प्रकार सहजयानियों को साधना में प्रज्ञा एवं उपाय को युगनद्ध में परिणत कर बोधचित्त को सवृत अवस्था से विवृत दशा में पर्यवसित करना परमापेक्षित माना जाता था। पारमार्थिक सत्य की अभिव्यक्ति का यह एक स्वरूप था। वज्र-यानियों ने सहजयानियों की इस युगनद्ध साधना को घोर वासना परक रूप दे दिया। सहवास सुख ही साधना का लक्ष्य बन गया।

इन सहजयानी सिद्धों ने साधना में चित्त शुद्धि[3] एवं सहज मन निरोध को ऊँचा स्थान दिया है।[4] बौद्धों की शून्य साधना भी उन्हें अपने ढंग पर पूर्णतया मान्य थी।[5] नागार्जुन के समान यह भी ईश्वर का सहज स्वरूप द्वैताद्वैत विलक्षण ही मानते हैं।[6] उसी की उपासना का आदेश उन्होंने दिया है। इन लोगों की साधना में आत्मनिग्रह को अत्यन्त आवश्यक ठहराया गया है।[7] हठयोग में भी

---

१ आवस्क्योर रिलीजस सेक्टस १९४६—पृ० ३१

२ दोहाकोष—सरहपाद—पृ० १९

३ सरहपाद का दोहाकोष पृ० १९, पृ० २४ तथा चर्यापद—डा० बाग्ची भाग १ पृ० १२१-१२६

४ हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन—पृ० ११

५ हि० का० धा० पृ० १०, ७० पद

६ हि० का० धा० पृ० ७/२०, ९/१९, २४

७ हि० का० धा० देखिये पृ० ११ पद ६२, ६४, ७१

नाड़ी साधना को विशेष महत्त्व दिया है।[१] यह लोग हृदयस्थ ब्रह्म में आस्था रखते थे[२]। उसकी प्राप्ति उन्होंने हठयोग से ही बतलाई है।[३] हृदयस्थ बुद्ध की भावना ने सिद्धों को रहस्यात्मक भी बना दिया है। उन्होंने एक स्थान पर रहस्य लोक की चर्चा की है[४] इनमें अभिव्यक्ति मूलक रहस्यवाद भी पाया जाता है। वे कभी-कभी अपनी गूढ़ दार्शनिक बातों को विचित्र ढंग से प्रकट किया करते थे। इस प्रकार अभिव्यक्ति को विद्वानों ने संध्या भाषा के अन्तर्गत माना है। इन सहजयानी सिद्धों की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति खंडन मंडन की है। यह लोग दूसरे सम्प्रदाय की बातों का कठोर शब्दों में खंडन करके अपने मत का मंडन किया करते थे।[५] वर्ण व्यवस्था के यह कट्टर विरोधी थे। तीर्थाटन, गंगा-स्नान, मूर्तिपूजा आदि में भी इन्हें आस्था न थी। इस प्रकार इन्होंने सब प्रकार से अपने धर्म को सरल और सहज रूप देने की चेष्टा की थी।

सहजयान बहुत दिनों तक अपने इस स्वाभाविक और सहज रूप को स्थिर न रख सका। उस पर तन्त्र-मन्त्र प्रधान वैपुल्यवाद का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और उसकी परिणति बज्रयान के रूप में हो गई। उसी समय से सहजयान और बज्रयान का सम्मिश्रण हो गया। वैपुल्यवाद नागार्जुन के महायान सम्प्रदाय का एक उपसम्प्रदाय है। कहते हैं कि नागार्जुन[६] ने अपने स्थान के समीप श्री पर्वत पर तन्त्र मन्त्र का केन्द्र स्थापित किया था। यहाँ पर पाँच प्राचीन निकाय विद्यमान थे। जिनमें एक वैपुल्यवाद भी था। उस वैपुल्यवाद की उपासना पद्यति शाक्त उपासना पद्धति से प्रभावित होने के कारण वाममार्गी थी। इस

---

१ काण्हपा का दोहाकोष—पृ० ४०, ४१

२ हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन पृ० ११, ६६

३ हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन पृ० ११, ६६

४ हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन पृ० ७/२०,२७/२८

५ हि० का० धारा रा० सां०—पृ० ५ पर देखिये

६ देखिये जयचन्द विद्यालंकार कृत "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" भाग २—पृ० २४

वैपुल्यवाद के माध्यम से बज्रयान में भी वाममार्गी उपासना पद्धति[1] का समावेश हुआ। इस साधना के केन्द्र नालन्दा, उद्यन्तपुरी और विक्रमशिला आदि विश्व-विद्यालय थे। शाक्तों तथा तन्त्रयान मन्त्रयान के प्रभाव से बज्रयान में अनेक देवी देवताओं की उपासना विधेय ठहराई गई। इनमें चक्र संवर ऐसे बहुत से देवता मुक्त यौन सम्बन्ध के पोषक थे।

इनकी उपासना के प्रभाव से बज्रयान में महासुखवाद का प्रवर्तन हुआ "प्रज्ञा"[2] और "उपाय" के योग से इस महासुखवाद की दशा की प्राप्ति मानी गई। निर्माण के तीन अवयव ठहराए गए हैं। शून्य, विज्ञान और महासुख। सहवास सुख महासुख की कसौटी माना गया।[3] साधना में हठयोग को स्थान दिया गया। मद्य, मांस और स्त्री साधना के आवश्यक अंग माने गए हैं। उनके मतानुसार ध्यान की एकाग्रता के लिये मद्य सेवन, शरीर की पुष्टता के लिये मांस भक्षण और बिन्दु रक्षा के लिए स्त्री सेवन अत्यन्त आवश्यक थे।

सम्भवतः प्रारम्भिक बज्रयानी सिद्धों ने[4] बज्रयानी हठयोग में नाड़ी साधना को महत्त्व दिया था। उन्होंने डोमिनी रजकी आदि नाड़ियों के भिन्न-भिन्न पारि-भाषिक नाम कल्पित किए थे। आगे चलकर इन पारिभाषिक नामों ने अर्थ के स्थान पर अनर्थ करना प्रारम्भ कर दिया। बहुत से नीच जाति के सिद्ध लोग पारिभाषिक 'गोमांस भक्षण'[5] का अभिधा मूलक अर्थ लगाकर गोमांस भक्षण में लग गए। इसी प्रकार से डोमिनी रजकी आदि से उन्होंने डोम और रजक जाति की स्त्रियों का अर्थ लेना प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ

---

१ बाउल सम्प्रदाय का विवरण—आचार्य क्षिति मोहन सेन के 'मेडिवल मिस्टीसिज्म' परिशिष्ट में तथा—धर्म कल्पद्रुम भाग ६—पृ० २१३६-२१३७ और 'आसक्यो रिलीजस कल्ट' नामक ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

२ हि० का० धारा—राहुल सांकृत्यायन—पृ० १४

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास में सिद्धों का विवरण देखिए

४ 'शक्ति एण्ड शाक्त' वुडरोफ लिखित थर्ड एडीशन १६२६ गनेश एण्ड क० मद्रास—पृ० १६१-२११

५ संत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० १६१

कि भारत में घोर अनाचार की वृद्धि होने लगी और सिद्धों की साधना घोर तामसिक हो गई। साधना की इस तामसिकता की ही प्रतिक्रिया नाथ सम्प्रदाय में दिखाई दी।

कबीर पर इन वज्रयानी और सहजयानी सिद्धों में से सहजयान का अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है, और वह स्वाभाविक भी था। कबीर स्वभाव से सात्विक एवं सत्यान्वेषी थे। उन्हें आचरण भ्रष्टता पसंद न थी। वे साधना में सरलता और सात्विकता पसंद करते थे। यही कारण है कि बज्रयानी साधना उन्हें प्रभावित न कर सकी। कबीर की रचनाओं में सहजयानी सिद्धों की विचारधारा एवं साधना सम्बन्धी सभी सात्विक बातें पाई जाती हैं। सिद्धों के अनुकरण पर ही उन्होंने ब्रह्म को द्वैताद्वैत विलक्षण[1] कहा है। उनके ही समान उन्होंने हृदयस्थ ब्रह्म की उपासना[2] विधेय ठहराई है। सिद्धों के समान कबीर ने साधना में आत्म निग्रह और मनोजय आवश्यक माना है।[3] सहजयानियों के सहज[4] शब्द का प्रयोग तो कबीर ने बार-बार किया है। सिद्धों की एक और प्रधान प्रवृत्ति कबीर में लक्षित होती है। वह है खण्डन और[5] मण्डन की। कबीर ने सिद्धों के समान ही अन्य धर्म पद्धतियों तथा उनके विधि विधानों का विरोध किया है। उन्होंने स्थान-स्थान पर तीर्थाटन, मूर्ति पूजा, गंगा स्नान, अजान आदि की निन्दा की है। सिद्धों की रहस्यात्मकता तथा रहस्यपूर्ण अभिव्यञ्जना प्रणाली[*] का भी प्रभाव कबीर पर पर्याप्त परिलक्षित होता है। सिद्धों के समान उन्होंने भी उल्टे और विचित्र ढंग से अपने गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों का वर्णन किया है। उनकी उलटवासियाँ रूपक आदि सिद्धों की "संध्या भाषा" से बहुत मिलती-जुलती हैं। कहीं-कहीं पर दोनों में भाषा और अभिव्यक्ति सम्बन्धी अत्यधिक साम्य दिखाई

१ बनर बिबरजत ह्वै रह्या, ना सो स्याम न सेत।—क० ग्रं० पृ० २४२

२ क० ग्रं० पृ० ८२/८

३ क० ग्रं० पृ० ३२८/२०८ पद, २६/६

४ क० ग्रं० पृ० ४१

५ देखिए इसी पुस्तक में कबीर का रहस्यवाद

पड़ता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रदत्त[1] साम्य के एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी।

कबीर की साखी है :—

जिहि वन सिंह न संचरे पंखि उड़े नहि जाय।
रैन दिवसा का गम नहीं, तह कबीर रहा लो लाय॥

सरहपाद की साखी है :—

जहि मन पवन न संचरे रवि ससि नाह प्रवेश।
तहि वट चित्त विशास करु सरहे कहिअ उवेस॥

कुछ अन्य प्रभाव :—कबीर पर उत्तरी भारत के कुछ ऐसे पंथों और मतों का प्रभाव पड़ा है जिनका प्रचार कबीर के समय में तो था, किन्तु आजकल वे लुप्तप्राय हो चले हैं। इनमें निरञ्जन पंथ एक है। यहाँ पर इस पर संक्षेप में विचार करेंगे।

निरंजन पंथ :—निरंजन पन्थ सम्भवतः नाथ पंथ का ही एक उपसम्प्रदाय है। उत्तरी भारत में निरंजन पंथ का नाम मात्र अवशिष्ट रह गया है। हाँ उड़ीसा व बंगाल आदि में खोज करने पर चाहे इसके दो चार अनुयायी निकल आवें।[2] खेद है कि इस पन्थ से सम्बन्धित कोई प्रामाणिक ग्रंथ नहीं मिलते। इनके विचारों, सिद्धान्तों और साधना की झाँकी थोड़ी बहुत इस पंथ के कवियों की कविता में मिलती है। डा० बड़थ्वाल तथा आचार्य हजारी प्रसाद ने अपने लेखों में इस पर अच्छा विचार किया है। यह अवश्य है कि जिन कवियों की वाणी को डा० बड़थ्वाल ने लिया है वे अधिकतर कबीर के परवर्ती ही हैं। किन्तु उनके विचारों को परम्परागत मान लेने पर हम कह सकते हैं कि कबीर के पूर्ववर्ती निरंजनियों के सिद्धांत और बिचार भी वैसे ही होंगे। इस अनुमान का एक पुष्ट आधार यह भी है कि इनकी विचारधारा कबीर की विचारधारा से बहुत कुछ मेल खाती है।

---

१ "हिन्दी साहित्य की भूमिका" डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी—पृ० ३६

२ डा० क्षिति मोहन सेन ने "मैडिवल मिस्टिसिज्म" में लिखा है कि इसकी शाखायें उत्तरी पच्छिमी मध्य भारत में भी जीवित हैं—पृ० ७

निरंजनियों की[1] साधना में उलटे मार्ग की बड़ी चर्चा है। बड़थ्वाल जी के शब्दों में निरंजनियों का यह उलटा मार्ग निर्गुणी कबीर के प्रेम और भक्ति से अनुप्राणित योग मार्ग के ही समान है। निरंजनियों की साधना बहुत कुछ हठ योगिक है। वे सुषुम्ना नाड़ी को जाग्रत कर अनाहत नाद सुनना अपना लक्ष्य मानते हैं। तभी उन्हें निरंजन के दर्शन होते हैं। तभी यह वंक नालि के द्वारा शून्य मण्डल में अमृत का पान करते हैं। आत्मा को परमात्मा से जोड़ने-वाली डोरी नाम स्मरण ही है। नाम स्मरण की साधना प्रेम मूलक और योग मूलक दोनों है। कबीर ने भी नाम स्मरण को अधिक महत्त्व दिया है। निरंजन पंथियों में गोरख की पद्धति पर त्रिकुटी साधना का विधान है। इसमें सुरति अर्थात् इन्द्रियों की अन्तर्मुखी वृति, मन तथा श्वाँस निश्वाँस को एक साथ नियो-जित करना पड़ता है। इसकी अन्तिम अवस्था अजपाजाप है। कबीर ने त्रिकुटी साधना और अजपाजाप दोनों को महत्त्व दिया है।

निरंजनी साधकों में प्रेम और विरह को भी अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। इनके मतानुसार प्रेम भावना प्रत्येक आध्यात्मिक साधना पंथ का प्राण होना चाहिए। कबीर ने प्रेम तत्त्व को अच्छी तरह से अपनाया है। उन्हें अपने गुरु से यह प्रेम तत्त्व ही प्राप्त हुआ था। उन्होंने स्पष्ट लिखा है "गुरु ने प्रेम का अंक पढ़ाय दिया।" यही प्रेम प्रियतम से मिलानेवाला है। निरंजनियों के समान कबीर ने भी प्रेम और विरह को महत्त्व दिया है। प्रेम का बादल बरसते ही साधक की सारी आत्मा आनन्द से आप्लावित हो उठती है।

सतगुरु हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसङ्ग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग॥ (क० ग्रं० पृ० ४)

कबीर की परोक्षानुभूति भी निरंजनियों से बहुत कुछ मिलती जुलती है। वे भी निरंजनियों के समान ही झिलमिल ज्योति स्वरूप ब्रह्म के दर्शन करते हैं।

---

१ योग प्रवाह—पृ० ४२
देखिए डा० हजारी प्रसाद लिखित कबीर पन्थ और उसके सिद्धान्त विश्व भारती पत्रिका—अंक ३ पृ० ९

कहीं-कहीं पर कबीर और निर्गुण संतों के भाव और शब्दावलियाँ तक मिलती जुलती हैं जैसे :—

> बिन घन चमकै बीजली तहाँ रहे मठ छाये।
> हरि सरबस तँह खोलिये जँह बिणकर बाजे बीण।
> बिन बादल बरसा सदा तँह बारह मास अखंड ।।
>
> योग प्रवाह—डा० बड़थ्वाल

इस प्रकार के बहुत से वर्णन कबीर की रचनाओं में भी मिलते हैं। एक उदाहरण देखिये :—

> गगन गरजि मघ जोइये तहाँ दीसै तार अनन्त रे।
> बिजुरी चमकि घन वरषिहै, तँह भीजत हैं सब सन्त रे ।।
>
> (क० ग्रं० पृ० ८८)

डा० हजारी प्रसाद जी ने निरंजन की व्याख्या अपने ढंग पर की है। उनकी खोजें वास्तव में महत्त्वपूर्ण हैं।

यहाँ पर संक्षेप में उनपर भी थोड़ा सा विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा। वे निरंजन का विवेचन करते हुए निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचे हैं :—

(१) कबीर पंथ एक ऐसा प्रतिद्वन्द्वी मार्ग था जिसके परम दैवत निरंजन थे। इस देवता के दूसरे नाम धर्मराज और काल थे।

(२) इस निरंजन का निवास स्थान उत्तर में मानसरोवर था।

(३) ब्रह्मा का चलाया हुआ ब्राह्मण मत निरंजन को समझ न सकने के कारण मिथ्यावादी और स्वार्थी हो गया। यह ब्राह्मण मत भी कबीर पंथ का प्रतिद्वन्द्वी था।

(४) निरंजन को पाने के लिये शून्य का ध्यान आवश्यक था।

(५) उड़ीसा के जगन्नाथ जी निरंजन के रूप हैं।

(६) द्वितीय, चतुर्थ और पंचम निष्कर्ष से अनुमान होता है कि निरंजन बुद्ध का ही नाम था।

(७) निरंजन ने सारे संसार को भरमा रक्खा है। ऐसा प्रचार कबीर पंथ को करना पड़ा था।

(८) अनुराग सागर, श्वाँस गुंजार आदि ग्रन्थों से केवल तीन प्रतिद्वन्द्वी मतों का पता चलता है (१) निरंजन द्वारा प्रवर्तित निरंजन मत (२) ब्रम्हा द्वारा प्रवर्तित ब्रम्ह मत (३) विष्णु द्वारा प्रवर्तित वैष्णव मत है। कबीर पंथ के ग्रन्थ इस मत को कथंचित अनुमूल पाते हैं।

(६) श्वाँस गुंजार आदि ग्रन्थों में निरंजन सम्बन्धी बहुत सी कथायें उलझे हुए रूप में ही मिलती हैं जो इस बात का प्रमाण हैं कि यह किसी भूली हुई परम्परा का भग्नावशेष है।

इन निष्कर्षों से ऐसा अनुमान होता है कि [विश्व भारती पत्रिका खं० ५ ग्रं० ३ पृ० ४५६] निरंजन निर्गुण मत न होकर एक देववाद प्रधान मत था। निरंजन इसके मुख उपास्य थे। जो भी कबीर पर निरंजन मत का थोड़ा प्रभाव अवश्य पड़ा है।

<u>तन्त्रमन्त्र</u>[1] :—यद्यपि तान्त्रिक अधिकतर शाक्त होते हैं और कबीर का शाक्तों से सहज विरोध है, फिर भी कबीर में तन्त्रमन्त्र की दो चार बातें आ ही गई हैं। इसका कारण यह है कि कबीर के समय में तान्त्रिक साधना अपनी पराकाष्ठा पर थी। उसका उन पर थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ना अनिवार्य था, यह भी सम्भव है कबीर में तन्त्र मत की बातें नाथ पंथ आदि किन्हीं दूसरे माध्यम से आई हों।

संस्कृत में तंत्रों का अच्छा साहित्य है। आज भी सैकड़ों तन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें ज्ञानार्णव तन्त्र, लक्ष्मी तंत्र, नगेन्द्रतंत्र, मंजू श्रीमूल कल्प, गुह्म समाज तन्त्र और साधन माला, श्री चक्रसेवर आदि प्रमुख हैं। तंत्र मत के अपने दार्शनिक सिद्धान्त हैं। यह दार्शनिक सिद्धान्त कुछ अंशों में तो सांख्यों से मिलते हैं और कुछ अंश में वेदान्त से। सांख्य के पच्चीस तत्त्व तन्त्र मत में ३६

---

१ स्टडीज इन टनट्रास —बाई डा० पी०सी० बाग्ची कलकत्ता १६३६ टनट्रास—एण्ड देयर फिलासफी औकल्ट सीरीज कलकत्ता १६४५ रिलीजन आफ टनट्रास पर अध्ययन आधारित है।

या ५१ तक हो गये हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः तन्त्रों के मुख्य-मुख्य सम्प्रदायों में वेदान्त सूत्रों पर अपने-अपने भाष्य हैं। अकूटागम तन्त्र में इस बात का निर्देश है।

तन्त्र मत हिन्दुओं की सनातनी विचारधारा से बहुत भिन्न नहीं है। हिंदू शास्त्रों की भाँति पुनर्जन्मवाद, मन्त्र-तंत्र, प्रतिमा, लिंग, सालिग्राम, होम आदि सभी उन्हें मान्य हैं। महानिर्वाण तंत्र में संन्यास और गृहस्थ आश्रमों का भी निर्देश है। यह लोग शंकर की भाँति माया को मिथ्या नहीं मानते। वे उसे भी चिन्मय मानते हैं। उनके मतानुसार उसका उपादान कारण है। इनमें अनेक देवियों की उपासना विधेय ठहराई गई है[1]।

कहने की आवश्यकता नहीं कि तंत्र मत के दार्शनिक सिद्धान्तों तथा उपासना पद्धति का कबीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। यही कारण है कि हमने उसके उस पक्ष पर संक्षेप में ही विचार किया है।

कबीर में तंत्रों की साधना पद्धति की छाया अवश्य ढूँढ़ी जा सकती है। तंत्रों में कुण्डलिनी संचालन का विधान मिलता है। उनमें चक्रों का विशद वर्णन किया गया है। चक्रों की चर्चा कबीर में भी हुई है। किन्तु अधिकतर वे नाथ पंथ से प्रभावित हैं। मेरी समझ में उनमें अधिकांश हठ यौगिक प्रक्रियाओं का वर्णन नाथ पंथों के आधार पर ही हुआ है। तंत्रों के नाद विंदु[2] बावन अक्षर वर्णन आदि कुछ पारिभाषिक बातें मात्र ही कबीर में पाई जाती हैं। इनमें बहुत से शब्द नाथ पंथ में भी प्रचलित हैं। कबीर उनके प्रयोग में नाथ पंथ से अधिक प्रभावित मालूम पड़ते हैं। तंत्रों से कम।

<u>नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव</u> :—मध्यकालीन विचारधारा पर नाथ सम्प्र-

---

१ सौंदर्य लहरी पर लक्ष्मीधर की टीका

२ ऐसे परिभाषिक शब्दों का वर्णन—श्री चक्रसंबर नामक ग्रन्थ में दिया हुआ है। इसके एक अंश का अँगरेजी अनुवाद आर्थर अवेलन के प्रयत्न से हुआ है। इस ग्रन्थ के अभिप्राय का स्पष्टीकरण शक्ति एण्ड शाक्त नामक ग्रंथ में जिसके लेखक रूपो साह हैं किया गया है। देखिये पीछे नाथ पंथ के विवरण में।

दाय का अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा है। महात्मा कबीर मध्यकालीन विचारधारा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। अतः उन पर नाथ पंथ का पर्याप्त प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारतीय धर्म साधना में नाथ पंथ विविध नामों से प्रसिद्ध है।[१] गोरक्ष सिद्धांत संग्रह में ही इसे सिद्धमत (पृ० १२) योगमार्ग (पृ० ५, २१६) योग सम्प्रदाय (पृ० ५८) अवधूत सम्प्रदाय (पृ० ५६) और अवधूत मत (पृ० १८) आदि विविध नामों से अभिहित किया गया है।[२] नाथ पंथ में नाथ शब्द की व्याख्या भी कई प्रकार से की जाती है। कुछ लोग[३] इसका अर्थ मुक्ति देने वाला करते हैं और कुछ लोग "ना" का अर्थ अनादि रूप और "थ" का अर्थ भुवनत्रय लेकर उसे अनादि धर्म का वाचक और भुवनत्रय की स्थिति का कारण बतलाते हैं। नाथ पंथ को विद्वानों ने सहजयान और वज्रयान का हीं परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप माना है।[४] राहुल जी ने तो नाथ पंथ के प्रधान आचार्य गोरखनाथ को वज्रयान का ही आचार्य कहा है।[५] यों तो इस सम्प्रदाय के आदि आचार्य श्री आदिनाथ या भगवान् शंकर ही माने जाते हैं। किन्तु मध्ययुग में इसका पुनरुत्थान करने का श्रेय बाबा गोरखनाथ को ही है। उनका उदय सिद्धों की वीभत्स तामसिक साधना पद्धति की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इसलिए इस सम्प्रदाय में सदाचरण को विशेष महत्त्व दिया गया है।[६] सिद्ध साधना के प्रधान उपादान मद्य, मांस, मैथुनादि नाथ पंथ में अत्यन्त हेय समझे जाते थे। योग सम्प्रदायाविष्कृति नामक ग्रन्थ के १८वें अध्याय में इस सम्बन्ध में एक सुन्दर कथा दी हुई है। कहते हैं कि इस पंथ के प्रधान आचार्य गोरखनाथ जी

---

१ नाथ सम्प्रदाय—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृ० ३

२ नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद—पृ० १

३ हिंदी साहित्य का अलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० १२८

४ नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद जी—'नाथ सम्प्रदाय का विस्तार' तथा—

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० १४३

५ मंत्रयान बज्रयान चौरासी सिद्ध—गंगापुरातत्वांक—पृ० २२१

६ चौरासी सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय—योगांक पृ० ४७१

एक बार जब ज्वाला जी पहुँचे तो वहाँ भगवती ने प्रचलित पद्धति के अनुसार उन्हें मद्य, मांसादि प्रसाद के रूप में देना चाहा। योगिराज ने उसे सविनय अस्वीकार कर दिया तथा भगवती से सात्विक भोजन की प्रतिज्ञा करवा ली।

नाथ पंथ के दार्शनिक सिद्धांतों एवं साधना पद्धति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार नाथ पंथ दार्शनिकता की दृष्टि से शैव मत के अन्तर्गत है और व्यावहारिक दृष्टि से पातंजल के हठयोग[1] से सम्बन्ध रखता है। डा० मोहन सिंह ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गोरखनाथ एण्ड मेडिवल मिस्टीसिज्म' में नाथ पंथ के सिद्धांतों और साधना पद्धति को बहुत कुछ औपनिषदिक सिद्ध करने की चेष्टा की है। डा० हजारी प्रसाद ने अभी हाल में ही प्रकाशित हुए अपने 'नाथ सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ में नाथ पंथ का सम्बन्ध बौद्ध और शाक्त मतों से भी दिखाया है। उसमें अनेक प्रमाणों के साथ सिद्ध किया गया है कि कौल मार्ग और कापालिक मत नाथ मतानुयायी ही हैं।

हठयोग प्रदीपिका की टीका में ब्रह्मानन्द ने लिखा है कि सब नाथों में प्रथम आदिनाथ हैं जो स्वयं शिव हैं। सम्भवतः आगे चलकर गोरखनाथ जी ने इसका पुनरुद्धार किया था। शायद यही कारण है कि नाथ सम्प्रदाय के बारह पंथों में छः स्वयं शिव प्रबर्तित माने जाते हैं और बाकी छः गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित। आचार्य हजारी प्रसाद के मतानुसार नाथ पंथियों का मुख्य सम्प्रदाय गोरखनाथ योगियों का है।[2] इन्हें साधारणतया कनफटा या दार्शनिक साधु कहा जाता है।

नाथ पंथ के प्रधान प्रवर्तक गोरखनाथ जी का मध्यकालीन विचारधारा के प्रवर्तकों में सर्वोच्च स्थान है। शंकराचार्य को छोड़कर और कोई ऐसा महापुरुष नहीं जो इनकी समानता कर सके। आचार्य हजारी प्रसाद के शब्दों में भक्ति आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली आन्दोलन गोरखनाथ का योग मार्ग ही था।

आश्चर्य है कि इतने बड़े महापुरुष का कोई विवरण प्राप्त नहीं है। डा० बड़थ्वाल ने अपने लेखों में, डा० मोहन सिंह ने अपने 'गोरखनाथ एण्ड मेडिवल

---

१ देखिए—डा० रामकुमार वर्मा का हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास परिवर्धित संस्करण—पृ० १५२

२ नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद—पृ० ५६

मिस्टीसिज्म' ब्रिग्स ने "गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगी" में डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपने इतिहास तथा आचार्य हजारी प्रसाद ने अपने अत्यन्त विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थ "नाथ सम्प्रदाय" में नाथ पंथ का काफी खोजपूर्ण विवरण प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, किन्तु यह क्षेत्र अभी स्वतन्त्र कार्य करने के लिये अवशेष है।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर पर नाथ पंथ का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव का विवेचन हम निम्नलिखित शीर्षकों में करेंगे :—

(१) नाथ पंथी योगी का स्वरूप।
(२) नाथ पंथ के दार्शनिक सिद्धान्त।
(३) नाथ पंथ की साधना पद्धति।
(४) नाथ पंथियों की भाषा और अभिव्यक्ति।

नाथ पंथी योगी का स्वरूप :—कबीर ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर योगियों या अवधूतों के स्वरूप का वर्णन किया है। यह स्वरूप वर्णन नाथ पंथी योगियों के स्वरूप से बहुत मिलता जुलता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ पंथी योगी के भेष का अत्यन्त खोजपूर्ण वर्णन किया है।[2] इनमें प्रथा है कि कान फड़वाकर कुण्डल धारण करते हैं। इसीलिए इन्हें कनफटा योगी भी कहते हैं। इस प्रथा का प्रवर्तन मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरखनाथ जी ने किया था। योगियों के कुछ अन्य चिह्न भी हैं। जिनमें किंगरी, मेखला, सींगी, जनेव, धँधारी, रुद्राक्ष, अधारी, गूदरी, खप्पर और झोला प्रमुख हैं।

किंगरी एक प्रकार का बाजा होता है। इसे प्रायः भर्तृहरि के अनुयायी रखते हैं। मेखला मूँज की रस्सी का कटिबंध है। सींगी हरिण के सींग का बना हुआ एक बाजा होता है। औघड़ और योगी दोनों एक प्रकार का ही जनेव धारण करते हैं, इसी को सेली कहते हैं। यह काली भेंड़ की ऊन का बना होता

---

१ "गोरखनाथ और उनका समय" पर एक शोध कार्य भी हो चुका है, किन्तु वह अभी प्रकाश में नहीं आया है।

२ नाथ सम्प्रदाय—पृ० १४

है। ब्रिग्स[1] ने लिखा है कि कमायूँ के योगी रुई के सूत का जनेव ही धारण करते हैं। इसी सूत्र में एक पवित्री भी बँधी रहती है, जो हरिण के सींग, पीतल और ताँबा आदि की बनी रहती है और रुद्राक्ष की एक मनियाँ झूलती रहती है। धँधारी एक प्रकार का चक्र है। गोरखपंथी साधु लोहे या लकड़ी की शलाकाओं के हेर-फेर से चक्र बनाकर उसके बीच में छेद करते हैं। इस छेद में कौड़ी या मालाकार धागे को स्थान देते हैं। फिर मंत्र पढ़कर उसे निकाला करते हैं। यही धँधारी गोरखधन्धा है। रुद्राक्ष की माला को सभी लोग जानते ही हैं। अधारी काठ के डण्डे से लगा हुआ काठ का पीढ़ा है। उसे योगी लोग प्रायः लिए फिरते हैं। लंबा गेरुआ रंग की सुजनी का चोलना होता है, इसी को गूदरी भी कहते हैं। झाड़ फूँक करने के लिये डण्डा होता है। खप्पर मिट्टी के घड़े के फूटे हुए अर्ध भाग को कहते हैं। योगी लोग शरीर में भस्म लगाते हैं और बाहुमूल या त्रिपुण्ड लगाया करते हैं।[2]

योगियों के वास्तविक स्वरूप का वर्णन करते हुए कबीर दास जी ने प्रायः इन सभी चिन्हों के नाम निर्देशित किए हैं। किन्तु कबीर दास जी नाथ योगियों के समान इन सब चिन्हों को धारण करना सच्चे योगी के लिए आवश्यक नहीं समझते थे। वे उन्हें वाह्याडम्बर कहते हैं।

बाबा जोगी एक अकेला, जाके तीरथ व्रत न मेला।
झोली पत्र विभूति न बटुआ अनहद बेन बजावै॥
माँगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अंगना फिर आवै।
पाँच जनां की जमात चलावै, तासु गुरू मैं चेला॥

(क० ग्रं० पृ० १५८)

यदि योगी के लिए इन चिन्हों का धारण करना आवश्यक समझा जाय तो फिर मानसिक पूजा के समान इन चिन्हों को भी मानसिक ही रखना चाहिए। योगी को चाहिए कि वह इन सभी चिन्हों को अपने मन में धारण करे।[3]

---

१ ब्रिग्स लिखित—'गोरखनाथ और कनफटा योगी'—पृ० ११
२ चौरासी सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय—कल्याण का योगांक—पृ० ४७१
३ कबीर का योग—योगांक (कल्याण)—आचार्य क्षिति मोहन सेन—पृ० ३०२

सो जोगी जाके मन में मुद्रा,
राति दिवस न करई निद्रा ।। टेक ।।

मन में आसण मन में रहना मन का जप तप मनसू कहना ।
मन में खपरा मन में सींगी, अनहद नाद बजावै रंगी ।।
पँच परजारि भसम करि भूका कहै कबीर सो लहसै लूका ।
(क० ग्रं० पृ० १५८)

इन चिन्हों के लिए उन्होंने मानसिक साधनों से सम्बन्धित विविध सात्विक तत्त्व संकेतित किए हैं :—

जोगिया तन कौ जंत्र बजाइ,
ज्यूं तेरा आवागमन मिटाई ।। टेक ।।

तत करि ताँति धम करि डाँडी सत की सारि लगाइ ।
मन करि निहिचल आसण निहिचल, रसना रस उपजाइ ।।
चित करि बटुआ तुचा मेखली भसमै भसम चढ़ाइ ।
तजि पाखण्ड पाँच करि निग्रह खोजि परम पद राइ ।।
हिरदै सींगी ग्यान गुणि बाँधौ खोज निरंजन साचा ।
कहैं कबीर निरंजन की गति जुगति बिनां पिण्ड काचा ।।
(क० ग्रं० पृ० १५६)

नाथ पंथ के दार्शनिक सिद्धान्त :—इस सम्प्रदाय के लोग अपने को इस दर्शन की दृष्टियों, वेदान्तियों, सांख्यों, मीमांसकों, बौद्धों और जैनों से भिन्न मानते हैं। ये लोग वेद शास्त्रों में विशेष आस्था नहीं रखते ।[1] वे दो प्रकार के माने जाते हैं—स्थूल और सूक्ष्म । स्थूल वेद, यज्ञ योग का विधान करते हैं । योगी को इनसे कोई प्रयोजन नहीं । वे ओंकार शब्द में विश्वास रखते हैं और उसी की ही साधना करते हैं । इसी को सूक्ष्म वेद भी कहते हैं ।[2] पुस्तक की विद्या को ये लोग तुच्छ दृष्टि से देखते हैं ।

---

१ नाथ सम्प्रदाय—पृ० १३५

२ नाथ सम्प्रदाय—पृ० १३५५

जहाँ तक परम तत्त्व का सम्बन्ध है नाथ पंथ में इसका विवेचन बहुत कुछ नागार्जुनीय ढंग पर हुआ है। वे ब्रह्म तत्त्व को द्वैताद्वैत विलक्षण मानते हैं। गोरखनाथ जी ने परम तत्त्व का वर्णन इस प्रकार से किया है :—

वसति न सून्यं सून्यं न वसति अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर में बालक बोले, ताका नाव धरउगे कैसा॥

(गोरख बानी—पृ० १)

अर्थात् परम तत्त्व अत्यन्त अगम है। वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। उसे न हम अस्ति रूप कह सकते हैं और न नास्ति रूप। वह अस्ति और नास्ति दोनों से परे है। उसका निवास स्थान आकाश अर्थात् ब्रह्म रन्ध्र में है। अवधूत गीता में कहा है कि कुछ लोग द्वैत को चाहते हैं और कुछ अद्वैत को, पर द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्व को नहीं जानते।[1] नाथ पंथी शब्द नाद में भी विश्वास करते हैं। वे शब्द को बस कुछ मानते हैं।

सब्दहिं ताला सब्दहिं कूँजी, सब्दहिं शब्द समाया
सब्दहिं सब्द से परचा भयो सब्दहिं सब्द समाया[2]

इसी शब्द का आकाश शिखर में गुञ्जन होता है।

"गगन सिखर महि शब्द प्रकास्या तह बूझै अलख विनाणी"[3]

यही शब्दवाद उसमें प्रणवोपासना का रूप धारण कर लेता है। उसमें नाद और विन्दु की भी काफी चर्चा मिलती है। नाद को ये लोग नाथांश या ईश्वर का अंश और विन्दु को शरीरांश मानते हैं। ये लोग नाद और विन्दु के योग से संसार की सृष्टि होना बतलाते हैं।[4]

मुक्ति सम्बन्धी धारणा नाथ पंथियों की अपनी है। नाथ स्वरूप में लय होना भी मुक्ति है। ये लोग अद्वैतावस्था से भी परे एक सदानन्द की अवस्था मानते

---

१ नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

२ गो० बा० सं०—पृ० ८

३ गो० बा० संग्रह

४ रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास—पृ० १६

हैं। वह वाह्याचार के पालन से नहीं मिल सकती। नाथ पंथियों का विश्वास है शक्ति सृष्टि करती है। शिव पालन करते हैं। काल संहारक है—और नाथ मुक्ति देते हैं। ये लोग नाथ को एक मात्र मुक्त आत्मा मानते हैं। बाकी सभी को यह जीव मानते हैं, शिव को भी, ब्रह्मा को भी और विष्णु को भी। माया की चर्चा इनके पंथ में भी पाई जाती है। गोरखनाथ जी ने माया के दो रूप माने हैं—विद्या और अविद्या। विद्या मोक्षदायिनी है और अविद्या बन्धन कारक।

कबीर पर नाथ पंथ के दार्शनिक सिद्धान्तों की छाया भी देखी जाती है। परम तत्त्व का निरूपण उन्होंने बहुत से स्थानों पर नाथ पंथियों के ढंग पर द्वैताद्वैत विलक्षण ज्योति स्वरूपी तत्त्व के रूप में लिया है :—

सरीर सरोवर भीतर आछे कमल अनूप।
परम ज्योति पुरषोत्तमो जाके रेखन रूप॥ (संत कबीर—पृ० १६१)

और भी—

ज्योति स्वरूप तत अनूप
अमल न मल न छाँह न धूप। (क० ग्रं० पृ० ३००)

नाथ पंथियों के समान कबीर ने भी माया की खूब धज्जियाँ उड़ाई हैं। उन्होंने स्थान-स्थान पर गोरखनाथ के समान कनक और कामिनी की निन्दा की है। नाथ पंथियों की शब्दोपासना तो मानो कबीर ने ज्यों की त्यों ग्रहण कर ली है।

नाथ पंथियों के समान ही वे अनेक स्थलों पर 'नाद विन्दु' चर्चा करते हैं और शब्द 'ब्रह्म' प्रणवोपासना आदि का वर्णन करते हैं। कबीर की नाद विन्दु की धारणा भी बहुत कुछ नाथ पंथियों से मिलती जुलती है। नाथ पंथी के ही समान कबीर भी नाद को ईश्वरांश और विन्दु को शरीरांश ध्वनित करते हैं।

अव्यक्त नादै विन्दु गगन गाजै, सब्द अनहद बोलै।
अंतरि गति नहि देखै नैड़ा, ढूँढत बन बन डोलै॥
(क० ग्रं० १५४)

माया का वर्णन तो कबीर ने नाथ पंथियों से भी अधिक किया है। कबीर

ने मोक्ष पद का भी वर्णन बहुत कुछ नाथ पंथियों के ढंग पर ही किया है। देखिए :—

कह्या न उपजै उपज्यां नहीं जांणौं भाव अभाव विहूनां।
उदय अस्त जहाँ मत बुद्धि नाहीं सहजि राम ल्यौं लीनां॥

(क० ग्र०—पृ० १४८)

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नाथ पंथियों के मोटे-मोटे सिद्धांतों की छाया भी कबीर पर पड़ी है।

साधना पद्धति :—नाथ पंथी साधना पद्धति थोड़ी जटिल है। यों तो डा० मोहन सिंह, डा० बड़थ्वाल तथा ब्रिग्स आदि विद्वानों ने उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। किन्तु इसकी स्पष्ट और सरल रूप रेखा डा० रामकुमार वर्मा के प्रसिद्ध ग्रन्थ "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" के परिवर्धित संस्करण में देखने को मिलती है। अभी हाल में प्रकाशित आचार्य हजारी प्रसाद जी का "नाथ सम्प्रदाय" नामक ग्रन्थ भी इस दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व का है। नाथ पंथ की साधना पद्धति को स्पष्ट करने के लिये डा० रामकुमार जी ने जो रेखा-चित्र अपने इतिहास में दिया है उसे यहाँ (पृ० १४४ पर) उद्धृत कर देना अनुपयुक्त न होगा।[1]

नाथ पंथी योगियों का विश्वास है कि सहस्रार में स्थित गगन मण्डल में औंधे मुँह का अमृत कुंड है। यही चन्द्रतत्व भी कहलाता है। इसमें से निरन्तर अमृत झरता रहता है। जो इस अमृत का उपयोग कर लेता है वह अजरामर हो जाता है। उसका पान मुक्त योगी ही, जिसने श्रेष्ठ गुरु प्राप्त कर लिया है, कर सकता है।[2]

गगन मण्डल में औंधा कुआँ तह अमृत का वासा।
सगुरा होय से भरभर पिया निगुरा जाहि पियासा॥[3]

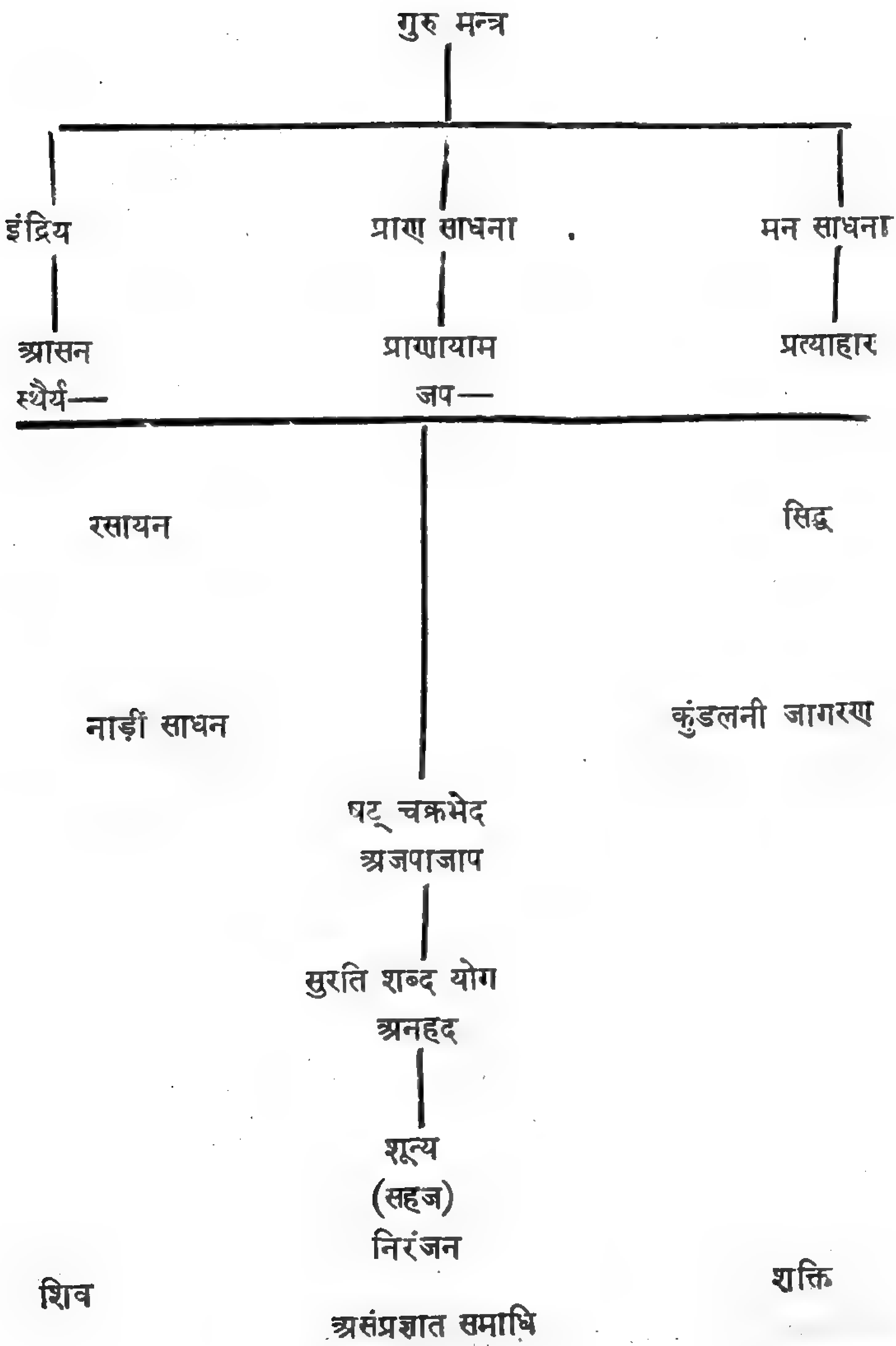
इस अमृत को पान करने के लिए सांसारिक भोगों के बन्धनों से मुक्त होना है।

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० १६२

२ नाथ सम्प्रदाय—सरस्वती—फरवरी १९४६—पृ० १०५

३ नाथ पन्थ में योग—डा० बड़थ्वाल—कल्याण योगाङ्क—पृ० ७०१


गुरु मन्त्र
इंद्रिय
प्राण साधना
मन साधना
आसन
स्थैर्य—
प्राणायाम
जप—
प्रत्याहार
रसायन
सिद्ध
नाड़ी साधन
कुंडलनी जागरण
षट् चक्रभेद
अजपाजाप
सुरति शब्द योग
अनहद
शून्य
(सहज)
निरंजन
शिव
शक्ति
असंप्रज्ञात समाधि

नाथ का अर्थ ही सांसारिक बन्धनों से मुक्त होना है।[1] इस वैराग्य भावना का दृढ़ कर्त्ता भी गुरु ही होता है। यह ही वैराग्य भावना को दृढ़ करनेवाले नैतिक नियमों को समझाता है। इसी कारण नाथ पंथ में कुछ नैतिक नियमों पर विशेष जोर दिया गया है। यह सब नैतिक आचरण नाथ पंथ की रहनी के अंतर्गत आते हैं। "रहनी" "करनी" का प्रथम सोपान कही जा सकती है। इन नैतिक उपदेशों का डा० हजारी प्रसाद ने अपने 'नाथ संप्रदाय' में बड़ा अच्छा विवेचन किया है। इन नैतिक उपदेशों में निम्नलिखित प्रमुख हैं[2] :—

(१) मन की शुद्धता पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(२) वेद, स्मृति, पंडित, मूर्तिपूजा आदि मिथ्याडम्बरों व वाद-विवाद से दूर रहना चाहिए।

(३) योगी को जल्दबाज नहीं होना चाहिए।

(४) विकारों में निर्विकार होना चाहिए।

(५) योगी को शीलवान् होना चाहिए।

(६) मध्यमार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

(७) योगी को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए।

(८) योगी को मद्य, भाँग व धतूरा आदि मादक वस्तुओं के सेवन का परित्याग कर देना चाहिए।

(९) साधना में व्यर्थ का कष्ट उठाना अपेक्षित नहीं है।

(१०) स्मार्त आचार्यों का पालन भी अपेक्षित नहीं है।

इन नैतिक आचरणों से तथा गुरु की कृपा से वैराग्य भावना दृढ़ हो जाती है। तब साधक को तीन साधनाएँ करनी पड़ती हैं :—

(१) इन्द्रिय-निग्रह

(२) प्राण-साधना

(३) मन-साधना

इन्द्रिय-निग्रह :—नाथ संप्रदाय में इन्द्रिय-निग्रह पर विशेष जोर दिया

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० १९८

२ नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद—पृ० १८३-१८६

गया है। इन्द्रियों का सबसे बड़ा आकर्षण नारी है। इसी लिये इस पंथ में नारी की बड़ी निन्दा की गई है।

भोगिया सूते अजिहुन जागे।
भोग नहीं रे रोग अभागे॥
भोगिया को मत भोग हमारा।
मन इस नारी किया तन छारा॥ (गो॰ बा॰ सं॰—पृ॰—१३८)

इन्द्रिय-निग्रह से विन्दु का स्थैर्य प्राप्त होता है और आसन में दृढ़ रहने की शक्ति बढ़ती है।

प्राण-साधना :—प्राण-साधना प्राणायाम से सम्बन्धित होती है। प्राणायाम की साधना प्राण विजय की कामना से की जाती है। प्राण विजय केवल प्राणायाम के द्वारा सिद्ध होती है। प्राणायाम द्वारा प्राणवायु मात्र ही नहीं, दसों वायु वश में आ जाते हैं। परन्तु इसके लिये शरीर में वायु के आने जाने के सब मार्ग बन्द कर देना परमावश्यक है। शरीर के रोम-रोम में अनेक छिद्र हैं। इनके द्वारा शरीर में पवन आता जाता है। इन्हें बंद करने के लिये नाथ पंथियों में भस्म धारण करना आवश्यक समझा जाता है; क्योंकि सभी द्वारों को बन्द रखना नाथ पंथी के लिये परमावश्यक है।[1]

मन-साधना :—प्राण-साधना के बाद मन-साधना आती है। मन-साधना में साधक संसार की विविध मायिक प्रवृत्तियों से मन को खींचकर अपने अन्तःकरण की ओर उन्मुख करता है। इसी मन को उलटने की प्रक्रिया को उलटी चाल या विपर्यय कहते हैं। उलटवासियों का सम्बन्ध सम्भव हो इसी उलटी चाल से हो।

इन्द्रिय-निग्रह से आसन, प्राण-साधना से प्राणायाम और मन साधने से प्रत्याहार सिद्ध होते हैं। इनके सिद्ध होने पर साधक की साधना कुण्डलिनी जागरण के रूप में और नाड़ी साधन के रूप में आगे बढ़ती है। इसी साधना में ही षट्चक्र भेदन की प्रक्रिया होती है। इसका विस्तृत वर्णन योग वाले प्रकरण में किया गया है। अतः यहाँ पर उसकी विशेष चर्चा नहीं की है।

षट्चक्र भेदन की स्थिति के समान ही अजपाजाप है। नाथ योगियों का

---

१ नाथ पंथ में योग—योगाङ्क—पृ॰ ७००

विश्वास है कि रात दिन में मनुष्य के २१६०० श्वास चलते हैं। इनमें से प्रत्येक श्वास में अद्वैत भावना करना अजपाजाप है।[1]

षट्चक्र भेदन के पश्चात् "शब्द सुरति योग" की अवस्था आती है। यह शब्द योग "अनाहत नाद" से सम्बन्ध रखता है। यह नाद कुण्डलिनी के द्वारा षट्चक्र भेदन के पश्चात् सुनाई पड़ता है। इसी में शून्य दशा की अनुभूति होती है।

नाथ पंथ की इस साधना पद्धति का कबीर पर काफी प्रभाव दिखलाई पड़ता है। नाथ पंथियों के समान "औंधे कुएँ में अमृत"[2] वाली कल्पना कबीर को मान्य है। उसकी साधना का लक्ष्य भी उसी अमृत का पान करना है। इसके लिये साधक को सबसे पहले वैराग्य भावना दृढ़ करनी पड़ती है। अपनी रहनी को सुधारना पड़ता है। गुरु की प्रतिष्ठा करनी पड़ती है। महात्मा कबीर ने इन सभी बातों का उपदेश दिया है।

वैराग्य की उन्होंने अनेक बार चर्चा की है।[3] मन की शुद्धता[4] वेद, स्मृति, ब्राह्मण, मूर्ति पूजादि का विरोध[5], विकारों में निर्विकार रहना[6], मध्य मार्ग का अनुसरण[7], मद्य मांसादि निषेध, साधन में व्यर्थ का कष्ट न उठाना आदि नाथ पंथ रहनी की जितनी बातें हैं, कबीर की रचनाओं में सभी के उदाहरण मिलते हैं। जहाँ तक गुरु प्रतिष्ठा वाली बात है, कबीर ने गुरु को गोविन्द से भी अधिक महत्त्व दे डाला है।[8]

---

१ डा० बड़थ्वाल जी—नाथ पंथ में योग पृ० ७०४—योगाङ्क कल्याण

२ क० ग्रं० पृष्ठ १६

३ क० ग्रं० पृ० २० पर वैराग्य भावना का ही वर्णन है।

४ क० ग्रं० २६ पर देखिए—मैं मन्ता मन मारि रे नन्हा करि करि पीस।
तब सुख पावे सुन्दरी ब्रह्म झलकै सीस ।।

५ क० ग्रं० पृ० ४३-४४

६ अंजन मांहि निरञ्जन रहिए बहुरि न भव जल आया। क० ग्रं० पृ० २११

७ देखिए कबीर ग्रंथावली में मधि का अंग।

८ क० ग्रं० पृ० १—२

नाथ पंथ की त्रिविध साधना :—इन्द्रिय-निग्रह, प्राण-साधना और मन-साधना के महत्त्व से कबीर पूर्णतया परिचित थे। इन्द्रिय-निग्रह की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने स्त्रियों की बारंबार निन्दा की है। प्राण या पवन साधना की भी कबीर में अच्छी चर्चा मिलती है। मन-साधना तो कबीर की सबसे प्रिय साधना थी। उनका सहजयोग मन-साधना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उलटी चाल और अजपाजाप भी मन-साधना से ही सम्बन्धित है। कबीर ने अपनी योग साधना में इन दोनों को विशेष महत्त्व दिया है।

नाथ पंथ में काया साधन, कुण्डलिनी उत्थापन, नाड़ी साधन आदि का पूरा विधान है। नाथ पंथी साधना के यह तत्त्व भी कबीर की साधना में पाए जाते हैं।

नाथ पंथियों के "शब्द सुरति योग" को भी कबीर ने पूर्ण रूप से अपनाया है। कबीर पंथियों का तो यहाँ तक कहना है कि कबीर की वास्तविक योग साधना शब्द सुरति योग के रूप में ही है। शून्य स्थिति का भी कबीर ने वर्णन किया है। निरंजन तत्त्व की तो न जाने कितनी बार चर्चा की गई है।[1]

भाषा और अभिव्यक्ति :—कबीर पर नाथ पंथियों की भाषा और अभिव्यक्ति का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। गोरख और कबीर की बानियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। कबीर गोरख की भाषा और अभिव्यक्ति[2] से इतना अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने कहीं-कहीं पर तो उनके शब्द और उक्तियाँ दोहरा दी हैं। देखिए निम्नलिखित उक्ति गोरख की बानियों में भी मिलती है और कबीर में भी पाई जाती है :—

यह मन सकती यह मन सीव।
यह मन पाँच तत्वों का जीव॥
यह मन जै उनमन रहै।
तौ तीन लोक की बाता कहै॥

गो० बा० स०—पृ० १८ और सन्त कबीर—पृ० ८२

---

१ इन सब बातों के उदाहरणों के लिये पुस्तक में विवेचित कबीर की "योग-साधना" देखिए।

२ "कबीर एण्ड दि भक्ति मूवमेंट"—डा० मोहन सिंह भाग १—पृ० ४१

वाक्यों और वाक्यांशों की तो कोई बात ही नहीं है। कबीर ने गोरख के न मालूम कितने वाक्य और वाक्यांश ज्यों के त्यों अपना लिए हैं। गोरख का "उलटि पवन षट चक्र वेधिया" (गो० बा० सं०—पृ० ३६) वाक्य कबीर की बानियों में अनेकों बार प्रयुक्त हुआ है।[1] इसी प्रकार "नीझर झरना" वाक्यांश गोरख का है। (गो० बा०—पृ० २०) कबीर ने इसका भी प्रयोग कई बार किया है। जहाँ तक वाक्य विन्यास का सम्बन्ध है कबीर ने अपने बहुत से वाक्य गोरख के ढंग पर ही बनाए हैं। गोरख नाथ द्वारा प्रयुक्त शब्द भी कबीर में कम नहीं पाए जाते हैं। 'नाद विन्दु', 'सुरति निरति' आदि अनेकानेक पारिभाषिक शब्द कबीर ने गोरख से ही उधार लिए थे। गोरख के साधारण शब्दों की भी कबीर में कमी नहीं है। कहीं-कहीं तो कबीर के अर्थ समझने में गोरख बानी से बहुत सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए 'जिन्द'[2] शब्द को ले लीजिए। इस शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक दूरारूढ़ कल्पनाएँ[3] भिड़ाई हैं, किन्तु यदि उन्हें गोरख[4] द्वारा प्रयुक्त इस शब्द का ज्ञान होता तो कोई झगड़ा ही नहीं उठता।

इस प्रकार हम देखते हैं नाथ पंथ का कबीर पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उसके द्वैताद्वैत विलक्षण मुक्ति स्वरूप, योगी स्वरूप आदि उनमें ज्यों के त्यों मिलते हैं। नाथ पंथी साधना के दोनों तत्त्वों—रहनी और करनी—का भी कबीर पर कम प्रभाव नहीं है। उनकी योग साधना वास्तव में नाथ पंथी योग साधना

---

१ देखिए क० ग्रं० पृ० १६

२ देखिए क० ग्रं० पृ० ३६५
सन्त कबीर—राग गौर पद ४

३ 'जिंद कबीर की संक्षिप्त चर्चा'
चन्द्रबली पाण्डेय
विचार विमर्श सम्मेलन प्रयाग—पृ० ६
और देखिए तसव्वुफ अथवा सूफीमत—च० पाण्डेय—पृ० ५०

४ गोरख नाथ जी ने इसका जिंदगी के अर्थ में प्रयोग किया है। कबीर में भी यही अर्थ लगता है। देखिए गो० बा० सं० पृ० २०

का रूपान्तर मात्र है। गोरख की रहस्यात्मकता भी कबीर में ज्यों की त्यों पाई जाती है। डा० मोहन सिंह ने इस बात को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है।[1]

इस्लाम और सूफी सम्प्रदाय :—कुछ विद्वानों ने कबीर पर इस्लाम का बहुत अधिक प्रभाव दिखलाया है, किन्तु कबीर की रचनाओं से ऐसी कोई बात परिलक्षित नहीं होती। खोज करने पर इस्लाम के उपसम्प्रदाय सूफी मत की बातें चाहे मिल जायँ, किन्तु असली इस्लाम के तत्त्वों को ढूँढ़ निकालना बड़ा कठिन है। अत्यधिक खोज करने पर केवल इस्लामी नियतिवाद, साम्यवाद, पैगम्बर वाद तथा नूरवाद आदि की चर्चा एकाध स्थलों पर अवश्य मिलती है किन्तु इस्लाम धर्म के प्रमुख दो तत्त्व दीन और इस्लाम के अंगों का न तो कहीं विशेष वर्णन ही मिलता है और न उनके प्रति उनकी आस्था ही दिखाई पड़ती है। सूफी मत का भी उन पर इतना ऋण नहीं है जितना कुछ विद्वानों ने दिखाने की चेष्टा की है, नीचे के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

सूफी सम्प्रदाय का इस्लाम से सम्बन्ध निर्देशित करने के लिए संक्षेप में उसके विकास के इतिहास को जानना आवश्यक है। यद्यपि सूफी मत का उदय रूढ़िवादी इस्लाम की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था किन्तु इसका उद्गम स्रोत इस्लाम के समान कुरान ही है।[2] यों तो कुछ विद्वानों ने कुछ आदिम खलीफाओं को, यहाँ तक कि स्वयं पैगम्बर साहब को सूफी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किन्तु सूफी संज्ञा सबसे पहले कूफा के आबू हाशिम को मिली थी।[3]

सूफी मत के इतिहास को हम चार भागों में बाँट सकते हैं। (१) आदि युग (२) पूर्व मध्य युग (३) उत्तर मध्य युग या स्वर्ण युग (४) आधुनिक युग। आदि युग के सूफी वास्तव में सत्यान्वेषी महात्मा और फकीर थे। इनका लक्ष्य मानव मन को पूर्ण रूप से ईश्वर में पर्यवसित करना था। यह ज्ञान की खोज में कम, शांति की खोज में अधिक रहते थे। हाँ भावातिरेकता वाली विशेषता इनमें भी किसी न किसी रूप में विद्यमान थी। यह लोग वैराग्य और संन्यास को विशेष

---

१ गोरख नाथ और मेडिवल मिस्टीसिज़्म —पृ० १८

२ देखिये स्प्रिट आफ इस्लाम अमीर अली—पृ० ४२७

३ देखिये 'इंफ्लुएंस आफ इस्लाम' सूफीइज्म वाला प्रकरण

महत्त्व देते थे। जहाँ तक इस्लाम के मूल तत्त्वों के पालन की बात है वे रूढ़िवादी थे। इब्राहीम अधम (७८३ ई०) फुदयाल (८१० ई०) रबिया (८०२ ई०) जाफर सदीक आबू हनीफ आदि फकीर इसी युग के प्रसिद्ध सूफी हैं। नवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही सूफियों में एक नया परिवर्तन दिखाई दिया। उनमें भावात्मक चिंतन का समावेश हुआ। इस युग के सूफियों में सुलेमान, उदरानी, धून मून मिश्री आदि प्रमुख हैं, किन्तु इन सबसे प्रसिद्ध मंसूर हल्लाज हैं। वे अत्यंत क्रांतिकारी विचारधारा के व्यक्ति थे। इनके ही समान सूफियों की विचारधारा के कारण सूफी मत इस्लाम विरोधी समझा जाने लगा था। गज़्ज़ाली प्रथम दार्शनिक थे। इन्होंने सूफी मत का इस्लाम से पुनः सामञ्जस्य स्थापित किया था। इसके पश्चात् सूफी मत का स्वर्ण युग आता है। फारस के प्रसिद्ध कवि शेख सादी, अत्तार और जलालुद्दीन रूमी इसी युग की विभूतियाँ हैं। भारत के सूफियों में इनका बहुत प्रभाव पड़ा है। आधुनिक युग में सूफी मत पतन की ओर है फिर भी हाफिज जामी ऐसे कवि आधुनिक काल में हुए हैं।

सूफी मत और इस्लाम में कुछ सैद्धान्तिक मतभेद हैं। इस्लाम विशेष रूप से आस्था और आचरण प्रधान धर्म है। उसमें दार्शनिकता का कोई स्थान नहीं है। किन्तु सूफी मत में विभिन्न प्रकार के आध्यात्मिक सिद्धान्तों का विकास हुआ है। यहाँ पर हम उन पर बहुत संक्षेप में विचार करेंगे।

हक :—हक के सम्बन्ध में सूफियों में विभिन्न मत प्रचलित हैं। इन सबमें हल्लाज का मत अधिक प्रसिद्ध है। भारत के सूफियों को अधिकतर वही मान्य है। 'हल्लाज'[1] के अनुसार हक की सत्ता का सार प्रेम है। सृष्टि से पूर्व परमात्मा का प्रेम निर्विशेष रूप से अपने ऊपर था। इससे वह अपने को अकेले अपने आप को ही व्यक्त करता रहा। फिर अपने उस एकान्त अद्वैत प्रेम को उस अपरत्वरहित प्रेम को वाह्य विषय के रूप में देखने की इच्छा से उसने शून्य से अपना प्रतिरूप उत्पन्न किया जो आदम कहलाता है, इसमें और इसके द्वारा परमात्मा ने अपने को व्यक्त किया।' हल्लाज के इस सिद्धांत को पूर्ण अद्वैती न मानकर विशिष्टाद्वैतवादी माना जाता है। उन्होंने हलूल (ईश्वरत्व का मनुष्यत्व का ओतप्रोत

---

१ देखिए जायसी ग्रन्थावली—पृ० १३८ भूमिका

हो जाना) नाम के सिद्धान्तों का भी प्रतिपालन किया था, जिसके कारण मुसलमान उन्हें इस्लाम विरोधी कहते हैं।

इब्ने अराबी का मत इससे थोड़ा भिन्न है। वह नासूत और लाहूत को एक ही सत्ता के दो रूप मानता है। उसके मतानुसार वह सत्ता इन दोनों से परे है। यह मत भारतीय वेदांत के अधिक समीप है। इब्ने सिना का सौंदर्यवाद भी कम प्रचलित नहीं है। उसके मतानुसार ब्रह्म शाश्वत सौंदर्य रूप है। संसार एक दर्पण है जिसमें वह अपना प्रतिबिम्ब देखता रहता है। यह मत भारतीय प्रतिबिम्बवाद से बहुत मिलता जुलता है। फारसी के प्रसिद्ध कवि जामी इसी सौंदर्यवाद के अनुयायी हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर पर इन सब मतों की हल्की छाया यत्र-तत्र दिखलाई पड़ती है। हल्लाज के प्रेमवाद का तो कबीर पर बहुत अधिक प्रभाव है। वे कभी तो "प्रेम पियाले" की चर्चा करते हैं, कभी "प्रेम भगति हिंडोलना" की। उन्होंने सर्वत्र "प्रेम भगति" करने का ही उपदेश दिया है।

"प्रेम भगति ऐसी कीजिए, मुख अमृत बरसै चन्द"
(क० ग्रं० ८६)

इस प्रेम तत्त्व ने ही कबीर की आत्मा निर्मल कर दी है :—

कबीर बादल प्रेम का, हम पर बरसा आइ।
अंतरि भीगी आत्मा, हरी भई बनराइ॥ (क० ग्रं० पृ० ४)

इब्बेसिना के सौंदर्यवाद की छाया भी कबीर की रचनाओं में पाई जाती है। परचा वाले अंग में ब्रह्म का जो वर्णन है वह बहुत कुछ अनिर्वचनीय सौंदर्यवाद से ही प्रभावित है। हाँ, इतना अवश्य है कि वह सौंदर्य चित्रण सूफियों के समान मधुर नहीं है।

कबीर तेज अनन्त का मानों ऊगी सूरज सेणि।
पति संग जागी सुन्दरी कौतुक दीखा तेणि॥ (क० ग्रं० पृ० १२)

इन्सान :—सूफियों के एक वर्ग के अनुसार सृष्टि के दो भेद हैं। "आलमे अभ्र" और "आलमे खल्क" मनुष्य में दोनों तत्त्वों का मिश्रण है। उसे 'आलमे संगीर' कहते हैं। 'आलमे अभ्र' के तत्त्व हैं :—'कल्ब' 'रूह' 'सिर' 'खाफी'

और 'अख़्बा'। आलमे खल्क के तत्त्व हैं :—नफ़्स तथा छिति, जल, पावक, आकाशवायु[1] आदि पंच तत्त्व। एक दूसरे वर्ग के सूफी मनुष्यों के चार विभाग मानते हैं—नफ़्स (इंद्रिय), रूह (चित्त), कल्ब (हृदय) और अक्ल (बुद्धि)।[2] रूह को सूफी लोग ईश्वर का अंश मानते हैं। उनकी दृढ़ धारणा है कि रूह सदैव परमात्मा से मिलने के लिये तड़पती रहती है। सूफी कहते हैं कि प्रत्येक अणु की प्रगति अपने उद्‌गत स्रोत की ही ओर रहती है।[3] सूफियों की यह भी धारणा है कि आत्मा विकासोन्मुख है। वे पुनर्जन्म में भी विश्वास करते हैं।[4] 'कल्ब' को भी सूफी लोग कोरा भौतिक पदार्थ नहीं मानते हैं। उनकी दृष्टि में वह भी एक भूतातीत पदार्थ है। उसे वे ईश्वर तख्त कहते हैं। उनकी आठ वृत्तियाँ आठ पायों के रूप में कल्पित की गई हैं।[5] अक्ल को भी तीन भागों में बाँटा गया है। अक्ल-ए-अव्वल, अक्ल-ए-कुली और अक्ल। सूफी साधना का लक्ष्य नफ़्स से जिहाद करते हुए अक्ल के सहारे ईश्वर के सिंहासन कल्ब तक पहुँचना है। कल्ब में पहुँचने पर रूह जो ज्ञान स्वरूप है और ईश्वर का ही आंशिक प्रतिरूप है तन्मय हो जाता है।

मनुष्य के ऊपर कबीर ने कहीं पर भी विस्तार से विचार नहीं किया है। जो हिन्दू विचारधारा के मेल में है। विकासवाद, पुनर्जन्मवाद, पुंशांशिभाव वेदान्त को भी मान्य हैं और सूफियों को भी। वे कबीर को भी मान्य हैं।

खल्क या सृष्टि :—सृष्टि सम्बन्धी विचार सभी सूफियों के समान नहीं हैं, उनमें काफी मतभेद है। ईजादिया वर्ग के सूफियों का कहना है कि ईश्वर ने असत् से सृष्टि का निर्माण किया है। यहूदिया वर्ग प्रतिबिम्बवादी है। इसके

---

१ देखिए 'सूफिज़्म—इट्स सेट्स एण्ड श्राइन' नामक ग्रंथ—पृ० १३२

२ देखिए जायसी ग्रन्थावली—रामचंद्र शुक्ल—पृ० १३२—परिवर्धित संस्करण

३ "देखिए आउट लाइंस आफ इस्लामिक कल्चर" वाल्यूम सेकेण्ड में सूफिज्म का अध्याय

४ इंफ़्लुएंस आफ इस्लाम—पृ० ७२

५ "आउट लाइंस आफ इस्लामिक कल्चर"—वाल्यूम सेकेण्ड—पृ० ४७४

मतानुसार संसार एक दर्पण है, जिसमें ईश्वर के धर्म प्रतिबिंबित होते रहते हैं। एक दूसरा वर्ग ईश्वर तत्त्व के अतिरिक्त और कुछ मानता ही नहीं। सृष्टि भी उसी का विवर्तन है। इन लोगों का कहना है कि यदि ब्रह्म तत्त्व जल रूप है तो विश्व हिम रूप है। उनके मतानुसार जगत असत नहीं कहा जा सकता। इसके नाम रूप अनित्य हैं, पर उनकी भावना अनित्य नहीं है। यह भावना आलमे मिसाल (चित्र जगत्) की भाँति सत्य है। उसी के सहारे (आलमे गैब) का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जिली का सृष्टि-विकास-क्रम स्वरूप में भारतीय है। जिली के मतानुसार "हकीकते अल हकीक" (दी आइडिया आफ आइडियाज) हिरण्यगर्भ (क्रियोलाइट) के रूप में विद्यमान था। उसी में सृष्टि निर्माण के पूर्व ईश्वर रहता था। पुनः उसने जमालपूर्ण चक्षुओं से दृष्टि विक्षेपण की। उससे जल की सृष्टि हो गई। इसी प्रकार जलाल (ऐश्वर्य) की दृष्टि से देखने से उसमें लहरें उठने लगीं। उसी के स्थूल तत्त्वों से सात संसारों की सृष्टि हुई। सूक्ष्म तत्त्वों से सात आसमानों की सृष्टि हुई। उसके जल से सात समुद्र बन गए। इसी प्रकार सृष्टि का विकास होने लगा।

गज्जाली ने सृष्टि को दो भागों में बाँटा है :—दृश्य सृष्टि और अदृश्य सृष्टि। दृश्य जगत जिसे वह "आलमे उतब—मुल्क" कहते हैं, भौतिक और अनित्य है। अदृश्य जगत को उसने दो भागों में बाँट रखा है। "आलमे-उल-जवरूत" और "आलमे-उल-मलकूत"। आत्मा "आलमे-उल-मलकूत" से हो जाती है। "आलमे-उल-जवरूत" देवदूतों के रहने का स्थान है[1]। कुछ अन्य सूफियों ने इन संसारों की संख्या में वृद्धि कर और भी अधिक सूक्ष्मता से विचार किया है। हल्लाज ने इस प्रकार के पाँच संसारों का वर्णन किया है। वे क्रमशः 'आलमे नासूत', 'आलमे-मलकूत', 'आलमे-जवरूत', 'आलमे लाहूत' और 'आलमे हाहूत' हैं।

सूफियों के सृष्टि सम्बन्धी विचारों की छाया कबीर में कुछ स्थानों पर अवश्य दिखलाई पड़ती है, किन्तु पौराणिक आधार पर किए गए सृष्टि विकास क्रम को जिली के अनुकूल कहना ठीक नहीं है।

---

१ स्प्रिट आफ इसलाम बाई अमीर अली—पृ० ४७२

मारिफत :—सूफियों के मोक्ष सम्बन्धी विचार भी अधिक स्पष्ट नहीं हैं। कहीं तो उनका आत्मा और परमात्मा का तादात्म्य अद्वैती है, कहीं विशिष्टाद्वैती और कहीं भेदाभेदी मालूम पड़ता है। किन्तु सूफी मत के प्रसिद्ध विद्वान् निकलसन साहब ने अपने ग्रंथ "आइडिया आफ परसनैलिटी इन सूफिज्म" में अनेक तर्कों और उदाहरणों को देकर यह सिद्ध किया है कि सूफियों में मृत्यु के बाद भी भेद भावना बनी रहती है।[1] हल्लाज ने मुक्ति का इस प्रकार वर्णन किया है। "हम दो आत्माएँ हैं, किन्तु एक शरीर में निवास करते हैं। यदि तुम मुझे देखते हो तो तुम उसे देखते हो और यदि तुम उसे देखते हो तो तुम मुझे देखते हो।"[2] यदि हम निकलसन के मत को मानें तो कहना पड़ेगा कि कबीर के मोक्ष सम्बन्धी विचार सूफियों से नहीं मिलते हैं, क्योंकि तात्विक दृष्टि से वह पूर्ण अद्वैती है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से वे कहीं-कहीं भेद करके चलना भी पसंद करते हैं। इस प्रकार के विरोधी विचारों को देखकर उनको दार्शनिक विद्वानों ने मनमाने मत से निर्धारित किए हैं। कोई उन्हें अद्वैती मानते हैं कोई विशिष्टाद्वैती तथा कोई भेदाभेदी।

जिस प्रकार सूफी दर्शन का आध्यात्मिक पक्ष अत्यन्त सुदृढ़ है उसी प्रकार उसका नैतिक पक्ष भी। सूफी साधना पद्धति में नैतिकता को बड़ा महत्त्व दिया गया है। उसमें आचरण प्रवणता को बड़ा उच्च स्थान मिल गया है। योग के यम नियमादि की भाँति हृदय और शरीर की शुद्धता पर इस मत में बहुत जोर दिया गया है।[3] कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर ने भी सूफियों की भाँति सर्वत्र नैतिकता एवं आचरण प्रवणता को महत्त्व दिया है। किन्तु फिर भी नहीं कहा जा सकता कि कबीर में नैतिकता एवं आचरण प्रवणता सूफियों के प्रभाव से आई थी। उसे हम वैष्णव प्रभाव मानते हैं।

---

१ "आइडिया आफ परसनैलिटी इन सूफिज्म"—निकलसन कृत—अंतिम पृ०

२ मिस्टिक्स आफ इस्लाम—पृ० १२७

३ देखिए—'आउट लाइन आफ इसलामिक कल्चर" सेकेण्ड वाल्यूम—पृ० ४४८

तरीका :—निकलसन ने कहा है कि सूफियों की कोई एक साधना पद्धति नहीं है। वे विभिन्न साधना मार्गों से ईश्वर तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं।[1] सूफी साधक अपनी साधना को यात्रा समझता है और अपने को यात्री या "सालिक"। सालिक को यात्रा आरम्भ करने से पहिले नफ्स को मारना चाहिए। कल्ब, रूह और आत्मा को विकसित करना चाहिए। इनकी शुद्धि के लिये ईश्वर ज्ञान जिसे मारिफत कहते हैं, प्राप्त करना चाहिए। यह ज्ञान स्वानुभूति मूलक होता है, पुस्तक जनित नहीं होता है।[2] इसकी प्राप्ति ईश्वर की कृपा पर अवलम्बित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सूफी ईश्वर की कृपा साध्यता पर अधिक विश्वास करते हैं। अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिये सूफी "एक्सटेसी" या भावातिरेकता की शरण लेना आवश्यक मानते हैं। भावातिरेकता की दशा तभी प्राप्त हो सकती है जब साधक में प्रेम तत्त्व विद्यमान हो। यही कारण है कि प्रेम तत्त्व को सूफियों ने अत्यधिक महत्त्व दिया है।[3] प्रेमोदय पवित्रतम हृदय में ही हो सकता है।[4] हृदय को शुद्ध करने के लिये साधक को सात मुकामात से गुजरना पड़ता है। वे क्रमशः प्रायश्चित, अकिंचनता, त्याग, संतोष, ईश्वर-विश्वास, धैर्य तथा निरोध हैं। इनके अतिरिक्त साधक के लिये धिक (स्मरण), मुरक्कत, जाप आदि भी आचर्य हैं। इन्हें हालात कहते हैं।[5] कुछ साधक लोग भावातिरेकता की अवस्था कुछ कृत्रिम साधनों से प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इन कृत्रिम साधनों में शराब और संगीत इत्यादि प्रमुख हैं। वाशरा सूफियों के लिये इनके अतिरिक्त तीन बातें और आवश्यक होती हैं। वे हैं—सदाचरण, प्रपत्ति "शरायत" का अनुसरण।

प्रायः सूफियों ने साधना की चार अवस्थाएँ शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत मानी हैं। शरीयत का अर्थ है धर्म ग्रन्थों में वर्णित विधिविधानों

---

१ देखिए—'मिस्टिक्स आफ इस्लाम" निकलसन
२ 'मिस्टिक्स आफ इस्लाम'—पृ० ६६
३ ,, ,, ,, —पृ० ११०
४ ,, ,, ,, —पृ० ११२
५ ,, ,, ,, —पृ० ४५

का पालन करना। तरीकत में साधक ब्रह्म जगत से उठकर हृदय की शुद्धता द्वारा ध्यान करता है। इसे हम शक्ति या उपासना की अवस्था कह सकते हैं। इसके बाद हकीकत की अवस्था आती है। इस अवस्था में साधक को सत्य का बोध होता है। हुजबरी ने हकीकत ज्ञान के तीन आवश्यक अंग माने हैं।[1] ये क्रमशः ब्रह्म की एकता का ज्ञान, उनके गुणों का ज्ञान, उसकी कृपा का ज्ञान है। मारिफत सत्यानुभूति जनित सिद्धावस्था है। हुजबरी ने इसे हाली इल्मी भेद से दो प्रकार की बतलाई है। हाली सत्यानुभूति जनित सिद्धावस्था कई साधनों से प्राप्त हो सकती है। जिसमें संगीत, नृत्य आदि प्रमुख हैं। इस हाल की भी कई परिस्थितियाँ होती हैं। स्थूल रूप से इसके दो पक्ष बतलाए जाते हैं। त्याग पक्ष और प्राप्ति पक्ष। त्याग पक्ष के अन्तर्गत फना (अपनी सत्ता का विस्मरण) फकद (अहंकार का मद) शुक्र (प्रेम, मद) प्राप्ति पक्ष के अन्तर्गत वका परमात्मा में स्थिति वज्द (परमात्मा की प्राप्ति) (पूर्ण शान्ति)।[2] कुछ सूफियों ने मिलन की अवस्था के भी चार विभाग किए हैं। इन्हें वे चार यात्राएँ मानते हैं। पहली स्थिति मारिफत से फना तक मानी जाती है। दूसरी स्थिति फना से बका तक की है। इस स्थिति में पहुँच कर मनुष्य (कुतुब, पूर्ण पुरुष) हो जाता है। तीसरी यात्रा में यह पूर्ण मनुष्य अपना ध्यान लोक संग्रह की ओर लगाता है और लोक संग्रह करने का प्रयत्न करता है। तभी उसे शेख की पदवी प्राप्त होती है। चौथी अवस्था मृत्यु की प्राप्ति होती है।[3]

कबीर ने सूफी साधना पद्धति का विशेष अनुसरण नहीं किया है। फिर भी उसकी दो-चार बातें उनसे मिल ही जाती हैं। प्रेम की सूफियों के समान ही उन्होंने साधना की है और प्रेम और विरह तत्त्व को अत्यधिक महत्त्व दिया है। कबीर ने सूफियों के शर्ब और शुक्र के स्थान पर राम रसायन की चर्चा की है :—

राम रसायम प्रेम रस पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुर्लभ है माँगे सीस कलाल॥ (क० ग्रं० पृ० १६)

---

१ 'करफ उल महजूब' बाई हुजबरी— पृ० १४
२ देखिए शुक्ल की "जायसी ग्रन्थावली" भूमिका—पृ० १३८
३ मिस्टिक्स आफ इसलाम, निकलसन, पृ०—१६४, १६५

इस रस की प्राप्ति होते ही और रस बिसर जाते हैं :—

"राम रस पाइया विसर गए रस और।" (क० ग्रं०—पृ० ११०)

सूफियों के समान कबीर का यह भी विश्वास है कि सात्विक प्रेम की अभिव्यक्ति सात्विक हृदय में ही होती है। जिसके हृदय में प्रेम नहीं उत्पन्न हुआ उसका जन्म इस संसार में व्यर्थ है :—

जिहि घट प्रीत न प्रेम रस पुनि रसना नहि राम।
ते नर इस संसार में उपजि भए बेकाम॥ (क० ग्रं०—पृ० ६५)

सूफियों की चार अवस्थाओं का व्यवस्थित रूप हमें कबीर में नहीं मिलता। यह दूसरी बात है कि अधिक खोज करने से उनकी कुछ उक्तियों में उसकी छाया मिल जाए।

जहाँ तक सूफियों के सात मुकामात की चर्चा की बात है, कबीर में इसका वर्णन अव्यवस्थित रूप में यत्र तत्र बिखरा हुआ मिलता है। कहीं पर तो ये दरिद्रता की प्रशंसा करते हैं। कहीं पर "धिक" 'मुरक्कत' करते पाए जाते हैं। त्याग, संतोष, ईश्वर, विश्वास, धैर्य और निरोध आदि का भी उन्होंने स्थान-स्थान पर वर्णन किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर की रचनाओं पर सूफियों के विचारों और साधना की कुछ छाया ढूँढ़ी जा सकती है। प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने कहीं भी सूफियों का ऋण नहीं स्वीकार किया है।

सूफी साधना अनुभूति पर आश्रित है। अनुभूति प्रेम पर अवलम्बित रहती है। प्रेम की चरम परिणति दाम्पत्य प्रेम में है। अतः सूफियों की अभिव्यक्ति दाम्पत्य प्रतीकों से ही होती है। सूफी अभिव्यक्ति की यह विशेषता कबीर में पूरी तौर से पाई जाती है। उनके रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अधिकतर दाम्पत्य प्रतीकों के द्वारा ही हुई है :—

हरि मेरा पीव भाई हरि मेरा पीव
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया
राम बड़े मैं छुटुक लहुरिया।

किया सिंगार मिलन के ताईं
काहे न मिलौ राजा राम गुसाईं ।
अब की बेर मिलन जो पाऊँ
कहै कबीर भौ जलि नहिं आऊँ॥

(क० ग्रं०—पृ० १२५)

देखिए निम्नलिखित रागु तिलग में पर्याप्त सूफी प्रभाव परिलक्षित होता है। इसमें सूफियों के कई पारिभाषिक शब्द ज्यों के त्यों प्रयुक्त हुए हैं :—

वेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ।
टुक दमु करारी जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ॥
बंदे खोज दिल हर रोजा फिरु परेसानी माहि।
इहु जु दुनियाँ सिहरु मेला दस्तगीरी नाहि॥१॥
दरोगु पड़ि परि खुसी होइ बेखबर बादु बकाहि,
हकु सचु खालकु खलक मिआने सिआम मूरति नाहि॥२॥
आसमान म्याने लहंग दरीआ गुसल कारद न बूद।
करि फकरु दाइम लाइ चसमे जहाँ तहाँ मउजूद॥३॥
अलाह पाक पाक है सक करउ जे दूसर होइ,
कबीर करमु करीमु का उहु करै जानै सोइ॥४॥

"संत कबीर"—पृ० १४६

यही नहीं जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं। कबीर पर सूफियों के 'नूर' 'हक' 'इश्क' 'खुमार' 'मारिफत' आदि का भी पूरा प्रभाव है। सूफियों की दाम्पत्य प्रतीक पद्धति को तो उन्होंने अपने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन बनाया है।

सार :—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर ने प्रत्यक्ष रूप से सूफियों के तत्त्वों को स्वीकार नहीं किया है। किन्तु फिर भी सूफी संत संगीत के परिणाम-स्वरूप सूफियों की बहुत सी बातें कबीर में आ गई हैं। इसका एक और कारण है, वह यह है कि सूफी मत और भारतीय अद्वैतवाद[1] में बड़ा साम्य है। कबीर

---

१ स्टडीज़ इन "इसलामिक मिस्टीसिज्म"—पृ० ११२, ११३

सच्चे अद्वैतवादी थे। उनके अद्वैतवादी तत्त्वों से सूफियों की विचारधारा मेल खा जाती है। बहुत से विद्वानों ने इसी साम्य को देख कबीर को सूफियों से अत्यधिक प्रभावित माना है; किन्तु यह उचित नहीं। जिन लोगों का यह कहना है कि कबीर शेख तकी के मुरीद थे, उनसे मेरा यही कहना है कि इस मत के मूल प्रवर्तक गुलाम सरवर हैं, जिन्होंने मुसलमानों की महत्ता की रक्षा करने के लिये ही इस प्रकार का प्रचार किया है। जैसा कि कुछ अन्य विद्वानों ने भी सिद्ध किया है कि कबीर ने कहीं पर भी शेख तकी के प्रति श्रद्धा प्रकट नहीं की है। जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि वे उनके मुरीद थे। अतः इस प्रकार भ्रांति पूर्ण मत का विरोध करना चाहिए।

कबीर पर पड़े हुए आध्यात्मिक प्रभावों का विश्लेषणात्मक संक्षिप्तीकरण

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर की विचारधारा विविध धार्मिक सिद्धान्तों से निर्धारित हुई है। यहाँ पर उसका संक्षेप में विश्लेषणात्मक ढंग से सिंहावलोकन किया जाता है :—

(क) वैदिक विचारधारा :—श्रुति ग्रन्थों से कबीर को निम्नलिखित तत्त्व प्राप्त हुए थे :—

(१) एकात्मक अद्वैतवाद
(२) ज्ञान तत्त्व
(३) गुरु भक्ति और भगवद्भक्ति
(४) अध्यात्म योग
(५) प्रणवोपासना
(६) जन्मान्तर वाद।

एकात्मक अद्वैतवाद :—श्रुतियों में सर्वत्र एकात्मक अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा मिलती है। कठोपनिषद् में कहा गया है, "जिस प्रकार सम्पूर्ण लोक का नेत्र होकर भी सूर्य नेत्र सम्बन्धी वाह्य दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अंतरात्मा संसार के दुख से लिप्त नहीं होता, बल्कि उनसे बाहर रहता है।

यह सबको अपने आधीन रखने वाला और सम्पूर्ण भूतों के अंतरात्मा अपने एक रूप को ही अनेक प्रकार का कर लेता है। अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्म-देव को जो धीर पुरुष देखते हैं, उन्हीं को नित्य सुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार पुनः आगे कहा गया है। जो अनित्य पदार्थों में नित्य स्वरूप तथा ब्रह्मा आदि चेतनों में चेतन है, जो अकेला ही अनेकों की कामनाएँ पूर्ण करता है। अपनी बुद्धि में स्थिर उस आत्मा को जो विवेकी पुरुष देखते हैं उन्हीं को नित्य शान्ति प्राप्ति होती है।"[1] यही एकात्मक अद्वैतवाद है। कबीर में भी इसी एकात्मक अद्वैतवाद के वर्णन मिलते हैं। एक स्थल पर वे उपनिषदों के ढंग पर कहते हैं कि हम एक आत्म तत्त्व को अद्वैत समझते हैं। द्वैत भाव हमें नहीं रुचता। जो द्वैत भाव का आग्रह करेंगे उन्हें दोजख भुगतना पड़ेगा। इस संसार में सब कुछ एक ही तत्त्व है। वही जल है, वही वायु और वही ज्योति है। एक तत्त्व से सांसारिक सृष्टि सृजित हुई है। वह एक आत्मा या ब्रह्म तत्त्व समस्त प्राणियों में परिव्याप्त है।[2]

ज्ञान तत्त्व :—वेद के उपनिषद् ग्रन्थों में ज्ञान काण्ड का ही वर्णन है वह ज्ञान क्या है ? गीता में इसका स्वरूप पूर्ण रूपेण स्पष्ट किया गया है। उसके अनुसार समस्त विभिन्न पदार्थों में एक ही अविभक्त अव्यय तत्त्व के दर्शन करना ज्ञान है। कबीर का एकात्म और अद्वैतवाद ज्ञान मूलक ही है।

गुरु भक्ति और भगवद्भक्ति :—उपनिषदों में गुरु भक्ति और भगवद्-भक्ति की भी चर्चा मिलती है। श्वेताश्वतर उपनिषद्[3] में स्पष्ट कहा गया है कि "जिसकी परमात्मा में उत्तम भक्ति है और परमात्मा के समान अपने गुरु में भक्ति है, उस परमात्मा को ऊपर कहे हुए सभी पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। महात्मा कबीर ने श्रुतियों में निर्देशित इन दोनों प्रकार की भक्तियों के प्रति सच्ची श्रद्धा प्रकट की है। वे अनन्य भगवद् भक्त और गुरु भक्त हैं। उनकी रचनाएँ दोनों प्रकार की भक्तियों से भरी हुई थीं।

---

१ कठोपनिषद्—अध्याय २/२/११, १२

२ क० ग्रं०—१०५ पद ५५

३ श्वेता० ६/२३

अध्यात्म योग :—कठोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म ज्ञान योग से सम्भव है। उसमें "स्थिर इन्द्रिय धारणा" को योग कहा गया है। कबीर का सहजयोग वास्तव में उपनिषदों का अध्यात्म योग ही है। कबीर ने अपने सहज-योग में इन्द्रियों और उसके स्वामी मन के निग्रह पर ही विशेष जोर दिया है।

प्रणवोपासना :—माण्डूक्योपनिषद् में प्रणव की महिमा का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। कठोपनिषद् में प्रणव को ही एक मात्र ब्रह्म रूप माना गया है।[1] प्रणव के महत्त्व को कबीर ने भी स्वीकार किया है। "ओं ओंकार आदि में जाना" कह कर उन्होंने यही बात ध्वनित की है।

जन्मान्तरवाद :—श्रुति ग्रन्थों में जन्मान्तरवाद की पूरी प्रतिष्ठा मिलती है। कठोपनिषद् में एक स्थल पर कहा गया है कि "मृत्यु के बाद जीव अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार शरीर धारण करने के लिये किसी योनि को प्राप्त होते हैं, और कितने ही स्थावर भाव को प्राप्त होते हैं। उपनिषदों का यह जन्मान्तरवाद कबीर को पूर्णतया मान्य है। वे कहते हैं"

"धावत जोनि जनम भ्रमि थाक्यो अब दुख करि हम हार्यो रे"।
(क० ग्रं० पृ० २६२)

(ख) वैष्णव मत :—कबीर ने किसी भी धर्म के प्रति यदि श्रद्धा दिखलाई है तो वह वैष्णव धर्म है। उसके उनमें निम्नलिखित तत्त्व पाए जाते हैं :—

१—भगवान् के विविध वैष्णवी नाम।
२—ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूपों के प्रति श्रद्धा।
३—भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति।
४—योग (यम के आचरण मूलक १२ भेदों को और नियम के सदाचरण प्रधान १२ भेद)
५—मायातत्त्व।

(१) वैष्णव मत में भगवान् के सहस्र नाम बतलाए गए हैं। कबीर ने इनमें से राम, हरी, गोविन्द, मुकुन्द, मुरारि, विष्णु, मधुसूदन आदि अनेक

---

१ **कठोपनिषद्**—१/२/१६

नामों से अपने ब्रह्म को अभिहित किया है। राम को उन्होंने सब नामों से अधिक महत्त्व दिया है। सम्भवतः इसका कारण रामानन्द का शिष्यत्व था।

(२) ब्रह्म के स्वरूप हम पीछे दिखला चुके हैं कि वैष्णव मत में भगवान् के सगुण और निर्गुण दोनों रूप मान्य हैं। अधिकतर प्रचार अवतारी रूपों का है। उनमें भी राम और कृष्ण का सबसे अधिक है। कबीर ने, अवतारवाद के कट्टर विरोधी होते हुए भी, राम, मुरारि आदि अवतारी नामों का निर्गुण ब्रह्म के अर्थ में प्रयोग किया है। निर्गुण के अतिरिक्त उनसे भगवान् के सगुण वर्णन भी मिलते हैं। उन्होंने कहीं पर उन्हें भक्तवत्सल कहा है और कहीं तीन लोक की पीर जाननेवाला कहा है। ऐसे सगुण वर्णन प्रायः भावात्मक हैं।

(३) भक्ति, उपासना और प्रपत्ति में वहुत अन्तर नहीं है। वैष्णव मत में पहले से ही भक्ति और उपासना का विशेष महत्त्व था। किन्तु आगे चल कर रामानुज और रामानन्द ने प्रपत्ति मार्ग का प्रवर्तन किया। प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। कबीर में शरणागति भावना के अन्तर्गत इनका वर्णन किया गया है।

योग :—वैष्णव मत में अष्टांग योग का भी विधान है। अष्टांगों में यम और नियम को विशेष महत्त्व दिया गया है। योग सूत्र में वर्णित यम के पाँच भेद भागवत में आकर १२ हो गए हैं।[1] इस प्रकार नियमों की संख्या भी पाँच से बारह हो गई है। भागवत में वर्णित नियम क्रमशः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, ह्री, असंचय, आस्तिक्य, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा और अभय हैं। नियम भी १२ हैं। ये क्रमशः शौच, वाह्य शौच, आभ्यन्तर जप, तप, होम, श्रद्धा, आतिथ्य, भगवत् दर्शन, तीर्थाटन, परार्थ चेष्टा और संतोष हैं।

इन यम नियमों से स्पष्ट है कि वैष्णव मत में सदाचारों को विशेष महत्त्व दिया गया है। कबीर ने उन्हें पूर्णरूपेण अपनाया है। उन्होंने सर्वत्र सदाचरण पर जोर दिया है। स्थान-स्थान पर इनके उदाहरण मिलते हैं। स्थानाभाव के कारण यहाँ पर उनका निर्देश करना असम्भव है।

माया तत्त्व :—वैष्णव मत में यद्यपि माया तत्त्व सिद्धांत रूप से मान्य

---

१ भागवत पुराण—११/१९/३३

नहीं है। किन्तु मायावादियों के प्रभाव से उसकी उस मत में अच्छी प्रतिष्ठा भी है। भागवत पुराण में एकाध स्थलों पर माया का अच्छा निरूपण किया गया है। बहुत सम्भव है कि कबीर को माया का वर्णन करने में भागवत पुराण से कुछ प्रेरणा मिली हो।

(ग) बौद्ध धर्म :—बौद्ध धर्म भारत का वह महान् धर्म है जिसे विश्व धर्म बनने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। यद्यपि कबीर के समय में यह प्रायः लुप्तप्राय हो चला था। इसलिये कबीर की विचारधारा का उससे प्रभावित होने की संभावना कम है। किन्तु सत्याग्रही महात्मा ने उसका ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा की हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। बौद्ध धर्म के निम्नलिखित तत्त्वों की छाया कबीर पर दिखाई देती है :—

(१) आर्य सत्य।
(२) बुद्धिवादिता।
(३) तत्त्व की अनिर्वचनीयता।
(४) मध्यमार्ग का अनुसरण।
(५) काया के क्लेशमय उग्र तप का विरोध।
(६) साम्यवाद।

आर्य सत्य :—बौद्धों के चार मूल तत्त्व आर्य सत्य कहलाते हैं। वे क्रमशः दुख, समुदय, निरोध और मार्ग हैं। कबीर में चारों आर्य सत्यों की छाया दिखलाई पड़ती है। पीछे इनका विवेचन विस्तार से किया जा चुका है।

बुद्धिवादिता :—बौद्धों का उपदेश है कि भिक्षु को पुद्गल शरण (गतानुगति) नहीं होना चाहिए। उसे युक्ति शरण (बुद्धिवादी) होना चाहिए। बौद्धों की यह बुद्धिवादिता कबीर में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। उनका दृढ़ मत था कि मनुष्य को लोक वेद का अंधानुसरण नहीं करना चाहिए। उनके समस्त सामाजिक और धार्मिक विचार बुद्धिवादी ही हैं। तत्त्व की अनिर्वचनीयता को बौद्ध दार्शनिक तत्त्व का वाच्यावाच्य कहते आए हैं। बोधिचर्यावतार में तो बुद्ध धर्म को ही अनक्षर कहा गया है। बौद्धों की इस बात का भी प्रभाव कबीर पर दिखाई पड़ता है उन्होंने ब्रह्म निरूपण में श्रुति ग्रन्थों के नेतिवाद और बौद्धों के तत्त्व अनक्षरत्व को आश्रय दिया है।

मध्यमार्ग का अनुसरण :—बौद्ध लोग बराबर दो अन्तों को छोड़ कर मध्यमार्ग पर जोर देते रहे हैं। मध्यमार्गानुसरण पर कबीर ने भी काफी जोर दिया है। कबीर ग्रन्थावली में "मधि कौ अंग" इसी का परिचायक है।

काया क्लेशमय उग्र तप का विरोध :—बौद्ध लोग काया क्लेशमय उग्र तप का सदैव विरोध करते थे। उनके अनुसरण पर ही मालूम होता है। कबीर ने भी कह दिया है "भूखे भगति न कीजै अपनी माला लीजै।"

साम्यवाद :—बौद्ध धर्म, वर्णाश्रम धर्म प्रधान, ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में उदय हुआ था। अतः उसमें साम्यवाद पर विशेष जोर दिया गया है। कबीर भी कट्टर साम्यवादी थे। बहुत सम्भव है कि उन्होंने बौद्धों से ही कुछ प्रेरणा प्राप्त की हो। साधारणतया यह इस्लाम का प्रभाव प्रतीत होता है।

(घ) बज्रयान और सहजयान :—मध्य युग में उत्तरी भारत में बज्रयान और सहजयान का अच्छा प्रचार था। वह दोनों मत बाद को चल कर एक हो गए थे। यह बौद्ध धर्म की ही दी हुई विकृत शाखाएँ हैं। कबीर पर इन दोनों के भी कुछ प्रभाव दिखलाई पड़ते हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं :—

(१) शून्यवाद।

(२) हृदयस्थ द्वैताद्वैत विलक्षण ब्रह्म।

(३) खंडन और मंडन की प्रवृत्ति।

(४) रहस्यात्मक अभिव्यक्ति।

शून्यवाद :—सिद्धों में शून्योपासना का बड़ा महत्त्व था। किन्तु उनकी शून्य सम्बन्धी भावना नास्तिकों की भावना थी। केवल कुछ ही सिद्ध ऐसे थे जिनमें आस्तिक शून्यवाद मान्य था। उन्होंने ही आगे चलकर नाथ पंथ का प्रवर्तन किया। कबीर ने शून्य शब्द को तो सिद्धों के ढंग पर नहीं लिया है। सम्भव है एक आध स्थलों पर उनकी धारणा सिद्धों से मिल जावे, किन्तु उनका शून्यवाद नाथ पंथियों की देन है।

हृदयस्थ द्वैताद्वैत विलक्षण ब्रह्म का वर्णन :—आस्तिक सिद्ध लोग अधिकतर हृदयस्थ द्वैताद्वैत विलक्षण ज्योति स्वरूपी या नाद स्वरूपी ब्रह्म में विश्वास करते थे। कबीर पर इसका कुछ प्रभाव ही पड़ा हो। पुनः नाथ पंथियों ने इस प्रभाव को दृढ़ बना दिया हो। कबीर ने अनेक स्थलों पर ब्रह्म को

हृदयस्थ बतलाया है और उसके स्वरूप को द्वैताद्वैत विलक्षण कहा है। "हृदय सरोवर आछै एक कमल अनूप, ज्योति स्वरूप पुरुषोत्तम जाके रेख न रूप।"[१]

खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति :—इन सिद्धों की सबसे प्रधान प्रवृत्ति खण्डन मण्डन की थी। यह धर्म के वाह्याचारों का खण्डन करते थे और अपने धर्म का मण्डन करते थे। उन्हीं की भाँति कबीर ने भी खण्डन मण्डन का कार्य अपने सर पर ले रखा था। उनके सामाजिक विचारों में उनका अच्छा प्रदर्शन किया गया है।

अभिव्यक्ति :—कबीर की अभिव्यक्ति सिद्धों की अभिव्यक्ति से प्रभावित मालूम पड़ती है। सिद्ध लोग प्रायः विचित्र रहस्यात्मक और संकेतात्मक ढंग से अपनी बात कहा करते थे। उनकी यह रहस्यात्मक अभिव्यक्तियाँ संध्या भाषा के नाम से प्रसिद्ध हैं। कबीर की बहुत सी उलटवासियाँ रूपक आदि सिद्धों से मिलते-जुलते हैं।

(ड) नाथ सम्प्रदाय :—वाममार्गी सिद्धों की तामसिक साधना की प्रतिक्रिया के रूप में नाथ पंथ का उदय हुआ। इस पंथ में सात्विक सदाचरणों पर विशेष जोर दिया गया है। इनकी साधना पद्धति हठयोग से विशेष प्रभावित है। कबीर पर नाथ पंथ का अच्छा प्रभाव पड़ा था। नाथ पंथ की निम्नलिखित बातों ने कबीर को प्रभावित किया था :—

(१) नाथ पंथी योगी का स्वरूप।
(२) नाथ पंथ के दार्शनिक सिद्धांत।
(३) नाथ पंथ की साधना पद्धति।
(४) नाथ पंथियों की भाषा और अभिव्यक्ति।

नाथ पंथी योगी का स्वरूप :—कबीर ने अपनी रचनाओं में योगियों के जो स्वरूप चित्रित किए हैं वे नाथ पंथी योगियों से बहुत मिलते जुलते हैं। नाथ पंथी योगी कान फटवाकर कुण्डल धारण करते हैं। किंगरी, मेखला, सींगी, जनेऊ, धारी, अधारी, गूदड़ी और खप्पड़ इनके दूसरे चिन्ह हैं। कबीर ने इन चिन्हों का प्रायः जब तब वर्णत किया है। जहाँ तक नाथ पंथियों के दार्शनिक

---

१ क० ग्रं०—पृ० १६

सिद्धांतों का सम्बन्ध है, कबीर उनसे अधिक प्रभावित नहीं हुए हैं। नाथ पंथियों का द्वैताद्वैत विलक्षण ज्योति स्वरूपी ब्रह्म धारणा कबीर को भी मान्य है। उन पर नाथ पंथियों के शब्दवाद का भी कम प्रभाव नहीं। नाथ पंथियों के नाद बिन्दु आदि न मालूम कितने पारिभाषिक शब्द कबीर में पाए जाते हैं। नाथ पंथियों की मुक्ति सम्बन्धी धारणा ने भी कबीर को प्रभावित किया है।

नाथ पंथी साधना पद्धति :—नाथ पंथियों की साधना पद्धति का कबीर पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ा है। उन्होंने उन्हीं के समान गुरु का महत्त्व स्वीकार किया है। उन्हीं के समान उन्होंने इन्द्रिय साधना, प्राण साधना, मन साधना आदि पर जोर दिया है। नाड़ी साधना और कुण्डलिनी साधन की भी चर्चा कबीर में मिलती है। षट् चक्र भेदन कबीर का प्रिय विषय रहा है। अजपा सुरति, शब्द योग, शून्य, सहज निरंजन आदि बातें कबीर की योग साधना में मिलती हैं।

नाथ पंथी भाषा और अभिव्यक्ति :—इनका भी पर्याप्त प्रभाव कबीर पर पड़ा था। कहीं कहीं पर गोरखनाथ के शब्दों, वाक्यों व वाक्यांशों को कबीर ने न जाने कितनी बार प्रयुक्त किया है।

(घ) कुछ अन्य भारतीय प्रभाव :—इनके अन्तर्गत प्रमुख रूप से जैन धर्म, निरंजन परम्परा और तन्त्र मन्त्र आते हैं।

तन्त्र मन्त्र :—कबीर तन्त्र मन्त्र के दर्शन से बिल्कुल नहीं प्रभावित हैं। हाँ उनकी साधना पद्धति की छाया अवश्य दिखाई पड़ती है। तांत्रिकों की चक्र भेदन, कुण्डलिनी उत्थापन सम्बन्धी बातें कबीर में भी पाई जाती हैं।

निरंजन परम्परा :—अनुराग सागर में निरंजन पुरुष द्वारा प्रवर्तित किए जाने वाले १२ मतों का उल्लेख है। उन १२ मतों में एक निरंजन मत भी है। किन्तु मूल निरंजनी मत की रूपरेखा स्पष्ट नहीं हो सकी है। डा० बड़थ्वाल ने निरंजनी कवियों के आधार पर निरंजन मत की कुछ बातें स्पष्ट की हैं। कबीर का निरंजनियों से विशेष सम्बन्ध मालूम होता है। निरंजनियों की निम्नलिखित बातें कबीर की विचारधारा में दिखाई पड़ती हैं :—

(१) उल्टी चाल।

(२) योग साधना।

(३) नामस्मरण।

(४) अजपाजाप।

इन सबका पीछे विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है।

जैन धर्म :—जैन धर्म की अहिंसा का प्रभाव कबीर पर दिखाई पड़ता है।

(छ) इस्लाम :—कबीर का इस्लाम से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। किन्तु फिर भी ढूँढ़ने पर उनकी विचारधारा में इस्लाम के कुछ तत्वों के प्रभाव चिन्ह मिलते हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं :—

(१) भयवाद।

(२) साम्यवाद।

(३) पैगम्बरवाद।

(४) नूरवाद।

(ज) सूफी संप्रदाय :—कबीर के समय में सूफियों की परम्परा अत्यन्त विकास पा रही थी। कबीर पर भी उनके कुछ प्रभाव परिलक्षित होते हैं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

(१) हक।

(२) मारिफत।

(३) इश्क।

(४) अभिव्यक्ति।

हक :—सूफियों में हक के सम्बन्ध में विविध मत प्रचलित हैं। इनमें इब्नसिना का सौंदर्यवाद और हल्लाज मंसूर का प्रेमवाद बहुत प्रसिद्ध है। कबीर में दोनों की थोड़ी बहुत छाया देखी जाती है। पीछे हम उनके उदाहरण दे चुके हैं।

मारिफत :—इसका वर्णन करते हुए डा० रामकुमार वर्मा[१] लिखते हैं "मारिफत में रूह बक़ा प्राप्त करने के लिये फना हो जाती है। फना होने में इश्क का बहुत बड़ा हाथ है। बिना इश्क के बक़ा की कल्पना ही नहीं हो सकती है।

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २८१—परिवर्धित संस्करण

इसी बक़ा में रूह अपने को अनहलक की अधिकारिणी बना लेती है। कबीर ने इसी अवस्था का वर्णन "हम चू बूँदन बूँद खालिक गरक हम तुम पेश"[1] इस अनहलक की अधिकारिणी बनकर रूह आलमे लाहूत की निवासिनी बनती है। लाहूत के पहले अन्य तीन जगतों में आत्मा अपने को पवित्र बनाने का प्रयत्न करती है। उसे हम परिष्करण की स्थिति कह सकते हैं। वे तीन जगत हैं:—आलमे नासूत, आलमे मलकूत, आलमे अबरूत। कबीर में सूफियों की इस मारिफत अवस्था के संकेत पाए जाते हैं, किन्तु वह सूफियों से आगे बढ़े हुए हैं। उनकी मिलन दशा या मोक्ष की स्थिति पूर्ण अद्वैती है। यह मिलन जल जल का सा है।

इश्क :—सूफियों की साधना में ईश्वर को विशेष महत्त्व दिया गया है। सूफियों के इश्क से कबीर भी प्रभावित हैं। उन्हीं के ढंग पर उनमें प्रेम रस और कुमार आदि के वर्णन मिलते हैं।

अभिव्यक्ति :—सूफी लोग आत्मा और परमात्मा के बीच एक मौन और अविच्छिन्न सम्बन्ध मानते हैं। प्रेम की चरम परिणति दाम्पत्य प्रतीकों में देखी जाती है। अतः सूफियों ने अधिकतर दाम्पत्य प्रतीकों के ही सहारे अपनी भावनाएँ अभिव्यक्त की हैं। दाम्पत्य प्रतीक पद्धति कबीर ने भी अपनाई है। "हरि मेरा पीव मैं राम की बहुरिया" कहकर उन्होंने उसकी ओर अपना रुझान प्रकट किया है।

(क) सम्पूर्ण प्रभावों की क्रिया :—इन सब प्रभावों के फलस्वरूप कबीर की विचारधारा बहुत समृद्ध हुई। उसमें व्यवस्थित साधना पद्धतियों का विकास हुआ। भक्ति और योग दोनों के संगत और सविस्तार वर्णन मिलते हैं। अद्वैतवाद का भी जो रूप उसमें दिखाई पड़ता है वह भी बहुत पूर्ण है। धर्म और समाज सम्बन्धी जो विचार उन्होंने प्रकट किए हैं, वे भी अत्यन्त सारपूर्ण हैं। उनकी वाणी में धर्म का जो रूप विकसित हुआ है, वह अत्यन्त सहज, सरल, सात्विक और बुद्धिवादी है। उन्होंने कभी-कभी विविध साधनाओं के सच्चे स्वरूप को भी समझने की चेष्टा की है।

---

१ क० ग्रं०—पृ० १७७

(ख) सम्पूर्ण प्रभावों की प्रतिक्रिया :—उपर्युक्त विवेचित धार्मिक तत्त्वों और प्रभावों का कबीर पर केवल क्रियात्मक प्रभाव ही नहीं दिखाई पड़ता, कुछ प्रतिक्रियात्मक प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इसी प्रतिक्रियात्मक प्रभाव के फलस्वरूप कबीर की विचारधारा में निम्नलिखित रूपों में विध्वंसात्मक तत्त्वों की अवतारणा हुई है :—

(१) वर्णाश्रम धर्म तथा विविध धर्मों के वाह्याचारों का विरोध।

(२) हठयोग का विरोध।

(३) लोक और वेद के अंधानुसरण का विरोध।

(४) अवतारवाद का खण्डन।

(ग) कबीर के धार्मिक सिद्धान्तों की प्रखरता में उनका योग :—इन विविध प्रभावों की क्रिया और प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कबीर के धार्मिक सिद्धांतों ने और भी स्पष्ट रूप धारण कर लिया। उनके धार्मिक सिद्धांतों के स्वरूप का एक पक्ष रचनात्मक है, दूसरा विध्वंसात्मक। रचनात्मक पक्ष में उन्होंने सत्याचरण और सदाचरणों पर विशेष जोर दिया है। इसी के अन्तर्गत भावात्मक उपासना को भी महत्त्व दिया गया है। ध्वंसात्मक पक्ष वाह्याचारों से सम्बन्धित है। मिथ्याडम्बर और व्यर्थ के वाह्याचारों का कबीर ने अपने सच्चे धर्म से वहिष्कार कर दिया है।

(घ) धार्मिक सिद्धांतों का अन्तिम स्वरूप :—इसका सविस्तार विवेचन तो विचारों के अन्तर्गत किया जावेगा। यहाँ पर इतना ही कहना है कि कबीर का धर्म सम्बन्धी अंतिम मत अत्यन्त सरल, सहज और बौद्धिक है। उसमें कर्म-कांड से रहित जीवन की सहज क्रियात्मक अभिव्यक्ति से परम सत्ता की अनुभूति और उससे व्यक्तिगत, सामाजिक और पारलौकिक दर्शन से आनन्द की प्राप्ति पर विशेष जोर दिया है।

कबीर की विचारधारा के स्वरूप सँवारने वाले तत्त्वों का इतना वर्णन कर लेने के बाद अब आगे के परिच्छेद में कबीर की विचारधारा का विश्लेषण विस्तार से करने का प्रयत्न किया जावेगा।

तीसरा प्रकरण

कबीर के आध्यात्मिक विचार—(पूर्वार्ध)

(अधिष्ठान तत्त्व सम्बन्धी)

(१) अध्यात्म और अनुभूति ।

(२) ब्रह्म विचार—
ब्रह्म जिज्ञासा—ब्रह्म भावना—ब्रह्म निरूपण—निष्कर्ष ।

(३) आत्म विचार—
कबीर और आत्म विचार—आत्म निरूपण—जीव की एकता—जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध

(४) मोक्ष (ज्ञानात्मक ऐक्य) सम्बन्धी विचार—मोक्ष विवेचन—कबीर का मोक्ष स्वरूप ।

(५) रहस्य भावना (भावात्मक ऐक्य सम्बन्धी) विचार ।
रहस्यवाद—आस्तिकता प्रेम सम्बन्धी रहस्यवाद—यौगिक—रहस्यवाद—पारिभाषिक शब्द प्रधान रहस्यवाद—भक्ति मूलक रहस्यवाद—विशेषताएँ—निष्कर्ष ।

कबीर के आध्यात्मिक विचार

भारत में अध्यात्म विद्या की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। "अध्यात्म विद्या विद्यानाम्" कहकर भगवान् कृष्ण ने अध्यात्म विद्या की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। उपनिषदों में भी ब्रह्म विद्या के अभियान से इसी को महत्त्व दिया गया है। अध्यात्म शास्त्र आधिभौतिक शास्त्र के बिलकुल विरुद्ध है। आधिभौतिक शास्त्र के विषय

इन्द्रिय गोचर होते हैं और अध्यात्म शास्त्र के विषय इन्द्रियातीत। अध्यात्म के अन्तर्गत आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, सृष्टि, विकास, माया आदि विषयों की विवेचना आती है।

अध्यात्म और अनुभूति :—अध्यात्म और अनुभूति में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अध्यात्म शास्त्र का विषय स्वसंवेद्य है। केवल आधिभौतिक युक्तियों से उसका निर्णय नहीं हो सकता है। आधिभौतिक शास्त्र में प्रायः प्रत्यक्ष के सभी अनुभव प्रामाणिक माने जाते हैं। इसके विपरीत अध्यात्म शास्त्र में वाह्य युक्तियों की प्रतिष्ठा नहीं होती। अध्यात्म क्षेत्र में स्वानुभव अर्थात् आत्म प्रतीति को ही महत्त्व दिया जाता है। स्वयं शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्र के भाष्य में एक स्थल पर लिखा है—"जो पदार्थ इन्द्रियातीत है और इसीलिये जिनका चिन्तन नहीं किया जा सकता है, उनका निर्णय केवल तर्क या अनुमान से नहीं करना चाहिए। सारी प्रकृति से भी जो पदार्थ है वह अचिन्त्य है।"[1] मुण्डक और कठोपनिषद् में स्पष्ट लिखा है कि आत्मज्ञान केवल तर्क से ही नहीं प्राप्त हो सकता है।[2] पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी अध्यात्म निरूपण करते हुए कुछ ऐसे ही विचार प्रकट किए हैं। मैकेन्जी साहब ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "एलीमेन्ट आफ मैटाफिजिक्स" में एक स्थल पर अध्यात्म को वह विद्या कहा है जिसमें अनुभव का ही सार तत्त्व से विचार किया जाता है। सर राधाकृष्णन् ने भी भारतीय तत्त्व ज्ञान के इतिहास में अध्यात्म विद्या को मूलतः अनुभूति तत्त्व का विचार कहा है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य दार्शनिक डेसकार्टी, लाकी, कोट आदि ने तत्त्व ज्ञान में अनुभूति के महत्त्व का विस्तार से प्रतिपादन किया है।

महात्मा कबीर उच्च कोटि के भक्त थे। भक्ति के आवेश में वे कभी-कभी ब्रह्म-निरूपण भी करने लगते थे। ब्रह्म-निरूपण और विचार निमग्नता की इस स्थिति में कभी-कभी उन्हें ब्रह्मानुभव भी होने लगता था। उन्होंने कहा भी है—"राम रतन पाया रे करत विचारा।" इसके अतिरिक्त उनकी बानियों में अनेक

---

१ वेदान्तसूत्र—मा० ३।१।२७

२ मु० ३।२।३
कठ २।८।६ और २२

स्थलों पर यह भी ध्वनित मिलता है कि उन्होंने "नैना वैन अगोचरी"[१] ब्रह्म का साक्षात् अनुभव किया था।[२] वे उस अनुभव को अनिर्वेद्य समझते थे। "जर्णा को अंग में" उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह उनकी ब्रह्मानुभूति से ही सम्बन्धित है। उनका दृढ़ विश्वास था कि सत्य की अनुभूति पुस्तक ज्ञान से नहीं हो सकती। उपनिषदों में तो यह बात बराबर दुहराई गई है।[३] इसी प्रकार सत्य निरूपण में वह तर्क को भी निरर्थक मानते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा है "कहत कबीर तरक दुई साधे, तिनकी मति है मोटी।"[४] अब यह विचारणीय है कि साक्षात् अनुभव की इस दशा में कौन द्दष्टा होता है और कौन द्दश्य। इसके सम्बन्ध में कबीर का निश्चित मत है कि आत्मा ही द्दष्टा या ज्ञाता है और आत्मा ही द्दश्य या ज्ञेय। वे स्पष्ट कहते हैं "आप पिछानै आपै आप।"[५] अर्थात् आत्मा ही आत्मा का अनुभव करती है। यह बात पाश्चात्य दार्शनिकों के "सत्य का अनुभव सत्य से ही हो सकता है" वाले सिद्धान्त[६] से भी पूरा मेल खा जाती है। अब प्रश्न यह है कि एक ही आत्मा द्रष्टा और द्दश्य, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों कैसे हो सकती है।[७] इसके सम्बन्ध में हमें उपनिषदों में अच्छा संकेत मिलता है। कठोपनिषद् में "छायातपौ" के समान एक ही बुद्धि रूपी गुहा में स्थित दो तत्त्व बतलाए गए हैं। अन्य स्थलों पर इनकी कल्पना एक पेड़ पर बैठे हुए दो पक्षियों के रूपक से की गई है।[८] इनमें से एक को कर्माकर्म का कर्त्ता और उपभोक्ता कहा गया है तथा दूसरे को शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निर्गुण और निरंजन रूप उपभोग्य। इस प्रकार एक ही आत्मा के उपभोक्ता और उपभोग्य या ज्ञाता

---

१ कबीर ग्रंथावली—पृ० २४१

२ क० ग्रं० पृ० ४ साखी ३९

३ "नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो........." कठो० १ प्र० ब० २ में २३

४ क० ग्रं० पृ० १०९

५ क० ग्रं० पृ० २१८

६ मिस्टिसिज्म बाई अंडर हिल—पृ० २७

७ कठोपनिषद् १/३/१

८ मुंडक ३।१, २ ऋग्वेद १।१३।४२१

और ज्ञेय दो भेद ध्वनित मिलते हैं। कबीर ने जब यह लिखा कि "आप पिछानै आपै आप",[1] तो उनकी दृष्टि में ज्ञाता और ज्ञेय के यही विभाग रहे होंगे। अद्वैतवादी कबीर की इस प्रकार की दृष्टि होना स्वाभाविक भी था। यहाँ पर कबीर के अनुभव के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। वह यह कि उनकी अनुभूति काफी ऊँची वस्तु है। वह सत्य का पूरा अनुभव करने में समर्थ है। कबीर ने कई स्थलों पर "पूरें सों परचा" की बात कही है। बर्गसों की अनुभूति इससे निम्नतर वस्तु है। उसने उसे कोरी बौद्धिक सहानुभूति भर माना है। वह सत्य का अनुभव कराने वाली वस्तु नहीं है। वह केवल जड़ानुभूति कराने में ही समर्थ है।[2] कांट साहब के अन्तर्ज्ञान (इनट्यूशन) से भी कबीर का अनुभव कहीं ऊँची वस्तु है। कांट का इनट्यूशन अध्यात्म ग्रहण में समर्थ ही न था। तभी तो उसे अपने प्रेलोगेमा में अध्यात्म विचार को असम्भव कहना पड़ा है।

ब्रह्म जिज्ञासा :—महात्मा कबीर ने बार-बार कहा है कि उनके जीवन का लक्ष्य ब्रह्म विचार करना है।[3] ब्रह्म विचार का प्रश्न बड़ा कठिन है। उपनिषदों में ब्रह्म ज्ञान की दुर्लभता का संकेत बार-बार किया गया है। यह आत्म ज्ञान सबको प्राप्त नहीं होता है। जिस पर गोविन्द की बड़ी कृपा होती है उसी की प्रवृत्ति इस ओर हो पाती है। इस प्रवृत्ति के उदय होते ही साधक के हृदय में तीव्र ब्रह्म-जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इस ब्रह्म-जिज्ञासा के बिना ब्रह्मानुभूति नहीं हो सकती। तभी तो अध्यात्म शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र का आरम्भ "ब्रह्म-जिज्ञासा" से ही हुआ है। इस ब्रह्म-जिज्ञासा के उदय होते ही साधक ब्रह्म को जानने के लिये, उससे साक्षात्कार करने के लिये तड़प उठता है। उसमें संसार के प्रति वैराग्य और निर्वेद जाग्रत हो जाता है। उसे अनुभव होने लगता है कि वह भवसागर में डूब रहा है और उससे उसका उद्धार तभी हो सकता है जब उसे ब्रह्म-ज्ञान एवं ब्रह्मानुभूति हो जावे। इसी अवस्था में वह गुरु की

---

१ क० ग्रं० पृ० ३१८

२ क्रियेटिव एवोल्यूशन बाई बर्गसों—पृ० २५१

३ क० ग्रं० पृ० २७३

आवश्यकता का अनुभव करता है और सच्चे गुरु की खोज में निकल पड़ता है, क्योंकि वही उससे मिला सकता है। इस अवस्था में साधक अपना सर्वस्व त्यागने के लिये तैयार हो जाता है, क्योंकि इस अवस्था में मन पाप कर्मों से निवृत्त हो जाता है। इन्द्रियाँ भी शांत हो जाती हैं। इसीलिए कठोपनिषद् में कहा है कि वह व्यक्ति जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, तथा जिसका तन, मन और इन्द्रियाँ शांत नहीं हुई हैं, वह आत्म ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाता।[1] कठोपनिषद् में इस अवस्था का कथा रूप में सुन्दर वर्णन मिलता है। परम जिज्ञासु नचिकेता जब यम से अध्यात्म सम्बन्धी प्रश्न करता है, तब यम उसे अनेक प्रलोभन दिखलाते हैं और कहते हैं कि वह इन जटिल बातों को जानने की चेष्टा न करे। किन्तु परम जिज्ञासु नचिकेता उन समस्त प्रलोभनों पर लात मार देता है। क्योंकि "श्वोभावः भर्त्यस्य यदन्तकेतत सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।"[2] अर्थात् यह सब योग ऐसे हैं जिनका अस्तित्व संदिग्ध है। कल रहेंगे या नहीं यह निश्चित नहीं है तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों के तेज को जीर्ण करने वाले हैं। अंत में वह स्पष्ट कह देते हैं "न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः"[3] अर्थात् धन से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती। जिज्ञासु कबीर की दशा नचिकेता से कम न थी। वे भी उन्हीं के समान अपना घर जलाकर उसकी खोज में निकल पड़ते हैं।[4] अपनी खोज में उन्हें माया तो बहुत मिलती है, किन्तु ब्रह्म जिज्ञासा से उद्विग्न कोई नहीं दिखाई देता।[5] और न ऐसा ब्रह्मज्ञ ही मिलता है, जो बुद्धि गुहा में स्थित ब्रह्म के साक्षात्कार की विधि बता दे।[6]

---

१ कठो० अ० १ ब २ नं० २४
२ कठो० १/१/२६
३ अध्याय १, बल्ली १, श्लोक २६, २७ कठोपनिषद् में देखिए
४ हम घर जाल्या आपुड़ा लिया मुराड़ा हाथ,
अब घर जालौ तास का जो चलै हमारे साथ। क० ग्रं० पृ० ६७
५ "माया मिलै मोहवंती कहै आंखै बैन
कोई घायल बेध्या न मिलै साईं हंदा सैण" ॥ क० ग्रं० पृ० ६७ ॥
६ ऐसा कोई न मिलै सब विधि देइ बताय।
सुनि मंडल में पुरिष एक ताहि रह्यो ल्यो लाय ॥ क० ग्रं० पृ० ६७

कबीर अपनी खोज में सफल हो जाते हैं। उन्हें गोविन्द की कृपा से गुरु मिल जाता है।[1] वह उन्हें सब कुछ रहस्य बतला देता है। सद्गुरु की प्राप्ति होते ही उसमें ज्ञानोदय हो जाता है।[2] इस ज्ञानोदय के फलस्वरूप उनमें भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम जग पड़ता है। इस अनन्य प्रेम की वर्षा से उनके हृदय की सारी जलन शांत हो जाती है और आत्मा निर्मल हो उठती है।[3] उनका "पूरे से परचा" हो जाता है।[4] उनका ब्रह्म निरूपण इसी परचा का परिणाम है। स्पष्ट ही उनका यह "परचा" अनुभूति मूलक है।

कबीर की ब्रह्म-भावना :—संसार के कण-कण में एक अलौकिक अनिर्वचनीय एवं अव्यक्त सत्ता विद्यमान है। इसी सत्ता की आत्मगत अनुभूति का नाम ब्रह्म-भावना है। यह ब्रह्म-भावना तीन प्रकार की हो सकती है—आधि-भौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। जड़वादियों की ब्रह्म-भावना अधिकतर आधिभौतिक होती है। हेकल के जड़ाद्वैतावाद में जो ब्रह्म-भावना है, वह आधिभौतिक है। वे इस जड़ सृष्टि के पदार्थों को ठीक वैसा ही समझते हैं जैसा कि उन्हें दिखाई देते हैं। पदार्थों के वाह्य रूप के अतिरिक्त वह उनके आन्तरिक सौंदर्य को नहीं देख पाते हैं। आज के पाश्चात्य आधिभौतिक दार्शनिकों की भी सृष्टि विवेचना ऐसी ही है। कांट, मिल स्पेंसर, हेगल आदि अधिकतर अन्ध शक्ति मात्र में विश्वास करते हैं। ब्रह्म की आधिदैविक भावना इससे भिन्न है। ब्रह्म की आधिदैविक भावना सम्पन्न साधक वाह्य सौंदर्य और शक्ति का दैवीकरण करके उन्हें साकार सगुण रूप में चित्रित किया करता है। भारत और ग्रीस में ब्रह्म की अधिदैविक भावना का बड़ा प्रचार रहा है। बहुदेववाद का प्रवर्तन

---

१ जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिल्या आई ॥ क० ग्रं० पृ० २

२ पाछे लागा जाई था लोक वेद के साथ।
आगे थे सद्गुरु मिला दीपक दिया हाथ ॥ क० ग्रं० पृ० २

३ सद्गुरु हमसे रीझकर, एक कहा, पर संग।
बरसा बादल प्रेम का भीज गया सब अंग ॥ क० ग्रं० पृ० ४

४ पूरे से परचा भया सब दुख मेल्या दूर।
निर्मल कीन्ही आत्मा ताथे सदा हजूर ॥ क० ग्रं० पृ० ४

इसी के फलस्वरूप समझना चाहिए। भक्तों की भावना अधिकतर आधिदैविक होती है। आध्यात्मिक ब्रह्म भावना इन दोनों प्रकार की भावनाओं में श्रेष्ठ है। इसमें आधिभौतिक पर्यवेक्षण के अनुरूप न तो हमारी दृष्टि केवल वाह्यत्मक रहती है और न आधिदैविक भावना के अनुकूल वह ब्रह्म सत्ता का दैवीकरण ही करती है। उसमें ब्रह्म सत्ता का अनुभव निर्गुण, निराकार और अनिर्वचनीय सत्ता के रूप में होता है। साधक विश्व की प्रत्येक वस्तु में इस सत्य के दर्शन करता है। जहाँ तक कबीर की ब्रह्म-भावना का सम्बन्ध है, वह पूर्ण आध्यात्मिक है। यह आध्यात्मिक दृष्टि उसी को प्राप्त हो सकती है जिसने तर्क करना त्याग दिया है।

"सर्व भूत एकै कर जान्या चूके वाद विवादा"

(क० ग्रं० पृ० २६४)

ऐसा ही व्यक्ति चन्द्र और सूर्य की ज्योति के परे भी एक अनिर्वचनीय ज्योति के दर्शन करने लगता है।

चन्द्र, सूरज हुई जोति स्वरूप।
ज्योती अन्तर ब्रह्म अनूप॥ (क० ग्रं० पृ० २८४)

सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा।
सब महि पसरा ब्रह्म पसारा॥ (क० ग्रं० पृ० २७३)

यही आध्यात्मिक भावना है। अद्वैतवाद इसी आध्यात्मिक दृष्टि का परिणाम है। कबीर की इसी आध्यात्मिक दृष्टि का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में मिलता है :—

लोगा भरमि न भूलहू भाई।
खालिकु खलक खलकु महि खालिक पूर रह्यो सब ठाईं॥
माटी एक अनेक भाँति करि साजी साजन हारे।
न कछु पोच माटी के भाणे न कछु पोच कुँभारै॥
सब महि सच्चा एको सोई तिसका किया सब किछु होई।

(क० ग्रं० पृ० २६८)

जहाँ तक आधिभौतिक और आधिदैविक ब्रह्म-भावना का सम्बन्ध है कबीर इनसे बहुत दूर थे। आधिभौतिक ब्रह्म-भावना जड़वादियों की है। महात्मा कबीर जिनका स्वामी "ज्योति स्वरूपी" तत्त्व होते हुए भी "अनद विनोदी" है और किसी की जाति-पाँति में विश्वास नहीं करता, इसी प्रकार वह "सकल अतीत रह्यो घट पूरी" होते हुए भी 'तीन लोक की जानै पीर भी है।'

आधिदैविक ब्रह्म की भावना भी कबीर को मान्य नहीं थी। इसके कई कारण थे। प्रथम तो यह कि इसमें श्रेष्ठतम दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैतवाद के स्थापन में थोड़ी बाधा पहुँचाती है। दूसरे भक्ति में अनन्यता नहीं आ सकती। इसके लिये उन्होंने वेश्या के पुत्र का अच्छा उदाहरण दिया है :—

राम पियारा छाँड़िकर करै कौन कू जाप।
वेश्या केरा पूत ज्यों कहै कौन कू बाप॥

(क० ग्रं० पृ० ६)

उन्होंने अनन्त ब्रह्म की तुलना में देवताओं को छीलर कहा है :—

कबीर राम को ध्याइ ले जिह्वा सौं करि मंत।
हरि सागर जिन बीसरै छीलर देखि अनन्त॥

(क० ग्रं० पृ० ७)

दृष्टांत सुन्दर है। वास्तव में समुद्र को त्याग कर छीलरों की शरण में जाने वाले से अधिक मूर्ख कौन हो सकता है? कबीर ने आधिदैविक भावना का आश्रय नहीं लिया। इसका एक कारण और है। वह यह कि वह समाज में झगड़े की जड़ हो सकती थी। यदि वे हिन्दुओं के राजा राम के उपासक बनते तो मुसलमानों को बुरा लगता और यदि वे एकेश्वर खुदा को मानते तो हिन्दुओं की भावनाएँ व्यथित होतीं। यदि योगियों का साथ न देते तो उन्हें बुरा लगता। अतः इन सब झगड़ों से बचने के लिये उन्होंने भगवान् के आध्यात्मिक स्वरूप को चुना जो सब प्रकार से आधिदैविक भावना से भिन्न है। वह न तो योगियों का गोरख है और न मुसलमानों का एक खुदा है। वह हिन्दुओं का राजा राम भी

नहीं है। वह घट-घट व्यापी है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर ने ब्रह्म की आधि-भौतिक और आधिदैविक भावना त्याग कर आध्यात्मिक भावना को ही आश्रय दिया था। उनका ब्रह्म निरूपण इसी के प्रकाश में देखना चाहिए। ●

कबीर का ब्रह्म-निरूपण

आचार्य क्षिति मोहन सेन ने लिखा है कि "कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्व ग्रासी है। वह कुछ भी छोड़ना नहीं चाहती, इसीलिये वह ग्रहणशील है; वर्जनशील नहीं, इसीलिये उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी प्रभृति सब साधनाओं को जोर से पकड़ रखा है।[2] कबीर के आध्यात्मिक स्वरूप को, विशेषकर उनके ब्रह्म वर्णन को समझने के लिये आचार्य जी की उपर्युक्त उक्ति ध्यान में रखनी पड़ेगी। कबीर का ब्रह्म निरूपण वैदिक ब्रह्म निरूपण के ढंग पर होने पर भी अनेक धर्मों की ब्रह्म भावनाओं से प्रभावित है। जहाँ पर उन्होंने उपनिषदों की ब्रह्म निरूपण की विविध शैलियों को अपनाया है वहीं उन्होंने योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षणवाद के ढङ्ग पर भी ब्रह्म का वर्णन किया है। उनके ब्रह्म निरूपण पर बौद्धों, सिद्धों और योगियों के शून्यवाद की धूमिल छाया भी देखी जा सकती है। सहजवादियों के सहज ब्रह्मवाद से भी वे प्रभावित हैं। वेदों में वर्णित योग में निर्देशित भर्तृहरि द्वारा निरूपित शब्द ब्रह्म के भी वर्णन उनमें अनेक बार आए हैं। इस्लामिक एकेश्वरवाद की भी अत्यन्त हलकी झलक कहीं-कहीं पर मिल जाती है। सूफियों के नूरवाद, इश्कवाद आदि का तो पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि कबीर का ब्रह्म निरूपण वैदिक एकेश्वरी अद्वैतवादी होते हुए भी सर्वात्मवाद

---

१ जोगी गोरख गोरख करै, हिन्दू राम नाम उच्चरै।
मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीर का स्वामी घट घट रह्यो समाई॥
(क० ग्रं० पृ० २००)

२ कबीर का योग—आचार्य क्षिति मोहन सेन—योगांक (कल्याण)—पृ० २११

और परात्परवाद के अधिक समीप है। किन्तु अनेक स्थलों पर उसका स्वरूप अन्य विविध धर्मों की ब्रह्म भावना से भी सँवारा गया है।

प्रधान रूप से ब्रह्म के दो स्वरूप बहुत स्पष्ट होते हैं—व्यक्त और अव्यक्त। साधारणतया अव्यक्त ब्रह्म की भावना अधिकतर आध्यात्मिक ही हुआ करती है। हम ऊपर कह चुके हैं कि कबीर का ब्रह्म निरूपण पूर्णरूप से आध्यात्मिक है। उन्होंने सर्वत्र अव्यक्त ब्रह्म के वर्णन ही प्रस्तुत किए हैं। ब्रह्म के व्यक्त स्वरूप के वर्णन उनमें केवल एकाध स्थलों पर ही मिलते हैं। यहाँ पर पहले हम उन्हीं पर विचार करेंगे। कबीर में पाए जाने वाले यह अव्यक्त ब्रह्म के वर्णन प्रायः आध्यात्मिक होते हुए भी आधिदैविक हो गए हैं। इसका प्रमुख कारण कबीर की रहस्य भावना और भक्ति भावना है। यद्यपि भक्ति मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के ब्रह्म के प्रति सम्भव है, और कबीर में भी यह बात ध्वनित पाई जाती है, किन्तु प्रधान रूप से उनके उपास्य निर्गुण ब्रह्म ही हैं। यही कारण है कि न तो उन्हें पूजा करनी पड़ती है और न नमाज ही पढ़नी पड़ती। वे निराकार ब्रह्म को हृदय में ही नमस्कार कर भगवान् की भक्ति कर लेते हैं।

पूजा करूँ न नमाज गुजारूँ,
एक निराकार हृदय नमस्कारूँ। (क० ग्रं० पृ० २००)

यह तो हुई कबीर की निर्गुण के प्रति प्रदर्शित की गई भक्ति भावना की संक्षिप्त चर्चा। अब हम कबीर के सगुण और व्यक्त उपास्य स्वरूप की विवेचना करेंगे।

ब्रह्म का साकार व्यक्त रूप :—यह सही है कि भक्ति निर्गुण ब्रह्म के प्रति सम्भव नहीं है और ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप भी वही है। किन्तु गीता में कहा है—"अव्यक्त में चित्त की एकाग्रता करने वाले को बहुत कष्ट होते हैं क्योंकि इस अव्यक्त गति को पाना देहेन्द्रिय धारी मनुष्य के लिये स्वभावतः कष्ट-दायक है।"[१] इसीलिये भक्त लोग सगुण साधना की ओर अधिक उन्मुख हुआ करते हैं। दूसरे भक्ति हृदय की सात्विक अनन्यासक्ति है। यह आसक्ति सगुण और साकार के प्रति ही हो सकती है, क्योंकि भक्ति में मन का केन्द्रीभूत होना

---

१ गीता—१२/५

आवश्यक होता है। मन बिना श्रद्धा और प्रेम के केन्द्रित नहीं हो सकता। प्रेम की जागृति के लिये ईश्वरीय सौंदर्य और ज्ञान परमापेक्षित है। इसके अतिरिक्त पूर्व जन्म के संस्कार भी प्रेम की जागृति का कारण होते हैं। महाकवि भवभूति की प्रसिद्ध पंक्ति "व्यतिषजति पदार्थान् कोऽपि आन्तरिक हेतुःन खलुवहिरुपाधीन् प्रीतियः संश्रयन्ते" यही बात प्रकट करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर जन्म से ही ऐसे संस्कार लेकर उत्पन्न हुए थे जिनके प्रभाव से उनके हृदय में भगवान् की अनन्य भक्ति जाग्रत हो उठी थी, किंतु फिर भी प्रेम की स्थिरता के लिये कोई आश्रय अवश्य चाहिये। यह आश्रय तीन प्रकार के हो सकते हैं :—

(१) भावना विनिर्मित।

(२) बुद्धि विनिर्मित।

(३) प्रतीक के रूप में।

भगवान् का भावना विनिर्मित स्वरूप :—यों तो कबीर में सगुण ब्रह्म की अवतारणा तीनों आश्रयों से हुई है, किन्तु उनका भावना विनिर्मित विग्रह दर्शनीय है। भक्त अपनी भावना के आवेश में अपने उपास्य में श्रेष्ठतम मानव गुणों का आरोप करता है। इस आरोप का प्रमुख कारण यही है कि वह भगवान् के अत्यधिक निकट पहुँचना चाहता है। इसके लिये वह विविध प्रकार के प्रणय सम्बन्ध स्थापित करता है। लोक में प्रायः दो सम्बन्धों में प्रेम की चरम परिणति देखी जाती है।

(१) दाम्पत्य सम्बन्ध में।

(२) वात्सल्य सम्बन्ध में।

कबीर ने इन दोनों सम्बन्धों के प्रतीकों को अपनाया है। किन्तु भक्त के लिये कोरा प्रेम ही आवश्यक नहीं होता। भगवान् को द्रवित करने के लिये भक्त को अपनी क्षुद्रता और भगवान् की महानता का भी प्रदर्शन करना पड़ता है। इसीलिये वह अपने भगवान् में, विश्व के जितने भी सद्गुण हैं, उन सबका आरोप करता है और अपने को वह संसार के क्षुद्रतम प्राणी के रूप में व्यक्त करता है। आलम्बन की महत्ता के वर्णन की भावना से प्रेरित होकर भक्त भगवान् को व्यक्तित्व प्रदान कर अनन्त करुणामय भक्त वत्सल, समदर्शी आदि रूपों में चित्रित करता है। कबीर में भी भगवान् के ऐसे सगुण वर्णनों की कमी नहीं

है। इनका भगवान् इतना संवेदनशील है, इतना करुणामय है[1] कि वह "तीन लोक की जानै पीर।"[2] ऐसे ही करुणामय ब्रह्म के प्रति अनन्य श्रद्धा से बशीभूत होकर कबीर ने देखिए भगवान् का कैसा भावना मूलक वर्णन किया है:—

भजि नारदादि सुकादि बंदित चरन पंकज भामिनी।
भजि भंजसि भूषन पिया मनोहर देव-देव सिरोवनी॥
बुधि नाभि चंदन चरचिता तन रिदा मंदिर भीतरा।
राम राजसि नैन वानी सुजान सुन्दर सुन्दरा॥
बहु पाप परवत छेदना भौ ताप दुरित निवारणा।
कहै कबीर गोविन्द भज परमानन्द बंदित कारणा॥
(क० ग्रं० पृ० २१८)

यहाँ पर कबीर ने भगवान् के भक्ति भावना विनिर्मित विग्रह का अत्यंत सुन्दर, श्रद्धापूर्ण एवं प्रेम मूलक चित्रण किया है। किन्तु इस आधार पर हम यह नहीं कह सकते हैं कि कबीर ने अवतारवाद स्वीकार कर लिया है। वे सदैव उसके विरोधी रहे।[4] वास्तव में यह उनकी भक्ति भावना का परिणाम है। इस भावना को दृष्टि में रखकर उन्होंने लिखा है "यद्यपि रह्यो सकल घट पूरी भाव बिना अभ्यन्तर दूरी"।[5] अर्थात् निर्गुण ब्रह्म बिना भाव के साकार और सगुण नहीं हो सकता। उन्होंने एक दूसरे स्थल पर स्पष्ट ही कहा है कि देवाधिदेव ब्रह्म ही भक्ति की भावना के द्वारा नरसिंह ऐसे सगुण अवतार में परिणत हो जाते हैं।[6]

---

१ जिस कृपा करै तिसि पूरन साज
कबीर का स्वामी गरीब निवाज॥ क० ग्रं० पृ० २६२

२ क० ग्रं० पृ० २१४

३ कबीर को ठाकुर अनद विनोदी जाति न काहू की मानी। क० ग्रं० पृ० २१६

४ ना दशरथ घर औतरि आवा न लंका कर राव सतावा। क० ग्रं० पृ० २२५

५ क० ग्रं०—पृ० २३६

६ ओहि पुरुष देवाधिदेव
भगति हेतु नरसिंह भे॥ क० ग्रं०—पृ० २०६

कबीर में भगवान् का बुद्धि विनिर्मित साकार विग्रह :—भगवान् के बुद्धि विनिर्मित साकार विग्रह का वर्णन सबसे प्रथम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मिलता है।[1] गीता और उपनिषदों[2] में भी उसी की महिमा वर्णित है। ऋग्वेद का वर्णन देखिए इस प्रकार प्रारम्भ होता है :—

सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यंतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

अर्थात् उस विराट् पुरुष के सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र तथा सहस्र चरण थे। उसने पृथ्वी को चारों ओर से आवृत्त कर रखा था फिर भी वह दशाङ्गुल था। इस प्रकार के वर्णनों को हम भावना प्रेरित न मान कर बुद्धिमूलक ही मानेंगे। इस प्रकार के विराट् स्वरूप का वर्णन कबीर ने भी किया है। भक्त लोग इस स्वरूप का वर्णन भगवान् की महान् महिमा और अनन्त शक्ति प्रकट करने के लिये करते हैं। किन्तु कबीर में जो वर्णन पाए जाते हैं उनमें इन दोनों विशेषताओं के अतिरिक्त दिव्य सौन्दर्य की भी प्रतिष्ठा मिलती है। उनका विराट् ब्रह्म करोड़ों सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित, करोड़ों महादेवों की महिमा से महीयान, करोड़ों दुर्गाओं की शक्ति से समन्वित तथा कोटि-कोटि ब्रह्माओं के ज्ञान से विभूषित होते हुए भी इतना सौन्दर्यमय है कि करोड़ों कामदेव उस पर निछावर हैं।[3] वास्तव में कबीर की दृष्टि बड़ी भावुक थी। तभी तो वे शुष्क बुद्धि मूलक वर्णनों में भी सौन्दर्य की प्रतिष्ठा कर सके हैं।

कबीर में भगवान् का प्रतीकमय साकार स्वरूप :—कबीर ने तीसरे प्रकार से ब्रह्म का सगुणीकरण प्रतीकों द्वारा किया है। प्रतीक पद्धति अत्यन्त प्राचीन है। उपनिषदों में इस पद्धति के उदाहरण मिलते हैं। ब्रह्म के प्रतीकों

---

१ हिम्न्स फ्राम दि ऋग्वेद—पिटरसन—सूक्त ३०।१

२ श्वेताश्वतर ३।२

३ कोटि सूर जाकै परगास, कोटि महादेव अरु कविलास
दुर्गा कोटि जाकै मर्दन करै ब्रह्मा कोटि वेद उच्चरै
कंद्रप कोटि जाके लव न धरहि अंतर अंतरि मनसा हरहि। इत्यादि
क० ग्रं० पृ० २७८

की कल्पना भी प्रायः दो प्रकार से मिलती है—मूर्त रूप में तथा अमूर्त रूप में। उपनिषदों तथा कबीर, दोनों में मूर्त प्रतीकों की ही योजना मिलती है। तैत्तिरीय उपनिषद् में[1] ब्रह्म की उपासना क्रमशः अन्न, प्राण, मन, ज्ञान और आनन्द रूप में बतलाई गई है। वृहदारण्यक[2] में अजात शत्रु ने पहले पहल आदित्य, चन्द्र, विद्युत्, आकाश, वायु, अग्नि दिशाओं में रहने वाले पुरुष की ब्रह्म रूप से ही उपासना बतलाई है। कबीर में प्रतीकोपासना विस्तृत रूप में तो नहीं मिलती, किन्तु फिर भी उसमें मन को ब्रह्मरूप[3] मानने का आग्रह अवश्य एकाध स्थलों पर मिल जाता है। यह संक्षेप में कबीर का व्यक्त ब्रह्म निरूपण हुआ, अब उनके अव्यक्त ब्रह्म पर विचार किया जायेगा।

ब्रह्म का अव्यक्त रूप :—यद्यपि कबीर ने भावना विनिर्मित सगुण ब्रह्म के मधुर वर्णन प्रस्तुत किए हैं,[4] किन्तु उनके वास्तविक उपास्य अव्यक्त ब्रह्म ही हैं। उन्हीं को वे निर्गुण[5] और निराकार कहते हैं। कबीर में अव्यक्त ब्रह्म के वर्णन चार प्रकार के मिलते हैं :—

(१) अव्यक्त सगुण
(२) अव्यक्त निर्गुण
(३) अव्यक्त सगुण निर्गुण
(४) अव्यक्त अद्वैत विलक्षण, परात्पर और नेति मूलक

अव्यक्त सगुण :—कबीर ने अपनी रचनाओं में अपने अव्यक्त या निर्गुण ब्रह्म में बहुत से गुणों का आरोप किया है। इनमें सबसे प्रथम विचारणीय गुण उनकी एकता है।[6] कबीर ने अनेक स्थलों पर अपने ब्रह्म को एक विशेषण से विशिष्ट किया है। इस एक शब्द के आधार पर कुछ विद्वान् उन्हें इस्लाम के

---

१ तै० २।१-५, ३।२-६

२ बृहदारण्यकोपनिषद् २।१

३ कहु कबीर को जानै भेव, मन मधुसूदन त्रिभुवन देव (सं० क० पृ० ३०)

४ क० ग्रं० पृ० २१८ पद ३६

५ निर्गुण राम निर्गुण राम जपौ रे भाई (क० ग्रं० पृ० १०६)

६ हम तो एक एक करि जाना (क० ग्रं०—पृ० १०५)

एकेश्वरवाद से प्रभावित समझते हैं। एक विद्वान् ने उन्हें वैष्णव एकेश्वरवादी सिद्ध करने की चेष्टा की है। किन्तु यदि ध्यान से अध्ययन किया जाय तो हमें प्रतीत हो जावेगा कि यह एक ब्रह्म की भावना पूर्ण रूप से वैदिक है। हम अपने श्रुति ग्रंथों के प्रभाव के अंतर्गत संक्षेप में इसको सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं। कबीर ने अपने ब्रह्म को एक कहने के साथ-साथ उपनिषदों के ढंग पर उसकी अद्वैतता भी ध्वनित की है—"अबरन एक अकल अविनाशी घट-घट आप रहै" अद्वैत के संबंध में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जो तर्क से द्वैतता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं वे मूर्ख हैं।[1] कबीर का यह अद्वैत तत्त्व कभी घटता बढ़ता नहीं है। वह अलख निरंजन रूप है।[2] उसे दूर और समीप नहीं कह सकते हैं।[3] वह सर्वातीत[4] होकर घट-घट वासी है।[5]

अपने ब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध करने के लिये कबीर ने उसकी अखण्डता एवं एक रसता पर विशेष जोर दिया है। वे कहते हैं :—

आदि मध्य औ अन्त लों अविहड़ सदा अभंग।
कबीर उस कर्त्ता की सेवक तजै न संग॥
(क० ग्रं० पृ० ८६)

जब वह अद्वैत तत्त्व अविहड़, एक रस और अखण्ड है तो अवश्य ही पूर्ण

---

१ कहत कबीर तरक दुइ साधै तिनकी मति है मोरा (क० ग्रं०—पृ० १०५)

२ "अलख निरंजन न लखे न कोई निरमय निराकार है सोई" (क० ग्रं० पृ० २३०)

३ "नहिं सो दूर नहिं सो नियरा" (क० ग्रं० पृ० २४२)

४ वेद विवर्जित भेद विवर्जित, विवर्जित पाप रु पुन्य
ज्ञान विवर्जित ध्यान विवर्जित विवर्जित अस्थूल सुन्य
मेष विवर्जित भीख विवर्जित विवर्जित ड्यमंक रूपं
कहै कबीर तिहुँ लोक विवर्जित ऐसा तत्त्व अनूप॥
(क० ग्रं० पृ० १६३)

५ क० ग्रं० पृ० १०५ पद ५५ छठी पंक्ति

होना चाहिए। उसमें विभाग का प्रश्न ही नहीं उठता है। इसीलिये वृहदारण्यकोपनिषद्[1] में पूर्ण ब्रह्म की महिमा का वर्णन किया गया है। कबीर ने जहाँ कहीं भी ब्रह्मानुभूति का वर्णन किया है, वह पूर्ण ब्रह्म की ही है—"कहै कबीर मैं पूरा पाया सब घटि साहिब दीसा।" यही पूर्ण अद्वितीय तत्त्व सब में परिव्याप्त है। जो इस तत्त्व को नहीं जानते वे अज्ञानी हैं। 'तारण तिरण' की बात तो तभी तक उठती है, जब तक, अद्वैतता का ज्ञान नहीं होता। वास्तव में वह एक अद्वैत तत्त्व ही सब में समाया हुआ हैं।[2] कबीर के इस कोटि के वर्णन उपनिषदों में दिये वर्णनों से बहुत कुछ साम्य रखते हैं। वृहदारण्यकोपनिषद् में[3] एक स्थल पर कहा गया है "केवल यही नहीं कि कोई ईश्वर है, केवल ईश्वर ही सब कुछ है।" छान्दोग्योपनिषद् में भी उस अद्वैत ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है "वह ऊपर है वह नीचे है वह सामने है वह दक्षिण और वह उत्तर की ओर है। यही नहीं वह सब कुछ है।"[4]

कबीर ने अपने अव्यक्त सगुण भगवान् को आनन्द रूप भी ध्वनित किया है। राम को रसायन रूप कहकर उन्होंने उसकी रस रूपता या आनन्द विशिष्टता ही प्रकट की है। राम रस[5] का कबीर ने बड़ा मादक प्रभाव चित्रित किया है। उनके रहस्यवाद विवेचन में इस रसात्मक प्रभाव का विस्तृत निर्देश किया गया है। कबीर का भगवान् का आनन्द रूप ध्वनित करना भी "तैतिरीयोपनिषद्" के "आनन्दो ब्रह्मेति"[6] या "रसो वै सः"[7] का आधार लिये हुए मालूम पड़ता है।

---

१ ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। (वृ० प्रथ० व० ५ अ० प्र० अ०)

२ अबरन एक अकल अविनासी घट-घट आप रहे। (क० ग्रं० पृ० १४४)

३ वृहद० ४/३/२३

४ छा० ७/२५/१

५ देखिए क० ग्रं० पृ० १६ पर "रस को अंग"

६ तैत्तिरीयो ३।६

७ ,, २।७

कबीर ने अव्यक्त ब्रह्म में कतृ त्व शक्ति का भी आरोप किया है। उन्होंने उसे सृष्टि का रचयिता भी माना है। वे कहते हैं "ब्रह्म एक जिन शृष्टि उपाई नाव कुलाल धराया"—(क० ग्रं० पृ० ७६) इस कतृ त्व शक्ति का आरोप भी उपनिषदों के अनुकूल है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में एक स्थान में उसकी कतृ त्व शक्ति स्पष्ट प्रकट की गई है।[1]

इन गुणों के अतिरिक्त कबीर ने अपने अव्यक्त ब्रह्म में एकाध स्थलों पर सत्य और ज्ञान की विशेषताएँ भी आरोपित की हैं। एक स्थल पर उन्होंने कहा है "राजाराम मोरा ब्रम्ह गियाना"।[2] यहाँ पर स्पष्ट ही राम को ज्ञान रूप ध्वनित किया गया है। जहाँ तक सत्य का सम्बन्ध है कबीर ने प्रत्यक्ष रूप अपने से ब्रह्म को यह विशेषता नहीं प्रदान की है, किंतु उन्होंने सत्य की जो परिभाषा[3] दी है उनका ब्रह्म उसी के अनुरूप अजर, अमर और अविनाशी है। इन दोनों गुणों का आरोप भी बहुत कुछ उपनिषदों के आधार पर ही समझना चाहिये। तैत्तिरीयोपनिषद् में स्पष्ट ही ब्रह्म को "सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं" कहा गया है।[4] ब्रह्म की अनन्तता कबीर ने न मालूम कितने बार ध्वनित की है। उनकी अद्वैतता ही अनन्तता का द्योतक है।[5]

कबीर ने अव्यक्त ब्रह्म के भी साकार वर्णन किये हैं। यह साकार वर्णन निम्नलिखित रूपों में मिलते हैं :—

(१) योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षण ज्योति रूपी ब्रह्म के रूप में।

(२) उपनिषदों में वर्णित अनन्त प्रकाश रूप में।

(३) सूफियों के नूर रूप में।

(४) उपनिषदों में वर्णित अंगुष्ठ-प्रमाण ज्योति के रूप में।

---

१ श्वेताश्वतर—३/२

२ क० ग्रं० पृ० ३२७

३ "साँच सोइ जो थिरह रहाई उपजै विनसे झूठ ह्वै जाई (क० ग्रं० पृ० २३३)

४ तै० २/१

५ क० ग्रं० पृ० १७५ पद ५२ देखिये

योगी लोग सदा से ही ब्रह्म का वर्णन ज्योति के रूप में करते आ रहे हैं। नाथ पंथियों ने उस ज्योति को द्वैताद्वैत विलक्षण कहा है। कबीर ने एकाध स्थलों पर ब्रह्म का वर्णन इसी ढङ्ग पर द्वैताद्वैत विलक्षण ज्योति स्वरूप के रूप में किया है। वे उसकी स्थिति शरीर के अन्तर्गत ब्रह्म रन्ध्र में ध्वनित करते हैं।

शरीर सरोवर भीतर आछै कमल अनूप।
परम ज्योति पुरुसोत्तमों जाके रेख न रूप॥

(क० ग्रं० पृ० ३२७)

यह ज्योति रूपरेख रहित होने के कारण अव्यक्त है तथा ज्योति स्वरूपी होने के कारण साकार भी है। सूफी सन्तों के अनुसरण पर कभी-कभी कबीर ने ब्रह्म को नूर[1] रूप भी कहा है, किन्तु ऐसे स्थल कम हैं, नूर का अर्थ भी प्रकाश या ज्योति होता है। उपनिषदों में भी ब्रह्म को अनन्त प्रकाश रूप कहा गया है।[2] उनके अनुकरण पर कबीर ने भी प्रकाश रूप ब्रह्म का वर्णन किया है। एक स्थल पर वे ब्रह्म के अनन्त तेज का वर्णन शतसूर्य श्रेणियों के उपमान से करते हैं।

कबीर तेज अनन्त का मानों ऊगी सूरज सेणि।

(क० ग्रं० पृ० १२)

पार ब्रह्म के इस "अनन्त तेज" का वर्णन शब्दातीत है। यह केवल अनुभव की वस्तु है :—

पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उन्मान।
कहिबे कू शोभा नहीं देखा ही परवान॥

क० ग्रं० पृ० १२

ब्रह्म का अव्यक्त निर्गुण स्वरूप :—ज्ञान क्षेत्र में ब्रह्म के इस स्वरूप की बड़ी प्रतिष्ठा है। कबीर का प्रमुख प्रतिपाद्य भी यही है। उन्होंने इसका निरूपण कई रूपों में किया है :—

---

१ अल्ला एकै नूर उपनायका,
ताकी कैसी निन्दा। क० ग्रं० पृ० १०४

२ देखिए कठोपनिषद्—अ० २ व० २/१५ मन्त्र

(१) शब्द रूप में।
(२) शून्य रूप में।
(३) अनिर्वचनीय तत्त्व रूप में।
(४) सहज रूप में।

शब्द रूप :—शब्द ब्रह्म की धारणा अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद में इसकी चर्चा कई बार की गई है।[1] योग शास्त्र का तो यह प्रमुख प्रतिपाद्य विषय ही है। उसके समाधिपाद में ईश्वर का स्वरूप निरूपण करके स्पष्ट शब्दों में "तस्य वाचकः प्रणवः"[2] अर्थात् उस ईश्वर का वाचक ओंकार उद्घोषित किया गया है। उपनिषदों में भी इसके वर्णन मिलते हैं। मांडूक्योपनिषद्[3] तथा कठोपनिषद्[4] दोनों ही ने ओंकार की महिमा का वर्णन ओजपूर्ण शब्दों में किया है। शब्द ब्रह्म के महत्त्व को जगद्गुरू शंकराचार्य ने भी स्वीकार किया है। ब्रह्म सूत्र[5] के भाष्य में एक स्थल पर उन्होंने शब्द से ही संसार की उत्पत्ति ध्वनित की है। इस प्रकार सिद्ध है कि भारत सदा से ही शब्द ब्रह्म का उपासक रहा है। महात्मा कबीर शब्द ब्रह्म की महिमा से पूर्णतया परिचित थे। उन्होंने अनेक स्थलों पर उसका विविध रूपों में वर्णन किया है। अनहदनाद[6] के वर्णन के व्याज से उन्होंने शब्द ब्रह्म ही का निरूपण किया है। उनकी नाद विन्दु की साधना का सम्बन्ध भी शब्द ब्रह्म से ही है।[7] राम नाम को तो वे स्पष्ट ही निरञ्जन शब्द रूप मानते हैं।[8] शब्द ब्रह्म के प्रतिरूप प्रणव के प्रति भी उन्हें विशेष श्रद्धा थी। उन्होंने उसी को विश्व का मूल तत्त्व माना है। "ऊंकार

१ ऋग्वेद संहिता—१/१६४/१०
२ योग सूत्र समाधि पद सूत्र २५
३ माण्डूक्योपनिषद्—१
४ कठोपनिषद् १/२/१६
५ ब्रह्म सूत्र भाष्य—१/३/२८
६ अनहद सबद होत झनकार—क० ग्रं० पृ० २६६
७ नाद विन्दु की चरचा देखिए—क० ग्रं० पृ० १६८
८ "शब्द निरञ्जन राम नाम सांचा"—क० ग्रं० पृ० १५४

आदि है मूला" से यही बात व्यक्त की है। उनका प्रसिद्ध "शब्द सुरति योग" शब्द ब्रह्म की साधना पर ही आधारित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर को शब्द ब्रह्म की धारणा पूर्ण रूप से मान्य है।

शून्य रूप :—भारत अपने शून्यवाद के लिये प्रसिद्ध है। उपनिषदों में बपित, बौद्धों में अंकुरित और संतों में पल्लवित शून्यवाद अपना एक अलग इतिहास रखता है। विस्तृत विचार तो पुस्तक के परिशिष्ट में किया जायगा। यहाँ पर केवल इतना ही कहना अभिप्रेत है कि कबीर ने नास्तिक बौद्धों के शून्य को आस्तिकों के ब्रह्म में परिणत कर दिया है। "जीवत मरै मरै पुनि जीवै ऐसे सुन्न समाया"[1] में 'सुन्न' शब्द ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उक्त पंक्ति में जीवन मुक्त की शून्य रूपी ब्रह्म में लीन रहने की बात कही गई है।

तत्त्व रूप :—कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म का वर्णम तत्त्व रूप में भी किया है। उसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि उसके किसी प्रकार का रूपाकार नहीं है। उसके "रूप अरूप" भी नहीं हैं। वह पुष्प की सुगन्ध[2] से सूक्ष्म अनुपम तत्त्व है। ब्रह्म को तत्त्व रूप में मानने की यह कल्पना उपनिषदों में भी मिलती है। इस तत्व रूप निर्गुण ब्रह्म की निर्गुणता का वर्णन कबीर ने निम्नलिखित प्रकार से किया है :—

(१) निर्गुणता वाचक विशेषणों से युक्त करके।
(२) सृष्टि के पूर्व की अवस्था का वर्णन करके।
(३) विभावनात्मक वर्णनों के सहारे।
(४) नकारात्मक शैली के सहारे।

कबीर ने अपने ब्रह्म को अनेक निर्गुणतावाचक विशेषणों से विशिष्ट किया है। कभी तो वे उसका वर्णन "अलख निरंजन लखै न कोई निरभै निराकार है सोई।"[3] कह कर कभी एक "निराकार हृदय नमस्करूँ"[4] लिख कर कभी "न

---

१ क० ग्रं० पृ० २६१
२ जाके मुँह माथा नहीं नाहिं रूप अरूप।
पहुप बास से पातरा ऐसा तत्त्व अनूप॥ क० ग्रं० पृ० ६४
३ क० ग्रं० पृ० २३०
४ क० ग्रं० पृ० २०२

ओहू घटता न बढ़ता होय अकुल निरंजन भाई"[1] कहकर करते हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने और भी अनेक प्रकार के निर्गुणता वाचक विशेषणों का प्रयोग किया है। उनका निर्देश करना कठिन ही नहीं अनावश्यक भी है।

कबीर ने अपने तत्त्व स्वरूपी ब्रह्म का वर्णन एक और प्रकार से किया है। वे सृष्टि की पूर्व अवस्था का वर्णन करते हैं। सृष्टि के आदि में जो कुछ था वह केवल ब्रह्म तत्व था। ऋग्वेद में सृष्टि के पूर्व पाए जाने वाले ब्रह्म तत्व का वर्णन अनेक विषम विकल्पनाओं के साथ किया गया है।[2] कबीर के बर्णनों पर कुछ उसकी छाया देखी जा सकती है :—

जब नहीं होते पवन नहीं पानी।
जब नहीं होती सृष्टि उपानी॥
जब नहीं होते प्यण्ड न बासा।
तब नहीं होते धरनि आकासा॥
जब नहीं होते गरभ न मूला।
तब नहीं होते कली न फूला॥
जब नहीं होते सबद न स्वाद।
तब नहीं होते विद्या न वाद॥
जब नहीं होते गुरू न चेला।
गम अगमैं पंथ अकेला॥ (क० ग्रं० पृ० २३८)

"अवगति की गति का कहूँ जस का गांव न नांव।
गुरू विहूँन का पेखिये काक धरिए नांव॥"
(क० ग्रं० पृ० २३६)

कबीर ने अपने निर्गुण की अभिव्यक्ति के दो ढंग और अपनाए हैं। एक तो नकारात्मक शैली का और दूसरा विभावनात्मक शैली का है। ब्रह्म वर्णन में उपनिषदों ने भी इन दोनों शैलियों को अपनाया है। "श्वेताश्वतर उपनिषद्" के

---

१ क० ग्रं० पृ० २०५

२ देखिए ऋग्वेद का नासादीय सूत्र

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता" इत्यादि विभावनात्मक वर्णन तो बहुत प्रसिद्ध हैं। कबीर के विभावनात्मक वर्णन भी बहुत कुछ ऐसे ही हैं।

बिन मुख खाइ चरन बिन चालै,
बिन जिह्वा गुण गावै। इत्यादि (क० ग्रं० पृ० १५०)

निर्गुण के वर्णन में कबीर ने नकारात्मक शैली का भी आश्रय लिया है। देखिये वह उसका वर्णन किस प्रकार करते हैं:—

ना तिस सबद न स्वाद न सोहा।
ना तिहि मात पिता नहि मोहा॥
ना तिहि सास ससुर नहिं सारा।
ना तिहि रोज न रोवन हारा॥
(क० ग्रं० पृ० २४३)

कबीर ने अपने ब्रह्म को कभी-कभी सहजवादियों के ढंग पर सहज रूप[1] भी कहा है। वे कहते हैं:—

कहि कबीर मन सरसी काजि।
सहज समानो तो भरम भाज॥ (क० ग्रं० पृ० ३०१)

यहाँ पर 'सहज' से कबीर का तात्पर्य सर्वव्यापी अद्वैत तत्व से ही है। उसका नाम उन्होंने सहज पंथियों के अनुसरण पर 'सहज' रख दिया है।

सगुण निर्गुण रूप :—कबीर ने एकाध स्थल पर अपने ब्रह्म को सगुण भी कहा है और निर्गुण भी।

संतो धोका का सो कहिये,
गुण में निर्गुण, निर्गुण में गुण है।
वाट छांडि क्या बहिए[2]॥

किन्तु उनका यह वर्णन गौण है। इसके आगे वे पुनः निर्गुण स्वरूप का निरूपण ही करने लगते हैं।

---

१ क० ग्रं० पृ० ४१ पर उनकी सहज सम्बन्धिनी उक्तियाँ देखिए।
२ क० ग्रं० पृ० १४६ पद १८०

परात्पर रूप :—कबीर का ब्रह्म वास्तव में सगुण और निर्गुण[1] सत, रज, तम सबसे अतीत है। यहाँ तक कि उसे उन्होंने 'तिहुँ लोक विवर्जित' तक कह डाला है। कबीर का सर्व विवर्जितवाद ही योगियों का द्वैताद्वैत विलक्षण वाद, वेदों का परात्परवाद और बौद्धों का अनिर्वचनीयता वाद और रहस्यवादी भक्तों का अद्भुतवाद है। कबीर के परात्परवाद पर इन सबकी छाया है। कभी तो वे अपने निर्गुण ब्रह्म को द्वैताद्वैत विलक्षण इन्द्रियातीत तत्त्व[2] के रूप में ध्वनित करते हैं, कभी नेतिवाद और अनिर्वचनीयतावाद[3] का आश्रय लेते हैं। उन्होंने कई बार उसे अद्भुत भी कहा है।[4] ब्रह्म की परात्परता[5] तो उन्होंने न मालूम कितने बार प्रकट की है। यह सब वर्णन कबीर के ब्रह्म के सर्वातीत, परात्पर, सर्व विलक्षण अनिर्वचनीय निर्गुण तत्त्व के ही रूप में ही ध्वनित करते हैं। उनका ब्रह्म हिन्दुओं के राम योगियों के गोरख तथा मुसलमानों के एकेश्वर से विलक्षण है। किन्तु इन सब निरूपणों से उन्हें सन्तोष नहीं होता है। अन्त में कबीर यही कहते हैं कि ब्रह्म तत्त्व जैसा भी हो वह वैसा हो रहे। हमें तो उसके गुणों का ही वर्णन करना है।[6] क्योंकि यदि उसे भारी कहते हैं तो भी ठीक नहीं जँचता।[7] यदि वे उसे हलका कहते हैं तब भी ठीक नहीं। क्योंकि यह असत्य है।[8] अतः उसका

---

१ क० ग्रं० पृ० १६३ पद २२०

२ नैना बैन अगोचरी श्रवना करनी सार,
बोलन के सुख कारने कहिये सिरजनहार। क० ग्रं० पृ० २४१

३ देखिए क० ग्रं० पृ० २४१

४ सरीर सरोवर भीतर आछे कमल अनूप,
परम ज्योति पुरुषोत्तमो जाके रेख न रूप। क० ग्रं० पृ० २०४

५ राम निरंजन न्यारा रे। क० ग्रं० पृ० २०१

६ क० ग्रं० पृ० १८ साखी ३

७ हरि जैसा तैसा उहि, रहों हरसि गुन गाथ। क० ग्रं० पृ० २५५

८ भारी कहूँ तो बहु डरूँ हलका कहूँ तो झूठ।
मैं का जानौं राम की नैनन कबहुँ न दीठ॥ क० ग्रं० पृ० १७

वर्णन करना ही व्यर्थ है। यदि वर्णन किया ही जाय तो लोग विश्वास नहीं कर सकते।[1]

इस प्रकार कबीर का ब्रह्म निरूपण अनेक धर्म पद्धतियों एवं दर्शनों के ब्रह्म निरूपण से प्रभावित दिखाई देता है। इसका प्रमुख कारण यही मालूम देता है कि उनकी साधना में कई तत्त्वों का मेल था। साधना के अनुकूल ही ब्रह्म-भावना का स्वरूप होता है। भक्ति का ब्रह्म उच्चतम मानव गुणों से साकार सत्य होता है। ज्ञान क्षेत्र का ब्रह्म विज्ञान स्वरूपी होता है। योगी लोग ज्योति और नाद स्वरूपी ब्रह्म को अपनाते हैं। बौद्ध और नाथ पंथी शून्य में ही ध्यान लगाने का प्रयत्न करते हैं। कबीर भक्त, रहस्यवादी, योगी, ज्ञानी सभी कुछ थे। अतः उनका ब्रह्म निरूपण भी विविध प्रकार का है। किन्तु उनकी पूर्ण आस्था सदैव निर्गुण निराकार और अव्यक्त के प्रति ही रही। यह बात दूसरी है कि भक्ति के आवेश में कहीं कहीं वे उसे सगुणत्व प्रदान कर गये हों।[2] उनके राम तो निराले ही हैं।[3] वास्तव में "अत्यन्त चिन्त्य"[4] हैं।

"कबीर के ब्रह्म वर्णन की विशेषता"

कबीर स्वभाव से ही अध्यात्म चिन्तक थे। उनकी अध्यात्म चिन्ता तर्क पर आधारित न होकर स्वानुभूति पर टिकी हुई थी। अध्यात्म के अन्तर्गत स्थूल रूप से ब्रह्म विचार, आत्म विचार, मोक्ष धारणा, जगत वर्णन, माया वर्णन आदि सभी आ जाते हैं।

कबीर का ब्रह्म निरूपण कुछ अपनी विशेषताएँ रखता है। ब्रह्म के स्थूल रूप से दो स्वरूप हो सकते हैं। व्यक्त और अव्यक्त। कबीर का प्रमुख प्रतिपाद्य

---

१ दीठा है तो कस कहूँ कहिया न कोइ पतिआइ।
हरि जैसा है तैसा रहो तू हरिख हरिख गुण गाई॥ क० ग्रं० पृ० ११८ पद २१२

२ क० ग्रं० पृ० २१८ पद ३९२

३ "कहै कबीर वे राम निराले" क० ग्रं० पृ० ९९

४ "अत्यन्त च्यन्त ए माधौ" क० ग्रं० पृ० १००

भगवान् का अव्यक्त स्वरूप ही है। ब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप का जितने प्रकार से निरूपण सम्भव हो सकता है, कबीर ने किया है। उनका अव्यक्त ब्रह्म निरूपण बहुत कुछ उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप के ढंग पर ही है। किन्तु कहीं-कहीं पर उस पर योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षण, ज्योतिवाद, सूफियों के नूरवाद, सबदवाद, शून्यवाद आदि की भी छाया दिखाई पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर को जितने भी दर्शनों की जानकारी थी उनके सबमें निरूपित ब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप को अपने ब्रह्म के अन्तर्गत समेटने की चेष्टा की है।

ब्रह्म के व्यक्त रूप के वर्णन भी कबीर में मिलते हैं। किन्तु वे अधिकतर भावनामूलक या बुद्धिमूलक ही हैं। भक्ति भावना के आवेश में उन्होंने कई स्थलों पर भगवान् के वर्णन तुलसी के ढंग पर सगुण और साकार रूप में किये हैं। एक स्थल पर तुलसी के ही समान वे कहते हैं "भज नारदादि सुकादि वंदित चरन पंकज भामिनी" वेदों में वर्णित बुद्धिमूलक भगवान् के विराट् स्वरूप भी कबीर को मान्य हैं। कभी-कभी वे मन आदि को भी ब्रह्म कह डालते हैं। उपनिषदों की अंगुष्ठ-प्रमाण-ज्योति-स्वरूप वाली कल्पना भी कबीर में पाई जाती है। किन्तु व्यक्त ब्रह्म के यह सभी स्वरूप एक प्रकार से स्थूल इन्द्रियातीत हैं। कबीर ने कहीं पर भी ब्रह्म के स्थूल इन्द्रिय ग्राह्य स्वरूप की अवतारणा नहीं की है। यही कारण है कि उनमें अवतारवाद के चिह्न ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। इसी अर्थ में वह निर्गुणवादी हैं।

कबीर ने अपने ब्रह्म का वर्णन कहीं पर भी शास्त्रीय शैली में नहीं किया है। उसकी अभिव्यक्ति अधिकतर उपदेशात्मक, भावनात्मक, रहस्यात्मक और बुद्धिमूलक शैली में ही हुई है। उपनिषदों में भी ब्रह्म का वर्णन अधिकतर रहस्यमयी भावनात्मक शैली में ही हुआ है। यही कारण है कि उनका ब्रह्म निरूपण उपनिषदों के अधिक मेल में है। उपनिषदों में अद्वैतवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा मिलती है। उपनिषदों का अद्वैतवाद कबीर में भी मिलता है। कबीर का ब्रह्म निरूपण भी बहुत कुछ अद्वैती है। यही कारण है कि उनकी ब्रह्म सम्बन्धी धारणा प्रधान रूप से आध्यात्मिक है। केवल एकाध स्थल ही ऐसे हैं

जहाँ आधिदैविक भावना के दर्शन होते हैं। आधिभौतिक भावना उनमें ढूँढ़ने से भी नहीं मिल सकती है।

कबीर का आत्मविचार

आचार्य हजारी प्रसाद जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "कबीर" में एक स्थल पर कहा है "कबीर दास की सालियों और पदों को देखकर हमें मालूम होता है कि उन्होंने आत्मविचार को विशेष महत्त्व दिया है।" कबीर ने स्वयं अपनी रचनाओं में कई स्थलों पर ध्वनित किया है कि उनका जीवन आत्मविचार और आत्म-साधना में ही बीता था।[1] अतः स्पष्ट है कि उनका आत्मविचार उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों में विशिष्ट स्थान रखता है।

कबीर का आत्म-निरूपण :— महात्मा कबीर की आत्म-निरूपण सम्बन्धी उक्तियों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। (१) भावात्मक और (२) विचारात्मक। भावात्मक उक्तियाँ विशेष रूप से उनके रहस्यवाद से संबंधित हैं। अतः उनका चित्रण रहस्यवाद का वर्णन करते समय किया जायेगा। यहाँ पर हमें कबीर की विचारात्मक उक्तियों पर विचार करना है। कबीर ने आत्म और ब्रह्म दोनों को सदैव एक रूप कहा है। आत्मा और परमात्मा की यह एक रूपता अद्वैतवाद का प्राण है।[2] कबीर ने आत्मतत्त्व का जहाँ वर्णन किया है, वह ब्रह्म निरूपण के ढङ्ग पर ही अभिव्यक्त हुआ है। देखिए आत्मा का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं :—

ना इहु मानुष ना इहु देवा ना इहु जती करावै सेवा ॥
ना इहु जोगी ना इहु अवधूता, ना इस माइ न काहू पूता।
या मन्दिर मह कौन बसाइ। ता का अंत कोउ न पाई ॥
ना इहु गिरहीं ना ओदासी। ना इहु राजा ना भीख मंगासी
ना इहु पिण्ड न रक्तू राती। न इहु ब्रह्मन ना इहु खाती ॥

---

१ देखिये क० ग्रं० पृ० ८६ पर ५, नवीं और दसवीं पंक्तियाँ।

२ वेदान्त सूत्र—१/३/३३

ना इहु तपा कहावै सेख। ना इहु जीवै मरता देख ॥
इसु मरते कौ जे कोऊ रोवै। जो रोवै सोई पति खोवै॥

(इत्यादि क० ग्रं० पृ० ३०१)

यहाँ पर कबीर ने आत्मा का निरूपण बहुत कुछ गीता की शैली पर ही किया है और साथ ही साथ ब्रह्म से उसकी एक रूपता भी ध्वनित की है।

यह आत्मतत्त्व ही सारे संसार में परिव्याप्त है। उसी को लोग विश्वात्मा कहते हैं। आत्मा और विश्वात्मा मूलतः एक ही है, किन्तु शरीर बद्ध होने के कारण आत्मा विश्वात्मा से भिन्न प्रतीत होने लगती है। कबीर ने कुम्भ[1] के रूपक से यही बात प्रकट की है। शरीर रूपी कुम्भ में इस आत्मतत्त्व को अवधूत करने वाला कौन है? यह माया है। माया ही आत्मा को पंच तत्त्वमय शरीर से आबद्ध कर अपने वश में कर लेती है। माया से आबद्ध आत्मा ही जीव के नाम से प्रसिद्ध है।

जीवा को राजा कहै माया के आधीन।

(क० ग्रं० पृ० ३४)

वेदान्त को भी यही मत मान्य है। "कार्योपाधिरियंजीवः"[2] कह श्रुतियों में भी यही बात ध्वनित की गई है। गोस्वामी तुलसीदास ने उसे और भी स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुख रासी॥
सो मायावस परेउ गुसाईं।
बँधेउ कीर मरकट की नाईं॥ (मानस)

कबीर ने शरीरस्थ आत्मा के भी दो स्वरूप माने हैं। इन दोनों स्वरूपों को

---

१ जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तथ कथ्यो गियानी॥

(क० ग्रं० पृ० १०५)

२ मुण्डक—३/१, २

हम ज्ञाता या ज्ञेय, द्रष्टा या दृश्य के नाम से अभिहित कर सकते हैं। वे आत्मा को प्राप्ता और प्राप्तव्य दोनों ही मानते हैं :—

आप पिछाने आपै आप। (क० ग्रं०—पृ० ३१८)

शरीरस्थ आत्मा के दोनों स्वरूप हमें उपनिषदों में ध्वनित मिलते हैं। कठोपनिषद् में इसका वर्णन प्राप्ता और प्राप्तव्य रूप से किया है। उसमें उन्हें छाया और आतप के समान परस्पर विलक्षण दो तत्त्व कहा है। अन्य उपनिषदों में इसका वर्णन एक ही वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षियों के रूपक से किया गया है। इनमें छाया के समान जो तत्त्व हैं, वही भोक्ता जीव हैं, और आतप के समान जो तत्त्व हैं, वही शुद्ध मुक्त प्राप्तव्य आत्मा है। कबीर की 'सुरति' 'निरति' इस लेखक को आत्मा के इन्हीं दोनों स्वरूपों का रूपान्तर मालूम होती है। इस अनुमान का आधार कबीर की यह उक्ति है :—

सुरति समानी निरति में निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यम्भ दुवार॥
(क० ग्रं० पृ० १४)

यहाँ पर स्पष्ट ध्वनित किया गया है कि निरति प्राप्तव्य आत्मा का शुद्ध मुक्त स्वरूप है तथा सुरति प्राप्ता आत्मा है। जब सुरति अर्थात् प्राप्ता आत्मा का निरति अर्थात् प्राप्तव्य आत्मा से तादात्म्य स्थिर हो जाता है तभी स्यम्भ (शम्भु) अर्थात् कल्याण और आनन्द की प्राप्ति होती है।

कबीर ने आत्मा या जीव के लिए कभी प्राण शब्द का भी प्रयोग किया है। वे कहते हैं :—

प्राण प्यण्ड को तजि चले,
मुआ कहै सब कोई॥ (क० ग्रं० पृ० ३२)

अरण्यकों और उपनिषदों में प्राण की बड़ी महिमा का वर्णन मिलता है। प्राण शब्द उसमें विविध अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। उपनिषद् की इन्द्र प्रतर्दनाख्यायिका में "प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मका" कह कर प्राण को परब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। प्राण का वर्णन ऋगवेद में वायु रूप से भी मिलता

है।[1] लोक में प्राण शब्द जीवक अर्थ में रूढ़ हो गया है। कबीर ने उसका उसी अर्थ में प्रयोग अधिक किया है।

कबीर ने आत्मतत्त्व का साकार वर्णन भी किया है। वे उसे दीपक की ज्योति के समान मानते हैं। यही ज्योति मनुष्य के जीवन का कारण है। यही आत्मा है :—

मन्दिर मांहि झपूकती दीवा कैसी जोति।
हंस बटाऊ चलि गया काढ़ौ घर की छोति॥
(क० ग्रं० पृ० ७३)

कबीर कृत आत्मा का यह वर्णन उपनिषदों में भी मिलता है। उसे वहाँ अंगुष्ठ प्रमाण माना गया है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि अंगुष्ठ परिमाणी पुरुष शरीर के मध्य में स्थिर है।[2] कबीर की "दीबा कैसी जोति" वाली कल्पना मालूम होती है। उपनिषदों की अंगुष्ठ परिमाण वाली कल्पना का आधार लेकर ही खड़ी हुई है।

आत्मा के इस साकार वर्णन के अतिरिक्त अन्य सभी स्थलों पर कबीर ने उसको निराकार और निर्गुण ही ध्वनित किया है। वे निज स्वरूप को निरञ्जन निराकार अपरम्पार ही मानते हैं।[3] वह निर्गुण सच्चिदानन्द स्वरूप है। जीव के सत्स्वरूप को कबीर ने विविध प्रकार से ध्वनित किया है। कभी तो वे आत्मा को अमर कहते हैं, कभी उसे ब्रह्म का समकक्ष मानते हैं[4] और कभी वे उसे सब घट वासी अद्वैत तत्त्व कहते हैं।[5] आत्मा की चित् शक्ति में भी कबीर को पूर्ण विश्वास है। वे उसे ज्ञान स्वरूप और सक्रिय एवं स्वयं प्रकाश चेतन तत्त्व मानते हैं।[6] आत्मा के आनन्द रूप होने में उन्हें कोई सन्देह ही नहीं है।

---

१ ऋगवेद—१/१६४/३१

२ कठोपनिषद् अध्याय २ बल्ली ६, मंत्र १७ तथा २/५/१३

३ निजस्वरूप निरंजना, निराकार अपरम्पार अपार (क० ग्रं० पृ० २२७)

४ सोहं हंसा एक समान. क० ग्रं० पृ० १०५

५ 'अबरन एक अकल अविनासी घट घट आप रहै' क० ग्रं० पृ० १४४

६ क० ग्रं० पृ० ३२७ पद २०५ की प्रथम दो पंक्तियाँ

आत्मानन्दी जोगी का वर्णन करके उन्होंने आत्मा का आनन्द रूप होना ही ध्वनित किया है।

आत्मतत्त्व को सच्चिदानन्द स्वरूप ही नहीं, कबीर उसे अनादि और सनातन रूप भी मानते हैं। यह आत्मतत्त्व प्राणियों की हृदयस्थ गुफा में निवास करता है। वह अछेद्य, अकाट्य और अक्लेद्य है। वे मुल्ला को समझाते हुए कहते हैं "ये मुल्ला तू जीव को हलाल करता है, किन्तु उसका शरीर ही कटता है। ज्योति स्वरूपी जो जीवात्मा है वह तो कटती नहीं है,[1] अतः तेरा श्रम व्यर्थ है।" कबीर का यह आत्म वर्णन अद्वैतवादियों के अनुरूप ही हुआ है। कबीर के समान अद्वैतवादी भी आत्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप सनातन रूप मानते हैं। कबीर के समान ही गीता, कठोपनिषद् आदि अद्वैतवाद के ग्रन्थों में आत्मा को अछेद्य, अकाट्य और अक्लेद्य कहा गया है।

कबीर ने आत्मा को स्वयं प्रकाश स्वरूप भी कहा है। आत्मतत्त्व के स्वयं प्रकाश रूप को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं :—

कौतिग दीठा देह बिन, रविससि बिना उजास।
साहिब सैवा मांहि है वेपरवाही दास। (क० ग्रं० पृ० १२)

यह प्रकाश स्वरूपी आत्मा ब्रह्म रन्ध्र में वृत्तियों को केन्द्रित करने पर देखी जा सकती है।[2] अद्वैत वेदान्त के आधार भूत सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त आत्मा को प्रकाश रूप मानना भी है। उपनिषदों में बराबर उसे स्वयं प्रकाश रूप ही कहा गया है।

जीव की एकता और अद्वैतता :—महात्मा कबीर ने जीव को सदैव ही एक तथा अद्वैत रूप माना है।[3] वे स्पष्ट कहते हैं कि जो लोग द्वैतवाद में विश्वास करते हैं उन्हें नर्क प्राप्त होता है और उनकी बुद्धि स्थूल है।[4] वे मुक्ति का

---

१ क० ग्रं० पृ० २२३ पद १६२ चौथी और पाँचवीं पंक्ति

२ क० ग्रं० पृ० १३ साखी १५

३ बृहद् ४/३/ ६, १४

४ क०ग्रं० पृ० १०५

स्वरूप वर्णन नहीं कर सकते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि जीव तत्त्व सर्वव्यापी हैं। हम माया के कारण जीव और ब्रह्म की अद्वैतता नहीं पहचान पाते हैं। तभी भेद की बात कहते हैं। कबीर का स्पष्ट मत है कि सर्वत्र एक ही तत्त्व है।[1] उसे हम चाहे आत्मा तत्त्व कहें या ब्रह्म तत्त्व। बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मा का वर्णन इसी रूप में किया गया है।[2] जीव की संख्या के सम्बन्ध में विविध दर्शनों में बड़ा मतभेद है। सांख्यवादी और विशिष्टाद्वैतवादी असंख्य जीवों में विश्वास करते हैं। दोनों में केवल अंतर इतना है कि सांख्यवादी उसे स्वतंत्र और अनादि कहते हैं। और विशिष्टाद्वैतवादी उसे ब्रह्म का परिणाम मानते हैं। अद्वैतवादी जीव की अनेकता में विश्वास नहीं करते। उनका दृढ़ मत है कि जीव एक और अद्वैत तत्त्व है। इस पर प्रश्न यह उठता है कि एक अद्वैत तत्त्व भिन्न-भिन्न रूपों में कैसे दिखाई पड़ता है। इसको सुलझाने के लिये उन्होंने प्रतिबिम्बवाद की शरण ली है। कठोपनिषद् में कहा है—"जिस प्रकार सम्पूर्ण भुवन में प्रविष्ट हुआ एक ही अग्नि प्रत्येक रूप के अनुरूप हो गया है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा उनके रूप के अनुरूप हो रहा है। या उनके बाहर भी है तथा जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है। उसी सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक प के अनुरूप हो रहा है और उसके बाहर भी है।[3] आत्मा की अद्वैतता और एकता ध्वनित करने के लिये प्रतिबिम्बवाद की शरण महात्मा कबीर ने भी ली है। वे स्पष्ट कहते हैं कि आत्मरस संसार में उसी प्रकार अनेक रूपों में भासित होता है, जिस प्रकार जल में बिम्ब के विविध प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं।[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि आत्मा की संख्या के सम्बन्ध में कवीर अद्वैतवाद से पूर्ण सहमत हैं।

जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध :—महात्मा कबीर जीव को ब्रह्म का अंश

---

१ क० ग्रं० पृ० १०५ पद ४४

२ दोइ कहै तिनही को दोजग जिन नाहिन पहिचाना। (और भी)
कहै कबीर तरक दुई साधै, तिनकी मति है मोटी। (क० ग्रं० पृ० १०४)

३ कठोपनिषद्—द्वितीय अध्याय पंचमवल्ली—मंत्र ८-९

४ "ज्यों जल में प्रतिबिम्ब त्यों सकल रामहि जानी जे।" क० ग्रं० पृ० ५६

मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया है ' कहु कबीर यहु राम को अंहु जस कागद पर मिटै न मंसु" ।[1] कबीर का यह अंशांशि भाव उनकी कुछ दूसरी उक्तियों से और अधिक स्पष्ट हो जाता है। एक स्थल पर उन्होंने दोनों के सम्बन्ध को बिन्दु और समुद्र के[2] दृष्टांत से भी प्रकट किया है।

यहाँ पर थोड़ा सा यह भी विचार कर लेना चाहिये कि कबीर का जीव ब्रह्म सम्बन्ध किस दर्शन के अनुरूप निरूपित हुआ है। जहाँ तक अंशांशि भाव का सम्बन्ध है, वह अद्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, और विशिष्टाद्वैतवादी को ही मान्य है। किन्तु तीनों के मतों में अंतर हैं। द्वैताद्वैतवादियों का मत है कि ब्रह्म अखंड और अपने स्वरूप में पूर्ण है। फिर भी उसमें अनेक शक्तियाँ है। यह शक्तियाँ ही उसका अंश हैं। यद्यपि प्रत्येक शक्ति दूसरे से भिन्न है तथापि ब्रह्म से सबका तादात्म्य है। प्रत्येक शक्ति के दो स्वरूप हैं एक के सहारे ब्रह्म से उसका एकात्म्य रहता है तथा दूसरे के द्वारा उसकी नाम रूप में अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार परम तत्त्व ब्रह्म विभिन्न शक्तियों से समन्वित होकर अपने को अनन्त नाम रूपों में व्यक्त कर रहा है। जिस शक्ति से इन नाम रूपों का एक साथ ज्ञान होता है उसको ईश्वर और जो शक्ति उनको एक एक करके जानती है, उसे जीव कहते है। विशिष्टाद्वैतवादी जीव को ब्रह्म का शरीर मानते हैं। जीव और ब्रह्म दोनों चेतन हैं। ब्रह्म विभु है, जीव अणु है। ब्रह्म और जीव में सजातीय और विजातीय भेद नहीं है स्वगत भेद है। ब्रह्म पूर्ण और जीव खण्डित है। अद्वैतवादियों का मत इन दोनों से भिन्न है। वेदान्त सूत्र में कहा हैं। "जीव ब्रह्म का अंश और तन्मय भी है।"[3] शंकराचार्य ने इनके सम्बन्ध को अग्नि और स्फुलिंग के दृष्टांत से व्यक्त किया है। उनका मत है कि जिस प्रकार स्फुलिंग अग्नि से निकल उसी में समाविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी ब्रह्म से निकलकर उसी में समाविष्ट हो जाती है। वेदान्तसूत्र में अंशांशिभाव को आभास द्वारा या प्रतिबिम्ब के सहारे सिद्ध किया

---

१ क० ग्रं० पृ० ३०१

२ क० ग्रं० पृ० १७ 'लाम्बिको अंग' साखी ३ और ४

३ वेदान्तसूत्र २/३/४३

गया है। बादरायण के "आभासेवच" (३/२/५०) और "अतएव चोपमा सुर्य का दिवत्" (२/३/१८) इसके प्रमाण है। इन तीनों दर्शनों के अंशांशिभाव के प्रकाश में कबीर के अंशाशिभाव का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि वह पूर्ण अद्वैती है। समुद्र और विन्दु[1] का दृष्टान्त तथा प्रतिबिम्ब वाद[2] का समर्थन इस बात का पुष्ट प्रमाण है। अतः फर्कुहर का यह कहना कि वह भेदाभेदी हैं। तर्क संगत नहीं है। यह वेदान्ती अंशांशिभाव उनकी एक उक्ति से और भी स्पष्ट हो जाता है। वे कहते हैं :—

यह जिव आया दूर से, अजौ भी जासी दूर।
विचकै वासै रमि रहा, काल रहा सरदूर॥
(क० ग्रं० पृ० ७५)

जीव और ब्रह्म का तादात्म्य :—जीव ब्रह्म का तादात्म्य तीन प्रकार का हो सकता है :—

(१) भावात्मक ।
(२) यौगिक ।
(३) ज्ञानात्मक ।

(क) भावात्मक :—भावना के सहारे आत्मा और परमात्मा का तादात्म्य जीवनकाल में भी सम्भव है तथा शरीरान्त के उपरान्त भी। ऐसे साधक को यदि मुक्ति प्राप्त होती है, उसमें द्वैतभाव बना रहता है। भक्त और सूफी दोनों प्रकार के भावना प्रधान साधकों का ऐसा विश्वास है। दोनों में बहुत थोड़ा सा अन्तर है वह अन्तर भी उपास्य भाधना सम्बन्धी है। भक्त और रहस्यवादी दोनों ही के उपास्य अधिकतर साकार और सगुण होते हैं अन्तर केवल इतना है कि रहस्यवादी का ब्रह्म निर्गुण सगुण तथा भक्त का केवल सगुण होता है। कबीर की ब्रह्म सम्बन्धी धारणा निर्गुण और कहीं-कहीं निर्गुण सगुण भी है। अतः उनकी भक्ति भावना रहस्य भावना में घुल मिल गई है। लेखक ने इस नीर क्षीर को अलग

---

१ क० ग्रं० पृ०१७ लाम्बिको अंग साखी ३,४

२ क० ग्रं० पृ० १०९ पद ९४ तीसरी पंक्ति देखिए

करने का प्रयत्न किया है। आत्मा और परमात्मा के भावात्मक तादात्म्य की कहानी रहस्य भावना के शीर्षक से कही जायगी।

(ख) यौगिक तादात्म्य :—आत्मा का सगुण निर्गुण ब्रह्म से तादात्म्य योग के द्वारा भी सम्भव है। इस यौगिक तादात्म्य का भी सम्बन्ध रहस्यवाद से ही है। अतः इसका वर्णन रहस्यवाद के अन्तर्गत ही किया गया है। इस यौगिक तादात्म्य को प्राप्त करने के लिए जिन साधनाओं का वर्णन कबीर ने किया है उनका वर्णन यौगिक साधना के अन्तर्गत आएगा।

(ग) ज्ञानात्मक तादात्म्य :—आत्मा और परमात्मा में वास्तव में कोई मौलिक भेद नहीं है। जो भेद हमें दिखाई पड़ता है वह माया के कारण है। जब साधक का यह माया रूपी आवरण नष्ट हो जाता है तब वह जीवन काल में जीवन मुक्ति और शरीरान्त के बाद अद्वैत मुक्ति प्राप्त करता है। इस ज्ञानात्मक तादात्म्य का वर्णन कबीर के मोक्ष सम्बन्धी विचारों के शीर्षक से किया जा रहा है।

कबीर के आत्म निरूपण की विशेषता :—कबीर का आत्म चिन्तन भी तर्क मूलक न होकर स्वानुभूति मूलक ही है। उन्होंने आत्मतत्त्व का वर्णन भी अधिकतर उपनिषदों के ढंग पर किया है। उपनिषदों के अतिरिक्त उनके आत्म वर्णन पर शंकर के मायावाद की भी छाया दिखलाई पड़ती है। वे आत्म तत्त्व की अद्वैतता और एकता में पूर्ण विश्वास करते हैं। वेदान्तियों के समान ही वे आत्मा को स्वयं प्रकाश एवं ज्ञान रूप मानते हैं। कबीर ने आत्मा और ब्रह्म में अंशांशिभाव स्वीकार किया है। यह अंशांशिभाव भेदाभेदी न होकर पूर्ण अद्वैती ही है। यही कारण उन्होंने उपनिषदों के प्रतिबिम्बवाद को विशेष रूप से अपनाया है।

कबीर के मोक्ष सम्बन्धी विचार

कबीर ने अपनी रचनाओं में मुक्ति के लिये मुक्त, निर्वाण, परम पद और अभयपद आदि विविध पर्याय प्रयुक्त किए हैं। यह सभी शब्द अधिकतर वेदांतियों और भक्तों में प्रचलित हैं। कबीर की मोक्ष सम्बन्धी धारणा इन दोनों से बहुत

मिलती जुलती है। इसके ऊपर बौद्धों के निर्वाण और योगियों के कैवल्य की भी छाया दृष्टिगत होती है।

महात्मा कबीर मोक्ष को पूर्ण मुक्तावस्था मानते हैं। उनका विश्वास है कि मोक्ष की दशा में सब प्रकार के बन्धन, यहाँ तक जन्म-मरण के बन्धन भी मुक्तात्मा को अभिभूत नहीं कर पाते हैं। मुक्तात्मा के सम्बन्ध में उनकी यह भी धारणा है कि सब प्रकार के बन्धनों से निर्बन्ध होकर मुक्त आत्मा अविनाशी स्वरूप अर्थात् शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ब्रह्म स्वरूप हो जाती है। यह परम पद की अवस्था है। इस अवस्था का वर्णन कबीर ने अधिकतर अद्वैतवाद के अनुरूप ही किया है। किन्तु कहीं-कहीं पर उनके अद्वैत वर्णनों में बौद्धों के निर्माण की भी छाया दिखाई पड़ती है।

जिसे वेदान्ती मुक्ति कहते हैं, उसी को बौद्ध निर्वाण कहते हैं। निर्वाण का सीधा साधा अर्थ है "बुझ जाना।" बुझ जाने से वासना के अन्त हो जाने का अभिप्राय है। यह एक प्रकार की निष्काम एवं शान्त तथागतता की परि-स्थिति है। "प्रो० राइस डेविड्स" ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'बुद्धिज्म' में उसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इस प्रकार लिखा है।[1] "यह मन और हृदय की पूर्ण शांति की अवस्था है। इस अवस्था के अभाव में शरीर को पुनर्जन्म लेना पड़ता है। वह शान्ति की अवस्था प्रयत्न करने पर सिद्ध होती है और मन तथा हृदय की विरोधात्मक स्थिति के समानान्तर चलती है। जब यह विरोधी स्थिति पूर्ण हो जाती है तभी वह अवस्था भी पूर्ण हो जाती है। इस प्रकार निर्वाण मन की निश्चेष्ट और पाप विहीनता की अवस्था कही जा सकती है।"

अब प्रश्न यह है कि निर्वाण भावात्मक अवस्था है या अभावात्मक। इसी प्रश्न पर विचार करते हुए दास गुप्ता साहब ने अपने भारतीय ज्ञान के इतिहास में लिखा है कि बौद्धों को इस प्रकार का प्रश्न उठाना ही निरर्थक मालूम पड़ता है। अतः इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता।[2]

जैसा कि हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि कबीर के मोक्ष सम्बन्धी विचार

---

१ 'बुद्धिज्म' राइस डेविडस—पृ० १११, ११२

२ "हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी" वाल० प्रथम पृ० १०६

थोड़ा बहुत बौद्धों की निर्वाण भावना से भी प्रभावित है। बौद्धों के समान ही वे द्वैताद्वैत विलक्षण शून्य तत्त्व में लीन होने का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार कभी वासना[1] के पूर्ण क्षय की ओर संकेत करते हैं। इतना सब होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि उनकी मोक्ष धारणा पूर्ण बौद्धिक ही है। इस पर योगियों के कैवल्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। कैवल्य को स्पष्ट करते हुए योग सूत्र में लिखा है कि कि पुरुष को भोग और अपवर्ग दिलाने के कार्य से निवृत्त होकर मन और बुद्धि का जो अपने कारण में लीन होना है, वही कैवल्य है। या यों कहिए कि चेतन शक्ति का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही कैवल्य है।[2] अधिक स्पष्ट करना चाहें तो यों कह सकते हैं कि कार्य गुण अपने कारण गुणों में लीन हो जाते हैं। यथा व्युत्थान विरोध संस्कार मन में, मन अस्मिता में, अस्मिता बुद्धि में, बुद्धि अव्यक्त प्रकृति में। इस प्रकार मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से आत्मा का सम्बन्ध नहीं रह जाता है। अब प्रश्न यह है कि जब आत्मा के यह सब बंधन नष्ट हो जाते हैं तो उसका स्वरूपा वस्थान किसमें होता है। "छान्दोग्योपनिषद्" के शब्दों में हम कह सकते हैं "अपनी महिमा में।" मुक्तात्मा की आनन्द प्राप्ति या ब्रह्मकारता के सम्बन्ध में योग सूत्र में कुछ नहीं लिखा है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि सुख दुख की अनुभूति अंतःकरण के द्वारा होती है। किन्तु कैवल्य में उसका गुण अपने कारण रूप आत्मा में ही लीन हो जाते हैं, अतः इनका प्रश्न ही नहीं उठता।

महात्मा कबीर ने कई स्थलों पर कैवल्य भाव के अनुरूप मोक्ष स्वरूप का वर्णन किया है। कार्य गुणों का कारण गुणों में लीन होने का संकेत उन्होंने एक स्थल पर स्पष्ट रूप से किया है। वे कहते हैं :—

बहुरि हम काहे कू आविहिंगे।
बिछुरे पंच तत्त्व की रचना तब हम रामहि पावहिंगे।
पृथ्वी का गुण पाणी सोंख्या पानी तेज मिलाविहिंगे।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि सहजि समाधि लगावहिंगे।

---

१ "मन जीते जग जीतिया ते विषयाते होय उदास" क० ग्र० पृ० ३०८

२ यो० /४/३४

जैसे बहु कंचन के भूषन यह कहि गालि तवाविहिंगे।
जैसे जलहि तरंग तरंगनी ऐसे हम दिखलाविहिंगे।

(क० ग्रं० पृ० १३७)

इस प्रकार उन्होंने कहीं-कहीं पर मन के मन में लीन होने की बात भी कही है।

"कहै कबीर मन मनहि मिलावा" इत्यादि (क० ग्रं० पृ० १०२)

इतना होते हुए भी कबीर का झुकाव वेदान्त की ओर ही अधिक है। ऊपर उद्धृत अवतरण में यद्यपि कि योग के कैवल्य भाव की छाया दिखाई पड़ती है। किन्तु विचार करने पर स्पष्ट हो जायगा कि यह भी वेदान्तानुकूल है। बृहदारण्यकोपनिषद् में एक स्थल पर कहा है कि जीवात्मा बाहर भीतर सद्चित् आनन्द स्वरूपी है। यह आत्मा इन्हीं पंच तत्त्वों से प्रकट होकर इन्हीं में लीन हो जाती है।[1] अब प्रश्न यह है कि आत्मा का यह लय किसमें होता है। इस सम्बन्ध में वेदान्त का निश्चित मत है कि ब्रह्म में इसके लिए समुद्र और तरंग का दृष्टांत दिया जाता है। महात्मा कबीर ने भी यही दृष्टांत दिया है।[2]

मोक्ष के सम्बन्ध में कबीर की धारणा पूर्ण अद्वैती है। उनका निश्चित मत है कि आत्मा कहीं आता-जाता नहीं है। द्वैतभाव का नष्ट हो जाना ही मोक्ष है।[3] कबीर की यह धारणा बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित मुक्ति विवेचन से बहुत मिलती-जुलती है। उसमें भी द्वैतनाश को मुक्ति की दशा कहा है।[4]

कबीर ने मुक्ति को अवस्था की ब्रह्म कारता की अवस्था माना है। उनका मत यह है कि जीव ब्रह्म स्वरूप होकर उसी के समान सत्, चित्त और आनन्द रूप हो जाता है। उनकी बहुत सी उक्तियों में जीव की मुक्ति की दशा में सत् स्वरूप हो जाना स्पष्ट ध्वनित मिलता है। एक स्थल पर वे कहते हैं :—

"अमर भए सुख सागर पावा" (क० ग्रं० पृ० १०२)

यहाँ पर उन्होंने मुक्ति की अवस्था में जीव का सत् और आनन्द स्वरूप होना स्पष्ट ध्वनित किया है। रही चित् वाली बात। वह भी कई स्थलों पर

---

१ बृहदारण्यकोपनिषद् ४/५/१३
२ क० ग्रं० पृ० १३७ सातवीं पंक्ति
३ आया पर सब एक समान तब हम पाया पद निर्वाण क० ग्रं० पृ० १४०
४ बृहदारण्यकोपनिषद् ४/५/१५

संकेतित की गई है। देखिए निम्नलिखित पंक्तियों में पूर्ण ब्रह्म कारता की अवस्था दिखलाई गई हैं :—

होय मगन राम रंगि रामै आवागमन मिटै धायै।
तिनहिं उछाह शोक नहिं ब्यापै, कहैं कबीर करता आपै॥
(क० ग्रं० पृ० १५०)

यही त्रिगुणातीत अवस्था है। इसी को प्राप्त कर भक्त जीवन लाभ करता है। यही परम पद है।[1]

जीव और ब्रह्म की एकाकार की अवस्था की दृष्टि से कबीर को हम पूर्ण अद्वैती कह सकते हैं। उन्होंने बार-बार विविध दृष्टान्तों के सहारे तथा वैसे भी जीव और ब्रह्म का तादात्म्य ध्वनित किया है। कभी तो वे बिम्ब में प्रतिबिम्ब के समाने की बात कहते हैं[2] और कभी जल में जल के समाने का दृष्टान्त देते हैं।[3] इसी अद्वैतावस्था में पहुँचकर साधक और साध्य में आत्मा और परमात्मा का भेद मिट जाता है। वह नीर क्षीर के समान एक हो जाता है।

राम कबीर एक भए हैं को उन सकै पछानि।
(क० ग्रं० पृ० २६०)

सर राधाकृष्णन् ने मोक्ष का वर्णन करते हुए लिखा है "मुक्ति की उच्चतम् स्थिति के सम्बन्ध में चाहे कितना मतभेद क्यों न हो, किन्तु इतना निर्विवाद है कि वह जीव की सक्रिय, स्वतन्त्र और पूर्णावस्था है। वास्तव में इस स्थिति का वर्णन नहीं किया जा सकता है। यदि इसका वर्णन अपेक्षित है तो उसे दिव्य जीवन की स्थिति कह सकते हैं। आत्मा का ब्रह्म से उसी प्रकार तादात्म्य समझना चाहिए, जैसा सूर्य की किरणों का सूर्य से, व्यष्टि संगीत का विश्व संगीत से होता है।"[4] हम ऊपर लिख चुके हैं कि कबीर ने मोक्ष का जो

---

१ क० ग्रं० पृ० १५० पद १८४ चौथी पंक्ति
२ ज्यों बिम्बहि प्रतिबिम्ब समाना
उदक कुम्भ बिगराना
कहै कबीर जाने भ्रम माया, जीवहि जीव समाना। क० ग्रं० पृ० ११७
३ जामें हम सोई हमही में नीर मिले, जल एक हुआ। (क० ग्रं० पृ० १००)
४ भारतीय दर्शन—राधाकृष्णन् प्रथम वाल्यूम— पृ० १४१

वर्णन किया है वह सर राधाकृष्णन् द्वारा निरूपित मुक्त स्वरूप से पूर्ण मेल खाता है।

यहाँ पर यह भी संकेत कर देना चाहते हैं कि कबीर की मुक्ति सम्बन्धी धारणा वेदान्त सूत्र में वर्णित मुक्ति धारणा से थोड़ी भिन्न है। वेदान्त सूत्र की अनावृत्ति[1] और ब्रह्म कारता[2] वाली बातें तो कबीर को पूर्ण मान्य हैं। किन्तु उन्होंने कहीं पर भी ब्रह्म लोक की यात्रा तथा मोक्ष में भी आत्मा का सूक्ष्म शरीर बना रहता है। इन दोनों बातों का वर्णन नहीं किया है। कबीर पंथी पुस्तकों में अवश्य ही अब इसकी सत्य लोक की प्रस्थान प्रणाली कल्पित कर ली गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की मोक्ष सम्बन्धी धारणा योगियों के कैवल्य, बौद्धों के निर्वाण आदि से प्रभावित होने पर भी पूर्ण रूप से उपनिषदिक अद्वैतवादी के अनुरूप है।

जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति :—वेदान्त ग्रन्थों में इस मुक्ति के अतिरिक्त दो प्रकार की मुक्ति दशाओं का वर्णन और मिलता है। उन्हें जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति कहते हैं। जीवन मुक्ति की अवस्था में स्वार्थ भावना का लोप हो जाता है, किन्तु कर्मण्यता बनी रहती है। जीवन के साध्वाचरण स्वाभाविक हो जाते हैं। उनकी अभिव्यक्ति दैनिक क्रियाओं में स्वतः होती रहती है। विदेह मुक्ति की अवस्था इससे भी ऊँची है। इस स्थिति में पहुँचकर साधक शरीर बद्ध रहते हुए भी शारीरिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। ऐसे ही विदेह मुक्त साधक परमहंस कहलाते हैं।[3]

कबीर की रचनाओं में जीवन मुक्त और विदेह मुक्त दोनों प्रकार के साधकों के वर्णन मिलते हैं। जीवन मुक्त की अवस्था के साधक काम, क्रोध व तृष्णा आदि से मुक्त रहता है। उनका मन सदैव प्रसन्न रहता है। वह असत्य नहीं बोलता है। दूसरे की निन्दा नहीं करता। सदैव भगवान् के चरणों में अनुरक्त

---

१ वेद सूत्र ४/४/२२-२६

२ ,, ,, ,,

३ देखिए—श्री हिरयन्ना द्वारा सम्पादित वेदान्त सार की भूमिका—पृ० २१वाँ

रहता है। वह सदैव शीतल हृदय, सम दर्शी, धीर और सन्तोषी बना रहता है।[1] कबीर ने जीवन मृतक की अंग में जीवन मुक्त की और भी कुछ विशेषताएँ संकेतित की हैं। जीवन मुक्त संसार की आशा नहीं करता। उसका अहंकार नष्ट हो जाता है। उसमें किसी प्रकार के विकार नहीं रह जाते हैं। वह अत्यन्त दयालु, विनम्र और निरभिमानी हो जाता है।[2] ऐसा जीवन मुक्त साधक रामरस में मस्त रहता है।[3]

विदेह मुक्ति की अवस्था के वर्णन भी कबीर में कम नहीं पाए जाते हैं। उनकी उन्मनावस्था वास्तव में वेदान्तियों की विदेहावस्था ही है। उसका वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया गया है :—

हँसै न बोले उन्मनी चंचल मेल्हा मारि
कहै कबीर भीतर भिद्या सद्गुरु हथियार ॥

(क० ग्रं० पृ० २)

ऐसे ही विदेह मुक्त भक्त "रामरंगि सदा मतवाले काया होय निकाया" वाली विशेषता को प्राप्त होते हैं।

कबीर की मोक्ष धारणा की विशेषता :—कबीर की मुक्ति स्वरूप सम्बन्धी धारणा बहुत कुछ मौलिक है। वह पूर्ण अद्वैती होते हुए भी सूफियों के मारिफत, जैनियों के दुखान्त, योगियों के कैवल्य तथा बौद्धों के निर्वाण से प्रभावित है। अद्वैतवादियों के समान वे मोक्ष ब्रह्मकारता तथा आनन्द की अवस्था मानते हैं। उनके ऊपर उपनिषदों में वर्णित मोक्ष का प्रभाव अधिक पड़ा हुआ मालूम पड़ता है, ब्रह्म सूत्रों का कम। ब्रह्म सूत्र में वर्णित मुक्तात्मा

---

१ राम भजै सो जानिये जाके आतुर नाहीं
सन्त सन्तोष लिये रहै धीरज मन माहीं
जन को कामक्रोध व्यापै नहि तृष्णा न जरावै
प्रफुल्लित आनन्द में गोविन्द गुण गावै
जन को परनिंदा भावै नहि असत् भावै नहि ॥ इत्यादि (क० ग्रं० पृ० २०१)

२ देखिये—क० ग्रं० पृ० ६३, साखी २।

३ क० ग्रं० पृ० १७, साखी ६।

की ब्रह्मलोक तक की यात्रा वाली कल्पना भी नहीं पाई जाती है। सम्भवतः बाद में कबीर पंथियों ने उसी ढंग पर सत्लोक प्रमाण की कल्पना की है। इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर की मोक्ष सम्बन्धी धारणा मौलिक है।

कबीर की रहस्य साधना

रहस्यवाद का स्वरूप वास्तव में बहुत कुछ रहस्यमय ही है। समय-समय पर विद्वानों ने उसके स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। किन्तु ज्यों-ज्यों इसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया त्यों-त्यों वह और अस्पष्ट होता गया। संक्षेप में रहस्यवाद ब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप से आत्मा की भावात्मक ऐक्यानुभूति के इतिहास का प्रकाशन है। आत्मा और परमात्मा के इस अनिर्वचनीय प्रणय सम्बन्ध की अभिव्यक्ति को ज्ञान और भक्ति से सर्वथा भिन्न समझना चाहिये। बुद्धि के सहारे आध्यात्मिक सत्य का निरूपण करना ज्ञान है। भावना और प्रेम के सहारे ब्रह्म की आधिदैविक स्वरूप की उपासना करना भक्ति है। रहस्यवाद इन दोनों से भिन्न है। जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजाकर रखने लगता है, तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।

महात्मा कबीर के जीवन का लक्ष्य आत्म निरूपण एवं ब्रह्म[1] निरूपण करना था। ब्रह्म विचार दर्शन शास्त्र का प्रमुख विषय है। रहस्यवादी का लक्ष्य भी यही होता है। किन्तु दोनों की साधना में अन्तर है; एक की साधना भावना को लेकर आगे बढ़ती है; दूसरे की बुद्धि के सहारे अग्रसर होती है। भावना का सम्बन्ध हृदय से और बुद्धि का मस्तिष्क से है। हृदय रसकोष है। बुद्धि तर्क की जननी है। उपनिषदों में ब्रह्म को रसरूप कहा गया है। पाश्चात्य दार्शनिकों ने यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि सत्य की अनुभूति सत्य से ही

---

[1] लोग जाने यहु गीत है, यह तो ब्रह्म विचार। (क० ग्रं० पृ० २०३)
तुम जिन जानौ यह गीत है, यह निज ब्रह्म विचार रे।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सम् है॥ (क० ग्रं० पृ० २१५)

हो सकती है ।[1] इसके अनुसार इस रसरूप ब्रह्म की अनुभूति रसमय हृदय से ही सम्भव है । सम्भवतः यही कारण है कि उपनिषदों ने भी उस ब्रह्म की अनुभूति में तर्क की असमर्थता घोषित की है । महात्मा कबीर ब्रह्मानुभूति तथा ब्रह्म निरूपण में तर्क की निरर्थकता से पूर्ण परिचित थे । उन्होंने एक स्थान पर स्पष्ट कहा भी है कि जो लोग तर्क से तत्त्व की द्वैतता सिद्ध करना चाहते हैं, उनकी बुद्धि बड़ी मोटी है ।[2] तर्क से तृप्ति न होने पर उन्होंने अवश्य ही योग का आश्रय लिया होगा । कबीर में योग की अत्यधिक चर्चा मिलती है । योग में साधक का लक्ष्य चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा शब्द ब्रह्म या ज्योतिस्वरूपी ब्रह्म की अनुभूति करनी होती है । कबीर में हमें योग के अनेक रहस्यात्मक वर्णन मिलते हैं । उनका आगे निर्देश करेंगे । किन्तु सम्भवतः कबीर की तृप्ति योग साधना से भी न हो सकी । तभी उन्हें "भावभगति" और "प्रेमभगति" का आँचल पकड़ना पड़ा ।

भक्ति का उपास्य अधिकतर ब्रह्म का आधिदैविक स्वरूप होता है । किन्तु कबीर की उसमें विशेष आस्था न थी । वे ब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप की अनुभूति करना चाहते थे । प्रेम के सहारे की हुई आध्यात्मिक ब्रह्म की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अपने आप ही रहस्यात्मक हो जाती है । यही कारण है कि कबीर में प्रेम मूलक भावात्मक रहस्यवाद की बड़ी मनोरम सृष्टि हुई है । कबीर के रहस्यवाद का अध्ययन करने से प्रथम एक बात ध्यान में रख लेनी चाहिए । वह यह है कि कबीर का जीवन सत्य के प्रयोगों में बीता था । उन्होंने सत्य के विविध प्रयोग विविध धर्म पद्धतियों के आधार पर किए थे । इसलिये उनकी अभिव्यक्ति एवं रहस्यात्मक अनुभूतियों पर उन सबका प्रभाव परिलक्षित होता है । कहीं पर उनमें सूफियों के प्रेम मार्ग का निरूपण मिलता है; कहीं पर हठयोगियों के पारिभाषिक शब्दों एवं प्रक्रियाओं का रहस्यात्मक वर्णन है । कहीं वे सिद्धों की संध्याभाषा की शैली का अनुकरण करते हैं, और कभी उपनिषदों के ढंग पर रहस्यात्मक शैली में तत्त्व का प्रतिपादन । यही कारण है कि उनकी रहस्यभावना

---

१ "मिस्टिसिज्म" अंडरहिल द्वारा लिखित—पृ० २७

२ कहत कबीर तरक दुइ साधै तिनकी मति है मोटी (क० ग्र०)

विविध रूपिणी है तथा उसकी अभिव्यक्ति के विविध स्वरूप, स्तर और सोपान हैं।

आस्तिकता[1] रहस्यवाद का प्रथम परमावश्यक आधार स्तम्भ है। आध्यात्मिक सत्य में आस्था रखे बिना रहस्यवादी की साधना आगे बढ़ ही नहीं सकती।

कबीर कट्टर आस्तिक हैं। उनकी वाणी अपने युग की नास्तिक धर्म पद्धति की प्रतिक्रिया के रूप में उदय हुई थी। यही कारण है कि उन्होंने नास्तिक धर्म पद्धतियों की निन्दा की है।[2]

यहाँ पर शून्य शब्द को स्पष्ट कर देना आवश्यक है क्योंकि बहुत से लोग उन्हें शून्यवादी कहकर नास्तिक समझ सकते हैं। कबीर ने शून्य शब्द कभी उस अर्थ में नहीं प्रयुक्त किया है, जिसमें बौद्ध और सिद्ध लोग किया करते थे। कबीर का शून्यवाद नाथ पंथियों से प्रभावित है। नाथ पंथ में शून्य शब्द अलख निरंजन सत्ता का पर्यायवाची हो चला था। कबीर ने शून्य का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ उसका प्रयोग सहस्र दल कमल के अर्थ में भी किया गया है। उसमें उन्हें नाद स्वरूपी और ज्योति स्वरूपी ब्रह्म के दर्शन होते हैं।[3] अतः स्पष्ट है कि कबीर की शून्य साधना भी आस्तिक है। रहस्यवादियों की आस्तिकता[4] की आधार भूमि अनिर्वचनीय सत्ता ही है। रहस्यवादी ब्रह्म के आधिभौतिक एवं आधिदैविक स्वरूप में कोई विशेष आस्था नहीं रखते। उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म का रूप रहस्यवादियों को पूर्णतया मान्य है। उपनिषदों की भाँति रहस्यवादी का ब्रह्म भी तत्त्वरूप और अनिर्वचनीय होते हुए भी पूर्ण होता है। रहस्यवादी प्रायः "पूरे सो परचा" प्राप्त करना

---

१ मिस्टीसिज्म ईस्ट एण्ड वेस्ट पृ० ७८

२ बौद्ध जैन और साकत सेना,
चार भाग चतुरंग विहीना। (क० ग्रं० पृ० २४०)

३ देखिये 'दि कन्सेप्शन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ शून्यवाद इन मेडिवल इण्डिया बाई क्षितिमोहन सेन 'विश्वभारती पत्रिका' वाल्यूम १ पार्ट १

४ "मिस्टीसिज्म ईस्ट एण्ड वेस्ट"

चाहता है। पूरे सो परचा प्राप्त करना इस शरीर, मन, बुद्धि और वाणी से असम्भव है। कदाचित् उसका किंचित् मात्र आभास मिल भी जाय तो उसकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती है। तभी रहस्यवादी तत्त्व की अभिव्यक्ति को "गूंगे केरी शर्करा" कहता है और उसके हेतु विविध प्रतीकों का सहारा लेता है। परोक्ष सत्ता की अनिर्वचनीयता उसे अद्भुत एवं अलौकिक बना देती है।

ऐसा अद्भुत जिनिकथै, अद्भुत राखि लुकाय।
वेद कुरानौ गमि नहि कह्या न को पतिआय ॥ (क० ग्रं० पृ० १८)

इस अद्भुत अलौकिक सत्ता को रहस्यवादी सर्वव्यापी और अखण्ड मानते हैं। भाव से सर्वत्र उसका आविर्भाव हो सकता है। यौगिक रहस्यवादी उसका स्थान हृदयस्थ गुफा बतलाते रहे हैं। कबीर को दोनों मत मान्य हैं। वे ब्रह्म को सर्वव्यापी अखण्ड आदि भी मानते हैं और योगियों के समान "शून्य मण्डल-वासी" भी।[1]

एक बात और ध्यान देने की है वह यह है कि कबीर का सत्य तत्त्व जड़वादी दार्शनिकों की भाँति निष्प्राण और व्यक्तित्व विहीन भी नहीं है।

वह "पुहुप वास से पातरा"[2] होते हुए भी प्रेममय, क्रियामय और इच्छामय है। सच तो यह है कि ब्रह्म इन्द्रियातीत होते हुए भी इन्द्रियगम्य है। वह बड़ा गरीब निवाज है।

जिस कृपा करे तिसि पूरन काज।
कबीर का स्वामी गरीब निवाज ॥ (क० ग्रं० पृ० २६६)

इसी आधार पर अंडर हिल ने कबीर की ब्रह्म विषयक अनुभूति को समन्वयात्मक कहा है।

इस आध्यात्मिक तत्त्व की अनुभूति रहस्यवादी "प्रेम और भावना" द्वारा

---

१ ऐसा कोई न मिलै, सब विधि देइ बताय
सुनि मण्डल में पुरुष एक ताहि रहै ल्यो लाइ (क० ग्रं० पृ० ६७)

२ क० ग्रं० पृ०

३ "हंड्रेड पोयम्स आफ कबीर"—रवींद्रनाथ टैगोर—इन्ट्रोडक्शन २२

करता है। इसी को दृष्टिकोण में रखकर सम्भवतः महर्षि पतंजलि ने "ईश्वर प्रणिधानाद्वा"[१] लिखा है। गीता[२] और कठोपनिषद्[3] में स्पष्ट ही उसकी प्राप्ति में भक्ति को अनिवार्य घोषित किया गया है। कबीर ने यह बात पूरी तौर से अनुभव कर ली थी कि उसकी प्राप्ति प्रेम या भक्ति से ही हो सकती है। यही कारण है कि उन्होंने स्थान-स्थान पर "भाव भगति" और "प्रेम भगति" का उपदेश दिया है। भक्ति को हम सात्विक हृदय की अनन्यासक्ति कह सकते हैं। अनन्यासक्ति का दूसरा नाम काम है। कबीर ने "काम मिलावे राम सूजो कोई जाने राखि"[४] कहकर यही बात प्रकट की है। राम से मिलाने वाले काम की अभिव्यक्ति सबके हृदय में नहीं हो सकती। इसकी उत्पत्ति के लिये हृदय का अत्यधिक सात्विक होना नितान्त आवश्यक है। हृदय की यह शुद्धता कुछ तो प्रारब्ध कर्मों से, कुछ सञ्चित कर्म से और कुछ क्रियमाण कर्मों से प्राप्त होती है।

"कुछ करनी कुछ करमगति कुछ पुरबला लेख।
देखौ भाग कबीर का दीसत किया अलेख" ॥

(क० ग्रं० पृ० १३)

क्रियमाण कर्मों के रूप में रहस्यवादियों में और विशेष कर सूफी रहस्यवादियों की एक विस्तृत साधना पद्धति का वर्णन मिलता है! अंडरहिल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "रहस्यवाद" में "रहस्यवाद साधना" के अन्तर्गत इसी क्रिया-भाव साधना की व्यवस्था बतलाई है। प्रारब्ध कर्मों से रहस्यानुभूति की कृपा साध्यता प्रकट की गई है। ईश्वर कृपा के बिना ब्रह्म साक्षात्कार हो ही नहीं सकता।

भगवान् की कृपा तथा क्रियमाण, सञ्चित और प्रारब्ध कर्मों के होते हुए भी प्रेमोदय पूर्ण नहीं हो सकता है। क्योंकि पूर्ण प्रेमोदय के लिये साध्य के दिव्य गुणों और अलौकिक सौंदर्य का ज्ञान होना परमापेक्षित है। साध्य का सौंदर्य ही

---

१ योग सूत्र—समाधि—पाद २३ वाँ सूत्र
२ गीता—१८/६६
३ कठोपनिषद्—अ० १ बल्ली २ मन्त्र २३
४. क० ग्रं० पृ० ५१

साधक को तन्मय एवं विभोर कर भावात्मक तादात्म्य प्राप्त करने में सहायक हो सकता है। इसके लिये गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु "प्रेम का अङ्क" पढ़ाता है, तथा 'पिया की पाती' देता है। वही 'प्रेम रूपी पासा' खेलना सिखलाता है। गुरु ही उसे अलौकिक सौंदर्य की भावना से भर देता हैं। प्रियतम के सौंदर्य की एक झाँकी ही देखिये कितनी मनोहर है :—

कबीर पेख्या एक अंग महिमा कही न जाय।
तेज पुंज पारस मणी नैनू रहा समाय॥
(क० ग्रं० पृ० १५)

इसी सौन्दर्य जनित प्रेम सुरा का पान कर साधक पागल हो उठता है। अण्डरहिल ने इसी अवस्था को जागरण की अवस्था कहा है। कबीर ने इस अवस्था का चित्रण अनेक स्थलों पर किया है। इस काल की उनकी सभी उक्तियों में अनिर्वचनीय आनन्द की प्रवेगपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। एक उदाहरण देखिये :—

जानी जानी रे राजाराम की कहानी।
अन्तर ज्योति राम परकासा गुरु मुख बिरलै जानी॥
(क० ग्रं० पृ० २६६)

इस हरि रस पीने वाले की पहिचान क्या है ? कबीर कहते हैं :—

हरि रस पीया जाँणिये, जे कबहूँ न जाय खुमार।
मैंमंता घूमत रहैं, नाहीं तन की सार॥
(क० ग्रं० पृ० १६)

इसी रसायन के स्पर्श मात्र से शरीर कंचन हो जाता है।

सबै रसायण में किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट में संचरै, तौ सब तन कंचन होइ॥
(क० ग्रं० पृ० १८)

किन्तु मन की यह भाव-दशा और आनन्द की यह अनुभूति अधिक देर नहीं ठहरती। माया उसमें बाधक हो जाती है। वह 'कोड़याली कुमति' को

"हरसूं हराम" कर देती है। सूफी मत में माया के स्थान पर शैतान की कल्पना की गई है। कबीर ने अनेक स्थलों पर माया के भी भावात्मक वर्णन किये हैं। वे कभी उसे "महाठगनी" कभी "बुढ़िया" कभी "कुमारी" कभी "नागिन" कभी "डायन" आदि आदि विभिन्न रूपों में देखते हैं। माया के ये भावात्मक वर्णन भी निकृष्ट रहस्यवाद की कोटि में ही आएँगे।

माया के कारण जब वह भाव दशा भंग हो जाती है तब साधक विरह विधुर हो तड़प उठता है। यह आध्यात्मिक विरह एक ओर तो साधक को सत्य की खोज की ओर प्रेरित करता है और दूसरी ओर उसे साधना में संलग्न करता है। सूफियों की भाँति कबीर का भी विश्वास है कि विरह ही ईश्वर से मिलाने वाला है :—

विरह कहै कबीर सों तू जिन छाँड़ै मोहि।
पार ब्रह्म के तेज में तहाँ लै राखौं तोहि॥
(क० ग्रं० पृ० १२)

कबीर ने विरह के अन्तर्गत चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलय, उन्माद, मोह तथा मृत्यु आदि विरह दशाओं के तथा स्तम्भ, कम्प, स्वेद, वैवर्ण्य, स्वरभंग, पुलक और प्रलय आदि सात्विकों के सुन्दर चित्र प्रतुस्त किए हैं। इस वर्णनों के अतिरिक्त भी उन्होंने इतने अधिक चित्रों की अवतारणा की है, इतनी अधिक परिस्थितियों का वर्णन किया है, कि उनका साहित्य में नाम भी मिलना कठिन है। इस विरह विधुर को लोक में कहीं भी और किसी समय भी सुख नहीं मिलता।[1] उसका कोई उपचार भी नहीं है। आध्यात्मिक विरह वर्णन में कहीं-कहीं पर कबीर जायसी से भी आगे बढ़ गये हैं। जायसी की नायिका[2] की यह कामना है कि मेरा यह शरीर भस्म होकर छार हो जावे और

---

१ बासुरि सुख न रैन सुख सुख सपने माहि।
कबीर बिछुड़या राम सूँ ना सुख धूप न छाँह॥ क० ग्रं० पृ० ८

२ या तन जारों छार के कहों कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि पड़ो कंत धरै जहँ पाव॥ (जा० ग्रं०)
इसमें मिलता जुलता भाव 'अकाल जलद' के एक श्लोक में मिलता है। देखिए "कविता कौमुदी" तीसरा भाग—पृ० ३ पर चौथा श्लोक।

वह छार पवन उड़ा कर उसी मार्ग पर डाल दे जहाँ प्रियतम जाने वाले हों, बहुत कुछ संस्कृत कवियों द्वारा अभिव्यक्ति कल्पना का पिष्टपेषण मात्र है। कबीर में यही कल्पना मौलिक होने के साथ-साथ त्याग और कामना की अत्यन्त प्रवेगपूर्ण अभिव्यक्ति में समर्थ हुई है। इसमें एक निरवलम्बिता और निरीहिता का विचित्र भाव भरा है :—

यहु तन जालौं मसि करौं ज्यों धुआं जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करैं बरसि बुझावें अग्गि॥

(क० ग्रं० पृ० ६)

रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अनुभूति के आश्रय से होती है। अनुभूति भावना से सम्बन्धित है। भावना प्रेम की प्रधान प्रवृत्ति है। यह अनुभूति प्रेम पर अवलम्बित होने के कारण जीव और ब्रह्म में एक अनवच्छिन्न और अनन्य सम्बन्ध स्थापित करती है। प्रेम की चरम परिणति दाम्पत्य प्रेम में देखी जाती है। अतः रहस्यवाद की अभिव्यक्ति सदा प्रियतम और विरहिणी के आश्रय में होती है। इन्हीं कबीर ने अपने विरह की विभिन्न अन्तर्दशाओं और परिस्थितियों का चित्रण इन्हीं दाम्पत्य प्रतीकों के आश्रय से किया है। उन्होंने कई स्थलों पर स्पष्ट ही अपने को राम की बहुरिया[१] घोषित किया है। इसी दाम्पत्य प्रतीक का आश्रय लेकर कभी तो वह विरह की परिस्थितियों[२] का कभी मिलन के चित्रों[३] का और कभी प्रियतम के लोक का मधुर वर्णन करते हैं।[४] इस प्रकार की मधुर कल्पनाओं के साथ-साथ साधक आत्म संस्कार में भी तत्पर होता है। आत्म शुद्धि की अवस्था को अण्डरहिल ने रहस्यवाद की साधना का आवश्यक अंग ठहराया है। सूफियों के आत्म संस्कार की इस प्रक्रिया का वर्णन यात्रा के रूपक से किया है। वेदान्त के साधन चतुष्टय और योग के यम नियम आदि का सम्बन्ध आत्म शुद्धि से ही है। कबीर में हमें ये सब जगह-जगह ध्वनित मिलते हैं।

---

१ क० ग्रं० पृ० १२५
२ क० ग्रं० पृ० १० पर देखिए
३ क० ग्रं० पृ० ८७—पद २ और ३
४ क० ग्रं० पृ० ११७ पर १० पद प्रियतम के लोक की कल्पना।

कबीर ने आत्म शुद्धि के लिये किसी साधना पद्धति या धर्म विशेष में वर्णित विधि विधानों का निर्देश नहीं किया है। उन्होंने अधिकतर इन्हीं नैतिक बातों पर जोर दिया है, जिनके आचरण से समाज में किसी प्रकार का मिथ्याडम्बर फैलने की आशंका नहीं हो सकती। इसमें से उन्होंने कुछ का निर्देश विधि के रूप में किया है और कुछ का निषेध के रूप में। इनकी अभिव्यक्ति शास्त्रीय आदेश के रूप में न होकर नीति कथन की शैली से हुई है। उन्होंने काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, कपट और तृष्णा आदि से बचने का तथा शील, क्षमा, दया और सत्य आदि के आचरण का उपदेश दिया है। इस सत्याचरण के बिना योग भी व्यर्थ है :—

हृदय कपट हरि सो नाहीं साँचो।
कहा भया जो अनहद नाच्यो॥
(क० ग्रं० पृ० २१८)

इस हृदय की शुद्धता के विना भाव भक्ति हो ही नहीं सकती है। यह सदाचरण शीलता ही तो राम वियोगी सन्त का लक्षण है।

निरबैरी निह-काँमता, सांई सेती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह॥
(क० ग्रं० पृ० ५०)

और भी :—

साँच शील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै।
(क० ग्रं० पृ० २४४)

कठोपनिषद् में इसी प्रकार कहा है :—

"जो पाप कर्म से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रिय शांत नहीं है, जिसका चित्त असमाहित या अशांत है, वह उसे आत्म ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है।" अ० १, बल्ली २, मन्त्र २४।

यदि साधक को इन नैतिक नियमों के आचरण में कठिनता दिखाई दे तो उसे प्रपत्ति का मार्ग पकड़ना चाहिये :—

कहत कबीर सुनहु रे प्रानी, छाड़हू मन के भरमा ।
केबल नाम जपहु रे प्रानी, परहू एक के सरना ॥

(क० ग्रं० पृ० २६७)

प्रपत्ति भारतीय धर्म साधना का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है। माया के जाल से मुक्त होने का यही एक सरलतम उपाय है। गीता और कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से इसकी महत्ता प्रतिपादित की गई है, अतः इसे विदेशी प्रभाव मानना उचित नहीं है।[१] प्रेमी साधकों ने अपने-अपने प्रिय से भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आत्म शुद्धि के हेतु संगीत, ध्यान, नाम, जप और कीर्तन आदि साधनों का समय समय पर सदुपयोग किया है। इनमें से सभी कबीर में ध्वनित मिलते हैं। उनका संगीत प्रेम उनके विविध संगीत के रूपकों से स्पष्ट होता है।[२] नाद ब्रह्म की उपासना संगीत प्रेम की ही द्योतक है। कीर्तन का सम्बन्ध संगीत से ही है। कबीर को कीर्तन भी बहुत पसन्द था। कोई पैगम्बर पीर जब गाते थे तो उन्हें बड़ा आनन्द आता था।[३]

संगीत के अतिरिक्त कबीर ने नाम जप व सुमिरन[४] को भी विशेष महत्त्व दिया है क्योंकि यह स्मरण भक्त को भगवान् रूप बना देता है। उसका स्मरण करते करते वह अहङ्कार विमुक्त होकर सब कुछ ब्रह्ममय देखने लगता है :—

तू तू करता तू भया मुझ में रही न हू ।
बारी फेरी बलि गई जित देखों तित तू ॥

(क० ग्रं० पृ० ५)

नाम जप में भी उन्होंने अजपा जाप को विशेष महत्त्व दिया है। अजपा-

---

१ "इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर" (पृ० १०५)

२ कबीर हम जन्तु बजावते टूट गई समतार ।
जन्तु विचारो क्या करे चले बजावन हार ॥ (संत कबीर—पृ० २६३)

३ हजूज हमारी गोमती तीर जहाँ बसै पीताम्बर पीर ।
बाहु बाहु क्या खूब गावता है हरि का नाम मेरे मन भावता है ॥
(क० ग्रं० पृ० ३३०)

४ कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल (क० ग्रं० पृ० ५)

जाप में मुँह से बोलने तथा माला फेरने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। श्वाँसोच्छ्वास की क्रिया के साथ ही मंत्रावृत्ति की जाती है। अभ्यास से मन्त्रार्थ भावना दृढ़ हो जाती है और साधक साध्य में इतना भाव मग्न हो जाता है कि एक महात्मा ने यहाँ तक कह डाला है :—

'राम हमारा जप करै हम बैठे आराम''

कबीर ने अपनी साधना में उल्टी चाल को भी विशेष महत्त्व दिया है।

कबीर करनी कठिन है जैसे षंडे—धारा।
उल्टी चाल मिले परब्रह्म सो सद्गुरु हमारा ॥

(क० ग्रं० पृ० १४५)

कबीर की इस उल्टी चाल का सम्बन्ध उनके योग साधन से ही समझना चाहिये। वास्तव में यह राजयोग का एक स्वरूप है। वहिर्मुखी वृत्तियों के अन्तर्मुखी किये बिना या यों कहिये संसार से ध्यान हटाकर उसे आत्मा में बिना केन्द्रित किए हुए समाधि और शान्ति की प्राप्ति नहीं होता। उसके बिना ब्रह्मानुभूति नहीं हो सकती। अतः साधना में उसका विशेष महत्त्व है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आत्मशुद्धि एवं भावातिरेकता की प्राप्ति के लिये कबीर ने बहुत से साधनों का स्थान-स्थान पर आश्रय लिया है। किन्तु ब्रह्म की भावात्मक अनुभूति का मूल विधायक प्रेम ही है। बाकी सब तो उप साधन मात्र हैं। प्रेम के सहारे ही कबीर को सहज समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। इस भाव मूलक समाधि की दशा में भक्त को भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है। प्रेमी का प्रेमिका से मिलन होता है। उनकी आत्मा आनन्द से पुलक[1] उठती है। उसके युग युग के कालुष्य नष्ट हो जाते हैं। उसका वर्ण परिवर्तित हो जाता है।[2]

---

१ हरि संगत शीतल भया मिटी मोह की ताप।
निसि वासर सुख निधि नहीं अंतर प्रकटा आप ॥ (क० ग्रं० पृ०)

२ कबीरा हरदी पीड़री चूना उज्जर भाय,
राम सनेही यों मिलै दुन्हों वरन गमाय ॥

(क० ग्रं० पृ० २६२)

, इसी अवस्था में पहुँचकर साधक के सब तर्क वितर्क समाप्त हो जाते हैं। वह द्रष्टा बन जाता है। यही उन्मनावस्था कहलाती है। देखिए कबीर कहते हैं :—

यहु मन ले उन्मनि रहै जो तीन लोक की बाता कहै।

(क० ग्रं० पृ० ३१०)

भूत, भविष्य तथा वर्तमान सब उसे हस्तामलकवत् हो जाते हैं। गूढ़ दार्शनिक तत्त्व उसे स्वयं स्पष्ट होने लगते हैं। तभी तो अण्डरहिल ने रहस्यवादी को भविष्य द्रष्टा कहा है।[1]

इस भाव दशा में साधक जब अपने उपास्य के दर्शन करता है, तब वह प्रेम और श्रद्धा की अतिरेकता के कारण उससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने लगता है। यही कारण है कि कभी वह उसे माता के रूप में "हरि जननी मैं बालक तोरा", कभी स्वामी के रूप में, कभी पिता के रूप में और कभी पति के रूप में देखता है। इन सब सम्बन्धों में कान्ताभाव अत्यन्त मधुर और भावात्मक है। ईसाई कवियों और सूफियों ने तो इसे महत्त्व दिया ही है, किन्तु हमारे नारद भक्ति सूत्र में भी इसे कम महत्त्व नहीं दिया गया है। यद्यपि कबीर की रचनाओं में हमें सभी सम्बन्ध ध्वनित मिलते हैं, किन्तु कान्ताभाव को उन्होंने विशेष रूप से अपनाया है। वे पुकार कर कहते हैं "हरि मेरा पीव मैं राम की बहुरिया" इस दाम्पत्य भाव से ही साधक और साध्य की पूर्ण अद्वैतता संभव होती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर की रचनाओं में दाम्पत्य भाव के दोनों पक्षों संयोग और वियोग के अत्यन्त मनोरम चित्र मिलते हैं। वियोग के कुछ चित्रों का निर्देश हम पीछे कर चुके हैं। यहाँ पर उनके भावात्मक मिलन के दो चार चित्र प्रस्तुत करेंगे। मिलन का पूर्ण निश्चय होने पर साधक रूपी नायिका का हृदय मिलन जनित विचित्र और मनोरम अनुभूतियों से भर जाता है। ऐसी अनुभूतियों के कबीर ने बड़े विशद और मनोहारी वर्णन किए हैं।

---

१ "वन हन्ड्रेड पोयम्स आफ कबीर"—डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर इन्ट्रोडक्शन २१

जायसी के समान कबीर ने भी प्रेमिका के मिलन के पूर्व की भावनाओं का बड़ा मौलिक वर्णन किया है।

> थरहर कपै बाला जीउ, ना जानउ किया करसी पीव।
> रैनि गई मति दिन भी जात, भँवर गए बग बैठे आय॥
>
> (सं० क० पृ० १४८)

यद्यपि इस प्रकार का चित्र जायसी में भी मिलता है।[1] किन्तु जायसी और कबीर के चित्र में एक बड़ा भारी अन्तर दिखाई देता है। जो ध्वनि संकेतात्मकता और आध्यात्मिकता कबीर की उक्ति में है वह जायसी की उक्ति में नहीं है।

इसके पश्चात् मिलन की अवस्था होती है। इसके लिये ईसाई रहस्यवादियों ने विवाह के रूपक बाँधे हैं। सम्बन्ध की दृढ़ता एवं अभिव्यक्ति की सरसता के लिए इस प्रकार के रूपक बड़े आवश्यक होते हैं। सम्भवतः यही कारण है कि विवाह के रूपक कबीर में भी पाए जाते हैं। इस आध्यात्मिक विवाह के होते ही मंगलाचार होने लगते हैं :—

> बहुत दिनन थे प्रीतम पाए,
> भाग बड़े घर बैठे आए।
> मंगलाचार माहि मन राखो राम रसायण रसना चाखो।
> मंदिर माँहि भया उजियारा लै सूती अपना पिव पियारा।
> मैं रनि रासी जे निधि पाई हमहिं कहा यह तुमहिं बड़ाई,
> कहै कबीर मैं कुछ नहिं कीन्हा सखी सो हमार राम मोहि दीन्हा।
> दुलहिन गावो मंगलचार हम घरि आयो हो राजा राम भरतार॥
> तन रति करि मैं मन रति करिहूँ पंच तत्त्व बराती।
> रामदेव मोहि व्याहन आये मैं जोवन मद माती॥

---

1 अनचिन्ह पिऊ काँपै मन माहा,
"का मैं कहब गहब जो वाहा"—इत्यादि
जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ—६२ भूमिका देखिए

सरीर सरोवर बेदी करिहूँ ब्रह्म बेद उचार।
रामदेव संग भाँवरि लैहूँ धनि धनि भाग हमार॥
सुर तेतिस कोटिक आये मुनिया सहस अठासी।
कहै कबीर हम ब्याहि चले पुरुष एक अविनासी॥

(क० ग्रं० पृ० ६०)

विवाह के बाद सुहाग रात आती है। प्रेमिका उससे अंक भर भर[1] भेंटती है। अपने सौभाग्य को सराहना करती है। प्रियतम के आते ही उसका समस्त गृह प्रकाशित हो उठता है। वह अपने प्रियतम को ले मधुर मिलन में लीन हो जाती है। वह मधुर मिलन, जिसमें वह अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करती है, उसके प्रियतम की कृपा का ही परिणाम है। यहाँ पर कबीर की अभिव्यक्ति भारतीयता से विभोर है।

प्रियतम को एक बार पा लेने पर नायिका फिर किसी प्रकार उसे जाने नहीं देना चाहती। इसके लिए भारतीय रमणी की भाँति चरणों पर गिर कर कठिन आग्रह करने के लिए भी तैयार है।

अब तोहि जान न दैहूँ राम पियारे,
ज्यूँ भावै त्यूँ होउ हमारे॥
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये भाग बड़े घर बैठे आये,
चरननि लागि करौं बरियाई प्रेम प्रीति राखौं उरझाई।
इत मन मंदिर रहौ नित चोखै कहै कबीर परहु मत धोखै।

(क० ग्रं० पृ० ८७)

इस आनन्द मिलन के बाद एकाकार एवं तादात्म्य की परिस्थिति आती है। इसी स्थिति में साधक साध्य से मिलकर नीर क्षीर की भाँति एक हो जाता है। ज्यों-ज्यों साधक की अद्वैतता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों आनन्दानुभूति तीव्रतर होती जाती है। आनन्द की इस परिस्थिति में साधक भाव मग्न हो मौन हो चलता है। इसी स्थिति को दृष्टिकोण में रखकर निकल्सन ने सूफी रहस्यवादी के

---

१ अंक भरें भर भेंटिया, मन में नाहीं धीर (क० ग्रं० पृ०—१९)

विषय में लिखा है[1] कि जो ईश्वर को जानता है वह मौन हो जाता है। गीता में भी कहा है कि सच्चा मुनि वह है जो मौनी है। श्री वल्लभाचार्य ने ब्रह्मज्ञ-पुरुष का वर्णन करने के लिये एक स्मृति वाक्य उद्धृत किया है। राधाकृष्णन् ने इसका अनुवाद किया है।[2]

कबीर ने स्वयं स्वीकार किया है कि मैंने उस अव्यक्त, अकल, अनूपम[3] को देखा तो है किन्तु उसका वर्णन करने में असमर्थ हूँ। उसके दर्शन-जनित आनन्द का जो अनिर्वचनीय अनुभव मुझे हो रहा है, वह गूँगे के मिठास के आस्वाद के समान अनिर्वेद्य है। केवल संकेतों से उसकी किंचित् अभिव्यक्ति होती है।

योगियों की उन्मनावस्था[4] और वेदान्तियों की जीवन-मुक्ति[5] की दशा बहुत कुछ इस अवस्था से मिलती-जुलती है। कबीर ने दोनों के वर्णन भी इसी परि-स्थिति के अनुरूप किए हैं।

यह तो हुई मिलन जनित भाव मग्नता की अवस्था। इसके बाद भी भारतीय रहस्यवादी एक परिस्थिति को और प्राप्त होता है। वह पूर्व है अद्वैतावस्था इसमें साधक और साध्य, नीर और क्षीर के समान मिलकर एक हो जाता है। इस अद्वैत को कबीर ने "ज्यों जल जलहिं समाना" कह कर स्पष्ट किया है।

इस प्रकार कबीर की इसी अवस्था में पहुँचकर साधक कह उठता है।

हरि मरिहैं तो हम हूँ मरि हैं, हरि न मरे तो हम काहे कू मरि हैं।

(क० ग्रं० पृ० १०२)

---

१ 'मिस्टिक्स आफ इसलाम'—पृ० ७१

२ इन्डियन फिजासफी पार्ट २ पेज ६११

३ अविगत अकल अनूपम देखा कहता कहीं न जाय।
सैन करै मनही मन रहसे, गूँगे जानि मिठाय॥ (क० ग्रं० पृ० १०)

४ हँसै न बोलै उन्मनी चंचल मेल्या मारि।
कहै कबीर भीतर भिद्या का सद्गुरु का हथियार (क० ग्रं० पृ० २)

५ मैं मंता अविगत रता अकलप आसा जीत।
राग अमलिभाता रहे जीवत मुकति अतीत॥ (क० ग्रं० पृ० ६)

१५

रूडोल्फ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "मिस्टिसिज्म इन ईस्ट ऐण्ड वैस्ट" में अद्वैतावस्था स्थापित करने में रहस्यवाद की जो प्रक्रिया बतलाई है, वह यही है।

यौगिक रहस्यवाद :—ब्रह्मानुभूति के लिये हमारे यहाँ एक मार्ग और प्रदर्शित किया गया है, वह है योग का। यों तो संहिताओं, उपनिषदों और पुराणों आदि में योग के भूरि-भूरि वर्णन मिलते हैं, किन्तु महर्षि पतंजलि ने उसकी व्यवस्थित साधना पद्धति एवं दर्शन के रूप में प्रतिष्ठा की है। योग दर्शन आस्तिक दर्शन है। उसका प्रतिपाद्य शब्द ब्रह्म है। इस शब्द की अनुभूति करने के लिये उसमें अष्टांगों का विधान है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि योग के अष्टांग हैं। समाधि की अवस्था अनुभूति की अवस्था कही जा सकती है। योग का सिद्धांत है कि जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वही पिंड में है। विश्व और मानव की यह साधर्म्यता भारतीय मनीषियों और ग्रीक विद्वानों ने स्वीकार की है। ग्रीक दार्शनिक विश्व को विराट् और मानव को क्षुद्र जगत् कहते हैं। बृहदारण्यक में यही बात दूसरे ढंग से कही गई है। उसमें लिखा है कि इस विश्वाकाश में जो तेजोमय अमृतमय पुरुष है वही हमारी आत्मा में भी तेजोमय अमृतमय पुरुष है। कबीर की योग साधना भी विश्व और मानव की साधर्म्यता को मानकर आगे बढ़ी है।

पिण्ड में ही ब्रह्मांड की लीला देखना वास्तव में बड़ा रहस्यात्मक है। ब्रह्मांड के ये सब रहस्य साधक को उल्टी चाल से जिसे रुडोल्फ ने अन्तर्दृष्टि की एकता की प्रक्रिया कहा है दिखाई दे सकते हैं। कबीर की साधना में उल्टी चाल का बड़ा महत्त्व है। उसी से तो अगम की धारा के दर्शन होते हैं। इस अगम की धारा को दिखाने वाला गुरु ही है। इस अन्तर्दृष्टि की एकतानता के मार्ग में बड़े विचित्र शब्द और दृश्य दिखाई देते हैं। उपनिषदों एवं तंत्र ग्रन्थों में इन रहस्यपूर्ण शब्दों और दृश्यों का वर्णन है। श्वेताश्वतर में लिखा है— (प्रथम श्लोक २) कुहरे और धुएँ जैसे धूप, अग्नि और पवन जैसे जुगनू स्फटिक और चन्द्रमा जैसे रूपों में योगी रमता है। इसी प्रकार बृहदारण्यक में एक स्थल पर लिखा हुआ है कि आत्म खोज में बढ़ते हुए योगी को केसरिया रङ्ग के कपड़े, रक्तवर्ण की तितलियाँ, अग्नि शिखाएँ, विकच कमल और आकाश में कौंधती

हुई बिजलियाँ दिखलाई पड़ती हैं।[१] इस प्रकार के रहस्यपूर्ण वर्णन छान्दोग्य (३/१३/८) मण्डूक (१/२/६) आदि अन्य उपनिषदों में मिलते हैं। कबीर की रचनाओं में भी रहस्यपूर्ण ध्वनियों और दृश्यों के रहस्यात्मक वर्णनों की कमी नहीं है। उन्हें कहीं पर तो एक घंटे की ध्वनि सुनाई पड़ती है। (क०ग्रं०पृ० १६) कहीं-कहीं गगन घंटा का घहराना (क० ग्रं० पृ० १५/ ४८) और कहीं अनहद नूर।

इसी प्रकार कहीं पर तो उन्हें 'जलह ना फूले कलम बिन' दिखाई देते हैं। इसी प्रकार वे कहीं मोतियों की उत्पत्ति होती देखते हैं, (क० ग्रं० पृ० २३) कहीं पर अनहद नूर चमकते हुए (क० ग्रं० पृ० १६)। कबीर ने षट्चक्रों का वर्णन भी बड़े रहस्यात्मक ढंग से किया है। इन वर्णनों में उन्होंने भक्ति और योग का मिश्रण तो किया ही है, रहस्यात्म कता भी बहुत अधिक लाये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्णन यौगिक होते हुए भी मधुर रहस्यवाद के अच्छे उदाहरण हैं। ऐसे वर्णनों में कहीं-कहीं पौराणिकता का समावेश कर दिया है। इससे उनकी रहस्यात्मकता और भी अधिक बढ़ गई है।[२]

पारिभाषिक शब्दों का रहस्यवाद :—कबीर की वाणी में रहस्यात्मकता का समावेश बहुत कुछ पारिभाषिक शब्दों के सहारे भी हुआ है। उन्होंने कहीं पर तो ६४ दीया और १४ चन्दा का, कहीं १६ पवन आधारों का, कहीं ५२ कोठरियों का, कहीं १६ चक्रों का और कहीं १० दरवाजों का वर्णन किया है। इसी प्रकार कहीं ब्रह्म, अग्नि, कहीं ब्रह्म नालि की, कहीं भ्रमर गुफा की और कहीं त्रिवेणी संगम की चर्चा करते हैं। इस प्रकार के नीरस रहस्यपूर्ण वर्णन कबीर की वाणी में भरे पड़े हैं। इनसे इनका रहस्यवाद का अधिकांश स्वरूप निम्न कोटि का हो गया है। इनकी कुछ उक्तियाँ यौगिक होते हुए भी मधुर हो गई हैं। ये अधिकतर रूपक प्रधान हैं। संत कबीर भाग २ में इस प्रकार के बहुत से रूपक हैं।

---

१ बृहदारण्यक—१/५, १०/१४

२ मन के मोहन बीठुला यह मन लागो तोहिरे।
चरन कमल मन मानिया और न भावै मोहिरे॥
षट दल कमल निवासिया चहुँ को फेरि मिलाय रे॥ इत्यादि
क० ग्रं० पृ० ८८

इन रूपकों में सबसे रहस्यात्मक रूपक विवाह का है। वह रहस्यात्मक होते हुए भी अत्यन्त गूढ़ और दार्शनिक है।[1] अन्य उदाहरणों के लिये देखिए क० ग्रं० ६२ (१२) पद ६३, ११३ (८०) पद १३७, १४१।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर में भावात्मक, साधनात्मक एवं अभिव्यक्ति मूलक तीनों प्रकार के रहस्यवाद के अनेकानेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। किन्तु सब प्रकार के रहस्यवादों में कबीर की विचार प्रधानता का प्रभाव पड़ा है जिससे उनके अधिक स्थल भाव प्रवण नहीं हो पाये हैं। कबीर के रहस्यवाद की अधिकांश उक्तियाँ यौगिक पारिभाषिक शब्दों, विविध संख्याओं एवं यौगिक प्रक्रियाओं से प्रभावित हैं। जहाँ पर कबीर का रहस्यवाद योग और दर्शन से मुक्त हो गया है वहाँ वह अपने सुन्दरतम रूप में दिखाई पड़ता है।

विशेषताएँ :—कबीर के रहस्यवाद की कुछ विशेषताएँ भी हैं। पहली बात तो यह है कि कबीर के रहस्यवाद को हम किसी विशेष प्रकार के रहस्यवाद की कोटि के अन्दर नहीं रख सकते। उनमें जितने प्रकार के भी रहस्यवाद हो सकते हैं; सबकी सृष्टि हुई है। इसका कारण यह है कि उन्होंने सत्य को सम्पूर्णता से पकड़ने की चेष्टा की थी। 'पूरे सो परचा' प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। सम्पूर्ण सत्य को ग्रहण करने की चेष्टा से उनमें सब प्रकार के रहस्यवाद की सृष्टि हो गई। अतः स्पष्ट है कि उनके रहस्यवाद का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है।

कबीर के रहस्यवाद की दूसरी सबसे प्रमुख विशेषता उसकी प्रवृत्यात्मकता है। वह एकान्तिक नहीं है। कुमारी अण्डरहिल[2] और आचार्य क्षितिमोहन सेन का

---

१ फीलु रबादी बलदु पखावज कउआ ताल बजावै।
पहिन चोलना गदहा नाचै भैंसा भगति करावै॥
राजाराम ककरिआ बेर पकाए किन बूझ हमें खाए।
बैठ सिन्धु तल पान लगावै घिस गल उरै लिआवे
वरि मुसरी मंगलु गावहि कछुआ सेख बजावै
वेस को पूत बियाहन चलिया सहने मण्डप छाए॥ संत कबीर १०४

२ हंडरेड पोयम्स आफ कबीर प्रीफेस

भी यही मत है। उनके रहस्यवाद की प्रवृत्यात्मकता का प्रमुख कारण यही है कि वे कोरे रहस्यवादी ही नहीं थे। वे उच्च कोटि के विचारक, गृहस्थ, सुधारक और उपदेशक भी थे। उन्होंने कहीं पर भी घर-बार छोड़कर बनवास लेने का उपदेश नहीं दिया है।

कबीर के सभी प्रकार के रहस्यवादों की तीसरी विशेषता प्रेम प्रधानता होना है। उनका प्रेम सम्बन्धी रहस्यवाद तो प्रेम विशिष्ट है ही, उनके अभिव्यक्ति मूलक और पारिभाषिक शब्द मूलक तथा यौगिक रहस्यवादों में भी प्रेम तत्त्व को प्रमुख स्थान दिया गया है। देखिए निम्नलिखित उदाहरण जो यौगिक रहस्यवाद, पारिभाषिक शब्दों का रहस्यवाद तथा अभिव्यक्ति मूलक रहस्यवाद तीनों का उदाहरण कहा जा सकता है :—

इला पिंगला भाटी कीन्हीं ब्रह्म अगिनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूँदे लागी जोग जुग तारी॥
मन मतवाला पीवै राम रस दूजा कछु न सुहाई।
उल्टी जग नीर बहि आया अमृत धार चुवाई॥
पंच जने सो संग करि लीन्हें चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियाले पीवन लागै सोवत नागिनि जागी॥
(क० ग्रं० पृ० १११)

इस प्रेम तत्त्व ने कबीर के सभी प्रकार के रहस्यवादों में एक अलौकिक आनन्द तत्त्व उत्पन्न कर दिया है। प्रेम वास्तव में रसरूप ही है। तभी कबीर ने प्रेम पियाला की चर्चा की है। रस आनन्द का पर्यायवाची है। उपनिषदों में ब्रह्म को रस रूप कहकर उसके आनन्द स्वरूप को ही प्रकट किया गया हैं। इस प्रेम रस को पीकर देखिये। साधक आनन्द से पागल हो जाता है। निम्नलिखित अवतरण में देखिये कबीर ने राम रस जनित आनन्द का कैसा मादक वर्णन किया है :—

छाकि पर्यो आतम मतिवारा, पीवत राम-रस करत विचारा। टेक
बहुत मोलि महगै गुण पावा, ले कसाब रस राम चुवावा॥

तन पाटन में कीन्ह पसारा, मांगि-मांगि रस पीवै बिचारा।
कहै कबीर फावी मतिवारी, पीवत राम रस लगी खुमारी॥
(क० ग्रं० पृ० १११)

कबीर के सब प्रकार के रहस्यवादों की एक और प्रमुख विशेषता है उसकी एकात्मानुभूति। इसको हम दूसरे शब्दों में अद्वैत भावना कह सकते हैं। अद्वैत भावना कबीर के रहस्यवाद का प्राण है। रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा के भावात्मक अद्वैतवाद की ही कहानी है। कबीर में इस भावना की अभिव्यक्ति सर्वत्र मिलती है। यहाँ पर उनका सूफियों से मतभेद है। निकलसन ने "आइडिया आफ पर्सनैलिटी इन सूफिज्म" नामक ग्रन्थ में स्पष्ट दिखाया है कि सूफी रहस्यवाद पूर्ण अद्वैतावस्था को नहीं प्राप्त होता। देखिये कबीर के इस पद में इस एकात्म मूर्ति की भावना कैसे स्पष्ट रूप से झलक रही है :—

हम सब माहिं सकल हम माहीं, हम ते और कोउ दूसर नाहीं।
तीनि लोक में हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा।
षट्दरसन कहियत हम पेखा, हम ही अतीत रूप मति देखा।
(क० ग्रं० पृ० २००)

उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जब तक द्वैतभावना रहेगी, साधक सत्य से दूर रहेगा।[1]

कबीर के रहस्यवाद में विकासवाद का भी सन्देशा निहित है। वे पूर्व जन्म के संस्कारों और इस जन्म के कर्मों को विकास का कारण मानते हैं। जब प्रकार से कर्म संचित हो जाते हैं साधक उन्नतमना हो चलता है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है :—

देखो कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुखि लहैं, सो दोसत किया अलेख॥
(क० ग्रं० पृ० १३)

---

१ जब लगि मोर तोर करि लीन्हा, तब लगि मैं करता नहीं चीन्हा।
(क० ग्रं० पृ० १०)

इस प्रकार साधक कई जन्मों के कर्मों के, पुण्यों के फलस्वरूप तादात्म्य की स्थिति को पहुँच जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर को जन्मान्तरवाद मान्य है। इस जन्मान्तरवाद के साथ-साथ विकास की भावना सम्बद्ध है। उसका उदाहरण कबीर स्वयम् हैं। कबीर कुछ करनी तथा कुछ पूर्व जन्म के संस्कारों तथा कुछ इस जन्म के कर्मों के फलस्वरूप विकास की इस दशा को प्राप्त हो गये कि उन्हें "अलेख" दृष्टिगोचर हो गया। विकासवाद की यह भावना सूफी कवियों में भी पाई जाती है।

आध्यात्मिक सक्रियता कबीर के रहस्यवाद की एक और विशेषता है। पाश्चात्यों ने उसे रहस्यवाद का प्रमुख तत्त्व माना है।[1] कबीर के रहस्यवाद में भी यह विशेषता वर्तमान है। उन्होंने सत्ती और सूरा के रूपक से यह विशेषता ध्वनित की है।

निष्कर्ष :—इस प्रकार हम देखते हैं कि उनमें प्रमुख रूप से चार प्रकार के रहस्यवाद पाये जाते हैं। प्रेममूलक, यौगिक, पारिभाषिक शब्द जनित तथा अभिव्यक्ति जनित। उनका प्रेममूलक रहस्यवाद बड़ा मधुर है। इसमें आध्यात्मिक प्रणय भावना की विविधमुखी रसधारा बही है। इसमें हमें सूफियों के प्रेम पियाले और खुमारी की अच्छी चर्चा मिलती है। इसकी अभिव्यक्ति मधुर दाम्पत्य प्रतीकों द्वारा हुई है। दाम्पत्य के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की अत्यन्त मनोरम और हृदयहारी परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। कबीर के दूसरे प्रकार का रहस्यवाद विचित्र हठयौगिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप उद्भूत हुआ है। ग्रीक और भारतीय दार्शनिक मानते आये हैं कि जो कुछ पिण्ड में है वह ब्रह्माण्ड में है। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में अनेक लोक हैं, सूर्य हैं, चन्द्र हैं, उसी प्रकार पिंड में भी यह सब वस्तुएँ पाई जाती हैं।

कबीर ने अपनी रचनाओं के पिंड में दिखाई देने वाले अनेक दृश्यों तथा सुनाई देने वाली विविध प्रकार की ध्वनियों के अत्यन्त रहस्यपूर्ण वर्णन किये हैं। योग की कुण्डलिनी उत्थापन प्रक्रियाओं से षट्चक्र भेदन की क्रिया भी आती है। कबीर ने इसके अन्तर्गत चक्रों के बड़े रहस्यपूर्ण अच्छे दृश्य अंकित किये

---

१ मिस्टीसिज्म बाई अण्डरहिल—पृ० २०७

है। अभिव्यक्ति मूलक रहस्यवाद सिद्धों और नाथ पंथियों में बराबर पाये जाते थे। इन रहस्यपूर्ण अभिव्यक्तियों को उनमें संध्याभाषा के नाम से पुकराते थे। कबीर का अभिव्यक्ति मूलक रहस्यवाद उनसे अत्यधिक प्रभावित है। कबीर की उलट-वासियाँ ऐसे ही रहस्यवाद की सृष्टि करती हैं। उनके रूपक भी कम रहस्यपूर्ण नहीं हैं। अध्यवसित रूपक होने के कारण इनकी जटिलता और भी बढ़ गई है। जटिलता के कारण कहीं-कहीं उनमें अस्वाभाविक रहस्यात्मकता आ गई है। कबीर की बहुत सी उक्तियाँ अनेक प्रकार के पारिभाषिक शब्दों के सहारे खड़ी हुई हैं। इन पारिभाषिक शब्दों के अर्थ निकालना वास्तव में बड़ा कठिन होता है। कहीं-कहीं तो कुछ स्पष्ट अर्थ निकलता भी नहीं है। इस कारण यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण हो गई है। लेखक ने उन्हें भी एक प्रकार के रहस्यवाद की ही अभि-व्यक्ति माना है।

कबीर के सभी प्रकार के रहस्यवादों की कुछ सामान्य विशेषताएँ भी हैं। प्रायः इन सभी में प्रेम और आनन्द की भावना किसी न किसी रूप में अवश्य पाई जाती है। एकात्मभूतता या अद्वैतभावना एक अन्य विशेषता है जिससे उनके सब प्रकार के रहस्यवाद अनुप्राणित हैं। कबीर का रहस्यवाद सूफियों के विकासवाद का भी अनुयायी है। विकासवाद ही नहीं जन्मान्तरवाद भी उन्हें मान्य है। उनका रहस्यवाद एकान्तिक नहीं है। वह प्रवृत्यात्मकता से संप्रिक्त है। आचार्य क्षितिमोहन सेन[1] और कुमारी इबिलियन अण्डरहिल[2] ने भी यह बात स्वीकार कर ली है। उनके रहस्यवाद में आध्यात्मिक सक्रियता का भी प्रभाव नहीं है। संक्षेप में कबीर का रहस्यवाद अत्यन्त पूर्ण और मधुर है।

हिन्दी साहित्य में रहस्यभावना की अभिव्यक्ति करने वाले कवियों में जायसी, सूर, तुलसी और कबीर प्रमुख हैं, किन्तु कबीर की तुलना में इनमें से कोई नहीं आ सकता। जायसी में कबीर के प्रेम मूलक रहस्यवाद की पूर्ण और मधुरतम अभिव्यक्ति मिलती है, किन्तु उसमें इतनी ठोस आध्यात्मिकता नहीं है जितनी कबीर में है तथा अन्य प्रकार के रहस्यवाद भी नहीं पाए जाते। तुलसी की रहस्यभावना बहुत कुछ अभिव्यक्ति मूलक है। उन्होंने ब्रह्म के आधिदैविक

---

१ मेडिवल मिस्टिसिजिम—सेन—पृ० १८ प्रीफेस

२ हण्ड्रेड पोइम्स आफ कबीर प्रीफेस १३—टैगोर

स्वरूप को विशेष महत्त्व दिया है। अतः तुलसी में रहस्य भावना के लिये कम स्थान है। केवल संकेतात्मक तथा अभिव्यक्ति जनित विशेषताओं के कारण ही उनमें एकान्त स्थल पर रहस्य भावना का समावेश हो गया है। उनमें कबीर की सी सर्वांगीण रहस्य भावना ढूँढ़ने का प्रयत्न किया जाए तो असफल ही होना पड़ेगा। जहाँ तक सूर का सम्बन्ध है उनकी रहस्य भावना उनके काव्य का प्रधान अंग नहीं है। उनमें जो कुछ रहस्यवाद मिलता है वह अधिकतर दृष्टिकूट पदों में ही है। दृष्टिकूट के पदों का रहस्यवाद बहुत कुछ अभिव्यक्ति मूलक और शुष्क ही है। कबीर के रसात्मक रहस्यवाद से उसकी तुलना करना उचित नहीं। हाँ, मीरा ने अवश्य माधुर्य की धारा बहाई है। उनका रहस्यवाद सूफियों के इश्क से तथा दक्षिण की अन्दाल भक्तियों की भक्ति व भावना से विशेष रूप से प्रभावित है। उनमें अनुभूति है, वेदना और माधुर्य है, किन्तु व्यापकता तथा दार्शनिकता नहीं है, जो कबीर में मिलती है। अतः कबीर का रहस्यवाद इनसे भी थोड़ा भिन्न है। इस प्रकार हम यह निस्संकोच कह सहते हैं कि कबीर हमारी भाषा के श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं।

चौथा प्रकरण

कबीर के आध्यात्मिक सिद्धान्त

(१) अध्यस्त तत्व सम्बन्धी विचार।

(क) माया वर्णन :—

माया और माया वाद—माया तत्त्व विवेचन—मन और माया—माया और ब्रह्म—निरंजन।

(ख) जगत बर्णन :—

सृष्टि जिज्ञासा—जगत सत्ता का स्वरूप—सृष्टि विकास क्रम—ब्रह्म और जगत—निष्कर्ष।

(ग) कबीर के आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर विहंगम दृष्टि और उनकी दार्शनिक पद्धति।

(२) आध्यात्मिक साधन सम्बन्धी विचार।

(क) कबीर का योग वर्णन :—

योग निरूपण—कबीर का योग वर्णन—निष्कर्ष—सिद्धावस्था।

(ख) भक्ति विवेचन :—

गुरु की देन—भक्ति मार्ग के आचार्य—भक्ति तत्त्व—विवेचन—उपास्य स्वरूप वर्णश्रम धर्म की अमान्यता—कबीर की भक्ति और उसकी विशेषतायें—भक्ति के साधन—निष्कर्ष।

कबीर का माया वर्णन

माया और मायावाद :—कबीर ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर माया की निन्दा की है। माया शब्द वैदिक काल से ही प्रचलित है, किन्तु वेदों में वह अपने उस अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है जिसमें आज उसका प्रयोग

हो रहा है। जगत की वास्तविक सत्ता में विश्वास करने वाले आशा वादी वैदिक ऋषि लोग माया शब्द का प्रयोग प्रायः वेश बदलने के अर्थ में ही किया करते थे 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (ऋगवेद ६/४७/१८) 'अर्थात् इन्द्र अपनी माया से अनेक रूप धारण करता है' में माया शब्द रूप बदलने के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। आगे चलकर उपनिषदों में इसका प्रयोग नाम रूप के अर्थ में भी किया जाने लगा था। उपनिषदों के बाद बौद्ध युग आया। बौद्धों के स्वप्नवाद, क्षणिकवाद, शून्यवाद का प्रतिपादन और प्रवर्तन हुआ। वैदिक मायावाद को करवटें बदलने का अच्छा अवसर मिला। धीरे-धीरे वह बौद्धों के स्वप्नवाद, शून्यवाद आदि से इतना प्रभावित हुआ कि मायावाद से स्वप्नवाद में बदल गया। गौणपादाचार्य का 'मायावाद स्वप्नवाद ही है।'[1] वैदिक मायावाद को इस प्रकार स्वप्नों के रूप में परिवर्तित होते देख, स्वामी शंकराचार्य ने इसको शास्त्रीय ढंग से पुनःप्रतिष्ठित किया। प्रस्थानत्रयी के भाष्य में आचार्य ने बौद्धों के स्वप्नवाद का खंडन और अपने मायावाद तथा स्वप्न-वाद का निरूपण किया है। आचार्य जी के प्रभाव से उनका मायावाद मध्य-कालीन विचारधारा में प्राणरूप से परिव्याप्त हो गया। कबीर मध्य युग के विचारक थे। अतः उनकी विचारधारा में मायावाद का समावेश होना स्वाभाविक था।

अवांग-मनसागोचर-स्वयं-प्रकाश-स्वरूप चेतन सत्ता में जड़ के अन्तर्भाव की तीन प्रणालियाँ प्रचलित हैं शक्ति रूप से, गुण रूप से और अध्यास रूप से। प्रथम दो प्रकार का अन्तर्भाव विशिष्टाद्वैती माना जाता है। तीसरे प्रकार का अद्वैती है।

अद्वैती अन्तर्भाव का विचार प्रायः दो प्रकार से किया जाता है अधिष्ठान की दृष्टि से और अध्यस्त की दृष्टि से। अधिष्ठान की दृष्टि से किया हुआ अन्तर्भाव ब्रह्माद्वैतवाद कहलाता है और अध्यस्त की दृष्टि से किया हुआ अन्तर्भाव मायावाद।

---

१ देखिए मण्डूक्य कारिका ४/ ३०,३१

माया तत्त्व का विवेचन :—स्वामी शंकराचार्य ने[१] माया को भ्रम रूप माना है। उन्होंने लिखा है कि इन्द्रियों के अज्ञान से भूलकर ब्रह्म में कल्पित किए हुए नाम रूप को श्रुति स्मृति सर्वज्ञ ईश्वर की माया कहते हैं। श्रीमद्-भागवत में माया का स्वरूप वर्णन कुछ इसी ढंग पर हुआ है।

ऋते अर्थं प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद् विद्यादात्मनी माया यथा भासो यथा तमः॥
(श्रीमद्भा० २/६/३३)

अर्थात् जो वस्तु न होने पर भी अस्तित्वमय होती है और जो आत्म में प्रतीत नहीं होती उसे आत्मा की माया समझना चाहिये। इस प्रकार के भ्रम को शंकराचार्य ने अध्यास में कहा है। अध्यास[२] का अर्थ है अतद् में तद् बुद्धि का होना। कबीर ने अपनी इन पंक्तियों में इसी भ्रम की ओर संकेत किया है :—

पाहण केरा पूतला, करि पूजै करतार,
इही भरोसे जे रहे तो बूडै कालीधार। क० ग्रं० पृ० ४२

से माया जनित भ्रम के रूप को स्पष्ट करते हुये बादरायण ने "वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्"[३] अर्थात् बौद्धों का जो यह मत है कि बिना किसी इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थ के जैसे स्वप्न में काल्पनिक सृष्टि है जाग्रत अवस्था में वृक्ष आदि इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थ अस्तित्व विहीन होते हुए भी अस्तित्वात् दीख पड़ते हैं, ठीक नहीं है। कबीर आचार्य के अनुयायी हैं, वे माया को उन्हीं के समान भाव मय भ्रम मानते हैं। उपर्युक्त साखी में पाहन का पुतला ठोस भावात्मक वस्तु है, किन्तु उसमें ब्रह्म की भावना भ्रम रूप है, क्योंकि वह वास्तव में पत्थर है ईश्वर नहीं। पत्थर को ईश्वर समझ लेना वैसा ही भ्रम है जैसा कि रज्जु को सर्प सम-

---

१ "अध्यासो नाम अनस्मिन् तद्बुद्धिः"१/१/१ ब्रह्मसूत्र

२ ब्र० सू० २/२१६

३ देखिए ब्रह्मसूत्र में माया की विवेचना
ब्र० सू० ३/२/३, २/१/१४, ३/२/४

४ यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति तत्सत्यम्"—शङ्कराचार्य

झना। इस प्रकार वेदान्त की भाँति कबीर की माया एक प्रकार की भाव रूप भ्रांति है। भ्रांति के लक्षण और स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये अनेक वादों का प्रवर्तन हुआ है। इन्हें ख्यातियाँ कहते हैं। सांख्य का सिद्धान्त सत् ख्यातिवाद कहलाता है। इनका कहना है कि सीपी भी रजत के समान ही सत्य है, क्योंकि दोनों सहचर भाव से रहते हैं। असत् ख्यातिवाद शून्यवादी नास्तिकों का मत है। वे स्वप्न के समान सीपी और रजत् दोनों को भ्रम रूप मानते हैं। विज्ञान वादियों में आत्म ख्यातिवाद प्रचलित है। इनके मतानुसार रजत का बोध नहीं होता। वह सीपी नाम के सत्य पदार्थ की अंतर्सत्ता है। किन्तु वाह्य रूप से वह रजत् भ्रम रूप मालूम पड़ती है। नैय्यायिक अन्यथा ख्यातिवादी कहलाते हैं। उनका कहना है कि सत्य पदार्थों के अनुभव से हमारे ऊपर कुछ संस्कार दृढ़ होते हैं। उनके सहित दोष रहित नेत्रों का अधिष्ठान के साथ सम्बन्ध होने पर फिर पहले देखी हुई वस्तु को स्मृति होने पर पुरोवर्ती स्थाणु आदि पुरुष रूप प्रतीत होते हैं। वेदान्त इन सब को नहीं मानता, उसने अनिर्वचनीयतावाद को जन्म दिया हैं। उसके अनुसार भ्रम या माया अनिर्वचनीय है। इस अनिर्वचनीयतावाद की पहली सीढ़ी सदसद्वाद है। अतः वेदान्त में सदसद्वाद और अनिर्वचनीय ख्यातिवाद दोनों प्रचलित हैं। माया को किस प्रकार और क्यों अनिर्वचनीय तत्त्व कहा जाता है। थोड़ा सा इसे भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है। माया की अनिर्वचनीयता सिद्ध करने के लिये जगत सत्ता पर फिर से विचार करना पड़ेगा, क्योंकि माया का कार्य क्षेत्र जगत ही है। संसार में सत् तत्त्व की अभिव्यक्ति धर्म रूप से सभी पदार्थों में दिखाई पड़ती है। सर्वत्र अनुस्यूत होने के कारण वह विश्व का उपादान तत्त्व सिद्ध होता है। किन्तु सत् का स्वरूप अव्यभिचारी और अव्यय माना जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सत् का कार्यरूप जगत भी वैसा ही होना चाहिए, किन्तु वह वैसा नहीं है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि इसका उपादान कारण कोई सद् विलक्षण तत्त्व है। यदि कहें कि वह असत् है तो वह भी उचित नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि यदि असत् संसार का उपादान कारण होता तो प्रत्येक पदार्थ की सत् सत्ता न दिखाई देती। अतः संसार का उपादान कारण न केवल सद् है और न असद् ही है। सम्भव है सद् भी हो असद् भी हो किन्तु इस प्रकार का मिश्रण सम्भव नहीं है।

अतः वह तत्व अनिर्वचनीय है। इस प्रकार माया को अनिर्वचनीय भ्रम माना गया है। वेदान्त का यह अनिर्वचनीयतावाद कबीर को उसके मित्र सदसद्वाद के साथ मान्य है। कबीर ने सदसद्वाद के ढङ्ग पर ही माया को एक स्थल पर सगुण और निर्गुण दोनों कहा है।

मीठी मीठी माया तजी नहि जाई।
अग्यानी पुरुष को भोलि-भोलि खाई॥
निर्गुण सगुण नारी संसार पियारी।
लखमणि त्यागी गोरख निवारी॥

(क० ग्रं० पृ० १६६)

कबीर अपने माया वर्णन में कभी-कभी शून्यवादियों की ओर झुकते दिखाई पड़ते हैं। किन्तु थोड़ी देर में अनिर्वचनीय ख्यातिवाद पर आ जाते हैं। वेलि रूप माया का यह वर्णन देखिए।

आगणि वेलि अकासि फल, अण व्यावर का दूध।
ससा सींग की धूधहड़ी, रमैं बांझ का पूत।

(क० ग्रं० पृ० ८६)

यहाँ पर स्पष्ट ही माया का निर्गुण स्वरूप वर्णित है। उसका वर्णन बेलि के रूप में किया गया है। यह वर्णन वेदान्त के सदसद्वाद का आधार लिये होने पर भी अनिर्वचनीयता की ओर झुका हुआ है। माया सद् है भी और असद् भी है। उसका यह स्वरूप संसार में परिव्याप्त है। जो लोगों को धर्म और अधर्म में प्रवृत्त किया करता है। इन धर्म अधर्मों का फल आकाश अर्थात् परलोक में भोगना पड़ता है। माया का असद् रूप शशक के सींग, बाँझ के पुत्र की क्रीड़ा, तथा बिना ब्याई हुई गाय के दूध के समान काल्पनिक और सारहीन है। माया की यही सदसदता उसकी अनिर्वचनीयता की ओर संकेत करती है। यह अनिर्वचनीयतावाद निम्नलिखित अवतरण में दूसरे प्रकार से ध्वनित किया गया है:—

जो कांटों तो डहड्ही सींचों तो कुम्हलाय।
इस गुणवन्ती बेल का कुछ गुण कहा न जाय॥

(क० ग्रं० पृ० ८६)

यहाँ पर माया रूपी बेलि को विरोधात्मक गुण सम्पन्न कहकर उसे अनिर्वच-नीय ध्वनित किया गया है। माया रूपी बेलि विचित्र गुणों वाली है। यदि उसे काटा जाए अर्थात् छोड़ने का प्रयत्न किया जाए तो वह और भी अधिक आकृष्ट करती है। किन्तु यदि उसे ईश्वर ध्यान रूपी जल से सींचा जाए तो अपने आप कुम्हला जावेगी। कबीर कहते हैं कि इस विचित्र और विरोधी गुण वाली बेलि का कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता है।

एक दूसरे स्थल पर कबीर ने माया की अनिर्वचनीयता स्पष्ट रूप से स्वीकार की है। वहाँ पर उन्होंने माया के विस्तार[१] का विशद वर्णन किया है। माया के समस्त विस्तार को उन्होंने मिथ्या रूप कहा है और उसकी समता नट की कलाओं से दी है। जिस प्रकार नट की बहुत सी कलायें अनिर्वचनीय होती हैं और उनके रहस्य को केवल नट भर जानता है। उसी तरह माया के इस विस्तार को मायापति नटवर ही जानते हैं। इस विस्तार को देख कर भी कबीर अपने को उसके स्वरूप से अनभिज्ञ ही समझते हैं।[२]

वेदान्त में जिसे माया कहा गया है सांख्य मत वाले उसी को प्रकृति कहते हैं। यह माया या प्रकृति त्रिगुणात्मिका और प्रसव धर्मिणी कही गई है। यह स्वयं अव्यक्त है, किन्तु व्यक्त महत् तत्त्व की जननी है। इस महत् तत्त्व से अहंकार का प्रादुर्भाव होता है। अहंकार से सात्विक, सेन्द्रिय और निरिन्द्रिय सृष्टियाँ होती हैं। सेन्द्रिय सृष्टि से पाँच बुद्धीन्द्रियाँ, पाँच धर्मेन्द्रियाँ तथा मन, और

---

१ माया मोह धन जोबना, इन बन्धे सब लोय।
झूठै झूठ वियापिया कबीर अलख न लखई कोय॥
झूठनि झूठ सांच करि जाना, झूठनि में सब सांच भुलाना।
धंध बंध कहि बहुतेरा क्रम विविर्जित रहे न मेरा॥
षट दरसन आश्रम षट कीन्हा षट रस खाटि काम रस लीन्हा। इत्यादि
(क० ग्रं० पृ० २२६)

२ नट बहुरूप खेले सब जाने, कला करे गुन ठाकुर माने।
औ खेले सबही घट माही, दूसर के लेखे कछु नाही॥
जाके गुन सोइ पै जाने और को जानै पार अयाने।
(क० ग्रं० पृ० २३०)

निरीन्द्रिय सृष्टि से पाँच तन्मात्रायें तथा पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं। संक्षेप में सांख्य का सृष्टि विकास का क्रम वही है। इनमें महत्, अहंकार और पाँच तन्मात्रायें प्रकृति विकृति कहलाती हैं। बाकी सोलह तत्त्व विकार कहलाते हैं। वेदान्तियों का तत्त्व वर्गीकरण दूसरे प्रकार का है। वे प्रकृति को अष्टधा मानते हैं। प्रकृति के इन आठ अंगों में प्रकृति, महत् अहंकार और पंच तन्मात्रायें आती हैं।

कबीर की माया धर्म और स्वभाव से सांख्यवादियों की प्रकृति से बहुत मिलती जुलती है। सांख्यों के समान कबीर माया को त्रिगुणात्मिका मानते हैं[1]। वह प्रसव धर्मिणी भी है। सारी सृष्टि उसी से उत्पन्न हुई है।[2] पंच तत्त्व इसी सृष्टि के मूल तत्त्व हैं।[3] कहीं-कहीं पर उन्होंने अष्टधा प्रकृति की ओर भी संकेत किया है। एक स्थल पर उन्होने इस जगत को वृक्ष रूप में कल्पित किया है। उसकी तीन शाखायें हैं और आठ[4] पत्र हैं। पाप, पुण्य उसके दो फल हैं। वहाँ सम्भवतः आठ पत्रों से अष्टधा प्रकृति की ओर तीन शाखाओं से तीन गुणों की ओर संकेत है। वेदान्ती कबीर का अष्टधा प्रकृति की ओर संकेत करना स्वाभाविक ही है।

इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की प्रमुख विशेषता उसकी परिवर्तन शीलता है। शंकराचार्य जी ने भी यह बात स्वीकार की है। संसार की जितनी वस्तुएँ हैं सब माया रूपिणी एवं परिवर्तन शीला हैं। इसीलिये माया को अत्यन्त गतिवती माना गया है। कबीर कहते हैं :—

कबीर माया डोलनी, पवन बहै हिवधार ॥
(क० ग्रं० पृ०—२५७)

---

१ रजगुण तमगुण सतगुण कहिये यह सब तेरी माया। (क० ग्रं० पृ० २४)

२ एक विमानी रचा विमान, सब अपान सो आपे जान।
सत रज तम ये कीन्ही माया वारि सानि विस्तार उपाय॥
(क० ग्रं० पृ० २२८)

३ पंचतत्त्व ले कीन्ह बधान (क० ग्रं० पृष्ठ २२६)

४ क० ग्रं० पृ० २२६ सतपदी रमैणी नं० २

यह परिवर्तन उत्पत्ति और लय के कारण विशेष रूप से लक्षित होता है। इसीलिये माया को कबीर ने उत्पन्न होने वाली और नष्ट होने वाली वस्तु भी कहा है।[1] इसी माया के कारण जीव आवागमन के इन्द्रजाल में फँसा हुआ है। यह आवागमन दुख का कारण है। अतः माया स्वभावतः दुख रूपिणी हुई। कबीर ने दो एक स्थलों पर माया की इस विशेषता को भी व्यक्त किया है।[2] परिणाम में दुख रूपिणी माया प्रत्यक्ष रूप से बड़ी मोहक है। उसकी यह मोहकता ही अज्ञानी पुरुष को भुला-भुला कर नष्ट कर देती है।

माया स्वभाव से व्यभिचारिणी है। वह संसार के सभी जीवों को अपने इन्द्रजाल में फँसाए हुए है। इसीलिये वह बन्धन रूपा है। 'मोर' 'तोर' ही उसकी शृंखलाएँ हैं। जब तक यह मोर तोर जनित शृंखलाएँ बनी रहती हैं तब तक जीव को मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। बन्धन शीला होने के साथ-साथ वह अज्ञान रूपा भी है। अज्ञान का प्रतीक है अंधकार। तभी तो कबीर ने माया को अंधकार रूपिणी कहा है। इस माया का साम्राज्य बड़ा विस्तृत है।[3] तुलसी की "गो गोचर जहँ लगि मन जाई सो सब माया जानहु भाई" वाली बात कबीर को भी मान्य है। माया की आकर्षण शक्ति तथा उसकी व्यापकता का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि माया इतनी आकर्षणमय है कि छोड़ने का प्रयत्न करने पर भी वह नहीं छूटती है। संसार में जो कुछ आदर, मान आदि है वह सब माया ही है। कबीर जप तप आदि को भी बन्धन रूप होने के कारण माया रूप ही मानते हैं। वह माया केवल संसार तक ही नहीं सीमित है, वह जल, थल और आकाश सर्वत्र परिव्याप्त है। संसार के जितने भी संबंध हैं वे सब माया रूप ही हैं। इन सबका परित्याग कर ही कबीर ने राम का आश्रय लिया था।[4]

यह आकर्षणमयी माया भगवान् की भक्ति नहीं करने देती। वह उसमें बड़ी बाधा डालती है। ज्यों ही भक्त या जिज्ञासु अपनी साधना में अग्रसर होने

---

१ उपजै विनसे जेती सर्वमाया—क० ग्रं० पृ०—१५६

२ क० ग्रं० पृ० १६६, पद २२०

३ क० ग्रं० पृ० २८७, पद ७८ (परिशिष्ट)

४ क० ग्रं० पृ० ११४, पद ८४

लगता है त्यों ही माया भक्त को अनेक प्रकार के प्रलोभन देती है।[१] माया जनित ऐसे ही प्रलोभन कठोपनिषद् में यम ने नचिकेता के समक्ष रखे हैं। किन्तु नचिकेता ने उन सब पर लात मार दी। नचिकेता के समान कबीर ने भी माया के प्रलोभनों को ठुकरा कर भगवान् की भक्ति का मार्ग लिया था।

कबीर माया को सम्भवतः अव्यक्त भी मानते थे। "कीडी कुंजीर में रही समाई"[२] लिखकर उन्होंने यही बात प्रकट की। वह अपनी अव्यक्तता के कारण ही सर्वव्यापक है। सांख्य और वेदान्त में भी प्रकृति को अव्यक्त ही मानते हैं। मालूम होता हैं कबीर यहाँ पर इन्हीं से प्रभावित थे। माया की व्यापकता का वर्णन कबीर ने बड़े विस्तार से किया है।[३] उनके अनुसार सृष्टि के सारे पदार्थ मायामय ही हैं। यही नहीं छहों जती (जैनियों के प्रसिद्ध योगी) चौरासी सिद्ध नव नाथ आदि साधक भी माया से ही विभूषित हैं।

माया वास्तव में भेद बुद्धि है। वह एकत्व में अनेकत्व की प्रतिष्ठा करती है। यही कारण है कि माया को "मोर तोर" रूप कहा गया है।[४] "मोर तोर"

---

१ क० ग्रं० पृ० १८०, पद २६६

२ क० ग्रं० पृ० १६६, पद २३२

३ जल महि मीन माया के बेधे, दीपक पतंग माया के छेदे।
काम माया कुंजर को व्यापे, भुअंगम मृग माया महि खापे।
माया ऐसी मोहनी भाई, जेते जीय तेते डहकाई।
पाखी मृग माया महि राते, साकर माखी अधिक संतापे।
तुरे अष्ट माया महि भेला, सिध चौरासी माया महि खेला।
छिय जती माया के बन्दा, नवे नाथ सूरज और चन्दा।
तपे रखीसर माया महि सूता, माया महि काल और पंच दूता।
स्वान स्याल माया महि राया, बनर चीते अरु सिघाता।
माजार गाडर अरु लूबरा, विरख मूल माया महि परा।
माया अन्तर भीने देव, सागर इन्द्रा अरु धरतेव।
क० ग्रं० पृ० २३२

४ मोर तोर करि जरे अपारा, मृग तृष्णा झूठी संसारा।
क० ग्रं० पृ० २३३

वास्तव में मृग तृष्णा के द्योतक हैं। जब तक मनुष्य में 'मोर तोर' रूपनी भेद बुद्धि मूलक माया बनी रहती है तब तक उसे सुख शान्ति नहीं मिलती। तभी तो कबीर ने माया को पिशाचिनी, डाकिनी, डायन, नकटी आदि नामों से अभिहित किया है। वह सब प्रकार से दुख रूपा है। कबीर ने एक स्थल पर माया को त्रिविध अर्थात् त्रिगुणों का वृक्ष कहा है, और दुख सन्तापादि उस वृक्ष की शाखायें हैं।[1]

मन और माया :—माया का मन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कबीर ने मन को माया का निवास स्थान ही बतलाया है। "इक डायन मेरे मन बसै नित उठ मेरे जिय को डसै" कहकर उन्होंने यही बात प्रकट की है।[2] वह मन में रहने के कारण सदैव ही दुख दिया करती है। जिस प्रकार शरीर के नष्ट होने पर मन का नाश नहीं होता है। उसी प्रकार माया भी अविनश्वर है।

'माया मुई न जन मुआ मरि मरि गया सरीर।'

(क० ग्रं० पृ० १३७)

मन के सारे विकार माया के संगी साथी हैं। मान, आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर आदि सब माया के ही संगी साथी हैं। कबीर ने एक स्थल पर काम क्रोधादि पंच विकारों को माया के लड़के कहा भी है।[3] माया की सबसे अधिक दुर्गम घाटियाँ कनक और कामिनी हैं। इन्हीं कनक कामिनी की 'झल' में सारा संसार जल रहा है। इनसे बचना वास्तव में बड़ा कठिन है। ये 'रुई लपेटी आग' के समान है।[4] कहीं-कहीं कबीर ने कनक या

---

१ माया तरुवर त्रिविधि का साखा दुख सन्ताप
सीत लता सुपिने नहीं फल फीको तन ताप।

क० ग्रं० पृ० ३४

२ क० ग्रं० पृ० १६८, पद २३६

३ एक डायन मेरे मन में बसे नित उठ मेरे मन को डसे,
तो डायन के लरका पाँच रे————————क० ग्रं० पृ० १६८

४ माया की झल जग जल्या कनक कामिनी लागि।
कहु धौ बिधि राखिये लिये री शागि॥ क० ग्रं० पृ० ३५

सम्पत्ति को ही माया कह दिया है। अब भी बहुत से ग्रामों में माया शब्द धन और सम्पत्ति के अर्थ में रूढ़ है।

कबीर ने माया को भक्त और भगवान्, जीव और ब्रह्म के मिलन में बाधक माना है। वे स्पष्ट कहते हैं :—

कबीर माया पापड़ी हरि सूँ करे हराम।
मुख कड़ियाली कुमति की कहन न देई राम॥

क० ग्रं० पृ० ३२

माया केवल बाधक ही नहीं बन्धन रूपा भी है। वह वेश्या के समान है जो हाट में बैठकर काम के बन्धनों से सबको बाँधने का प्रयत्न करती है। सारा संसार उसके बन्धनों में फँसा हुआ है। केवल एक कबीर ही उस दुष्टा के इन्द्रजाल से बचे हुए हैं।[1] कबीर के समान स्वामी शंकराचार्य ने भी माया को आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधक माना है।[2] उसकी यह बाधकता माधुर्य के कारण और भी बढ़ गई है। कबीर की माया बड़ी मोहनी[3] एवं मधुर है।[4]

माया और ब्रह्म :—कहीं-कहीं कबीर ने माया को ब्रह्म विनिर्मित प्रपञ्च माना है। वह उसे नटराज की नटसारी कहते हैं।[5] कुछ अन्य स्थानों पर उन्होंने ब्रह्म को उसका का खसम कहा है।[6] कबीर की दोनों प्रकार की उक्तियाँ वेदान्त मत सम्मत हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में एक स्थल पर कहा गया है :—

---

१ जग हठवाड़ा स्वाद ठग माया वैसा लाय,
रामचरन नौका गहि जिन जाय जनम ठगाय। क० ग्रं० पृ० ३२
कबीर माया पापडी फंद लै बैठि हाट,
सब जग तो फंदे पड्या गया कबीरा काटि। क० ग्रं० पृ० ३२

२ ब्रह्म सूत्र २/१/२८ पर आचार्य के भाष्य से यह बात स्पष्ट होती है।

३ कबीर माया मोहनी, मोहे जाण सुजाण।
भांगा ही छूटे नहीं, मरि मरि मारै बाण॥ क० ग्रं० पृ० ३३

४ कबीर माया मोहनी, जैसे मीठी खांड़।
सद्गुरु की कृपा भई, नहीं तो करती भांड़॥ क० ग्रं० पृ० ३३

५ जिन नट वै नटसारी साजी जो खेलै सो दीखै बाजी।
क० ग्रं० पृ० २२७

६ तेतो माया मोह भुलाना, खसम राम सो किनहु न जाना।
क० ग्रं० पृ०

"माया तु प्रकृति विद्यात् मायिनं महेश्वरम्"[1] अर्थात् माया को प्रकृति और महेश्वर को उसका स्वामी समझना चाहिये। यहाँ पर महर्षि ने माया का ब्रह्माश्रित होना ध्वनित किया है। इसी प्रकार मुंडकोपनिषद् में ब्रह्म को 'कर्तार-मीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्' कहा है।[2]

जिन स्थलों पर कबीर ने माया को ब्रह्म की सृष्टि कहा है वहाँ पर प्रश्न उठ सकता है कि चेतन पुरुष से अचेतन माया की उत्पत्ति कबीर ने कैसी घोषित कर दी। इसको वे किस प्रकार सम्भव सिद्ध करेंगे? वास्तव में यह प्रश्न जटिल है। वेदान्त सूत्र में पूर्व पक्ष का विरोध कुछ ऐसा ही है। इसका उत्तर शंकराचार्य ने बड़ा सुन्दर दिया है। वे कहते हैं "जैसे दूध या जल बाहरी साधन की अपेक्षा न करके स्वयं ही दही रूप में जम जाता है, उसी तरह माया ब्रह्म का विवर्तमात्र है।"[3]

कबीर ने आचार्य का इस दिशा में पूर्ण अनुसरण किया है। आचार्य के अनुरूप वे भी विवर्तवाद[4] और प्रतिबिम्बवाद[5] आदि के कट्टर अनुयायी हैं यह, हम पीछे दिखला चुके हैं। इस प्रकार कबीर ने माया और ब्रह्म का सम्बन्ध वेदान्त के अनुरूप ही माना है।

माया के भेद :—माया के भेदों के सम्बन्ध में कबीर का क्या सिद्धान्त है। कुछ स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। कबीर ग्रंथावली और संत कबीर में इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। हाँ, केवल वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों में दो एक साखियाँ ऐसी अवश्य मिलती हैं जिनमें माया के भेदों के सम्बन्ध में कुछ संकेत मिलते हैं। एक साखी[6] में तो उन्होंने तुलसी की भाँति माया के दो भेद ध्वनित किये हैं। जिसमें से एक विद्या रूपिणी है और दूसरी

---

१ श्वेताश्वतर उपनिषद्—४/१०

२ मुंडक २/३

३ ब्रह्म सूत्र भा० २/१/३

४ क० ग्रं० पृ० १०५ पद ५३

५ क० ग्रं० पृ० १०५ पद ५४

६ क० सा० सं० पृ० १६ साखी ३२

अविद्या रूपिणी। एक दूसरी साखी में उन्होंने उसके "मोटी" और "झीनी" नामक दो भेद किये हैं।[1]

निरंजन :—कबीर ने माया के समान किसी निरंजन पुरुष की भी चर्चा की है। आचार्य हजारी प्रसाद ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "कबीर"[2] में तथा 'विश्व भारती पत्रिका' के एक लेख, में बड़ा खोजपूर्ण विवरण दिया है। उनका मत है कि उड़ीसा के उत्तरी भाग तथा छोटा नागपुर के जंगली इलाकों को घेर कर वीरभूमि से रीवाँ तक फैले हुए भूभाग के अनेक स्थलों पर धर्म देवता या निरंजन की पूजा प्रचलित थी। ऐसा अनुमान है कि यह धर्म बौद्ध धर्म का प्रच्छन्न रूप था। कबीर मत को इस पंथ से निबटना पड़ा था। कबीर पंथ की दक्षिणी शाखा (धर्मदासी सम्प्रदाय) ने इस प्रबल मत को आत्मसात् किया था। आचार्य जी का मत है कि इस निरंजनवादियों पर अपना प्रभाव डालने के लिये कबीर मत में उनकी समस्त पौराणिक कथायें और सृष्टि प्रक्रिया ज्यों की त्यों ले ली गई। किन्तु उसका प्रस्तुतीकरण इस ढंग से किया गया कि कबीर मत की श्रेष्ठता सिद्ध हो। उसमें यह कहा गया है कि निरंजन के प्रभाव से जगत को मुक्त करने के लिये सत् पुरुष बार-बार इस धराधाम पर ज्ञानी जी को भेजते हैं।[3] आचार्य जी की निरंजन विषयक खोज सारपूर्ण है, किन्तु इस सम्बन्ध में लेखक का अनुमान कुछ और ही है।

निरंजन शब्द कबीर ने प्रमुख रूप से तीन अर्थों में प्रयुक्त किया है। वे तीन अर्थ उसके विकास की तीन अवस्थायें हैं। कुछ स्थलों पर कबीर ने इसका प्रयोग निर्गुण वेदान्ती ब्रह्म के अर्थ में किया है।

गोविन्द तू निरंजन तू निरंजन।
तेरे रूप नाहीं रेख नाहीं मुद्रा नाहीं माया॥

(क० ग्रं० पृ० १६२)

---

१ क० सा० स० पृ० १६१ साखी २२

२ देखिये "कबीर" पृष्ठ·············६/६— ६८

३ देखिये—"कबीर पंथ और उसके सिद्धान्त" हजारी प्रसाद द्विवेदी।
विश्व भारतीय पत्रिका—खण्ड २ अंक १

कहीं-कहीं निरंजन का प्रयोग वेदान्ती ब्रह्म से पर के अर्थ में भी किया गया है।

राम निरंजन न्यारा रे। (क० ग्रं० पृ० २०१)

इसी प्रकार कहीं-कहीं निरंजन शब्द माया जाल के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[1]

मेरी अपनी धारणा है कि निरंजन के तीनों स्वरूप कबीर के जीवन की तीन विभिन्न अवस्थाओं में विकसित हुये थे। कबीर अपने प्रारम्भिक जीवन में थोड़ा बहुत अवश्य ही गतानुगतिक थे। उन्होंने लोक और वेद का भी अनुसरण किया था। अपने जीवन के इसी काल में कबीर ने निरंजन शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में किया है। जिस अर्थ में वह नाथ पंथ,[2] निरंजन पंथ आदि में प्रचलित था धीरे-धीरे वे उपनिषदों से प्रभावित हुये और निरंजन का प्रयोग परात्पर के अर्थ में करने लगे।

अपने विकास की तृतीय अवस्था में निरंजन शब्द माया का वाचक समझा जाने लगा। कबीर की कुछ बानियों में उसका प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है। अब प्रश्न यह है कि किस आधार पर इसका इतना पतन हुआ। इसके उत्तर के समाधान में आचार्य जी की खोज विचारणीय हो सकती है, किन्तु हमारी धारणा है कि निरंजन शब्द के इस प्रकार के पतन में पाशुपत मत का भी थोड़ा बहुत हाथ है। पाशुपत मत में पशुत्व या बन्धन से बद्ध जीवात्मा को ही पशु कहते हैं। उसमें पशु की दो कोटियाँ बतलाई गई हैं—साँजन और निरंजन। शरीरेन्द्रिय से सम्बन्धित जीव साँजन और उससे रहित निरंजन कहलाते हैं।

---

१ कबीर पंथ और उसके सिद्धान्त—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी विश्वभारती पत्रिका खण्ड ५ अंक ३

२ कबीर ग्रन्थावली और सन्त कबीर में यह शब्द माया जाल के अर्थ में शायद ही किसी स्थल पर प्रयुक्त हुआ हो। हाँ वेलवेडियर प्रेस का शब्दावली भाग १ शब्द ३० में अवश्य ऐसा हुआ है। मैं इसे प्रामाणिक नहीं मानता किन्तु फिर भी विचार कर लेना उपयुक्त समझा।

निरंजन मन का भी वाचक होता है। निरंजन स्वरूप रहित होते हुए भी बन्धन रूप है। कबीर की निरंजन विषयक अंतिम धारणा पाशुपत मत से पूर्णतया प्रभावित है। आगे चलकर कबीर पंथियों में उसकी खूब छीछालेदर हुई और वह अपने पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। महाराज ब्रह्म के प्रचारक के रूप में प्रतिष्ठित किये गये हैं कबीर बानी और अनुराग सागर में तो यहाँ तक कहा गया है कि भविष्य में चलकर काल निरंजन १२ भ्रमात्मक मतों का प्रचार करेंगे।[1] इनके प्रचार से कबीर पंथ की वास्तविक शिक्षायें छिप जायेंगी।

कबीर के माया वर्णन की विशेषता

कबीर का मायावाद सम्भवतः भागवत, पुराण और शंकराचार्य के माया वर्णनों से प्रभावित है। उस पर उपनिषदों का उतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है, जितना इन दोनों का। शंकर की माया के समान कबीर की माया भी अनिर्वचनीय तत्त्व है। वह सांख्यों की प्रकृति के समान प्रसव धर्मिणी और त्रिगुणात्मक भी है। सूफियों के शैतान के समान उनकी वह अध्यात्म साधना में बाधा रूप भी है। कबीर की यह माया तत्त्व भाव रूप होते हुए भी अध्यास मात्र है। वह सत्य तत्त्व से भिन्न है। कबीर में माया के भावनात्मक वर्णन भी मिलते हैं। ये वर्णन निम्न कोटि के रहस्यवाद के अन्तर्गत आ सकते हैं। कबीर की माया का विस्तार बड़ा व्यापक है जहाँ तक मन और उनके विकारों की पहुँच है वह सब माया है। इसीलिये मन और माया का घनिष्ठ सम्बन्ध माना है। मन के विकार ही माया के कुटुम्बी हैं। इस प्रकार कबीर का माया वर्णन अपनी अलग मौलिकता रखता है।

कबीर का जगत वर्णन

सृष्टि जिज्ञासा :—अनादि काल से चिन्तनशील मानव मस्तिष्क में सृष्ट्युत्पत्ति संबंधी विविध जिज्ञासायें उठती रहती हैं। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में

---

१ मुंडक—३/३ में निरंजन का प्रयोग परात्पर के अर्थ में किया गया है।

२ पाशुपत का अध्ययन 'सर्व दर्शन संग्रह' से किया जा सकता है।

ऐसी जिज्ञासाओं और विचिकित्साओं की सुन्दर झाँकी मिलती है। महात्मा कबीर वैदिक ऋषियों की भाँति ही तत्त्व चिन्तक थे। अतः उनके मस्तिष्क में ऐसी जिज्ञासाओं का उठना स्वाभाविक था। कबीर की रचनाओं में अनेक स्थलों पर कबीर की सृष्टि सम्बन्धी जिज्ञासायें मिलती हैं। इनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त भोले ढंग से हुई हैं। एक उदाहरण देखिए :—

कहौ भइया अम्बर कासू लागा, कोई जानैगा जाननहार सभागा।
अम्बर दीसै केता तारा, कौन चतुर ऐसा चितरनहारा॥
जो तुम देखो सो यहु नाहीं, यहु पद अगम अगोचर माहीं।
तीन हाथ एक अरधाई ऐसा अम्बर चीन्हौ रे भाई।
कहै कबीर जे अम्बर जाने ताही सूं मेरा मन माने क० ग्रं० पृ० १३३

इस प्रकार की सृष्टि जिज्ञासा सम्बन्धिनी और उक्तियाँ भी कबीर ग्रंथावली के पृष्ठ १००, १०१, १४२ आदि पर देखी जा सकती हैं। कबीर की इन सृष्टि जिज्ञासाओं ने ही उन्हें सृष्टि के स्वरूप और विकास क्रम पर विचार करने के लिए प्रेरित किया था।

जगत सत्ता का स्वरूप :—जगत सत्ता के सम्बन्धों में दार्शनिकों के विविध मत प्रचलित हैं। तुलसी के शब्दों में "कोउ कहे सत्य झूठ कह कोउ, युगल प्रवल कर माने," कबीर सृष्टि को झूठ कहने वालों की श्रेणी में आते हैं। उन्होंने संसार को सर्वत्र नश्वर, मिथ्या एवं स्वप्नवत् ही कहा है।[1]

अब विचारणीय यह है कि कबीर ने संसार सत्ता के सम्बन्ध में किसका अनुसरण किया है—बौद्धों का या वेदान्तियों का। संसार को मिथ्या और स्वप्नवत् प्रायः दोनों ही मानते हैं। शङ्कर के पहले जो अद्वैत मत के आचार्य

---

१ (क) समझ विचार जीव जब देखा, यहु संसार सुपिन कर लेखा
क० ग्रं० २३३
(ख) संसार ऐसा जैसा सुपिन—क० ग्रं० पृ० १७१
(ग) ज्यों जल बूँद तैसा संसार उपजत बिनसत लगै न बार।
क० ग्रं० पृ० १२१

हुये थे उनका रुझान बौद्धों के स्वप्नवाद की ओर अधिक था। उन्होंने बौद्धों के समान ही संसार को स्वप्नवत् अलीक एवं मायिक कहा है। इन आचार्यों में गौड़ पादाचार्य अग्रगण्य हैं; वे शङ्कराचार्य के गुरू थे। किन्तु शंकर का अपने गुरू से मतभेद था। वे अपने गुरू के समान सृष्टि को स्वप्नवत् मात्र मानने के लिए तैयार न थे; उन्होंने अपने मायावाद को ब्रह्म के दृष्टिकोण से स्पष्ट किया है। बौद्धों का स्वप्नवाद शून्य के दृष्टिकोण से समझाया गया है। बौद्धों और शङ्कराचार्य के स्वप्नवाद या माया मिथ्यावाद में अंतर है। उसे ब्रह्म सूत्र भाष्य में आचार्य ने स्पष्ट कर दिया है। (२/२/२६) सूत्र का भाष्य करते हुये आचार्य लिखते हैं 'बौद्धों का यह मत, कि बिना किसी इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थ के ही, जैसी स्वप्न में काल्पनिक सृष्टि होती है, वैसे ही जागृत अवस्था में भी वृक्ष आदि इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थों के न होते हुए भी यह होते हुये से देख पड़ते हैं, समीचीन नहीं है।' इस मत का खण्डन करते हुये आचार्य ने कहा कि दोनों सृष्टियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। उनमें परस्पर वैधर्म्य है। विभिन्न होने से यह सम नहीं समझी जा सकती हैं। इस प्रकार शङ्कर ने स्वप्न जगत को जागरित जगत से भिन्न माना है। अब प्रश्न यह है कि जब आचार्य जाग्रत जगत को स्वप्न जगत से भिन्न मानते हैं तो उन्होंने उसे स्वप्नवत् क्यों कहा। वास्तव में यह बात उन्होंने आत्मा की तुलना में कहीं है। वे इन्द्रिय गोचर पदार्थ को आत्मा की तुलना में स्वप्नवत् मानते थे। आत्मा पर अध्यारोपित पदार्थ ही मायामय है। और मायामय पदार्थ ही मिथ्या है। बौद्धों और शङ्कराचार्य के मायावाद का अन्तर मैक्स-मूलर साहब ने और भी सरल ढंग से समझाया है। यहाँ पर उसे भी उद्धृत कर देना आवश्यक है। वह इस प्रकार है :—

Even the existence, apparent and illusory of a material world requires a real substratum which is Brahman. Just as the appearance of the snake in the simile requires the real substratum of a rope. Buddhist philosophers held that everything is empty and unreal and that all we have and know are our perceptions only. Shanker himself argues most

strongly against this extrene idealism and enters into full argument against the nihilism of Buddhists. The Vedantist answer that though we perceive perceptions only, these perceptions are always perceived as perceptions of something.

—Max Muller's Indian philosohy. pp. 209-11.

उपर्युक्त उद्धरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि बौद्ध लोग मायामय पदार्थों का कोई आधार नहीं मानते। वे उसे स्वप्नवत् कहते हैं। किन्तु शंकराचार्य ने ब्रह्म को मायामय सृष्टि की आधार भूमि माना है। दूसरे यह कि बौद्ध जाग्रत सृष्टि को पूर्णतया स्वप्न सृष्टि के समान मानते हैं। इसके विपरीत शंकराचार्य जाग्रत सृष्टि को आत्मा की तुलना में स्वप्नवत् समझते हैं। जहाँ तक कबीर का सम्बन्ध है कबीर बौद्धों के मायावाद के अनुयायी नहीं माने जा सकते। इसके निम्नलिखित कारण निर्देशित किए जा सकते हैं :—

(१) कबीर पूर्ण आस्तिक थे। वे सब कुछ ब्रह्ममय ही मानते थे। वे "सर्व खल्विदं ब्रह्म" के पूर्ण अनुयायी थे। इसी ब्रह्म तत्त्व को वे नाम रूप जगत का आधार मानते हैं। वे स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं :—

जो तुम देखो सो यह नाहीं,
यह पद अगम अगोचर माहीं। (क० ग्रं० पृ० १३३)

अर्थात् जो यह नाम रूपात्मक संसार दिखाई पड़ता है वह वास्तव में सही नहीं है। जिसमें इसकी स्थिति है वह तत्त्व अवश्य ही अगम और अगोचर है। यहाँ पर स्पष्ट ही कबीर ने शांकर मत का अनुसरण किया है।

(२) कबीर ने सृष्ट्युत्पत्ति के पूर्व का जो वर्णन किया है वह बौद्धों के शून्यवाद के विरुद्ध है। वह ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के आस्तिक वर्णनों से हुतब मिलता जुलता है। वे स्पष्ट कहते हैं कि सृष्टि के पूर्व में जब कुछ न था

उस समय भी निर्गुण तत्त्व विद्यमान था, किन्तु उसका वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि वह नाम रूप के बन्धनों से नहीं बाँधा जा सकता।[1]

(३) कबीर ने जगत को सेमर[2] के फूल के समान कहा है। सेमर के फूल के समान जगत भी सत् होते हुए सारहीन है। अध्यारोप के सहारे इन्द्रियाँ उसमें अपने विषयों का आरोप कर लेती हैं और वह अत्यन्त आकर्षक मालूम होने लगता है। अतः स्पष्ट है कि कबीर की जगत सम्बन्धी धारणा पूर्ण शंकर वेदान्त के अनुकूल है। जिन स्थलों पर कबीर ने शून्यवाद का वर्णन किया है वहाँ शून्य शब्द को ब्रह्म का पर्याय ही समझना चाहिए। आस्तिक कबीर को यदि बौद्धों का शून्यवादी सिद्धान्त मान्य होता तो अन्य नास्तिक पद्धतियों के समान बौद्धों की निन्दा न करते।[3]

सृष्टि विकास :—कबीर की रचनाओं में कहीं पर भी व्यवस्थित सृष्टि विकास क्रम नहीं मिलता है। सृष्ट्युत्पत्ति के सम्बन्ध में उनमें केवल दो एक

---

१ जब नहीं होते पवन नहीं पानी,
तब नहीं होती सृष्टि उपानी।
जब नहीं होते प्यण्ड न वासा,
तब नहीं होते धरनि अकासा।
जब नहीं होते गरभ न मूला,
तब नहीं होते कली न फूला।
जब नहीं होते सबद न स्वाद,
तब नहीं होते विद्या न वाद।
जब नहीं होते गुरू न चेला,
गम अगमे पंथ अकेला।
अब गति की गति क्या कहूँ, जस कर गाँव न नाँव।
गुन बिहून का पेखिये का का धरिये नाँव। क० ग्रं० पृ० २३८

२ यौं ऐसा संसार है जैसा सेंवल फूल।
दिन दस के ब्यौहार को झूठे रंगि न भूल॥ क० ग्रं० पृ० २१

३ क० ग्रं० पृ० २४०

स्थलों पर संकेत मात्र मिलते हैं। उनकी सृष्ट्युत्पत्ति एवं विकास सम्बन्धी धारणा पूर्ण भारतीय ही है। केवल एकाध स्थल पर ही वे सूफी मत और इस्लाम से कुछ प्रभावित मालूम पड़ते हैं। भारतीय दर्शनों में भी उनके सृष्टि विकास क्रम पर वेदान्त और सांख्यों का ही प्रभाव अधिक मालूम पड़ता है।

एकाध स्थलों पर कबीर ने सृष्टि की उत्पत्ति ओंकार से बतलाई है। यह सृष्ट्युत्पत्ति सिद्धान्त शब्दद्वैतवादियों का है। इसका आधार स्वयं वेद है। ऋग्वेद में एक स्थल पर स्पष्ट कहा गया है—"वागेव विश्वाः भुवनानिजज्ञे" वेद के अतिरिक्त अद्वैतशिरोमणि शंकराचार्य[1] ने भी सृष्टि की उत्पत्ति शब्द से ही मानी है। उपनिषदों[2] में भी प्रणव की महिमा का वर्णन करके यही बात प्रकट की गई है। कबीर ने यद्यपि यह स्पष्ट नहीं किया है कि ओंकार सृष्टि का उपादान कारण है या निमित्त, किन्तु इसका निर्देश न करना ही यह प्रकट करता है कि वे उसे सृष्टि उपादान और निमित्त दोनों कारण मानते हैं। यह सिद्धान्त भी वेदांत सम्मत हैं। उपनिषदों में यह सिद्ध करने के लिये कि एक ही ब्रह्म तत्त्व संसार का उपादान और निमित्त कारण दोनों हैं मकड़ी और उसके जाले का दृष्टांत दिया गया हैं। जिस प्रकार मकड़ी जाले का उपादान और निमित्त कारण दोनों हैं उसी तरह से शब्द ब्रह्म भी संसार का उपादान और निमित्त कारण दोनों हैं।[3] इस प्रकार सृष्ट्युत्पत्ति सम्बन्धी यह धारणा पूर्ण वेदान्ती है।

कबीर की कुछ उक्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि वे सांख्यों के गुणपरिणामवाद के अनुयायी थे। एक स्थल पर वे सृष्टि का लय क्रम दिखलाते हुए कहते हैं :—

पृथ्वी का गुण पानी सीखा, पानी तेज मिला वाहि।
तेज पवन मिल पवन सबद मिल, सहज समाधि लगावहिंगे ॥
(क० ग्रं० पृ० १३७)

यह लय क्रम स्पष्ट रूप से सांख्यों के गुणोत्कर्षवाद की ओर ही संकेत कर

---

१ वेद सूत्रभा—१/३/२२
२ माण्डूक्योपनिषद् १,२ श्लोक देखिये
३ श्वेताश्वतर ६/१०

रहा है। इसमें "गुणाः गुणेषु जायन्ते तत्रैव निवसन्ति च" वाला भाव पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित किया गया है। इसके अतिरिक्त कबीर ने सृष्टियुत्पत्ति में प्रकृति या माया को भी विशेष महत्त्व दिया है—सांख्यों के समान वे भी त्रिगुणात्मक माया से सृष्टि का विकास मानते हैं। सांख्यों के ५ तत्त्व का भी निर्देश उनकी रचनाओं में कई बार मिलता है।[1] इन सब के आधार पर कुछ लोग उनके सृष्टि विकास क्रम को सांख्यिक मान सकते हैं। किन्तु थोड़ा सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद हम सरलता से इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि जिस प्रकार उन्होंने अन्य क्षेत्रों में भी वेदांत मत का अनुसरण किया है, उसी प्रकार इस क्षेत्र में भी वेदांत सम्मत मत का ही प्रगटीकरण करते हैं। वेदांत में सांख्य की २५ प्रकृतियों के स्थान पर अष्टधा प्रकृति का विधान पाया जाता है। कबीर ने भी अष्टधा प्रकृति का संकेत किया है। वेदांत और सांख्य के सृष्टि विकास क्रम के अन्तर को स्पष्ट करते हुये शंकराचार्य ब्रह्म सूत्र के भाष्य में लिखते हैं कि "उपनिषदों के इस अद्वैत सिद्धान्त को छोड़कर कि प्रकृति और पुरुष से परे जगत का पर-ब्रह्म रूपी एक मूल तत्त्व है; उसी से प्रकृति पुरुषादि सबकी सृष्टि हुई है। सांख्य शास्त्र के शेष सिद्धान्त हमें अग्राह्य नहीं हैं"।[2] आचार्य के कहने का अभिप्राय यह है कि वेदान्त में प्रकृति अनादि होते हुए भी स्वतन्त्र नहीं। वह ब्रह्मोद्भव होने के कारण ब्रह्माश्रित है। किन्तु सांख्यों ने उसे अनादि और स्वतन्त्र तत्त्व माना है। सांख्य शास्त्र के विकास क्रम का सिद्धान्त वेदान्तियों को पूर्णतया मान्य है। कबीर ने यद्यपि सांख्य के गुणपरिणामवाद के ढंग पर सृष्टि विकास दिखलाया है किन्तु वे वेदान्त मत का परित्याग नहीं कर सके। उन्होंने उसी के अनुसरण पर प्रकृति या माया को जिससे संसार की उत्पत्ति हुई ब्रह्मोद्भव या ब्रह्माश्रित माना है। उनका ब्रह्म भी निर्गुण और परात्पर है। एक स्थल पर तो उन्होंने स्पष्ट रूप से वेदान्त मत ध्वनित किया है।[3] वे कहते हैं कि अल्लाह

---

१ देखिए—क० ग्रं० पृ० १५६, ७ वीं व आठवीं पंक्ति

२ देखिए—कबीर ग्रन्थावली पृ० २२६ और १२०

३ ब्रह्मसूत्र २/१/३

(परमात्मा) से नूर की सृष्टि हुई।[1] उस नूर या प्रकाश से त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई।

कबीर के नूर शब्द के आधार पर कुछ लोग उनके सृष्टि विकास क्रम को सूफी कहते हैं। परन्तु सूफियों के पारिभाषिक शब्द के आधार पर यह मत स्थिर करना समुचित नहीं मालूम होता। कबीर प्रायः जिस वर्ग के लोगों को उपदेश करते थे वे उन्हीं की भाषा शैली अपनाते थे। अतः बहुत सम्भव है उन्होंने उपनिषदों के विचारों को सूफियों तक पहुँचाने के लिये उन्हीं के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना उपयुक्त समझा हो। ज्योति या तेज से संसार की सृष्टि हुई है, यह धारणा अत्यन्त प्राचीन है। छांदोग्य उपनिषद् में एक स्थल पर कह है कि परब्रह्म से तेज पानी और पृथवी यह तीन तत्त्व उत्पन्न हुये हैं।[2] वेदान्ता सूत्रों में अंतिम निर्णय यह दिया गया है कि आत्मा रूपी मूलब्रह्म से ही आकाशादि पंच महाभूत क्रमशः उत्पन्न हुए[3] वेदान्त का यह मत कबीर को पूर्णतया मान्य था। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि :—

पंच तत्त्व अविगत थे उत्पना थकै लिया निवासा
बिछुरे तत फिर सहिज समाना रेख रही नहीं आसा।
(क० ग्रं० पृ० १०२)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर का सृष्टि विकास पूर्ण वेदान्ती है।

ब्रह्म और जगत :—कबीर का सृष्टि वर्णन और विकास क्रम किस दर्शन के अनुसार हुआ इस बात को स्पष्ट करने के लिये हमें उनके ब्रह्म और जगत सम्बन्ध पर विचार करना पड़ेगा। भिन्न-भिन्न दर्शनों में इन दोनों के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिये विविध वादों का जन्म हुआ है। इन वादों में नैयायिकों का आरम्भवाद, सांख्यों का गुण परिणामवाद विशिष्टाद्वैतवादियों का ब्रह्म परिणाम-

---

१ छांदाग्योपनिषद्—छा ६/८/६

२ वेदान्त सूत्र २/३/१—१४

३ अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजामानाः सरुपाः खे ४,१

४ क० ग्रं० पृ० २६८

वाद और अद्वैतवादियों के विवर्तवाद। अध्यास या अध्यारोपवाद, प्रतिबिम्बवाद आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। इन सब का संक्षिप्त परिचय दे देना उपयुक्त ही होगा।

आरम्भवाद :—नैयायिकों का कहना है कि जगत का मूल कारण परमाणु हैं। ये परमाणु संख्या में असंख्य हैं। इन्हीं परमाणुओं के संयोग से सृष्टि का विकास हुआ है। यही आरम्भवाद है।

गुणपरिणामवाद :—यह मत सांख्यों का है। इनका कहना है कि जड़ सृष्टि का मूल कारण सत्य त्रिगुणात्मक प्रकृति है। इस प्रकृति के विकास से सृष्टि का विकास होता है।

वेदान्त का अध्यासवाद :—यह मत अद्वैतवादियों का है। यह सत्कार्य-वाद के दोषों का निराकरण करने के लिये कल्पित किया गया है। सत्कार्यवाद के अनुसार निर्गुण ब्रह्म से सगुण सृष्टि सम्भव नहीं है। इसी असम्भव को सम्भव सिद्ध करने के लिये अध्यासवाद, विवर्तवाद और प्रतिबिम्बवाद की कल्पना की गई है। अध्यासवाद का संकेत ब्रह्मसूत्र में इस प्रकार मिलता है। 'ब्रह्म सम्पूर्ण दृश्य जगत के परिवर्तनों का अधिष्ठान है, जिसके ऊपर अविद्या के कारण उनका अध्यास होता है। अपने शुद्ध स्वरूप में वह दृश्य जगत से अतिशय और निर्विकार है। (ब्रह्म सूत्र मा० २/१/२७) अध्यास का अर्थ है अतद् में तदबुद्धि का उदय होना। (ब्रह्म सूत्र १ १ १) संक्षेप में कहीं अध्यासवाद या अध्यारोपवाद वर्णित है। सीप में रजत् का भ्रम और रज्जू में सर्प का भय होना अध्यास ही कहलाता है।

विवर्तवाद :—यह भी अद्वैतवाद का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का विवे-चन अधिष्ठान की दृष्टि से किया जाता है। इसका स्वरूप इस प्रकार हैं :—

> सतत्वतोऽन्यथा प्रथा विकार रित्युदीरितः।
> अतत्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्तइत्युदाहृतम् ॥[२]

"अर्थात् मूल वस्तु में बिना परिवर्तन हुये ही जब वाह्य स्वरूप परिवर्तित हो जाय तब उस परिवर्तन को विवर्त परिणाम ही कहेंगे। यही विवर्तवाद है। इसे

---

१ देखिए भारतीय दर्शन पृ० ४४२

२ वेदान्तसार—पृ० ८ हिरयन्ना

स्पष्ट करने के लिये अद्वैतवादी कनक कुण्डल, जलतरंग, छीर और दही आदि के दृष्टान्त दिया करते हैं।

प्रतिबिम्बवाद :—यह भी अद्वैतवाद का एक सिद्धांत है। इसका आधार वादरायण के "आभास एवं च" (ब्रह्म सूत्र २/३/५०) तथा "अतएव उपमा सूर्यका दिव" (२/२/१८) सूत्र है। इस सिद्धांत के अनुसार संसार ब्रह्म का प्रतिबिम्व है। जिस प्रकार प्रतिबिम्ब केवल दृष्टि ग्राह्य होता है, सत्य नहीं होता उसी प्रकार यह संसार भी सत्य नहीं है। उपनिषदों में इस प्रतिबिम्बवाद का स्थान-स्थान पर वर्णन मिलता है।

ब्रह्म परिणामवाद :—यह मत विशिष्टाद्वैतवादियों का है। इसके अनुसार कारणावस्था में ब्रह्म का सूक्ष्म शरीर उसमें लीन, व्यक्तिगत आत्माओं और प्रकृति तत्वों से बना है। कार्यावस्था में जब सृष्टि उत्पन्न होती है, यह शरीर ही विकसित होता है। यद्यपि ब्रह्म सदा अव्यक्त और अव्यय ही बना रहता है। यही ब्रह्म परिणामवाद है।

इन सिद्धांतों में परमाणुवाद तो कबीर को बिल्कुल मान्य नहीं है। हाँ, गुण-परिणामवाद के उतने अंश में जो वेदान्त के मेल में है, उन्हें थोड़ी बहुत आस्था है, यह बात सृष्टि विकास क्रम में हम दिखला चुके हैं। कबीर को वेदांत के सभी सिद्धान्त मान्य हैं। वेदांत में अद्वैत वेदांत का विशेष सम्मान रहा है। अद्वैत वेदान्त के अध्यासवाद, विवर्तवाद, प्रतिबिम्बवाद, सर्वात्मवाद आदि सभी सिद्धांत कबीर में पाए जाते हैं। अधिकांश स्थलों पर उन्होंने ब्रह्म और जगत का सम्बन्ध इन्हीं के अनुकूल निर्धारित किया है। केवल एक दो स्थलों पर ब्रह्म परि-णामवाद की ओर उनका रुझान दिखाई पड़ता है। संसार वृक्ष का रूपक इस ध्वनि का प्रमुख आधार है।[१]

सृष्टि ओर ब्रह्म के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिये प्रायः प्राचीन ग्रन्थों में वृक्ष का रूपक कल्पित किया गया है। महाभारत में उसे ब्रह्म वृक्ष कहा गया है। उपनिषदों में यही सनातन अश्वत्थ वृक्ष के नाम से वर्णित है। कठोपनिषद् में उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—"ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखा एषोऽश्वस्थः

---

१ क० ग्रं० पृ० ६२

सनातनः।" अर्थात् जिसका मूल ऊपर की ओर है तथा शाखाएँ नीचे की ओर हैं, ऐसा यह वृक्ष अनादि और सनातन है।[१] कबीर ने उपनिषदों के इस रूपक को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। कठोपनिषद् के स्वर में स्वर मिलाकर वे कहते हैं :—

"तलि कर शाखा उपरि करि मूल।
बहुत भाँति जड़ लागे फूल"॥

(क० ग्रं० पृ० ६२)

सन्त कबीर में इसका पाठ दूसरी प्रकार से है। "तैल रे वैसा ऊपरि मूला तिसरे पेड़ लगे फल फूला।" इसका अर्थ डा० रामकुमार जी ने इस प्रकार दिया है—"एक पेड़ ऐसा है जो नीचे तो बैठा है अथवा जिसके नीचे पत्ते हैं ऊपर जड़ है, ऐसा पेड़ फल फूलों से परिपूर्ण है।" संसार वृक्ष के इस रूपक से ब्रह्म और संसार का सम्बन्ध स्पष्ट है। इसमें स्पष्ट ही ब्रह्म को संसार का कारण ध्वनित किया गया है। इस उक्ति को हम ब्रह्म परिणामवाद की ओर संकेत मात्र करते हुए पाते हैं। अन्य सभी स्थलों पर कबीर ने वेदान्त के विवर्तवाद, अध्यासवाद, प्रतिबिम्बवाद, सर्वात्मवाद को ही अपनाया है।[२] विवर्तवाद अद्वैत वेदान्तियों का सबसे प्रिय सिद्धान्त रहा है। इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने विविध दृष्टान्तों की कल्पना की है। कभी तो वे जल[३] और हिम का, कभी कनक कुण्डल[४] का, कभी जल तरंग का[५] और कभी कुम्भ[६] और मिट्टी

---

१ कठोपनिषद् २/६/ १

२ इन सबके लिये बलदेव उपाध्याय का—भारतीय दर्शन देखिए —पृ० ४३६—५०

३ पाणी ही ते हिम भया हिम है गया विलाय।
जो कुछ था सोई भया अब कुछ कह्या न जाय॥ (क० ग्रं० पृ० १२)

४ कनक कुण्डल—जैसे बहु कंचन के भूषन ये कहि गालि तवाँहिगे
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे, सुनहि माहि समावहिंगे॥ (क० ग्रं० १२७)

५ जैसे जलहि तरंग तरंगनि ऐसे हम दिखलावहिंगे॥ (क० ग्रं० पृ० १२७)

६ जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तथ कथ्यो गियानी॥
(क० ग्रं० पृ० १०२)

का उदाहरण देते हैं। कबीर की रचनाओं में प्रायः इन सभी दृष्टान्तों का प्रयोग किसी न किसी रूप में पाया जाता है। एक स्थल पर तो वे खाक का दृष्टान्त देकर कहते हैं कि सृष्टि विविध नाम रूप एक ही तत्त्व का विवर्त है।[1]

कबीर ने प्रतिबिम्बवाद को भी कम प्रश्रय नहीं दिया है। दर्पण[2] के दृष्टांत का प्रयोग जो प्रतिबिम्बवादियों में बहुत प्रसिद्ध है, कबीर ने भी किया है।[3] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कबीर का जगत वर्णन बहुत कुछ अद्वैतवादियों के अनुकरण पर है।

कबीर के जगत वर्णन की विशेषतायें

सृष्टि सम्बन्धी जिज्ञासा आध्यात्मिक चिन्तना का मूल है। कबीर की सृष्टि जिज्ञासा अत्यन्त तीव्र है। यही सृष्टि जिज्ञासा साधक में सृष्टि सत्ता सम्बन्धी प्रश्न उठाती है। कबीर वास्तव में स्वप्नवादी हैं। किन्तु उनका स्वप्नवाद, गौड़-पादाचार्य और बौद्धों के स्वप्नवाद से बिल्कुल भिन्न है। वह बहुत कुछ शंकर के स्वप्नवाद के अनुरूप है। इसका प्रमुख कारण यही है कि कबीर पूर्ण आस्तिक थे। वे सबके मूल में अधिष्ठान रूप में ब्रह्म सत्ता के अस्तित्व में विश्वास करते थे।

कबीर का सृष्टि विकास क्रम बहुत कुछ वेदान्तानुकूल ही है। प्रत्यक्ष रूप से कहीं-कहीं उन पर सांख्यों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। किन्तु सांख्यों का द्वैत-वाद उन्हें मान्य नहीं है। उनका ब्रह्म और जगत का सम्बन्ध भी यही प्रगट करता है कि वे अद्वैतवादी हैं। उन्होंने सर्वत्र अद्वैत वेदान्त के विवर्तवाद, प्रति-बिम्बवाद, आभासवाद, अध्यासवाद आदि का ही आश्रय लिया है। विशिष्टा-द्वैतवादियों के परिणामवाद की छाया चाहे कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाय किन्तु वह उन्हें मान्य न था।

---

१ एक ही खाक गढ़े सब भाड़े एकहि सिरजन हार॥
(क० ग्रं० पृ० १०५)

२ ज्यों दर्पन प्रतिबिम्ब देखिए आप दवासू सोई॥
(क० ग्रं० पृ० १०१)

३—और देखिए—क० ग्रं० पृ० २०१, पद ३३२

कबीर की दर्शन पद्धति

कबीर ने कभी भी दार्शनिक बनने की चेष्टा नहीं की थी, किन्तु उनकी अध्यात्म प्रियता ने उन्हें दार्शनिक बना दिया है। उन्होंने सत्य का पूर्ण अनुभव किया था। उनका दर्शन उसी स्वानुभूति मूलक सत्य तत्त्व की अभिव्यक्ति है। हम अभी बराबर यही संकेत करते आये हैं कि कबीर ने अनेकानेक दर्शनों के प्रभावों को आत्मसात करके एक मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। फिर भी वे अद्वैत वेदान्त के अधिक समीप हैं।

यों तो भारत में १८ प्रकार के अद्वैतवादों की चर्चा पण्डित लोग करते चले आए हैं। किन्तु इनमें तीन सबसे प्रमुख हैं :—

(१) शब्दाद्वैत
(२) विज्ञानाद्वैत
(३) सत्ताद्वैत

शब्दाद्वैत :—यह मत अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में इसका प्रतिपादन किया गया है। इस मत के अनुसार समस्त विश्व शब्द रूप ही है। शब्द से ही संसार की सृष्टि हुई है। उसी में उसका लय हो जाता है। इस शब्द ब्रह्म का वाचक ॐ है। ॐ के महत्त्व का प्रतिपादन उपनिषदों में बारम्बार किया गया है। कबीर शब्दाद्वैतवाद में विशेष आस्था रखते थे। उन्होंने सर्वत्र शब्द ब्रह्म की महिमा का प्रतिपादन किया है। कबीर का "शब्दसुरति योग" उनके शब्दाद्वैत-वाद के परिणाम स्वरूप ही विकसित हुआ है।

शब्दाद्वैत के बाद विज्ञानाद्वैत आता है। यह बुद्ध भगवान् का मत है। महायान सम्प्रदाय के प्रधान प्रवर्तक नागार्जुन जी ने इस पर गम्भीरता से विचार किया है। बौद्धों के योगाचार सम्प्रदाय में इसका प्रतिपादन किया गया है। कबीर में विज्ञानाद्वैत के चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते हैं। यह बात दूसरी है कि अत्यधिक खोज करने पर एकाध बात मिल जाय।

सत्ताद्वैत वाद का सम्बन्ध वेदान्त से है। इसके अत्यन्त प्रचलित तीन स्वरूप हैं।

(१) केवलाद्वैत

(२) विशिष्टाद्वैत

(३) शुद्धाद्वैत

जहाँ तक शुद्धाद्वैत का सम्बन्ध है कबीर इससे प्रभावित नहीं हो सके हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि इस मत के प्रधान प्रवर्तक स्वामी वल्लभाचार्य कबीर के पश्चात् हुए थे। विशिष्टाद्वैत और केवलाद्वैत में कबीर का रुझान अधिकतर केवलाद्वैत की ओर ही है। कुछ लोग उन्हें भेदाभेदवादी कहते हैं। कुछ विद्वानों ने उन्हें द्वैतवादी तक समझा है। कबीर के सम्बन्ध में द्वैतवाद का कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि वे आत्मा और ब्रह्म को एक तत्त्व ही मानते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं "आतम राम अवर नहीं दूजा" इसी प्रकार कबीर प्रकृति या माया को ब्रह्म का परिणाम भी कहते हैं उसे वे स्वतन्त्र नहीं मानते हैं। रही भेदाभेद वाली बात वह सिद्ध नहीं होती। भेदाभेदवादियों का मूल सिद्धान्त यही है कि चित (जीव) अचित (जगत) ईश्वर से भिन्न और अभिन्न दोनों ही है। इनके मतानुसार ब्रह्म अखण्ड और अपने स्वरूप में पूर्ण है फिर भी उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। यद्यपि प्रत्येक शक्ति दूसरी से भिन्न है तथापि ब्रह्म से सबका तादात्म्य है। प्रत्येक शक्ति के दो स्वरूप हैं। एक के सहारे ब्रह्म से उसका एकात्म्य रहता है। दूसरे से उसकी नाम रूप में अभिव्यक्ति होती है। ब्रह्म विभिन्न शक्तियों से समन्वित होकर अपने को अनन्त रूपों में अभिव्यक्त कर रहा है। जिस शक्ति को इन नाम रूपों का एक साथ ज्ञान होता है उसको ईश्वर, और वह शक्ति जो उनको एक-एक करके जानती है उसे जीव कहते हैं। द्वैताद्वैतवादी भी परिणाम-वाद के ही समर्थक हैं। विशिष्टाद्वैतवादियों से उनका केवल इतना ही अन्तर है कि वे ब्रह्म को चिदचित् विशिष्ट मानते हैं। यह विशिष्टता अभिन्नता की द्योतक है। द्वैताद्वैतवादी उन्हें भिन्न और अभिन्न दोनों ही मानते हैं।

महात्मा कबीर द्वैताद्वैतवाद नहीं मानते थे। उन्होंने कहीं पर भी उसके परि-णामवाद या अंशांशि भाव का समर्थन नहीं किया है। इसके विरुद्ध उन्होंने सर्वत्र सृष्टि को स्वप्नवत् कहा है। यह स्वप्नवाद मायावादियों का मत है। वे जीव और ब्रह्म में भी केवल मायागत भेद ही मानते हैं, वास्तविक नहीं। उनके

भिन्नता और अभिन्नता दोनों नहीं मान्य हैं। इन्हीं सब कारणों से वे द्वैताद्वैतवादी नहीं हो सकते।

कबीर विशिष्टाद्वैतवादी भी नहीं कहे जा सकते। रामानुज के मत से ब्रह्म सगुण और सविशेष है। चिदचिच्छरीरत्व ही उनका लक्षण है। ईश्वर सृष्टिकर्ता और कर्म फल दाता तथा सर्वान्तर्यामी है। इन्हें आत्मवाद पूर्ण रूपेण मान्य है। ये जगत् की भी सत् सत्ता ही मानते हैं। दूसरी बात यह है कि विशिष्टाद्वैतवादी ब्रह्म को विभु जीव को अणु मानते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि भगवान् के सत्य की प्राप्ति ही मुक्ति है। महात्मा कबीर विशिष्टाद्वैत वादियों की भाँति न तो ब्रह्म को सगुण साकार या अवतारी ही मानते हैं, और न उसे जीव की अपेक्षा विभु ही। जहाँ तक जगत की सत्ता का सम्बन्ध है वे उसे किसी प्रकार भी सत् नहीं मानते हैं। वे निश्चित रूप से स्वप्नवादी हैं। उनका स्वप्नवाद कहीं-कहीं पर तो बौद्धों के स्वप्नवाद से प्रभावित मालूम पड़ता है। किन्तु वास्तव में शंकर के मायावाद का रूपान्तर मात्र है। कबीर ब्रह्म और जीव के अंशांशि भाव को स्वीकार करते हैं। किन्तु जीव का अणुत्व उन्हें मान्य नहीं है।[1] कबीर का जगत् और ब्रह्म का सम्बन्ध अद्वैती ही है, हम ऊपर यह सिद्ध कर चुके हैं। कबीर की मोक्ष सम्बन्धी धारणा भी विशिष्टाद्वैती नहीं है। उनकी मुक्त पूर्ण ब्रह्म करता की दशा है।[2] अतएव हम उन्हें विशिष्टाद्वैती नहीं मान सकते।

कबीर का रुझान अद्वैतवाद की ओर विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। उसके प्रमुख रूप से निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) उन्हें अद्वैत वेदान्त में वर्णित ब्रह्म का अव्यक्त और निर्गुण स्वरूप मान्य है। सगुण भावना भी उन्हें वहीं तक मान्य है जहाँ तक उनका सम्बन्ध अव्यक्त ब्रह्म से है।

(२) वे आत्मा और परमात्मा को वेदान्त के ढंग पर अभिन्न मानते हैं।[3]

(३) उनका अंशांशि भाव भी पूर्ण अद्वैती है।

---

१ क० ग्रं० पृ०
२ राम कबीर एक भये हैं कोउ सके पिछानी क० ग्रं० पृ०
३ देखिए इसी पुस्तक में जीव और ब्रह्म का विवेचन।

(४) कबीर आत्मा को स्वयं[१] प्रकाश रूप मानते हैं वे आत्मा और ज्ञान में कोई अन्तर नहीं मानते हैं।

(५) कबीर जगत् सत्ता को मिथ्या और स्वप्नवत मानते हैं।

(६) कबीर ब्रह्म को जगत् का उपादान और निमित्त कारण मानते हैं, उनका सृष्टि विकास क्रम अद्वैततापूर्ण है।[२]

(७) कबीर को अद्वैत वेदान्त के प्रधान सिद्धान्त प्रतिबिम्बवाद, विवर्तवाद, अहिंसावाद विशेष रूप से मान्य हैं।

(८) कबीर की मुक्त सम्बन्धी धारणा पूर्ण अद्वैती है।[३]

इतना होते हुए भी कबीर का अद्वैतवादियों से निम्नलिखित बातों में मतभेद भी है :—

(१) वे वेदान्तियों के श्रुति प्रामाण्यवाद को नहीं स्वीकार करते हैं।

(२) वे ज्ञान से अधिक भक्ति में विश्वास करते हैं।

(३) उनका ब्रह्म निरूपण बौद्धों और नाथों के शून्यवाद तथा योगियों के द्वैताद्वैतविलक्षणवाद आदि से प्रभावित है।

सूफियों के समान जीव को ब्रह्म तत्त्व से निकली हुई वस्तु मानते हैं। सूफियों ने अधिकतर जीव और ब्रह्म को स्पष्ट करने के लिये बादल और समुद्र का दृष्टान्त दिया है। कबीर ने "यहु जिव आया दूर सी अजो भी जासी दूर" (क० ग्रं० पृ० ७५) में यही भाव ध्वनित किया है।

इन सब मतभेदों के आधार पर हम यह कदापि नहीं कह सकते कि कबीर सच्चे शंकर मतानुयायी ही थे। वास्तव में कबीर को अद्वैतवाद मान्य है किन्तु उसका स्वरूप उनकी प्रतिभा ने स्वयं सँवारा है। उनका अद्वैती स्वरूप एक ओर तो बौद्धों, नाथों से प्रभावित है। दूसरी ओर उन्हें विशिष्टाद्वैत-वादियों का भक्ति तत्त्व पूर्ण रूप से मान्य है। सच तो यह है उन्होंने उसे सबसे

---

१ देखिये इसी पुस्तक में कबीर का आत्म वर्णन

२ देखिये इसी पुस्तक में कबीर का जगत् वर्णन

३ देखिये ,, ,, ,, ,, मोक्ष वर्णन

अधिक महत्त्व दिया है। उनका अद्वैतवाद थोड़ा बहुत सूफियों से भी प्रभावित है।

इस प्रकार कबीर का अद्वैतवाद विभिन्न मतों से प्रभावित होने के कारण नवीन और मौलिक तथा शांकर मत से अधिक साम्य रखने के कारण प्राचीन है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के दर्शन सम्बन्धी मौलिक सिद्धांत सम्भवतः कोई कवि नहीं प्रस्तुत कर सका है।

कबीर की योग साधना

योग का संक्षिप्त परिचय :—अत्यन्त प्राचीनकाल[1] से भारत में योग चर्चा और योगाभ्यास होता आया है। स्वयं ऋग्वेद संहिता[2] में योग का वर्णन कई स्थानों पर मिलता है। अथर्ववेद[3] यजुर्वेद[4] सामवेद[5] तथा उपनिषदों[6] में तो उसे और भी अधिक महत्त्व दिया गया है। पतंजलि योग सूत्र में तो उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा कर दी गई है। उसमें उसकी परिभाषा "चित्तवृत्तिनिरोधः योगः" कहकर की गई है। उसमें इस चित्तवृत्तिनिरोधरूपिणी साधना के आठ अंग बतलाये गये हैं। वे क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

---

१ देखिये—मेमोयर्स आफ आर्कीलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया में नं० ४१ के पृ० ३३ और ३४ पर वर्णित पाषाण प्रतिमा से सिद्ध होता है कि योग अत्यन्त प्राचीनकाल में भी प्रचलित था।

२ मंडल—सूक्त १८, मंत्र ७ तथा मंडल १ सूक्त १७ मन्त्र ४१

३ १९/१/८/२

४ १२/६८

५ २/३/१०/३

६ देखिए—कठोपनिषद् २/३/१०-१२, १/२/१२
श्वेताश्वतर १/८-९
छान्दोग्य १/१३/४, ४/३/३-४

ध्यान और समाधि[1] हैं। इस प्रकार योग सूत्रों में योग शब्द एक विशेष दार्शनिक और पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

आगे चलकर योग शब्द कुछ अधिक व्यापक अर्थ में प्रचलित हुआ और आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य स्थिर करने वाली किसी भी साधना को योग कहा जाने लगा।[2] इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में अनेक प्रकार के योगों का प्रचार हो चला। स्वयं गीता में ही १८ प्रकार के योगों का उपदेश दिया गया है। किन्तु साधना क्षेत्र में जितनी अधिक अष्टांग योग तथा उन्हीं के आधार पर बने हुए हठयोग, राजयोग, तपयोग तथा मन्त्रयोग आदि की प्रतिष्ठा है, उतनी अन्य योगों की नहीं। यहाँ पर उनका संक्षिप्त परिचय दे देना आवश्यक है।

अष्टांग योग :—योग दर्शन में योग के आठ प्रमुख अंग माने गये हैं। वे क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। उसमें यमों और नियमों के भी पाँच-पाँच भेद किए गए हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह[3] ये पाँच यम तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति ये पाँच नियम[4] हैं। इनके पालन से शरीर और मन दोनों ही शुद्ध होते हैं। शरीर और मन के शुद्ध हो जाने पर आसनों की साधना करनी पड़ती है। निश्चल सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन[5] है। प्राणायाम की सफलता के लिये आसनों की साधना परमापेक्षित है। हठयोग ग्रन्थों में आसनों के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। भगवान् शिव ने चौरासी लाख आसनों का उपदेश किया था। अब केवल चौरासी आसनों की ही चर्चा सुनी जाती है। हठयोग प्रदीपिका में केवल चार आसनों का वर्णन है। उनमें भी सिद्धासन को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। आसन सिद्ध होने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति को रोककर प्राणायाम—साधना की जाती है। योग सूत्रों में

---

१ योग सूत्र—सूक्त २९ साधन पाद

२ हठयोग प्रदीपिका—शिव निवास आयंगर भूमिका—पृ० ६

३ यो० २/३०

४ यो० २/३२

५ यो० २/४६

प्राणायाम तीन प्रकार[1] का माना गया है—वाह्यवृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति। वाह्यवृत्ति को ही दूसरे लोग रेचक कहते हैं। इसमें रेचक पूर्वक प्राण को रोका जाता है। इसी प्रकार आभ्यन्तर प्राणायाम को पूरक भी कहते हैं। इसमें प्राण को शरीर के अंदर ले जाकर रोका जाता है। स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम का दूसरा नाम कुम्भक है। इसमें अन्दर गए हुए प्राण को यथाशक्ति रोकना पड़ता है। एक चौथे प्रकार का प्राणायाम भी वर्णित है। इसको कोई नाम न देकर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है "बाहर और भीतर के विषयों को त्याग कर देने से अपने आप होनेवाला चौथा प्राणायाम है।[2] इनके अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार के भी प्राणायाम होते हैं इन्हें मुद्रा कहते हैं। नाथ पंथी हठयोग में इन्हें विशेष महत्त्व दिया गया है। हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम के पूर्व षट्कर्मों का विधान भी मिलता है। षट्कर्मों के अन्तर्गत धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि तथा कपालभाति क्रियाएँ आती हैं। उसमें इनका विस्तृत विवेचन किया गया है।[3] प्राणायाम के बाद प्रत्याहार की स्थिति आती है। अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होकर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में तदाकार हो जाना ही प्रत्याहार[4] है। इससे साधक को इन्द्रियों की परम प्राप्ति होती है। प्रत्याहार के पश्चात् साधक धारणा नामक योगांक की साधना में प्रवृत्त होता है। योग सूत्रों के अनुसार शरीर के किसी एक देश में (बाहर या भीतर) चित्त को केन्द्रित करना ही धारणा है।[5] और जहाँ चित्त को लगाया जाय उसी में लगी हुई वृत्ति की एकतानता को ध्यान कहते हैं। जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की प्रतीति शेष रह जाती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा होने लगता है तभी समाधि[6] की अवस्था सम्पन्न होती है। संक्षेप में योग सूत्रों में

---

१ यो० २/५०
२ यो० २/५१
३ हठयोग प्रदीपिका—पृ० ५५१ श्लोक २२ से ३६ तक
४ २/५४
५ यो० ३/१
६ यो० ३/३

यही अष्टांग योग साधना है। अब हम क्रमशः हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग तथा राजयोग का संक्षिप्त परिचय देते हैं।

हठयोग :—हठयोग को स्पष्ट करते हुए हठयोग प्रदीपिका के टीकाकार महात्मा रामस्वामी ने लिखा है कि 'ह' का अर्थ चन्द्र है और 'ठ' का अर्थ सूर्य। सूर्य और चन्द्र से क्रमशः दक्षिण स्वर और बाम स्वर का प्रतीकात्मक अर्थ भी लिया जाता है। इन्हीं दोनों की समता का नाम हठयोग है। हठयोगी साधक का सिद्धान्त है कि स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का ही परिणाम है। यही कारण है कि सूक्ष्म शरीर पर स्थूल शरीर का प्रभाव किसी न किसी रूप में पड़ा करता है। अतः स्थूल शरीर की साधना से सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करना चाहिए। इसीलिये वे स्थूल शरीर की विविध साधना के सहारे सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालकर चित्तवृत्ति निरोध करते हैं। इसी को हठयोग कहते हैं। यह राजयोग प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन है। हठयोग साधना भी कई प्रकार की होती है। स्थूल रूप से आचार्य लोग इसे प्राचीन और नवीन द्विविधा मानते हैं। प्राचीन हठयोग के अन्तर्गत योग सूत्रों में वर्णित अष्टांगों के प्रथम पाँच अंग आते हैं। नवीन हठयोग विविध रूपी है। कुछ लोग तो मुद्रा आसन आदि से इसकी प्राप्ति करते हैं। कुछ लोग कुण्डलिनी उत्थापन प्रक्रिया के सहारे हठयोग की साधना करते हैं। कुछ नाड़ी शोधन स्वर शोधन को ही हठयोग मानते हैं। इन सबका यदि विस्तृत विवेचन किया जाय तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन जायगा।

लययोग :— लययोग को स्पष्ट करते हुए हठयोग प्रदीपिका में लिखा है "लयो विषय विस्मृतिः"[१] अर्थात् ध्येय में वासनाओं का लय करना ही लय है। ध्येय का वर्णन करते हुए उसी में कहा है "भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थान मनस्तत्रविलीयते" अर्थात् भ्रुवों के बीच में शिवस्थान है वहीं पर मन को केन्द्रित करना चाहिए।[२] मन का यह लय नाद के श्रवण या ज्योति के दर्शन से सम्भव होता है। कबीर का शब्द सुरति योग लययोग ही है।

---

१ **हठयोग प्रदीपिका ४/३४**

२ **हठयोग प्रदीपिका ४/४८**

मन्त्रयोग :—योगों में मन्त्रयोग सबसे सरल है। योग सूत्र में "तस्य वाचकः प्रणवः"[१] लिखकर मन्त्रयोग का संकेत किया गया है। भक्तियोग भी मन्त्रयोग का रूपान्तर है। जप साधना मन्त्रयोग की सबसे प्रमुख विशेषता है। इसी मंत्रयोग से सुषुम्ना के दर्शन होते हैं। सुषुम्ना दर्शन के फलस्वरूप ही तत्त्वानुभूति होने लगती है। संक्षेप में जब किसी मंत्र के सहारे चित्तवृत्ति का निरोध किया जाता है तब उसे मंत्रयोग कहते हैं। कबीर में मंत्रयोग भी पाया जाता है।

राजयोग :—हठयोग लययोग तथा मंत्रयोग से भारी श्रेष्ठ राजयोग है। सच तो यह है कि यह पहले तीनों योग राजयोग की आवश्यक पृष्ठभूमि मात्र हैं। राजयोग योग शास्त्र में विविध नामों से प्रसिद्ध है। हठयोग प्रदीपिका में इसके बहुत से पर्याय वाची शब्द दिए गए हैं जैसे समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लयस्तत्व शून्याशून्य परे पदम, अमनस्क, अद्वैतता, निरालम्ब, निरंजन जीवन्मुक्ति सहजा तुर्या आदि।[२] हठयोग प्रदीपिकाकार का मत है कि जब हठयोग साधना समाप्त हो जाती है तभी राजयोग साधना प्रारम्भ होती है। इस दृष्टि से ध्यान धारणा और समाधि इसके प्रमुख अंग हुए कुछ योग ग्रंथों में राजयोग के १५ अंग माने गये हैं।[३] साधारणतया राजयोग में ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय देखा जाता है।

महात्मा कबीर की योग साधना

जहाँ तक महात्मा कबीर का सम्बन्ध है उन्होंने योग क्षेत्र में समस्त प्रचलित योग साधनाओं की परीक्षा करके अपना स्वानुभूति मूलक सहज योग प्रतिपादित किया है, जिसका पर्यवसान प्रपत्ति मूलक भक्तियोग में हुआ है यही कबीर का अंतिम सिद्धान्त भी है।

कबीर के योग सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करते समय हमें कई बातें

---

१ यो० १/२७–२८

२ हठयोग प्रदीपिका ४/३/४

३ तेज विन्दूपनिषद् १/१५–१७

स्मरण रखनी पड़ेंगी। प्रथम तो यह कि कबीर का सारा जीवन सत्य के प्रयोग में बीता था। उनके ये सत्य के प्रयोग सभी क्षेत्रों में होते रहते थे। योग क्षेत्र में उनकी विशेष अधिकता रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे जीवन भर विविध प्रचलित योग पद्धतियों का परीक्षण और प्रयोग ही करते रहे थे। इन प्रयोगों से उन्हें सत्य का क्रमिक अनुभव होता जाता था। इसीलिए उनकी योग साधना का विकास भी क्रमिक ही हुआ था। उनके योग सम्बन्धी विचारों को स्थूल रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक वे जो उनके योग के सच्चे स्वरूप की खोज में किए गए परीक्षणों और प्रयोगों से सम्बन्धित हैं और दूसरे वे जिनमें उनके योग के अंतिम स्वीकृत स्वरूप का वर्णन मिलता है। प्रथम प्रकार की उक्तियों में हम प्रयोग कालीन विशृंखलता, शिथिलता तथा अस्पष्टता पाते हैं। दूसरी उक्तियों में स्वानुभूति जनित दृढ़ता है, सिद्धान्त कालीन स्पष्टता है। प्रथम प्रकार की उक्तियाँ प्रायः वर्णन प्रधान हैं। दूसरी प्रकार की उक्तियों में अधिकतर योग के असत् स्वरूप का खण्डन और सत् स्वरूप का मण्डव किया गया है।

कबीर की योग साधना की विविध अवस्थाओं को समझने के पूर्व एक बात और ध्यान देने की है। वह यह है कि कबीर की समस्त धर्म साधना धर्म के विकृत और जटिल स्वरूप की प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुई है। कबीर का लक्ष्य सदैव से ही अनेकता में एकता, जटिलता में सरलता स्थापित करना ही था। योग क्षेत्र में भी कबीर जटिलता से सरलता की ओर उन्मुख होते गये हैं। एक बात और है कबीर के समय में नाथ पंथी योगियों की तथा रामानन्दी योगियों की अधिकता थी। तथा दोनों प्रकार के योगी अवधूत ही कहलाते थे। इन अवधूतों में अपने पूर्ववर्ती साधकों की साधना की सात्विकता के स्थान पर तामसिक आडम्बर प्रियता बढ़ती जा रही थी। रामानन्द के शिष्य और गोरखनाथ के अनुयायी कबीर अपने इन गुरुजनों के चेलों के आडम्बर प्रिय जीवन पर तरस खाये बिना न रह सके। यही कारण है कि उन्होंने अधिकतर इन अवधूतों को समझाने की चेष्टा की है। तभी तो योग सम्बन्धी अधिकांश उक्तियाँ अवधूतों को ही सम्बोधित करके लिखी गई हैं। किन्तु कहीं-कहीं पर उन्होंने सम्बोधन में 'योगी'

शब्द का प्रयोग किया है वहाँ उसमें नाथ पंथी योगी का अर्थ लेना चाहिए।

कबीर की रचनाओं को पढ़ने से मालूम होता है कि उन्होंने सबसे पहले हठयोग के जटिलतम स्वरूप को अपनाया था। इसी अवस्था में उन्होंने पूरक, रेचक, कुम्भक, धोती, नेती, वस्ति, वायु संचालन के १६ आधार कुण्डलिनी उत्थापन तथा तत्सम्बन्धी अनेकानेक चक्रों का वर्णन किया है। इसी अवस्था से सम्बन्धित उक्तियों में १० दरवाजे, ५२ कोठरी, १४ चन्दा, ६४ दिया, द्वादश कोश, ७ सुरति, १६ संख, ७२ नाड़ियों की चरचा की है। इस अवस्था के वर्णनों में हठयोग के विविध साधकों की कही हुई बातों का पिष्टपेषण तो है ही, साथ ही साथ नाथ पंथ और तंत्र साधना की अनेकानेक गुह्य बातें भी आ गई हैं। कबीर के युग में तन्त्र साधना अपनी पराकाष्ठा पर थी। इस अवस्था की उक्तियों को समझने के लिए हठयोग और तन्त्रों में वर्णित कुण्डलिनी उत्थापन आदि का थोड़ा सा संक्षित परिचय आवश्यक है।

हठयोग में कुण्डलिनी उत्थापन प्रक्रिया :—

कुण्डलिनी उत्थापन प्रक्रिया का वर्णन हठयोग के ग्रंथों के अतिरिक्त त्रिपुरसार समुच्चय, ज्ञानार्णव तन्त्र, गंधर्व तन्त्र, वामकेश्वर तन्त्र आदि तन्त्र ग्रंथों में भी मिलता है। हठयोग और तन्त्र ग्रंथों में ही नहीं यजुर्वेद तक में इसका वर्णन आया है।[1] इस प्रक्रिया से ही योगी लोग आत्मज्योति दर्शन तथा अनहद नाद श्रवण करते रहे हैं। कुण्डलिनी स्वयं नाद स्वरूपा, ज्योति स्वरूपा तथा शक्ति स्वरूपा मानी जाती है। साधक अपनी भावना के अनुरूप उनकी अनुभूति करते हैं। इस प्रकार की अनुभूति के लिए चक्रभेदन परमावश्यक बतलाया गया है। हठयोग के प्रामाणिक ग्रंथों में जैसे योग सूत्र, शिव संहिता, घेरण्ड संहिता आदि में प्रायः षट्चक्रों का ही वर्णन मिलता है। किंतु नाथ पंथ में तथा तंत्र ग्रंथों[2] में इन चक्रों की संख्या ६ से अधिक दी हुई है। आगे हम उनका विवेचन करेंगे। हठयोग के ग्रंथों में और तंत्र ग्रंथों में चक्रों के महत्त्व और स्वरूप के संबंधों में भी

---

१ कुण्डलिनी सक्तेः अवस्था त्रयंविद्यते। इत्यादि—यजुर्वेद

२ शक्ति सम्मोहन तंत्र तथा महानिर्वाण तंत्र में ९ चक्र हैं।

मतैक्य नहीं है हठयोग के ग्रंथों ने अधिकतर सहस्रार चक्र और ब्रह्म रंध्र को महत्त्व दिया है। तंत्र ग्रन्थों में द्वादश दल कमल की विशेष महिमा कही गई है। "पादुका पंचक स्तोत्र" में इस द्वादश दल कमल का विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। चक्रों के नाम, स्थान, दल की मात्रिकाओं, तत्त्व, गुण, देवता, शक्ति आदि के सम्बन्ध में भी हठयोग तथा तन्त्र ग्रंथों में अन्तर पाए जाते हैं। कबीर की प्रारम्भिक हठयोगिक उक्तियों का विश्लेषण करते हुए पता लगाना कठिन पड़ जाता है कि वे किस तन्त्र ग्रंथ या हठयोग के आचार्य से प्रभावित हैं। कबीर ने हठयोगिक साधना का ज्ञान प्रायः सिद्ध और नाथ पंथी साधकों से ही सीखा होगा। प्रत्येक साधक की साधना में कुछ व्यक्तिगत विशेषता होना भी स्वाभाविक है। कबीर ने इन साधकों की बातों को सुन-सुनाकर दोहरा दिया होगा। संभवतः इसी कारण से उनके हठयोग की कुछ उक्तियों के आधार का पता ही नहीं लग पाता है। फिर भी उनकी अधिकांश उक्तियाँ अधिकतर प्रचलित साधना के मेल में ही हैं।

कुण्डलिनी उत्थापन प्रक्रिया का शास्त्रीय वर्णन कर देना आवश्यक है, क्योंकि हठयोग प्रदीपिका के अनुसार कुण्डलिनी साधना सब प्रकार के यौगिक प्रक्रियाओं का आधार है। योग शास्त्र का सिद्धान्त है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही पिंड में है। इसी सिद्धान्त के आधार पर शरीर के अन्दर विश्व शक्ति तथा विविध ब्रह्मांडों की, जिन्हें चक्र कहते हैं कल्पना की गई है। सृष्टि की समष्टि शक्ति को महा कुण्डलिनी कहते हैं। शरीरस्थ व्यष्टि शक्ति को केवल कुण्डलिनी कहते हैं। कुण्डलिनी की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—"कुण्डले अस्याः स्तः इति कुण्डलिनी।" अर्थात् वह (शक्ति) जिसके दो कुण्डल हों। ये कुण्डल इड़ा और पिंगला हैं। इन दोनों नाड़ियों के बीच सुषुम्ना नाड़ी है। इसी से होकर कुण्डलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। सुषुम्ना के भीतर भी कई सूक्ष्म नाड़ियों की कल्पना की गई है। इनमें वज्रा, चित्रणी और ब्रह्म नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इस प्रकार इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, वज्रा, चित्रणी और ब्रह्म मिलकर पाँच नाड़ियाँ हो जाती हैं। किन्तु अधिकतर चर्चा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की ही होती है। इन नाड़ियों के कई सांकेतिक नाम भी हैं। इन्हें सिद्धों ने क्रमशः ललना, रसना, अवधूति, संतों ने गंगा, यमुना और सरस्वती संज्ञाएँ दी हैं।

साधक अनेक प्रकार की साधनाओं के सहारे कुण्डलिनी जाग्रत करता है। कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर जो स्फोट होता है उसी को नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है। प्रकाश का व्यक्त रूप महाविन्दु है। इसी महाविन्दु के भी तीन रूप हैं—इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया। इन्हें प्रतीकात्मक भाषा में सूर्य, चंद्र, अग्नि तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। इसी प्रकार नाद के भी तीन भेद बतलाए गए हैं—महानाद, नादान्त और निरोधनी। जीव सृष्टि से उत्पन्न होनेवाला जो नाद है वही ओंकार है। उसी को शब्द ब्रह्म कहते हैं। ओंकार से बावन मातृकाएँ उत्पन्न होती हैं। इनमें ५० अक्षरमय हैं। इक्यावनवी प्रकाश रूप हैं और बावनवी प्रकाश का प्रवाह है। ये ही मातृकाएँ लोभ और विलोभ रूप से सौ होती हैं। ये ही सौ कुण्डल हैं। इन कुण्डलों को धारण किए मातृकामयी कुण्डलिनी है। सहस्र चक्र में जो अव्यक्त नाद है वही आज्ञा चक्र में ओंकार रूप से व्यक्त होता है।

अब थोड़ा सा चक्रों[1] पर भी विचार कर लिया जाए। पायु से दो अंगुल ऊपर और उपस्थ से दो अंगुल नीचे चतुरंगुल विस्तृत समस्त नाड़ियों का मूल स्वरूप पक्षी के अंडे की तरह एक कंद विद्यमान है। इसमें से हठयोग प्रदीपिका के अनुसार ७२ हजार तथा शिव संहिता के अनुसार ३५ हजार नाड़ियाँ निकल कर शरीर भर में फैली हुई हैं। इनमें तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। ये तीनों नाड़ियाँ षट्चक्रों को आवृत करती हुई भ्रूमध्य भाग में जा मिलती हैं। इस स्थल को त्रिवेणी कहते हैं। पहला चक्र मूलाधार नामक है। वह गुदा के उपर लिंग मूल के नीचे सुषुम्ना के मुख में संलग्न है। इसमें चार दल हैं। इसका रंग पीला बतलाया जाता है। इसके चार दल चार अक्षरमय हैं। वे अक्षर व, श, ष और ह हैं। गणेश इनके ध्येय देवता हैं। इस चक्र में ही प्राण शक्ति के साथ कुण्डलिनी प्रसुप्त रहती है। कुण्डलिनी स्वयं इस चक्र के नीचे त्रिकोण आकृतिमय अग्नि चक्र से जिसे त्रिपुर भी कहते हैं, अवस्थित

---

१ इन षट् चक्रों के विस्तृत वर्णन शिव संहिता, घेरण्ड संहिता, तथा षट्-चक्र निरूपण नामक ग्रन्थों में मिलेंगे।
कल्याण के शक्तिअंक पृ० ४५४ पर देखिये।

स्वयंभू लिंग से साढ़े तीन वलयों में लिपटी हुई सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है। इस चक्र की अधिष्ठात्री डाकिनी देवी हैं। द्वितीय चक्र का नाम स्वाधिष्ठान कमल है। यह लिंग मूल में स्थित है। इसमें छः दल होते हैं। इसके संकेत अक्षर—ब, म, भ, य, र, ल हैं। इस चक्र का रंग लाल है। इस चक्र की अधिष्ठात्री शाकिनी देवी है। इसका ध्यान करने वाला विश्व भर में बन्धन रहित और भय रहित होकर विचरण करता है।

मणिपुर चक्र तृतीय चक्र है। यह नाभि के नीचे स्थित है। यह सुनहले रंग का है और दस दल वाला है। इसके संकेताक्षर ड, द, ज, त, थ, द, ध, न, प, क हैं। इसकी अधिष्ठात्री लाकिनी देवी हैं। इस चक्र का चिन्तन करने वाला पाताल सिद्धि प्राप्त करता है। वह इच्छाओं का अधिपति और रोग शोक का नाशक हो जाता है।

चौथा चक्र अनाहत चक्र है। यह हृदय-स्थल में स्थित है। इसमें द्वादश दल हैं। इसके संकेताक्षर क, ख, ग, घ, ङ, च, छ ज, झ, ट, ठ हैं—इसका रंग लाल माना जाता है। काकिनी नाम की देवी इसकी अधिष्ठात्री हैं। इसका चिन्तन करने वाला अपरिमित ज्ञान प्राप्त कर त्रिकालज्ञ हो जाता है।

पाँचवाँ चक्र विशुद्ध चक्र है। यह कण्ठ में स्थित है। इसमें १६ दल हैं। इसके संकेताक्षर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः हैं। इसका रंग देदीप्यमान स्वर्ण के समान है। शंकिनी नाम की देवी इसकी अधिष्ठात्री है।

छठा चक्र आज्ञा चक्र है। यह त्रिकुटी (भौंहों के मध्य) में स्थित है। इसके दो दल हैं। इसका रंग श्वेत है। संकेताक्षर ह, क्ष हैं। इसके दोनों ओर ईड़ा और पिंगला है वही मानों वाराणसी हैं। यही विश्वनाथ का वासस्थान माना जाता है। हाकिनी इसकी अधिष्ठात्री देवी हैं।

कुछ लोग आज्ञा चक्र के ऊपर तीन पीठ स्थान मानते हैं। वे क्रमशः विन्दु पीठ, नाद पीठ और शक्ति पीठ हैं। कुछ तंत्र ग्रंथों में आज्ञा चक्र के पास सोम चक्र तथा मनः चक्र की कल्पना की गई है। सोम चक्र में १६ दल और मनः चक्र में ८ दल बतलाए गए हैं। कुछ योगी लोग तालु मूल में भी एक गुप्त

कमल की कल्पना करते हैं। यह कमल द्वादश दल वाला है। इसका वर्ण रक्त है।

आज्ञा चक्र के ऊर्ध्व देश में सहस्र दल कमल है। यही चन्द्र मंडल है। जिससे अमृत मूल कमल स्थित सूर्य में भस्म हो जाता है। साधक योगी साधना के बल पर इसका पान कर लिया करते हैं। इस सहस्र दल कमल की कर्णिका में एक द्वादश दल कमल है। उसके ऊर्ध्व देश में एक पच्छिमाभिमुख योनि मंडल है। इस योनि में सुषुम्ना बिवर है। इसी बिवर के मूल में ब्रह्म रन्ध्र है जो शून्याकार है। उसी में ब्रह्म की स्थिति मानी जाती है। इस रन्ध्र में ६ दरवाजे माने जाते हैं। इन्हें कुण्डलिनी ही खोल सकती है। कबीर ने इन्हें ६ खिड़कियाँ कहा है। इसी ब्रह्म रन्ध्र को दशम् द्वार भी कहते हैं।

कुछ योगियों ने आज्ञा चक्र से ब्रह्म रन्ध्र तक के बीच में त्रिकुट, श्री हार, गोल्लाट और पीठ, भ्रमर गुफा नाम के चक्रों की कल्पना की है। भ्रमर गुफा ब्रह्म रन्ध्र को भी कहते हैं। कुछ योगी इन दोनों को भिन्न मानते हैं। कबीर ने प्रायः इसका प्रयोग ब्रह्म रन्ध्र के अर्थ में ही किया है। बहुत से नाथ पंथी तथा तंत्र ग्रंथों में चक्रों के और भी जटिल वर्णन मिलते हैं। यहाँ पर उन सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता है।

महात्मा कबीर के युग में नाथ पंथी हठयौगिक तथा तांत्रिक साधनाओं का अच्छा प्रचार था। कबीर इन दोनों से प्रभावित हुए जान पड़ते हैं। उनकी प्रारम्भकालीन योग साधना वास्तव में इन्हीं तांत्रिकों और हठयोगियों की जटिलतम योग-साधनाओं का ही रूपान्तर है। इनकी इसी युग से सम्बन्धित उक्तियों में हमें पंच प्राण[1], सोलह आधार[2], इकीस नाड़ियाँ[3], ७२ कोटे[4], त्रिकुटी संगम[5], आदि-आदि कठिन और सांकेतिक बातों की चर्चा

१ राग गउड़ी ७३ संत कबीर
२ राग रामकली ६ ,, ,,
३ राग गउड़ी २४ ,, ,,
४ क० ग्रं० पृ० ३०८
५ क० ग्रं० पृ० ४१८

मिलती है। यदि इन सबका विवेचन किया जाय तो एक नवीन ग्रंथ ही बन सकता है। हठयोग के ये वर्णन इतने जटिल हैं कि रहस्यात्मक हो गए हैं। कबीर की हठयौगिक साधना की यह प्रथमावस्था है।

हठयोग साधना की दूसरी अवस्था में पहुँच कर कबीर कुछ अधिक स्पष्ट हो चलते हैं। उनकी अस्पष्ट जटिलता, स्पष्ट सरल वर्णनों में परिवर्तित हो जाती है। इस अवस्था से सम्बन्धित उक्तियों में हठयोग के जो वर्णन मिलते हैं, वे प्रायः प्रसिद्ध हठयोग, नाथ पंथी योग या तंत्र ग्रंथों के आधार पर किए हुए जान पड़ते हैं। ऐसे स्थलों पर वे कभी तो षट्-चक्र भेदन की बात कहते हैं, कभी त्रिवेणी स्नान का आदेश करते हैं, और कभी भगन (ब्रह्म रन्ध्र) के अमृत पान करने का उपदेश देते हैं। निम्नलिखित पद में देखिए, वह अस्पष्टता और जटिलता नहीं है जो उनके योग साधना के प्राथमिक स्वरूप में मिलती है :—

कदली कुसुम दल भीतरा, तह छः अंगुल का बीच रे।
तहाँ दुआर दस खोजिले, जनम होत नहीं नीच रे।
बंक नालि के अंकरे, पछिम दिशा की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिए, तहाँ भंवर गुफा के घाट रे।
त्रिवेणी मह नाइए, सुरति मिलै जो हाथ रे। (इत्यादि)
(क० ग्रं० पृ० २८८)

साधना की इस अवस्था में उन्हें पवन शोधन में पूर्ण विश्वास रहता है। वे कहते हैं :—

आसन पवन किए दृढ़ रहु रे, मन को मैल छांड़िदे वीरे।
(क० ग्रं० पृ० २०७)

हठयोग साधना के विकास की तृतीय अवस्था में कबीर का दृष्टिकोण ही बदला हुआ प्रतीत होता है। इस अवस्था में हठयोग के जटिल स्वरूप का पूर्ण वहिष्कार मिलता है। इसी अवस्था में कबीर ने सरल हठयोग का प्रेम से सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया है।

देखिए निम्नलिखित हिंडोले के रूपक से उन्होंने दोनों के सामंजस्य को कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है :—

हिंडोलना तह् झूलै आतम राम ।
प्रेम भगति हिंडोलना सब संतन को विश्राम,
चन्द सूर दुई खंभवा वंक नालि की डोरि ।
झूले पंच पियारियाँ तह् झूलै जीय मोर ॥
द्वादस गम के अंतरा तँह अमृत को आस ।
जिन यहु अमृत चाखिया सो ठाकुर हम दास ॥
सहज सुनि को नेहरी गगन मंडल सिर मोर ।
दोऊ कुल हम आगरी जो हम झूलै हिंडोल ॥
(क० ग्रं० पृ० ६४)

प्रेम और योग के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए महात्मा कबीर कहते हैं कि चंद और सूर की भट्टी में सुषमनि चिगवा की सहायता से राम रसायन की उत्पत्ति होती है। सच्चा योगी इसी राम रसायन का पान कर अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करता है। ईश्वर और गौरी भी इसी राम नाम के रसायन का पान कर आनन्द निमग्न रहते हैं। यह राम नाम की रसायन बड़ी मँहगी पड़ती है। इस रस को वही पान कर सकता है जो अपना सब कुछ त्याग सके।[1] इसी प्रेम पियाले के पीने से कुण्डलिनी स्वयं जाग्रत हो उठती है। महात्मा कबीर इसी राम रसायन को पीकर मतवाले हो गए थे।

---

१ कोई पीवे रस राम नाम का जो पीवे सो जोगी रे ।
सती सेवा करो राम की और न दूजा भोगी रे ॥
यहु रस तो सब फीका भया ब्रह्म अग्नि पर जारी रे ।
ईश्वर गौरी पीवन लागे राम तनी मतवाली रे ॥
चन्द्र सूरे दोई भाटी कीन्हीं सुख मनि चिगवा लागी रे ।
अमृत को पी सांचा पुरया मेरी तृष्णा भागी रे ।
यह रस पीवे गूंगा महिला ताकि कोई न बूझै सार रे ।
कहै कबीर तहा रस मंहगा को जीयेगा जीवण हार रे ॥
(क० ग्रं० पृ० ११०)

दास कबीर यही रस माता कबहुँ उद्‌दकिन जाई !

(क० ग्रं० पृ० १११)

कबीर का शब्द सुरति योग :—आगे चलकर हठयोग के विविध चक्र-भेदन प्रक्रिया उनके विविध आडम्बरों से कबीर को घृणा सी हो चली[1] और लय योग की ओर उनका रुझान हुआ। कबीर का लय योग कबीर पंथियों में "शब्द सुरति योग" के नाम से प्रसिद्ध है। शब्द ब्रह्म की धारणा अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में अनेक स्थलों[2] पर शब्द ब्रह्म का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। ब्रह्म सूत्र[3] भागवत[4] आदि ग्रंथों में भी शब्द ब्रह्म की अलौकिक महिमा का वर्णन मिलता है। स्वामी शंकराचार्य ने भी शब्द ब्रह्म की महिमा और महत्त्व को स्वीकार किया है।[5] इस शब्द का प्रतीक ओंकार या प्रणव है। महर्षि पतंजलि ने भी "तस्यवाचकः प्रणव" कहकर (१/२७) शब्द ब्रह्म को ही प्रतिपाद्य माना है। मांडूक्योपनिषद् तथा कठोपनिषद् में ओंकार की महान् महिमा का वर्णन है।[6]

महात्मा कबीर शब्द ब्रह्म में पूर्ण आस्था रखते थे। उन्होंने अनेक स्थलों पर अनेक प्रकार से अपनी इस आस्था की अभिव्यक्ति की है। कभी तो वे राम नाम को निरंजन शब्द ब्रह्मरूप ध्वनित[7] करते हैं और कभी अनहद शब्द की चिन्ता करने का आदेश देते हैं[8] जहाँ पर यह अनहद शब्द सुनाई पड़ता है वहीं भगवान् का निवास स्थान है —

---

१ 'आसन पवन दूर करि बवरे'—क० ग्रं० पृ० २६५

२ ऋग्वेद १/ १६४/ १०

३ ब्रह्मसूत्र १/३/ २८

४ भाग ११/३१/२६ देखिए

५ ब्रह्मसूत्र १/२/२८

६ माण्डूक्योपनिषद् —१ क० १/२/१६

७ शब्द निरंजन राम नाम सांचा।

८ ऐसा ध्यान धरो नर हरि शब्द अनाहद चिन्तन करी॥

क० ग्रं० पृ० १६८

अनहद शब्द उठै झन कार तह प्रभु बैठे समरथ सार ।

उन्होंने शब्द ब्रह्म के प्रतीत ओंकार का भी अत्यन्त महत्त्व दिया है। वे शब्दवादियों के ढङ्ग पर शब्द से ही संसार की उत्पत्ति मानते हैं।[1] पातञ्जल दर्शन में वर्णित शब्द ब्रह्म का अनुभव तथा उसी में लीन होने की प्रक्रिया को उन्होंने अपनी साधना को योग साधना का लक्ष्य बनाया था। यही कारण है कि उन्होंने सर्वत्र शब्द ब्रह्म सुरति को लीन करने का उपदेश दिया है। सुरति से कबीर का क्या तात्पर्य है—यह विचारणीय है। सुरति शब्द सम्भवतः कबीर को सिद्धों और नाथ पंथियों के माध्यम से प्राप्त हुआ था। सुरति के साथ-साथ एक शब्द और बहुत प्रसिद्ध है। वह "निरति" है। इन दोनों के अर्थ लगाने में बड़ी-बड़ी दूर तक बुद्धि दौड़ाई गई है।

डा० बड़थ्वाल जी ने अपने "सुरति निरति" नाम के लेख में तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में इन दोनों शब्दों पर विद्वत्ता से विचार किया है। डा० बड़थ्वाल के मतानुसार अधिकतर सन्तों ने इस शब्द का प्रयोग वहाँ की स्मृति के अर्थ में किया है।[2] सम्पूर्णानन्द[3] जी इसकी व्युत्पत्ति स्रोत से मानते हैं। गुलाल साहब ने सुरति का अर्थ मन बतलाया है।[4] बड़थ्वाल जी ने इसे "स्मृति" से निकला हुआ सिद्ध किया है। इसके प्रमाण में उन्होंने श्रुति वाक्य "स्मृति लम्भे सर्व ग्रंथीनां विप्रमोक्षः" उद्धृत किया है।[5] राधास्वामी मत वाले इसका अर्थ जीवात्मा मानते हैं। क्षिति मोहन सेन[6] ने सुरति का अर्थ प्रेम और निरति का प्रेम वैराग्य किया है। आचार्य हजारी प्रसाद[7] द्विवेदी सुरति का अर्थ अन्तर्मुखी वृत्ति और निरति का वाह्यमुखी वृत्ति मानते हैं। कुछ अन्य

१ देखिए इस ग्रंथ का ब्रह्मनिरुपणान्तर्गत शब्द ब्रह्म का वर्णन।
२ योग प्रवाह पृ० २७
३ विद्यापीठ चतुर्थ पत्रिका वाल्यूम २ पृ० १३९
४ एम० बी० पृ० १६६
५ दि निगम स्कूल पृ० २६४ (एडीशनल नोट्स)
६ 'कबीर' डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृ० २२४ नवीन संस्करण
७ 'कबीर' डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृ० २२४ नवीन संस्करण

विद्वान् सुरति का अर्थ स्वरत अपने में लीन हो जाना तथा कुछ विद्वान् उसको "सूरत इ इलहामिया"[1] का रूपान्तर भी समझते हैं। अब प्रश्न यह है कि कौन सा अर्थ कबीर को ग्राह्य था। साम्प्रदायिक ग्रन्थों में सुरति निरति की बड़ी विशद व्याख्याएँ मिलती हैं। किन्तु उन्हें मैं अधिकतर साम्प्रदायिक जोड़ तोड़ ही समझता हूँ। सुरति के सम्बन्ध में मेरी अपनी अलग तुच्छ धारणा है। अपने मत का प्रस्थापन करने से पहले मैं ऊपर निर्देशित विद्वानों की संक्षिप्त समीक्षा कर लेना आवश्यक समझता हूँ। डा॰ बड़थ्वाल ने सुरति का अर्थ वहाँ की स्मृति किया है। वे इसे स्मृति का तद्भव रूप मानते थे। मेरी समझ में यह मत पुष्ट आधारों पर नहीं स्थित है। यदि कबीर ने सुरति शब्द का प्रयोग स्मृति के अर्थ में किया होता तो वे एक ही स्थल पर इन दोनों शब्दों का एक साथ ही प्रयोग न करते। निम्नलिखित उद्धरण में देखिए उन्होंने सुरति सुमृति (स्मृति) का एक ही स्थल पर एक साथ प्रयोग किया है :—

सुरति सुमृत दुइ खूँटी कीन्ही आरम्भ किया बंमेकी।
ज्ञान तत्त्व की नली भराई बुनित आतमा पेखी॥
रन बन सोधि सोधि सब आए, निकटैं दिया बताई।
मन सूधा कौं कूंच कियौ है, ग्यांन बिथरनी पाई॥

क॰ ग्रं॰ पृ॰ १८६. पद २८८

इस उद्धरण में अंतिम पंक्ति भी ध्यान देने योग्य है। इसमें उन्होंने मन को कूची रूप कहा है इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वे सुरति को मन से भी अलग वस्तु मानते थे। अतः गुलाल साहब का यह मत कि सुरति मन का वाचक है, भी दृढ़ भूमिका पर आधारित नहीं है। सम्पूर्णानन्द जी ने सुरति की व्युत्पत्ति स्रोत से मानी है इसका अर्थ उन्होंने चित्तवृत्ति प्रवाह किया है। उनका यह मत भी अधिक समीचीन प्रतीत नहीं होता। कबीर ने एक स्थल पर लिखा है :—

बिसिया अजहुँ सुरति सुख आसा कैसे हुइहै राजा राम निवासा।

क॰ ग्रं॰ पृ॰ ३२७

---

१ कबीर का रहस्यवाद—डा॰ रामकुमार वर्मा—परिशिष्ट देखिए पृ॰ ८२

यहाँ पर इसका अर्थ करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कबीर ने सुरति का प्रयोग चित्तवृत्ति के प्रवाह के अर्थ में न कर आत्मा के अर्थ में किया है। इसमें आत्मा को सम्बोधित करके कहा गया है कि हे आत्मन्! तू अब भी विषय वासनाओं में लिप्त है तुझे ईश्वर की प्राप्ति किस प्रकार हो सकेगी। आचार्य क्षिति मोहन सेन ने सुरति को प्रेम का पर्यायवाची माना है। यह मत भी अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। कबीर ने एक स्थल पर लिखा है :—

सुरति ढीकुली लेज लेनु मन नित ढोलन हार।
कमल कुआं में प्रेम रस पीवे बारम्बार॥

क० ग्रं० पृ० २०५

यहाँ पर कबीर ने प्रत्यक्ष ही सुरति को प्रेम से अलग वस्तु माना है। अतएव हम सुरति का अर्थ प्रेम नहीं ले सकते। डा० हजारी प्रसाद ने सुरति का अर्थ अन्तर्मुखी वृत्ति लिया है। मेरी समझ में यह अर्थ भी कबीर की बानियों के मेल में नहीं है। वास्तव में सुरति को हम वहिर्मुखी आत्मा कह सकते हैं, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति नहीं। क्योंकि अपने शब्द सुरति योग में कबीर ने बहिर्मुखी आत्मा को शून्य रूपी शब्द में लीन करने का उपदेश दिया है। यदि सुरति का अर्थ अन्त-र्मुखी वृत्ति होता तो वे अपनी साधना में सुरति को अन्तर्मुखी करने का आदेश न देते। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रायः सभी विद्वान् सुरति के वास्तविक स्वरूप और अर्थ को सही रूप में स्पष्ट नहीं कर सके हैं। इन सभी विद्वानों के अर्थ प्रायः आनुमानिक हैं। अर्थ विज्ञान में कोरे अनुमान को ही प्रश्रय नहीं देते हैं। अनुमान के लिये दृढ़ आधार और तर्क होने चाहिए। यही कारण है कि हमने सुरति के वास्तविक अर्थ की खोज करने की चेष्टा की है।

महात्मा कबीर परम जिज्ञासु थे। उन्होंने उपनिषदों और वेदों का सत्संगति के सहारे अच्छा अध्ययन किया था। बहुत सम्भव है अपने गुरु रामानन्द से भी उन्हें इनका ज्ञान प्राप्त हुआ हो। यही कारण है कि उनके अधिकांश सिद्धांत वैदिक आधार लिए हुए हैं। उनका शब्द सुरति योग भी उपनिषदों और वेदों का आधार लेकर खड़ा हुआ है। मुण्डकोपनिषद् में एक स्थल पर लिखा है

"प्रणवो धनुः शरो हि आत्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।"[1] अर्थात् ओंकार रूपी धनुष से संयुक्त होने पर आत्मा रूपी शर ब्रह्म रूपी लक्ष्य तक पहुँच पाता है। इसमें स्पष्ट ही आत्मा को वेधक और परमात्मा को लक्ष्य ध्वनित किया गया है। आत्मा प्रणव जप के सहारे अपने लक्ष्य तक पहुँच पाती है। कबीर के शब्द सुरति योग में भी सुरति के द्वारा शब्द को भेदित करने की बात कही गई है। शब्द ब्रह्म रूप है। सुरति को हम आत्म रूप मानेंगे। आत्मा साधना के सहारे शब्द ब्रह्म में लीन करने की प्रक्रिया को ही शब्द सुरति योग कहा गया है। कठोपनिषद् में शरीरस्थ आत्मा के भी दो रूप माने गए हैं—प्राप्ता आत्मा और प्राप्तव्य आत्मा। उसमें उसका वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है :—

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायांतपौ ब्रह्म विदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेत्यः ॥[2]

अर्थात् ब्रह्म वेत्ता लोग कहते हैं कि शरीर में बुद्धि रूप गुह्वा के भीतर प्रकृष्ट ब्रह्म स्थान में प्रविष्ट हुए अपने कर्म फल को भोगने वाले छाया और घाम के समान दो तत्त्व हैं। ये बात वे ही जानते हैं जिन्होंने तीन बार नचिकेता अग्नि का चयव किया है और पंचाग्नि की उपासना करते हैं। इस श्लोक में शरीरस्थ आत्मा के दो रूप प्राप्ता और प्राप्तव्य ध्वनित किए गए हैं। मुण्डकोपनिषद् में यही बात दो पक्षियों के रूपक से प्रकट की गई है। उसमें कहा गया है कि एक ही वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। उनमें से एक तो फल का आस्वादन करता है और दूसरा फल से उदासीन है।[3] वृक्ष शरीर का

---

१ मुण्डकोपनिषद् २/४

२ कठोपनिषद् १/३/१

३ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥१॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ॥
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२॥
मुण्डकोपनिषद् ३/१–२।

प्रतीक है और दो पक्षी आत्मा के दो स्वरूप के प्रतिरूप हैं। जिस तरह से वृक्ष पर उपभोक्ता और उदासीन एवं उपभोग्य दो पक्षी विद्यमान बतलाए गए हैं उसी तरह से शरीर में भी एक तो उपभोक्ता आत्मा है और दूसरा उपभोग्य आत्मा। उपभोक्ता आत्मा कर्म-अकर्म का कर्त्ता और भोक्ता होता है। उपभोग्य आत्मा शुद्ध, बुद्ध, मुक्त नित्य ब्रह्म रूप है। कठोपनिषद् में जिस अध्यात्मयोग की चरचा है उसमें प्राप्ता आत्मा का लक्ष्य प्राप्तव्य आत्मा को प्राप्त करना ही होता है। कबीर का शब्द सुरति योग इसी अध्यात्मयोग का रूपान्तर कहा जा सकता है। उन्होंने प्राप्ता आत्मा को सुरति के नाम से और प्राप्तव्य आत्मा को निरति के नाम से अभिव्यक्त किया है। सुरति का सीधा साधा अर्थ संसार में पूर्णतया रत आत्मा से लिया गया है। निरति से आत्मा के उस रूप से संकेत है जिसकी संसार में रति नहीं है। सुरति और निरति के इस सम्बन्ध का स्पष्ट संकेत हमें कबीर की निम्नलिखित साखी में मिलता है :—

सुरति समानी निरति में निरति भई निरधार।
सुरति निरति परचा भया तब खूले स्यंभ दुवार॥

अर्थात् सुरति (प्राप्ता आत्मा) साधना करके निरति (प्राप्तव्य आत्मा) में लीन हो जाती है। निरति (प्राप्तव्य आत्मा) शुद्ध, बुद्ध, मुक्त नित्य ब्रह्म रूप होने के कारण निराधार रहती है। इस प्रकार जब सुरति का निरति से तादात्म्य हो जाता है तभी स्यंभु अर्थात् कल्याण और आनन्द के द्वार खुल जाते हैं। यद्यपि आत्मा के दो रूप हैं किन्तु उन दोनों में तात्विक अन्तर नहीं है। तभी तो कबीर ने लिखा है :—

साहब सुरति सरूप है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर ने सुरति का प्रयोग साधक आत्मा के लिये ही किया है। सम्भवतः राधास्वामी मत वालों ने उन्हीं कारणों से सुरति का अर्थ आत्मा किया है। कबीर ने कहीं-कहीं पर सुरति और 'निरति' शब्दों का मनमाने ढंग से भी प्रयोग किया है। कहीं पर तो उन्होंने निरति से नृत्य का अर्थ लिखा है और कभी समाधि का। इसी प्रकार कभी-कभी सुरति शब्द प्रयोग किन्हीं अन्य अर्थों में कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं किन्तु ऐसे स्थल बहुत कम

हैं जहाँ पर सुरति वहिर्मुखी प्राप्ता आत्मा के अतिरिक्त किसी दूसरे अर्थ में प्रयुक्त की गई हो। उपनिषदों में इस वहिर्मुखी आत्मा को अन्तर्मुख करने का संकेत मिलता है। कठोपनिषद् में एक स्थल पर इस प्रकार से लिखा हुआ है :—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।[1]
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥

अर्थात् स्वयंभू परमात्मा ने वहिर्मुखी वृत्तियों को हिंसित कर दिया है। यही कारण है कि जीव बाह्य विषयों को ही देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। अमरत्व की इच्छा रखने वाला जो व्यक्ति वहिर्मुखी वृत्तियों को वश में कर लेता है उसी को प्रत्यगात्मा के दर्शन होते हैं। इस श्लोक में प्राप्ता या उपभोक्ता आत्मा का वर्णन वहिर्मुखी वृत्तियों के अर्थ में भी किया गया है। योगी साधक अपनी इन वहिर्मुखी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने की साधना करता है। इसके लिये वह अधिकतर प्रणव जप का जाप करता है। मुण्डकोपनिषद् के "प्रणवो धनुः शरोहि आत्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते" में प्रणव जाप के सहारे वहिर्मुखी आत्मा को अन्तर्मुखी करके ब्रह्म में लीन करने का संकेत किया गया है। कबीर ने उपनिषदों की इस अन्तर्मुखी साधना की प्रतिष्ठा उलटी चाल के अभिधान से की है। इसका निर्देश हम आगे करेंगे। यहाँ पर एक बात पर विचार कर लेना और आवश्यक है। कबीर के नाम से पाए जाने वाले कुछ ग्रंथों में जिनको कि हम प्रामाणिक नहीं मानते हैं सात सुरतियों की चरचा की गई है। यदि उनकी ऐसी बानियाँ प्रामाणिक सिद्ध की गई तो फिर सात सुरतियों का समाधान किस प्रकार होगा यह विचारणीय है। हमने सुरति का अर्थ भोक्ता या प्राप्ता आत्मा लिया है। इसे हम वहिर्मुखी प्रवृत्ति भी कह सकते हैं। हमारे यहाँ आत्मा का एक पर्यायवाची शब्द प्राण भी माना जाता है। वृहदारण्यकोपनिषद्[2] में प्राण को ब्रह्म रूप कहा गया है। इस प्राण का वर्णन करते हुए यजुर्वेद में इस प्रकार लिखा है :—

"सप्त ऋषयःप्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षति।" यजु० ३४/५५

---

१ कठोपनिषद्—२/१/१
२ कतम एकोदेवः। प्राणइति। स ब्रह्म इति तदित्याचक्षते, बृ० उ०

अर्थात् सात ऋषियों से शरीर की रक्षा होती है। सप्तऋषि वास्तव में सप्त प्राणों के ही प्रतीक हैं। मुंडकोपनिषद् में लिखा है—"सप्त प्राणः प्रभवन्ति तस्मात्सप्ताचिषः समिधः सप्त होमाः।"[1] वृहदारण्यकोपनिषद् में भी एक स्थल पर प्राण नामक पदार्थ के चारों ओर सप्तऋषियों की अवस्थिति बतलाई गई है। मेरी समझ में कबीर की सात सुरतियों वाली कल्पना इन्हीं वैदिक उक्तियों पर आधारित है ऐसा मान लेने पर हमारे सुरति सम्बधी मत पर कोई विशेष व्याघात नहीं पड़ता है।

कबीर के शब्द सुरति योग की कई अवस्थायें दिखलाई पड़ती हैं। उसकी भी प्रवृत्ति जटिलता से सरलता की ओर रही है। शब्द सुरति योग की कुछ प्रारम्भिक उक्तियों में हठयोग का प्रभाव अधिक दिखलाई पड़ता है। किन्तु ऐसे स्थलों पर भी उन्होंने चक्र भेदन तथा धोती, नेति, वस्ती आदि को कोई महत्त्व नहीं दिया है। उन्होंने मन साधना के द्वारा सुरति को त्रिकुटी एवं ब्रह्म रन्ध्र आदि में केन्द्रित करने का उपदेश दिया है। वे कहते हैं :—

द्वादश दल अभि अंतरि म्यन्त, तहाँ प्रभु पाइ सि करिलै च्यन्त।

क० ग्रं० पृ० १९६

धीरे-धीरे साधना और भी सरल होती गई। इंगला पिंगला के साथ वे स्पष्ट रूप से मन साधना का भी उपदेश देने लगे।

मन मंजन करि दसवें द्वारि, गंगा यमुना सन्धि बिचार।

क० ग्रं० पृ० १९८

इसके बाद वह परिस्थिति आ जाती है जब कबीर एक ओर तो आसन और पवन साधने का आदेश करते हैं और दूसरी ओर मन को वश में कर त्रिकुटी में ठहराने का उपदेश।[2]

त्रिकुटी में ध्यान केन्द्रित करने के लिये मन्त्र योग अर्थात् नाम जप और अजपा जाप आवश्यक है। यही कारण है कि कबीर ने नाम सुमिरन और

---

१ वृ० उ० २/२/३

२ 'उल्टे पवन षट चक्र वेधा, सुनि सुरति लै लागी" क० ग्रं० पृ० २७

अजपा जाप को विशेष मत्त्व दिया है। यह अजपा जाप शून्य के बीच में ही जपा जाता है।

अजपा जपत सुनि अभि अन्तरियहु तत् जाने सोई।

क० ग्रं० पृ० १५६

कबीर ने इसी अवस्था में उल्टी चाल की व्यवस्था कर दी है। वहिर्मुखी वृत्तियों को अन्तमु`ख करना ही उल्टी चाल है। कबीर का पूर्ण विश्वास है उल्टी चाल से परब्रह्म की प्राप्ति सरलता से हो जाती है।

"उल्टी चाल मिलै पर ब्रह्म, सो सद्‌गुरू हमारा।"

(क० ग्रं० पृ० १४५)

इस उल्टी चाल को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं :—

"मन रे मन ही उलटि समाना"

(क० ग्रं०)

इसी उल्टी चाल[1] में पवन को उलटकर षट चक्र भी भेदने पड़ते हैं। तभी सुरति शून्य में लीन हो जाती है।

शब्द सुरति योग में कबीर ने आगे चलकर पवन शोधन के महत्त्व को तो कम कर दिया है; किन्तु ज्ञान का महत्त्व बढ़ा दिया है। उन्होंने मन को वैल सुरति को पैडा और ज्ञान को गौनि कहा है।

मन करि वैल सुरति कर पैडा, ज्ञान गोनि भरि डारी।
कहत कबीर सुनहु रे सन्तहु, निबही खेप कुमारी॥

क० ग्रं० पृ० २६६

कबीर का सहजयोग :—यद्यपि कबीर पंथी कबीर के "शब्द सुरति योग" को उनका योग सम्बन्धी अंतिम मत मानते हैं, किन्तु कबीर की योग साधना इससे कहीं आगे बढ़ी हुई है। मेरी समझ में उनका योग सम्बन्धी

---

१ गगन ज्योति तह त्रिकुटी सन्धि, रवि ससि पवना मैलौवधि।
मन थिर होइत कवल, प्रकासै कवला माहि निरंजन बासै॥

क० ग्रं० पृ० १६८

स्वरूप चित्रित करते हुये सब प्रकार से मन साधना को ही महत्त्व दिया है। उनके मतानुसार सच्चा योगी वास्तविक मुद्रा न धारण कर मन की मुद्रा ही धारण करता है। वह रात-दिन इसी मन साधना में संलग्न रहता है। मन को एक क्षण भी इधर-उधर नहीं होने देता। वह सदैव मन में ही आसन आदि का साधन करता है। वह किसी प्रकार के बाह्य जप तप भी नहीं करता। उसके लिए मन निग्रह ही जप, तप और संयम है। यह अन्य योगियों की भाँति खपरा और सींगी भी नहीं धारण करता। उसका वास्तविक यौगिक स्वरूप उसकी मन साधना में ही निहित है। इस प्रकार साधक मनोजय करके काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्य विकारों पर विजय प्राप्त कर लेता है। तभी उसे सफलता प्राप्त होती है।[1]

आगे चलकर यही सहजयोग भक्ति योग का रूप धारण कर लेता है। इसी परिस्थिति में कबीर भक्ति को प्रमुख तत्त्व और योग को गौण तत्त्व कहते हैं।[2]

निष्कर्ष :—इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की योग साधना विभिन्न रूपिणी है। कबीर पहले तो जटिल हठयोगी के रूप में सामने आते हैं। पुनः लययोग का "शब्द सुरति" नामक रूप प्रस्तुत करते हैं। लय योग भी धीरे-धीरे राजयोग और मंत्रयोग में जिन्हें क्रमशः सहज योग और भक्ति योग कह

---

१ सो जोगी जाके मन में मुद्रा
रात दिवस न करइ निद्रा ॥
मन में आसन मन में रहना।
मन का जप तप मन सू कहना ॥
मन में खपरा मन में सींगी।
अनहद नाद बजावै रंगी ॥
पंच परजारि भसम करि भूका।
कहै कबीर सो लहसै लंका ॥ क० ग्रं० पृ० १२८

२ हिरदे कपट हरि सू नहिं साच्यो।
कहा भया जो अनहद नाच्यो ॥ क० ग्रं० पृ० १८२

सकते हैं परिणत हो जाता है। मन्त्र योग मिश्रित राज योग ही जिसे भक्ति विशिष्ट सहज योग भी कह सकते हैं, उनका अंतिम योग सम्बन्धी मत है। उनमें हम भक्ति और योग का सुन्दर समन्वय पाते हैं। योग विशिष्ट भक्ति मार्ग को उन्होंने "षांडे की धार" तथा "सिलहिली गैल" कहा है। यह "सिलहिली गैल" हिन्दू शास्त्रों में वर्णित पिपीलिका मार्ग का नामांतर है।

सिद्धावस्था :—महात्मा कबीर ने "पूरे सो परिचय" प्राप्त किया था। उस परिचय के प्राप्त करते ही वे सिद्ध हो गये। उनकी सारी कामनायें शांत हो गई। सारा कथन और विज्ञापन खतम हो गया।

थिति पाई मन थिर भया सत गुर करी सहाय।
अनित कथा तिन आचरी हिरदे त्रिभुवन राय॥

क० ग्रं० पृ० १४

इसी अवस्था में पहुँचकर साधक को तन की सुधि नहीं रहती है।

"तत् पाया तन बीसराया" क० ग्रं० पृ० १५

यही जीवन मुक्त की अवस्था है। इस अवस्था में साधक की क्या दशा हो जाती है कबीर के ही शब्दों में देखिए :—

मैं मत अविगत रता अकलप आसा जीत॥
राम अमिल माता रहै जीवत मुकुति अतीत॥

क० ग्रं० पृ० १७

कबीर की भक्ति भावना

गुरु की देन :—मध्य-युग की साधारण धर्म-प्राण जनता को सिद्धादि की विविध वीभत्स साधनाओं के दल-दल से तथा नाथों की नीरस यौगिक प्रक्रियाओं के पंकिल गर्त से बाहर निकालकर भाव-भक्ति की अलौकिक एवम् पावन पयस्विनी में अवगाहन कराने का पूर्ण श्रेय भक्त प्रवर कबीर को है। यह भाव-भक्ति उनके अन्तर्जगत् की अन्यतम विभूति थी; उनके गुरु की दिव्य देन थी। इसी को पाकर कबीर-कबीर हुए थे। आज भी उनकी भाव-भक्ति-भरित भारती भारत के हृदय का हार है।

भारत में भक्ति की अलौकिक धारा अनादि काल से बह रही है। मध्ययुग में तो वह मानों उच्छृंखल होकर उमड़ चली थी। सम्भवतः उसको मर्यादित करने के लिये ही अनेक आचार्यों ने विविध दार्शनिकवादों की प्रतिष्ठा की थी। ऐसे आचार्यों में स्वामी रामानुजाचार्य प्रमुख हैं, उन्होंने भारत में भक्ति-लता का बीजारोपण किया था। उसे परिवर्धित करने का श्रेय स्वामी रामानन्द और उनके शिष्य कबीर को है। किसी की यह उक्ति इसी बात का समर्थन कर रही है।

"भक्ति द्राविण ऊपजी लाए रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्त दीप नव खण्ड ॥

भक्ति-मार्ग के आचार्य :—भारत में भक्ति-मार्ग से सम्बन्धित बड़ा विस्तृत साहित्य है। नारद भक्ति-सूत्र में भक्ति-शास्त्र के लगभग १२–१३ आचार्यों के नाम दिए हुए हैं[1], किन्तु खेद है कि अब केवल नारद, शांडिल्य और अंगिरा आदि के ही संक्षिप्त ग्रंथ प्राप्त हैं। इनमें भी नारद की भक्ति-क्षेत्र में अच्छी प्रतिष्ठा है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि स्वामी रामानुज और रामानन्द जी ने इन्हें ही अपना आदर्श माना हो और उनके ही अनुकरण पर उनके शिष्य कबीर ने अपनी भक्ति को नारदी कहा हो।

'भगति नारदी मगन सरीरा, इहि बिधि भव तरि कहै कबीरा' ॥
क० ग्रं० पृ० १८३

नारद-भक्ति-सूत्र तथा नारद-पाञ्चरात्र के प्रकाश में कबीर की भक्ति का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे उनसे बहुत अधिक प्रभावित थे। नारदीय ग्रंथों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत् और श्रीमद्भगवद्गीता में भी भक्ति का अच्छा विवेचन हुआ है। कबीर के समय में इन दोनों ग्रंथों का अच्छा प्रचार था। अतः वे थोड़ा बहुत इनसे भी अवश्य प्रभावित हुए होंगे।

भक्ति की महत्ता :—नारद-भक्ति-सूत्र में "सा तु कर्म ज्ञान योगेभ्यो-

---

1 भक्ति-सूत्र ८३

अधिकतरा,"[1] कहकर भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग इन तीनों से श्रेष्ठ कहा गया है। भागवत में भी कहा है कि विश्व के कल्याण का सुभार भक्ति-मार्ग पर ही निर्भर रहता है।[2] नारद के समान कबीर ने भी भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ कहा है। वे उसे मुक्ति का एक मात्र उपाय मानते हैं :—

"भाव भगति बिसवास, बिन कटै न संसै सूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुक्ति नहीं रे मूल॥"

क० ग्रं० पृ० २४६

और भी—

जब लग भाव भगति नहीं करिहौं, तब लग भव सागर क्यों तरिहौं॥

क० ग्रं० पृ० २४५

योग मार्ग इसी भक्ति मार्ग के ही आश्रित है यदि भक्ति नहीं है तो योग मार्ग वृथा ही है।

हिरदै कपट हरि सूँ नहिं साँचौ, कहा भयो जो अनहद नाच्यौ॥

क० ग्रं० पृ० १८२

कर्म मार्ग बन्धन का कारण है, अतः भक्ति मार्ग उससे भी श्रेष्ठ है।

कर्म करत बद्धे अहंमेव, किल पाथर की करही सेव।
कहु कबीर भगति कर पाया, भोले भाइ मिले रघुराया॥

क० ग्रं० पृ० २८०

इसी प्रकार ज्ञान भी भक्ति के बिना व्यर्थ और निरर्थक है :—

ब्रह्मै कथि कथि अन्त न पाया। राम भगति बैठे घर आया॥

क० ग्रं० पृ० २७५

ज्ञान भी भक्त को ही प्राप्त हो सकता है :—

"कहु कबीर जानैगा सोई। हिरदै राम मुख रामै होई॥"

क० ग्रं० पृ० २७४

---

१ नारद भक्ति-सूत्र—सूत्र २५

२ श्रीमद्भागवत— ७/६/६

भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिये उन्होंने यहाँ तक कह दिया है—

"क्या जप क्या तप क्या संजम क्या व्रत क्या अस्नान।
जब लगि जुक्त न जानिए भाव भक्ति भगवान्॥"

और भी देखिए :—

(१) "झूठा जप तप झूठा ज्ञान राम नाम बिन झूठा ध्यान"

क० ग्रं० पृ० १७४

भक्ति तत्त्व का विवेचन :—भक्ति की अनेक परिभाषाएँ प्रसिद्ध हैं स्वयं नारद भक्ति सूत्र में ही अनेक आचार्यों के मत दिए हुए हैं। कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं :—

(१) "पूजादिएवानुराग इति पाराशर्यः"[१] अर्थात् पूजादि में प्रगाढ़ प्रेम होना ही भक्ति है। यह व्यास जी का मत है।

(२) "कथादिष्वितिगर्गः"[२] अर्थात् गर्ग गुण कीर्तनादि में होने वाले प्रगाढ़ प्रेम को ही भक्ति मानते हैं।

(३) "आत्मरत्यविरोधेनेति शांडिल्यः"[३] अर्थात् शांडिल्य के मतानुसार आत्म में तीव्र रति होना ही भक्ति है। यह लक्षण तो नारद भक्ति सूत्र में दिया है। आजकल शांडिल्य भक्ति सूत्र के नाम से जो ग्रंथ प्राप्त है उसमें भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है :—

"सा परानुरक्तिरीश्वरे"[४] अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति का ही नाम भक्ति है।

(४) स्वामी रामानुजाचार्य ने "स्नेह पूर्वकमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः"[५] अर्थात् स्नेह पूर्वक किए गए भगवत ध्यान को ही भक्ति कहा है।

---

१ नारद भक्ति सूत्र—सूत्र १६
२ नारद भक्ति सूत्र—सूत्र १७
३ नारद भक्ति सूत्र—सूत्र १८
४ शांडिल्य भक्ति सूत्र—1/1/1
५ गीता पर रामानुज का भाष्य ७वाँ अध्याय १ श्लोक

(५) भागवत में निष्काम भाव से स्वभाव की प्रवृत्ति का सत्यमूर्त भगवान् में लय हो जाने को ही भक्ति कहा है।[1]

कबीर की भक्ति में प्रेम तत्त्व :—हम देखते हैं कि इन समस्त परिभाषाओं में प्रेम तत्त्व को ही विशेष महत्त्व दिया गया है। नारद ने "सात्वस्मिन् परम प्रेम रूपा" कहकर उसे स्पष्ट प्रेम-विशिष्ट घोषित किया है। भक्ति क्षेत्र में कबीर पर नारद का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। उन्होंने बार-बार नारदी भक्ति का उपदेश दिया है। नारदी भक्ति का प्रेम तत्त्व कबीर[2] की भक्ति का भी आधारभूत तत्त्व है। नारद के अतिरिक्त कबीर पर सूफियों का भी प्रभाव पड़ा है। उनकी प्रेम भावना सूफियों के इश्क और खुमार के असरात से भी सराबोर है। कबीर ने कई स्थानों पर "प्रेम पियाले" तथा तज्जनित "खुमार"[3] की चर्चा की है। प्रेम को रसायन रूप में कल्पित करने की इच्छा उनमें सूफियों के अनुकरण पर ही जाग्रत हुई होगी।[4] कबीर की भक्ति का यह मधुरतम प्रेम तत्त्व ही प्रियतम के साक्षात्कार का द्वार खोलता है।[5] कबीर ने प्रेम में अनन्यता[6] त्याग और तपस्या को विशेष महत्त्व दिया है। त्याग के सम्बन्ध में तो वे यहाँ तक कहते हैं—यदि तेरे हृदय में प्रेम की साध[7] है तो अपना सिर काट कर छिपा ले। प्रेम में त्याग और तपस्या के भाव को ध्वनित करने के लिये उन्होंने सूरा और सती के रूपकों की योजना की है। जिस प्रकार सती और सूरा चाहे टुकड़े-टुकड़े हो जायँ किन्तु अपनी तपस्या से मुख नहीं मोड़ते।[8] उसी प्रकार भक्त को भी साधना से मुख नहीं मोड़ना चाहिए। इसी प्रेम भक्ति के सम्बन्ध में नारद

---

१ श्रीमद्भागवत् स्कन्द ३ अ० २५ श्लोक ३२-३३

२ कहु कबीर जन भये खलासे प्रेम भगति जिह जानी। क० ग्रं० पृ० ३२१

३ हरिरस पीया जानिये जे कबहुँ न जाय खुमार। क० ग्रं० पृ० ११

४ राम रसायन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल। क० ग्रं० पृ० १

५ ममिता मेरा क्या करै प्रेम उघाड़ी पौलि,
दरसन भया दयाल का सूल भई सुख सौड़ि। क० ग्रं० पृ० १६

६ जो जावौ तो केवल राम आन देव सूं नाहिं काम। क० ग्रं० पृ० १६

७ कबीर जो तुइ साध पिरम की सीस काटि कर गोइ। क० ग्रं० पृ० १६

८ क० ग्रं० पृ० ६१ साखी ९, १०

भक्ति सूत्र में लिखा है "उसे (भक्ति को) जान कर वह आनन्द से उन्मत्त हो जाता है स्तब्ध अर्थात् निष्क्रिय हो जाता है और अपनी आत्मा में मगन हो जाता है"[१]। इस भक्ति को प्राप्त करके फिर उस जिज्ञासु को किसी वस्तु की इच्छा ही नहीं होती। न उसे शोक होता है, न द्वेष होता है और न वह किसी सांसारिक वस्तु में ही रमता है। उसे किसी वस्तु में उत्साह नहीं होता। कबीर ने भक्ति की इस स्थिति का वर्णन कई स्थनों पर किया है।

देखिए निम्नलिखित भजन में—

राम भजै सो जानिए, जाके आतुर नाहीं।
सत सन्तोष लीयैं रहै, धीरज मन माँही॥
जन कौ काम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णां न जरावै।
प्रफुलित आनन्द में गोविन्द गुण गावै॥
जन कौ पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषे।
काल कल्पना मेटि कर चरनू चित राखै॥
जन सम द्रिष्ट्री सीतल सदा, दुविधा नहीं आनैं।
कहै कबीर ता दास सूँ मेरा मन मांनैं॥

क० ग्रं० पृ० २०६

अब प्रश्न यह है कि इस आध्यात्मिक प्रेम की जागृति किस प्रकार हो? नारद भक्ति सूत्र में कहा है।[२] "विषय त्याग और कुसंग त्याग से भक्ति आती है। अखण्ड भजन से भी भक्ति आती है। लोक समाज में भगवद् गुण कीर्तन से भी भक्ति आती है, किन्तु प्रधान रूप से महात्माओं की कृपा तथा ईश्वर कृपा के लेशमात्र से यह प्राप्त हो जाती है।" महात्मा कबीर को भक्ति के इन सभी साधनों में विश्वास है। इनके कुछ उदाहरण दे देना अनुपयुक्त न होगा :—

---

१ नारद भक्ति सूत्र ६
२ नारद भक्ति सूत्र ३५, ३६, ३७

(१) विषय त्याग :—

"पुत्र कलत्र लच्छमी माया इहै तजौ जिय जानी रे।
कहत कबीर सनहु रे सन्तहु मिलिहै सारंग पानी रे ॥"

क० ग्रं० पृ० ३४

(२) कुसंग-त्याग :—

"मारे मरुँ कुसंग की कैला काठै बेरि।
वो हाले वो चीरिए, साषित संग न बेरि ॥"

क० ग्रं० पृ० ४७

(३) अखण्ड भजन :—

"काम परे हरि सिमिरियै ऐसा सिमरौ नित्त।
अमरापुर बासा करहु हरि गया बहोरे वित्त ॥"

क० ग्रं० पृ० २५०

(४) गुण कीर्तनादि :—

"रमइया गुण गाइए, जाते पाइए परम निधानु।"

क० ग्रं० पृ० ३२६

(५) ईश्वर और महात्माओं की कृपा :—

"कबीर सेवा को दुइ भले इक सन्त इक राम।
राम जो दाता मुकति को सन्त जपावे नाम ॥"

क० ग्रं० परिशिष्ट

उन्होंने भक्ति प्राप्ति में इन सबको महत्त्व दिया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने भगवद् भक्ति प्राप्ति में पूर्व जन्म के संस्कारों को भी सहायक माना है।

"पहली बुरा कमाई करि बाँधी विष की पोट।
कौटि क्रम पलै पलक में जब आया हरि ओट ॥"

क० ग्रं० पृ० ६

गुरु को तो वे भक्ति का दाता ही मानते हैं—

"ज्ञान भगति गुरु दोनी" क० ग्रं० पृ० २६४

भक्ति के साधनों के अन्तर्गत इन तत्त्वों पर विस्तार से विचार किया जाएगा।

विरह तत्त्व :—नारद[१] ने भक्ति में विरह तत्त्व को भी विशेष महत्त्व दिया है। सूफियों की साधना का तो वह प्राण ही है कबीर पर नारद तथा सूफी मत, दोनों का ही प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि उनमें विरह व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। सूफियों के समान कबीर भी विरह को अपने गुरु की देन मानते हैं।[२] साधक को साध्य से मिलाने वाला प्रमुख साधन भी यही है।[३] कबीर ने इसकी कल्पना बाण रूप में की है। विरह रूपी बाण के लगते ही साधक प्रियतम से मिलने के लिये तड़प उठता है।[४] इस विरह बाण का भिदना एक ऐसे भयंकर सर्प के समान है जिसकी व्यथा का निवारण किसी भी मन्त्र से सम्भव नहीं हो सकता।[५] राम के विरह से विधुर ऐसा व्यक्ति या तो जीवित ही नहीं रहता, यदि जीवित रह भी जाता है तो पागल हो जाता है। भागवत में तो इनके बड़े संश्लिष्ट वर्णन मिलते हैं।[६] कबीर ने विरह-विधुर

---

१ भक्ति सूत्र १९

२ "गुरु दाधा चेला जल्या विरहा लागी आगि।
तिणका बपुड़ा ऊबरया गलि पूरै के लागि॥"
क० ग्रं० पृ० १२

३ मिलाने वाला साधन—
"कबीर हंसणा दूरि करि रोवण सो चित्त।
बिन रोये क्यों पाइये प्रेम पियारा मित्त॥"
क० ग्रं० पृ० २

४ विरह बाण—
"सतगुरु मारया बाण भरि धरि करि सूधी मूठि।
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सू फूटि॥"
क० ग्रं० पृ० ९

५ विरह भुवंगम तन बसै मन्त्र न लागै कोय।
राम वियोगी न जियै जियै तौ बौरा होय॥

६ श्रीमद्भागवत ११/२/४०, ११/३/३२

उन्मत्तों के बड़े सुन्दर चित्र खींचे हैं। एक स्थल पर वे कहते हैं कि जिसके हृदय में सद्गुरु का यह विरह रूपी हथियार भिद जाता है उसकी दशा इस प्रकार विचित्र हो जाती है—

हंसे न बोले उन्मनी चंचल मेल्ह्या मारि ।
कहै कबीर भीतर भिद्या सद्गुरु का हथियार ॥

क० ग्रं० पृ० २

इस विरह वाण के लगने पर वाचाल भी मूक हो जाता है, कान वाला भी बहरा हो जाता है, पैर वाला भी लँगड़ा हो जाता है।[1] यही तन्मयता की अवस्था भक्ति का आवश्यक अंग है।

उपास्य-स्वरूप :—उपासना हृदय की सात्विक समर्पण-बुद्धि की अभिव्यक्ति है। यद्यपि यह अभिव्यक्ति उपास्य के व्यक्त और अव्यक्त दोनों स्वरूपों के प्रति हो सकती है, किन्तु व्यक्त के प्रति वह अधिक पूर्ण और सफल होती है। यही कारण है कि शंकराचार्य[2] ऐसे अद्वैतवादी एवं निर्गुणवादी को भी भक्ति की महिमा कहनी पड़ी है। गीता में भी कहा है "अव्यक्त में चित्त की एकाग्रता करने वाले को बहुत कष्ट होते हैं क्योंकि इस अव्यक्त की गति देहेन्द्रियधारी मनुष्य के लिये कठिन है"। कबीर राम के अनन्य भक्त थे—

"जो जाचौं तो केवल राम आन देव सो नाहि काम"

क० ग्रं० पृ० २७८

यद्यपि कबीर की भक्ति अधिकतर अव्यक्त और निर्गुण के प्रति ही रही है, किन्तु व्यक्त भावना के स्वाभाविक आरोप को भी वे नहीं रोक सके हैं। तुलसी की भाँति उन्हें कहना ही पड़ा—

१—"भजि नारदादि सुकादि वंदित चरन पंकज भामिनी"

क० ग्रं० पृ० २१८

---

१ "गूंगा हुआ बावला बहरा हुआ कान ।
पाऊ ते पंगुल भया सतगुरु मारया बान ॥" क० ग्रं० पृ० २

२ देखिए—शि० मा० पृ० स्तोत्र—१/४

२—"जो सुख प्रभु गोविन्द की सेवा सों सुख राज न लहिये"

क० ग्रं० पृ० २१८

३—"ओहि पुरुष देवाधि देख भगति हेत नरसिंह भेष"

क० ग्रं० पृ० ३०७

भगवान् का पुरुषावतार तो कबीर को पूर्ण रूप से मान्य था उन्होंने अनेक स्थलों पर विराट् ब्रह्म का वर्णन किया है।

विराट् ब्रह्म के अतिरिक्त कबीर की भक्ति के उपास्य "सुनि मंडल वासी पुरुष" भी हैं वह[1] ज्योति स्वरूपी हैं। दसम द्वार के निवासी हैं। उस स्थान पर पहुँचना बड़ा कठिन है—

"भगति दुवारा सांकरा साईं दसवे माइ" क० ग्रं० पृ० ३०
"मन्दिर माही झबूकती दीया कैसी जोति।" क० ग्रं० पृ० ७३
"सरीर सरोवर भीत रे आछै कमल अनूप॥
परम ज्योति पुरुषोत्तमे जाके रेख न रूप॥" क० ग्रं० पृ० ३२७

यहाँ तक तो व्यक्त रूप की बात हुई। कबीर के उपास्य निर्गुण ब्रह्म भी हैं। अब प्रश्न यह है कि निर्गुण की उपासना किस प्रकार सम्भव होगी। कबीर ने इसका सरल मार्ग निर्दिष्ट किया है। उन्होंने अपनी आत्मा से भक्ति करने का उपदेश दिया है।

"निराकार निज रूप है प्रेम प्रीत से सेव" क० ग्रं० पृ०

यदि यह भी न हो सके तो हृदय में उसे नमस्कार करना चाहिए[2], या प्रसन्न होकर उसका कीर्तन करना चाहिए[3]। निराकार की उपासना की यही विधियाँ हैं।

वर्णाश्रम धर्म की अमान्यता :—भक्ति क्षेत्र में वर्णाश्रम धर्म की

---

१ देखिए क० ग्रं० पृ० २७८-२७९

२ "पूजा कर न नमाज़ गुजार एक निराकार हृदय नमस्कार"

क० ग्रं० पृ० २०२

३ "हरि जैसा तैसा रही हरखि हरखि गुन गाउ" क० ग्रं० पृ० २२९

व्यवस्था पूर्ण उपेक्षणीय ठहराई गई है। स्वामी रामानुजाचार्य पहले आचार्य थे[1], जिन्होंने शूद्रों के लिये भक्ति का द्वार खोलने का प्रयत्न किया था। उन्होंने उसके लिये प्रपत्ति मार्ग का प्रवर्तन किया और सतानी जाति के शूद्रों को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। उनकी शिष्य परम्परा में होने वाले स्वामी रामानन्द ने तो भक्ति के द्वार पर लगी हुई अर्गला को सदैव के लिये समाप्त कर दिया। उनके शिष्यों में नाई, जाट, जुलाहा, आदि सभी जाति के लोग थे। भागवत् पुराण इन आचार्यों से एक चरण आगे बढ़ी हुई है। उसने भक्ति का मार्ग शूद्रों के लिये ही नहीं चाण्डालों तक के लिये खोल दिया[2]। कबीर भी अपने गुरु रामानन्द की भाँति भक्ति क्षेत्र में वर्णाश्रम धर्म को उपेक्षणीय मानते हैं।[3] उन्होंने स्पष्ट कहा है कि कबीर का उपास्य ब्रह्म जाति और वर्ण की चिन्ता नहीं करता।

कबीर की भक्ति और उसकी विशेषताएँ

कबीर की भक्ति का स्वरूप और प्रकार :—अब थोड़ा सा कबीर की भक्ति के प्रकार और स्वरूप पर विचार कर लिया जाये। श्रीमद्भागवत्[4] में तीन प्रकार की भक्ति कही गई है। तामसी, राजसी और सात्विकी। भक्ति के ये तीन प्रकार गौणी भक्ति के कहे जा सकते हैं। परन्तु परा भक्ति अहेतुकी और अव्यवहित होती है, इसी को निगु‍ण[5] भक्ति कहा गया है। इस प्रकार की परा भक्ति में निमग्न भक्त भगवत्-सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता है। वह सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारुप्य सायुज्य मुक्तियों को देने पर ग्रहण नहीं करता।[6] वह कैवल्य और निर्वाण की भी इच्छा नहीं करता।[7] श्रीमद्भगवत्-

---

१ इन्फ्लुएंस आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर—ताराचन्द पृ० १०५

२ भागवत—दत्ता का अनुवाद भाग—७ वीं पुस्तक दसवाँ अध्याय

३ 'कबीर को स्वामी अनद विनोदी जाति न काहू की मानी"

क० ग्रं० पृ० ,१६

४ देखिए श्रीमद्भागवत् (३/२६/८) (३/२६/६) (३/२६/१०)

५ देखिए श्रीमद्भागवत् (३/२६/११)

६ देखिए श्रीमद्भागवत् (३/२६/१३)

७ देखिए श्रीमद्भागवत् (११/२०/३४)

गीता में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन है।—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। प्रथम तीन की भक्ति को तो गौणी ही मानना चाहिए, किन्तु ज्ञानी की भक्ति अहेतुकी ही होती है।[१] ऐसा भक्त भगवान् को सर्वाधिक प्रिय होता है।[२] महर्षि शांडिल्य ने भक्ति के मुख्या और गौणी नाम के भेद किये हैं।[३] भागवत् की निर्गुण भक्ति ही शांडिल्य की मुख्या भक्ति है। नारद ने भी गौणी और मुख्य नाम के ही दो भेद किये हैं।[४] दैवी मीमांसा दर्शन के रसपाद में महर्षि अंगिरा ने भक्ति की वैधी और रागात्मिक नाम से दो प्रकार का कहा है। वैधी के सम्बन्ध में उसमें लिखा है "विधि साध्यमाना वैधी सोपान रूपा"[५] अर्थात् विविध विधानों से की जाने वाली भक्ति को वैधी कहते हैं। रागात्मिका भक्ति का वर्णन उसमें इस प्रकार किया गया है :—

"रसानुभाविकानन्द शान्तिप्रदा रागात्मिका"[६] अर्थात् इस का अनुभव कराने वाली आनन्द और शान्ति देने वाली भक्ति को रागात्मिका कहते हैं। गीता के १२/१३/१५ में इसी के समान निर्गुण भक्ति का वर्णन मिलता है। कबीर ने अपनी भक्ति को निर्गुण[७] भक्ति कहा है। उनमें निर्गुण भक्ति की सभी विशेषताएँ हैं भी।

कबीर को निर्गुण भक्ति और उसकी विशेषताएँ :—इस निर्गुण भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता निष्कामता है। कामना से भक्ति कलुषित हो जाती है। कबीर ने तो यहाँ तक कहा है कि शरीर जब तक सकाम रहता है तब तक दास्याभक्ति निष्फल रहती है।[८] निष्काम निर्गुण भक्ति से जीवन-

---

१ शांडिल्य सूत्र—७२ तथा ५४ नारद भक्ति सूत्र

२ गीता—७/१७

३ श्रीमद्भागवत्—५५-६६

४ नारद भक्ति सूत्र—५५-६६

५ दैवी मीमांसा दर्शन रसपाद—सूत्र ११

६ दैवी मीमांसा दर्शन रसपाद—सूत्र १२

७ क० ग्रं० पृ०

८ "जब तक भगति सकामता तब तक निष्फल सेव"

क० ग्रं० पृ० २८१

काल में जीवन-मुक्ति[1] और शरीर त्यागने पर मुक्ति मिलती है।[2] इस भक्ति के उदय होते ही साधक पर अद्वितीय शान्ति और शीतलता की वर्षा होने लगती है। भागवत की निर्गुण भक्ति के समान कबीर की भक्ति भी त्रिगुणातीत है। त्रिगुण का प्रपंच तो सब माया[3] ही है। इन त्रिगुणों से ऊपर उठने पर चौथे पद में[4] भगवान् की प्राप्ति होती है। यही निर्गुण भक्ति की अवस्था है। इसी अवस्था में पहुँचकर भक्त अभिनव जीवन प्राप्त करता है। तभी कबीर ने कहा है—

"कहि कबीर हमारा गोविन्द, चौथे पद महि जन की जिन्द।"[5] इस पंक्ति में प्रयुक्त 'जिन्द' शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद है। पं० चन्द्रवली पाण्डेय ने[6] अनेक तर्कों के साथ इसे 'जिन्दीक' का वाचक सिद्ध किया है। हम उनके इस मत से सहमत नहीं हैं। यह शब्द कबीर को नाथ पंथियों से प्राप्त हुआ था। गोरखनाथ ने इसका कई बार प्रयोग किया है। उनमें यह शब्द जीवन का पर्यायवाची प्रतीत होता है। डा० बड़थ्वाल ने उसका यही अर्थ किया भी है।[7] गोरख के अनुकरण पर हम उसका अर्थ जीवन करना ही अधिक स्वाभाविक समझते हैं। उपर्युक्त पंक्ति में कबीर ने यही कहा है कि त्रिगुणातीत अवस्था में

---

१ "कहत कबीर जो हरि ध्यावे जीवन बंधन तोरे"

क० ग्रं० पृ० ३१८

२ कहत कबीर निरंजन ध्यावौ तित घर जाउ बहुरि न आवौ"

क० ग्रं० पृ० ३०६

३ "रज गुण तम गुण सत गुण कहिए, यह सब तेरी माया"

क० ग्रं० पृ० २७२

४ "चौथे पद को जो नर चीन्है तिनहिं परम पद पाया" —

क० ग्रं० पृ० २७२

५ क० ग्रं० पृ० ३१४

६ "जिन्द कबीर की संक्षिप्त चर्चा"—विचार विमर्श-साहित्य सम्मेलन प्रयाग पृ० ६

७ स्वामी काची, बाई काचा जिन्द—गो० वा० स० पृ० २४

पहुँचकर भक्त जीवन लाभ करता है। ऐसे स्थलों पर 'जिन्दीक' आदि दूरारूढ़ अर्थ लगाना ठीक नहीं है। इस त्रिगुणातीत अवस्था में पहुँचा हुआ भक्त द्वन्द्वातीत और समदर्शी हो जाता है।

"अस्तुति निन्दा दोउ विवरजित तजहु मान अभिमाना।
लोहा कंचन सम जानहि ते मूरति भगवाना॥"

क० ग्रं० पृ० २७२

धीरे-धीरे उसके कृत कर्म नष्ट हो जाते हैं और उसका उद्धार हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि समदर्शिता की यह अवस्था ज्ञानमूलक होते हुए भी भक्ति का आवश्यक उपादान है।

ऐसे ही निर्गुण भक्त के सम्बन्ध में नारद भक्ति सूत्र में कहा है[1] वह वेदों की भी उपेक्षा कर केवल अखण्ड भगवत् प्रेम का ही लाभ करता है। वह स्वयं तर जाता है और लोकों को भी तार देता है (सूत्र ४९, ५०)। तो फिर यदि निर्गुण भक्त शिरोमणि कबीर ने वेदादि का विरोध किया तो कोई विशेष अनुपयुक्त नहीं है। इतना अवश्य है कि कबीर क्रान्तिदर्शी महात्मा थे। उन्होंने जिस बात का विरोध किया है :अति रूप में किया है। किन्तु ऐसे स्थल कर्म हैं। वास्तव में उन्होंने वेद पुराणों की उपेक्षा इसलिये की है कि वे पुस्तक ज्ञान से सहजज्ञान को अधिक महत्त्व देते थे[2], इतने पर भी वे पुस्तक ज्ञान को इतना हेय नहीं समझते हैं जितना उसके अन्धानुसरण को।[3]

कबीर ने भक्ति में सदाचरण को विशेष महत्त्व दिया है। बारहवें सूत्र में इसे विरोध रूप कह कर यही बात ध्वनित की गई है। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी कहा है—स्त्री, धन और नास्तिकों के विषय की बातें कभी नहीं सुननी

---

१ नारद भक्ति सूत्र—४९

२ क्या पढ़िये क्या गुनिये, क्या वेद पुराण सुनिये।
पढ़े सुने क्या होई, जो सहजन मिल्यो सोई॥ क० ग्रं० पृ० २८०

३ "वेद कतेब कहहु मत झूठा झूठा सोई जो न आप विचारे।"

क० ग्रं० परिशिष्ट

चाहिये[1] तथा अभिमान और दम्भ आदि दुर्गुणों को भी त्याग देना चाहिये।[2] उसमें एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि दुष्ट सङ्गति से सदैव बचना चाहिये[3] क्योंकि दुष्ट सङ्गति के कारण क्रोध, मोह, स्मृति और भ्रम आदि होते हैं।[4] कबीर ने इन सभी दोषों से बचने का उपदेश दिया है।[5] स्त्री के सम्बन्ध में कई उदाहरण दे चुके हैं। स्त्री निन्दा तो उन्होंने जी खोलकर की है। उनकी दृढ़ धारणा है—

"नारि नसावै तीन सुख जा नर पासै होय।
भगति मुकति निज ग्यान में, पैसि न सकई कोय॥"

क० ग्रं० पृ० ४०

धन भक्त का महान् शत्रु है।[6] यह बात कबीर ने अच्छी प्रकार समझ ली थी। यही कारण है कि उन्होंने कामिनी के समान कंचन की भी घोर निन्दा की है—

"एक कनक और कामिनी दुरगम घाटी दोय।"

क० ग्रं० पृ० ५५

इसी प्रकार उन्होंने कुल, कुसङ्ग, लोभ, मोह, मान, कपट, आशा और

---

१ नारद भक्ति सूत्र ६३
२ नारद भक्ति सूत्र ६४
३ नारद भक्ति सूत्र ४३
४ नारद भक्ति सूत्र ४४
५ स्त्रीनिन्दा :—देखिए कामी नर को अंग। क० ग्रं० पृ० ३६
६ धन विरोध—देखिए माया को अंग। क० ग्रं० पृ० ३२-३३
नास्तिक विरोध :—देखिए क० ग्रं० पृ० २४० पर प्रथम दो पंक्तियों में नास्तिक पद्धतियों का ही विरोध किया गया है।
अभिमान और दम्भ त्याग :—देखिए क० ग्रं० पृ० २६०/६६ और भी देखिए क० ग्रं० पृ० २७१—पद ४० परिशिष्ट।
दुष्ट संगति का विरोध :—देखिए क० ग्रं० पृ० ४७ कुसंगति को अंग।

तृष्णा आदि को भक्ति में बाधक माना है। विस्तार-भय से यहाँ पर सबके उदाहरण नहीं दिये जा सकते। भक्ति प्राप्ति के लिए सबसे आवश्यक बात है मन मारना क्योंकि सारे विकारों की जड़ मन ही है तभी तो कबीर कहते हैं—

"मन मारे बिन भगति न होई।" क० ग्रं० पृ० ३१५

इतना सब होते हुए भी वे भक्ति में किसी प्रकार के व्यर्थ शारीरिक कष्ट को सहना उचित नहीं समझते थे।

"भूखे भगति न कीजै, यह माला अपनी लीजै।"

क० ग्रं० पृ० ३१४

विशेषतायें :—कबीर की भाव-भक्ति की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। उसकी सबसे बड़ी विशेषता प्रपत्तिपरता है। यों तो प्रपत्ति भाव का वर्णन गीता तथा उपनिषदों तक में मिलता है किन्तु उसके प्रमुख प्रचारक स्वामी रामानुजाचार्य थे। प्रपत्ति का रूढ़ अर्थ है आत्म निवेदन। भक्ति क्षेत्र में प्रपत्ति शब्द शरणागति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भक्त का सब धर्म और साधनों को छोड़कर भगवान् की शरण में जाना ही प्रपत्ति है। इस प्रपत्ति भाव के वायु पुराण में ६ अंग माने हैं :—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ॥
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा ॥
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥

रामानुज की शिष्य परम्परा में होने के कारण कबीर ने प्रपत्ति मार्ग को पूर्णतया अपनाया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर भगवान् की शरण में जाने का उपदेश दिया है। वे कहते हैं :—

"जनकबीर तेरी सरन आयो राखि लेहु भगवान्।"

क० ग्रं० पृ० १६०

तथा :—

"कहत कबीर सुनहु रे प्रानी, छाड़हु मन के भरमा।
केवल नाम जपहु रे प्रानी, परहु एक की सरना॥"

क० ग्रं० पृ० २६७

और भी देखिए :—

"तेरी गति तू ही जाने कबीर तो तेरी सरना ।"

क० ग्रं० पृ० १६२

यह प्रपत्ति की भावना ही कबीर की भक्ति भावना का प्राण है। इस प्रपत्ति में जात पाँत की बाधकता का कोई प्रश्न ही नहीं है। कबीर ने स्वयं कहा है :—

"कबीर का स्वामी अनद विनोदी जाति न कोई की मानी"

कबीर में प्रपत्ति के सभी अंगों का विकास पाया जाता है। पहली बात है आनुकूल्यस्य संकल्पः—अर्थात् वे बातें करना जो भगवान् के अनुकूल हों उन्हें अच्छी लगें। कबीर की सारी वाणी, समस्त उपदेश इसी तत्त्व को लेकर खड़े हुए हैं।

वह भक्त को सद्गुणों की शिक्षा देते हैं उसे सदाचरण सिखलाते हैं। सेव्य सेवक भाव में दृढ़ होने का उपदेश देते हैं। इन सबसे अधिक जोर उन्होंने हृदय की निष्कपटता पर दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा है :—

"हरि न मिले बिन हिरदे सूध"   क० ग्रं० पृ० २१४

प्रपत्ति का दूसरा अंग है 'प्रतिकूल्यस्य वर्जनम्' इसके अनुसार प्रपन्न मनुष्य को कोई ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए जिनसे भगवान् अप्रसन्न हों। इसके लिये उसे असद् कर्मों से दूर रहना चाहिए। इसी भाव से प्रेरित होकर कबीर ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, कपट, आशा, तृष्णा आदि की निन्दा की है। भगवान् को असन्त सबसे अधिक अप्रिय हैं :—

"राम मणि राम मणि राम चिन्तामणि।
भाग बड़े पायो छाड़े जिन॥
असंत संगति जिन जाइ रे भुलाइ।
साधु संगति मिली हरि गुण गाई॥"

क० ग्रं० पृ० १२७

तीसरा अंग है "रक्षिष्यतीति विश्वासः" अर्थात् भगवान् रक्षा करेंगे य

विश्वास करना। इसके बिना प्रपत्ति हो ही नहीं सकती। यही तत्त्व है जो प्रपन्न साधक में पूर्ण आस्तिकता का प्रवर्तन करता है। कबीर की बानियों में सर्वत्र इस अंग के उदाहरण मिलते हैं :—

"अब मोहि राम भरोसो तेरा, और कौन का करौं निहोरा"

क० ग्रं० पृ० १२४

चौथा अंग है अकेले में भगवान् के गुणों का वर्णन करना, एकान्त रूप से भगवान् का ध्यान करना और उनकी महिमा का वर्णन करना आदि हैं। कबीर में इसके भी उदाहरण मिलते हैं :—

"निरमल निरमल राम गुण गावै, सो भगता मेरे मन भावै।"

क० ग्रं० पृ० १२७

"मन रे राम सुमरि, राम सुमरि, राम सुमरि भाई।"

क० ग्रं० पृ० १६६

पाँचवाँ अंग है आत्म-निक्षेप, उसका अर्थ है अपने आप को पूर्णतया भगवान् के अधीन कर देना। कबीर ने इस अंग का वर्णन देखिए सती के रूपक से कैसी सुन्दरता से किया है :—

"जो पै पतिव्रता ह्वै नारी, कैसैं हीं रहौ सो पियहि पियारी।
तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कबीरा॥"

क० ग्रं० पृ० १३३

छठा अंग कार्पण्य है इसका अर्थ है। दीनता। अपनी दीनता दिखला कर ही भक्त भगवान् को शरण में जाता है। इसके अन्तर्गत ही आत्म निवेदन, भक्ति को अकिंचनता एवं क्षुद्रता और भगवान् की महानता आदि के वर्णन आते हैं। अन्य भक्तों को भाँति इस अंग के कबीर में भी अच्छे उदाहरण मिलते हैं। भक्त की अनन्यता और नम्रता का एक उदाहरण देखिए :—

"सुपनेहु बरराई के, जिह मुख निकसे राम।
ताके पग की पावरी मेरे तन को चाम॥"

क० ग्रं० पृ० १२८

और भी देखिए :—

"जिहि घट राम रहे भर पूरि, ताकी मैं चरनन की धूरि।"

क० ग्रं० पृ० २६

एक स्थल पर कबीर ने भक्त की भगवान् के प्रति कैसी सुन्दर आत्म समर्पण की भावना व्यक्त की है :—

"मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं।
तन मन धन मेरा रामजी के ताईं॥"

क० ग्रं० पृ० १२४

आलम्बन की महत्ता और भक्त की हीनता का भी एक उदाहरण देखिए :—

"कहै कबीर सुन केसवा तूं सकल बियापी।
तुम समानि दाता नहीं, हम से नहीं पापी॥"

क० ग्रं० पृ० १४८

निम्नलिखित पंक्तियों में कैसा आत्म निवेदन है :—

"माधौ मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहि साधी॥
कारनि कवन आइ जग जनम्यां, जनमि कवन तनु पाया॥"

क० ग्रं० पृ० १५२

भक्ति में विनय का बहुत ऊँचा स्थान है। तुलसीदास की विनय पत्रिका का इसीलिये इतना बड़ा महत्त्व है। कबीर की वाणी में विनय की कमी नहीं है।

"माधौ कब करिहौ दाया, काम क्रोध अहंकार व्यापै नां छूटै माया।"

क० ग्रं० पृ० १६२

कबीर की भक्ति कृपासाध्य अधिक है क्रियासाध्य कम। कबीर सदैव ही उसे भगवान् की कृपा का ही परिणाम समझते हैं। इसलिये उन्होंने प्रपत्ति को साधना में इतना ऊँचा स्थान दिया है। कबीर की रचनाओं में स्थान-स्थान पर भक्ति की कृपासाध्यता ही ध्वनित की गई है।

"कहि कबीर उबरे द्वै तीनि जापरि गोविंद-कृपा कीन्ह।"

क० ग्रं० पृ० २१६

कबीर की भक्ति की एक दूसरी सबसे बड़ी विशेषता उसकी योग विशिष्टिता है। बहुत से स्थलों पर कबीर ने भक्ति और योग का मिश्रण कर दिया है :—

"प्रेम भगति हिंडोलनां सब सन्तनि कौ विश्राम।
चन्द सूर दोइ खम्भवा, बंक नालि की डोरि।
झूले पंच पियारियाँ, तहाँ झूले जीय मोरि। इत्यादि"

क० ग्रं० पृ० १४

भक्ति का हठयोग से मिश्रण हो जाने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि उन्होंने योग के "सुनि मंडल वासी" पुरुष को अपना उपास्य माना है। एक बात ध्यान देने की है। वह यह कि हठयोग और प्रेम योग का मिश्रण साधना की मध्यावस्था में दीख पड़ता है। साधना की अन्तिम अवस्था में वे पूर्ण रूप से सहज या प्रेम योगी ही रह जाते हैं। उनकी इस काल की युक्तियों में भक्ति और हठयोग का मिश्रण नहीं मिलता। हठयोग की साधना बड़ी कठिन होती है। यही कारण है उन्होंने सर्वत्र अपनी भक्ति को "कठिन दुहेली" "खांडे की धार" आदि कहा है। हठयोग मिश्रित भक्ति को ध्यान में रखकर वे कहते हैं :—

'भगति दुवारा संकड़ा, राई दसवें भाई।' क० ग्रं० पृ० २०

अब थोड़ा सा भक्ति के भेदों पर विचार कर लिया जाय। भागवत में उसके नौ प्रकार कहे गए हैं।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्॥"[1]

नारद भक्ति सूत्र में उसके ग्यारह भेद किये हैं वे इस प्रकार हैं :—

"गुण माहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति,

---

१ श्रीमद्भागवत ७/५/२२

स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति,
कान्तासक्ति, तन्मयतासक्ति, परम विरहासक्ति रूपा
एकधाप्येकादशधा भवति ।"[1]

भक्ति के दोनों भेदों को देखने से पता चलता है कि भागवत में वर्णित भेदों में वैधी भक्ति का भी समावेश है। किन्तु नारद भक्ति सूत्र में वर्णित जितने भेद हैं वे सब भाव भक्ति के ही हैं। कबीर में भागवत् के श्रवण, कीर्तन, स्मरण, बन्दन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन आदि नहीं मिलते। इनके लिये उन्होंने भाव-मूलक अर्चन विधि का निर्देश किया है। नारद-भक्ति सूत्र में जितनी आसक्तियों का सम्बन्ध है, कबीर में वे सब पाई जाती हैं। यहाँ पर हम क्रमशः उदाहरण देते हैं :—

(१) गुणमाहात्म्यासक्ति :—

"निरमल निरमल राम गुण गावै सो भगता मेरे मन भावै।"

क० ग्रं० पृ० १२७

(२) रूपासक्ति :—

"कंद्रप कोटि जाके लावन धरै, घट घट भीतरि मनसा हरैं।"

क० ग्रं० पृ० २०३

(३) पूजासक्ति :—

"जो पूजा हरि नाही भावै, सो पूजन हार चढ़ावै।
जेहि पूजा हरि मन भावै सो पूजन हार न जानै।"

क० ग्रं० पृ०

(४) स्मरणासक्ति :—

"भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरणसार ॥"

क० ग्रं० पृ० ५

---

१ नारद भक्ति सूत्र—सूत्र ८२

(५) दास्यासक्ति :—

"जो सुख प्रभु गोविन्द की सेवा, सो सुख राज न लहियै।"

क० ग्रं० पृ० २६५

(६) सख्यासक्ति :—

इसके उदाहरण कबीर में बहुत कम हैं।

(७) कान्तासक्ति :—

"हरि मेरा पीव मैं राम की बहुरिया।"

क० ग्रं० पृ० ५

(८) वात्सल्यासक्ति :—

"हरि जननी मैं बालक तोरा" तथा "बाप राम सुनि विनती मोरी।"

(९) तन्मयतासक्ति :—

"कहै कबीर हरि दरस दिखावौ, हमहि बुलावौ कै तुम्हि चलि आवौ।"

(क० ग्रं० पृ० २०७ पद ३५८)

(१०) परम विरहासक्ति :—

"बाल्हा आव हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहै तुम्हारी नारी, मोको इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे॥"

क० ग्रं० पृ० १६२

(११) आत्मनिवेदनासक्ति :—

"माधो मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहीं साधी।
कारनि कवन आई जग जनम्यो।
जनमि कवन सचुपाया।" (क० ग्रं० पृ० १६२)

भक्ति के साधन :—यहाँ पर थोड़ी सी चर्चा भक्ति के साधनों की भी अपेक्षित है। कबीर ने कहीं पर भक्ति के साधनों की सूची नहीं दी है। वे यत्र तत्र ध्वनित भर कर दिये गये हैं। उनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) मानव शरीर ।
(२) गुरु-सेवा ।
(३) भगवान् की कृपा ।
(४) नाम, जप, स्मरण, कीर्तनादि ।
(५) सत्संगति ।

१—महात्मा तुलसीदास ने वेद का प्रमाण देते हुए लिखा है—"तनु बिनु वेद भजन नहिं बरना" भजन भक्ति का प्राण है। भजन के इस महत्त्व को कबीरदास जी ने भी स्वीकार किया है भजन बिना शरीर के सम्भव नहीं। निरीन्द्रिय आत्मा ज्ञान स्वरूप मात्र होती है। वह बोल नहीं सकती अतः स्पष्ट है कि शरीर भक्ति का सबसे प्रथम साधन है। शरीरों में भी मानव शरीर ही एक ऐसा है जिसमें ज्ञानादि का विशेष संचार पाया जाता है। भक्ति के लिये ज्ञान अत्यन्त आवश्यक तत्त्व है। अतः भक्ति की साधना के लिये मानव शरीर ही सर्वश्रेष्ठ है। मानव-शरीर बहुत कठिनता से मिला करता है। अतः कबीर का यह दृढ़ विश्वास है कि मानव शरीर पाकर जो भगवान् को विस्मरण कर देते हैं उन्हें अन्त में बहुत पश्चाताप करना पड़ता है।[1]

२—भक्ति का दूसरा साधन गुरु-सेवा है। मनुष्य संसार में आते ही अज्ञान के इन्द्रजाल में फँस जाता है। वह लोक और वेद के व्यवहारों में पड़कर वास्तविक सत्य तत्त्व को भूल बैठता है। उसकी यह अज्ञानता किसी प्रकार दूर नहीं होती। इसके लिये गुरु की बड़ी आवश्यकता है।

कबीर ने गुरु को विशेष महत्त्व दिया है। गुरु ही ज्ञान, प्रेम, विरह तत्त्वों को देकर अपने शिष्य का उद्धार करता है किन्तु गुरु से ये दो तत्त्व सरलता से नहीं मिल सकते हैं। इस प्रकार के गुरु की प्राप्ति अनन्य और निष्काम गुरु-सेवा ही से सम्भव है। अतः गुरु सेवा-भक्ति का आवश्यक साधन है। कबीर को भक्ति की प्राप्ति गुरु-सेवा से ही हुई थी।[2]

---

१ "मानस देही पाइ के हरि बिसरै तो फिर पछताई।"
क० ग्रं० पृ० २२१

२ "गुरु-सेवा ते भक्ति कमाई" क०।ग्रं० पृ० २८३

भक्ति प्राप्ति के लिये गुरु-सेवा के साथ भगवत् कृपा भी परमावश्यक है। कबीर पूर्ण रूप से भक्ति की कृपासाध्यता में विश्वास करते हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि गुरु की प्राप्ति बिना भगवत् कृपा के नहीं होती।[1] गुरु की कृपा भक्ति प्राप्ति के लिये बहुत जरूरी है। अतः गुरु-कृपा का महत्त्व भगवत् कृपा से भी अधिक हुआ।

कबीर की धर्म-साधना तथा भक्ति-साधना के प्राणभूत तत्त्व नाम, जप, स्मरण तथा कीर्तन हैं। कबीर ने इन तीनों को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। कबीर ने उच्च स्वर में घोषणा की है :—

"कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ।
राम कहें भला होयेगा नहिं तर भला न होइ।"

क० ग्रं० पृ० ४०

और भी :—

"कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेस।"

क० ग्रं० पृ० ५

कबीर 'सुमिरन' को भक्ति और धर्म का सार समझते थे। बाकी सब बातों को व्यर्थ का जंजाल मानते थे। 'सुमिरन' के अन्तर्गत 'अजपा जाप' भी है। प्रत्येक श्वास के आवागमन में साध्य के साथ अद्वैत भावना करना ही अजपा जाप है। अजपा जाप करते-करते साधक स्वयं साध्य-स्वरूप हो जाता है।[2]

'नाम-सुमिरन' के साथ कबीर को कीर्तन भी बहुत प्रिय था। वे किसी पीताम्बर पीर का कीर्तन बहुत पसन्द करते थे।[3]

---

१ "जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आइ" क० ग्रं० पृ० २

२ "तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न तूं।
वारी फेरी बलि गई जित देखौं तित तूं॥" क० ग्रं० पृ० ५

३ "क्या खूब गावता है हरि का नाम मेरे मन भावता है।"
क० ग्रं० पृ० ३३०

सत्संगति को भक्ति का प्रमुख साधन माना जाता है। अध्यात्म रामायण में तो उसे प्रथम साधन कहा ही है।[१] इस साधन को कबीर ने भी विशेष महत्त्व दिया है। उनका विश्वास था 'जो जैसी सङ्गति करे सो तैसी फल खाय'[२] तथा "कबीर सङ्गति साधु की कदे न निष्फल होय।"[३] साधु को वे भगवद् स्वरूप मानते थे। उनका कहना है जिस दिन साधु से साक्षात्कार हो जाय उसी क्षण उसे सौभाग्यशाली समझना चाहिए। उससे भेंट होने मात्र से सब पाप क्षीण हो जाते हैं।[४] अब प्रश्न यह है कि क्या कबीर की ये सब बातें सब प्रकार के साधुओं के सम्बन्ध में लागू होंगी? यों तो उन्होंने स्थान-स्थान पर साधुओं के गुणों का वर्णन किया है किन्तु एक स्थल पर अत्यन्त संक्षेप में उसकी विशेषताएँ निर्देशित कर दी हैं :—

वे इस प्रकार हैं—

"निर बैरी निह-कांमता, सांई सेती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतन का अंग एह।"

क० ग्रं० पृ० ५०

उपर्युक्त बातें इसी कोटि के साधुओं के सम्बन्ध में कही गई हैं।

इन साधनों के अतिरिक्त कबीर में भक्ति के अन्य सामान्य साधनों का भी निदर्शन मिलता है। इनमें श्रद्धा, विश्वास, सदाचरण, सत्याचरण, सरसता और निष्कपटता आदि प्रमुख हैं।

भक्ति की प्रकृति :—अब विचारणीय यह है कि भक्ति एकान्तिक है या लोक संग्रहात्मक। इस सम्बन्ध में दो मत हो सकते हैं। लेखक की धारणा यही है कि कबीर ने उसे एकान्तिक नहीं रहने दिया है। उसका स्वरूप सरल और सहज

---

१ "सतां संगति रे वा साधनं प्रथमं स्मृतम्" अ० रा० अ० २

२ क० ग्रं० पृ० ४८

३ क० ग्रं० पृ० ४६

४ "कबीर सोइ दिन भला, जा दिन संत मिलाहि।
अंक भरे भर भेटिया पाप सरीरा जाहि॥" क० ग्रं० पृ० ५०

है। वह अत्यन्त लोकोपयुक्त है। कबीर ने अपनी भक्ति को अनिवार्य नहीं ठहराया है। उन्होंने सुमिरन, सत्सङ्ग और सदाचरण को ही विशेष महत्त्व दिया है। अतएव हम उसे पूर्ण एकान्तिक नहीं कह सकते।

निष्कर्ष :—कबीर "भाव भक्ति" का सन्देश लेकर भारत में अवतीर्ण हुए थे। कबीर को इस भाव-भक्ति का वरदान अपने गुरु स्वामी रामानन्द जी से मिला था। अपने गुरु के इसी वरदान को उन्होंने "सप्त दीप नव खंड" में सन्देश के रूप में प्रसारित किया था। इसे पाकर हिन्दू जाति कृत्कृत्य हो गई। युग के कालुष्य क्षीण हो गये।

कबीर ने अपनी भक्ति को नारदी कहा है। निश्चय ही नारद की प्रेम-मूला भाव प्रधाना भक्ति का कबीर पर बहुत अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। नारद के अतिरिक्त सूफियों के "इश्क" तत्त्व ने भी उनकी भक्ति का स्वरूप सँवारा है। यह मधुर से मधुरतम हो गई है। उनकी भक्ति पर उनके योगी स्वरूप की भी छाया है। हठयोग-साधना की कष्टसाध्यता उनकी भक्ति को भी प्रभावित किए हुए है। तभी तो वे उसे "खांडे की धार" के समान कठिन कहते हैं। कबीर की भक्ति भागवत् पुराण से भी कम प्रभावित नहीं है। भागवत् की निर्गुण भक्ति से अधिक भिन्न नहीं है।

कबीर की भक्ति के उपास्य निर्गुण "सुनि मंडल वासी" पुरुष के होते हुए भी सगुण और साकार हो गये हैं। ज्ञान क्षेत्र में जो परात्पर हैं वे ही भक्ति क्षेत्र में "तीन लोक की पीर जानने वाले गरीब निवाज" बन जाते हैं। कबीर का यह उपास्य "अनद विनोदी ठाकुर" है। वे जातिगत भक्ति भावना में विश्वास नहीं करते[1] उनकी भक्ति की इस विशेषता ने उसके प्रचार और प्रसार में बड़ी सहायता पहुँचाई है।

कबीर की भक्ति की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। वह नारदी होकर भी सार्वलौकिक, सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। वह अत्यन्त सहज और सरल होकर भी "खांडे की धार" के समान कठिन और कष्टसाध्य है। इसका कारण

---

१ "कबीर को ठाकुर अनद विनोदी, जाति न काहू की मानी।"

क० ग्रं० पृ० २१६

यही है कि वह भाव-प्रधान है। वाह्य विधि विधानों का उसमें कोई स्थान नहीं है। इसमें सर्वत्र सदाचरण, सत्याचरण, सहजाचरण, सहजोपासना आदि पर ही विशेष जोर दिया गया है। "कनक और कामिनी" उनकी भक्ति के सबसे बड़े बाधक हैं। भक्ति या भगवान् की सेवा में उन्होंने कामना या फलेच्छा को बाधक माना है। उनकी भक्ति भागवती और निष्काम है।

कबीर ने अपनी भक्ति में प्रपत्ति पर विशेष बल दिया है। प्रपत्ति भारतीय देन है। वायुपुराण में वर्णित प्रपत्ति के सभी अंगों का विकास कबीर की वाणी में मिलता है। कबीर की भक्ति में मन साधना, मानसिक पूजा, मानसिक जप तथा तत्सङ्गति को विशेष महत्त्व दिया है। अपनी इन सब विशेषताओं के साथ कबीर की भक्ति अपने युग की सबसे बड़ी देन थी। इसके अभाव में हिन्दू समाज न मालूम किस अवस्था को पहुँच गया होता।

पाँचवाँ प्रकरण

कबीर के धार्मिक और सामाजिक विचार

कबीर के धार्मिक विचार—धर्म के तत्त्व विवेचन—सहज धर्म का स्वरूप—कबीर का सहज धर्म और उसकी विशेषताएँ—निष्कर्ष

कबीर के सामाजिक विचार

कबीर के सामाजिक विचार—व्यक्तिवाद का प्राबल्य—धर्म के वास्तविक स्वरूप का लोप—पारस्परिक संघर्ष और विद्वेष भावना—कबीर का कार्य—दर्शन क्षेत्र में—धर्म क्षेत्र—समाज क्षेत्र—कबीर का सामाजिक मतवाद।

—:०:—

कबीर के धार्मिक विचार

महात्मा कबीर के धार्मिक विचरों की विवेचना करने से प्रथम हम धर्म के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार कर लेना चाहते हैं। धर्म की अनेक परिभाषाएँ प्रसिद्ध हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

(१) आचार प्रभवो धर्मः। मनु० १/१०२

(२) चोदना लक्षणयो धर्मः।

(३) धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥
म० भा० वर्ण ६६,५६

(४) यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः। (कणाद)

इसमें से प्रथम परिभाषा स्मृतिकारों की है। ये लोग कुछ विशेष प्रकार के नैतिक नियमों के पालन तथा कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुसरण को

धर्म मानते रहे हैं। उनकी निम्नलिखित उक्तियों से इसी बात का समर्थन होता है।

"अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिंद्रिय निग्रह:" (मनु)
(शान्ति पर्व १६२/१४)

दूसरी परिभाषा मीमांसकों की है। इसमें धर्म को प्रेरणा प्रधान माना गया है। इसके अनुसार धर्म विविध प्रवृत्तियों पर उचित अर्गला देने वाला तत्त्व सिद्ध होता है।

तीसरी परिभाषा महाभारत से ली गई है। इसका अर्थ है "धर्म" शब्द धृ धातु से बना है। धर्म से ही सब प्रजा बँधी हुई है। इस परिभाषा में व्यास जी ने समाज की व्यवस्था करनेवाले समस्त तत्त्वों को धर्म कहा है। वे तत्त्व कौन से हैं? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। साधारणतया इनके अन्तर्गत उन तमाम नैतिक आचारों और सामाजिक व्यवस्थाओं को लेना चाहिए, जिनसे समाज की स्थिति बनी रहती है।

चौथी परिभाषा महर्षि कणाद की है। यह अधिक स्पष्ट और सारगर्भित मालूम होती है। इसके अनुसार धर्म लौकिक एवं पारलौकिक समृद्धि एवं शान्ति का विधान करने वाली साधना पद्धति है।

ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि धर्म की सभी परिभाषाएँ एकाङ्गी एवं अपूर्ण सी हैं। इनमें केवल कणाद की परिभाषा कुछ अधिक व्यवस्थित मालूम पड़ती है, किन्तु धर्म का निश्चित रूप उसमें भी स्पष्ट नहीं हो पाया है।

धर्म की सभी परिभाषाओं पर विचार करने पर हमें उसके दो स्थूल पक्ष दिखाई देते हैं। उन्हें हम धर्म के साधारण और विशेष स्वरूप कह सकते हैं। उसका विशेष स्वरूप व्यक्ति, देश और काल की सीमाओं से बँधा रहता है। यही कारण है कि विविध देशों के धर्मों में हमें परस्पर अनेक विभेद दिखाई पड़ते हैं। धर्म का साधारण स्वरूप देश, काल और व्यक्ति की सीमाओं के परे रहता है और प्रायः सभी देशों के धर्मों में समान रूप से परिव्याप्त है। इसमें मानव मात्र के नैतिक नियमों की प्रतिष्ठा रहती है। धर्म का यह स्वरूप ही मानव

धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। विश्व के धर्म संस्थापकों ने प्रायः अपने धर्म में धर्म के दोनों पक्षों की प्रतिष्ठा की है। किन्तु धर्म संस्थापकों के उठते ही धर्म के ठेकेदार धर्म के विशेष स्वरूप को लेकर सदैव धर्म का अनर्थ करते रहे हैं। यही कारण है कि किसी भी धर्म का स्वरूप विकृत हुए बिना न रहा। किन्तु यह विकृत स्वरूप चिरस्थाई कभी नहीं रहता। समय के प्रवाह में सदैव उसकी प्रतिक्रिया उदय होती है। धर्मों का इतिहास वास्तव में इसी क्रिया और प्रतिक्रिया का इतिहास है। जब-जब समाज में धर्म के विशेष रूप को अधिक महत्त्व देकर उसे विकृत किया गया तब-तब धर्म के साधारण स्वरूप की पुनर्प्रतिष्ठा की गई है। प्रतिक्रिया रूप में उद्‌भूत धर्म के इन साधारण स्वरूपों में सहजाचरण, सहज साधना और सहजोपासना विधि पर सदैव ही ध्यान रखा गया है। धर्म के साधारण स्वरूप को सहज धर्म की संज्ञा समय-समय पर दी गई है। वेदों के (व्रात्य) इसी सहज पंथ के प्रवर्तक माने जाते है। बौद्धों के सहजयान और बाउल सम्प्रदाय सहज सम्प्रदाय आदि सभी मत और पंथ, धर्म के साधारण और सहज रूप से ही सम्बन्धित हैं। ये सभी धर्म के विशेष स्वरूप के विकृत हो जाने पर ही उसकी प्रतिक्रिया रूप में ही उदय होते रहे हैं। इन सब में मानव धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया गया है। कबीर की धार्मिक विचारधारा का उदय भी हिन्दू और इसलाम धर्मों के पाखंड पूर्ण एवं विकृत रूप की प्रतिक्रिया के रूप में समझना चाहिए। यही कारण है कि इसे विधि विधान प्रधान हिन्दू और इसलाम धर्म के विरुद्ध सहज धर्म कहा गया है। कुछ लोग उसे मानव धर्म, निज धर्म या हित धर्म भी कहते हैं।

कबीर, दादू आदि संतों के इस सहज साधना के सहज धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षिति मोहन सेन ने इस प्रकार लिखा है "कबीर, दादू आदि के मत से साधना सहज होनी चाहिए। प्रतिदिन के जीवन के साथ चरम साधना का कोई विरोध नहीं होना चाहिए। आज की वैज्ञानिक भाषा में अगर कहना हो तो इस प्रकार कह सकते हैं, पृथ्वी जिस प्रकार अपने केन्द्र के चारों ओर घूमती हुई अपनी दैनिक गति सम्पन्न करती है और यही गति उसे सूर्य के चारों ओर वृहत्तर वार्षिक गति के मार्ग में अग्रसर कर देती है उसी प्रकार साधना भी जीवन को सहज ही अग्रसर करती है।"

दैनिक गति से सूर्य की शाश्वत गति का जो योग है, उसी को सन्त सहज पंथ कहते हैं। नदी के भीतर दोनों जीवन का पूर्ण सामञ्जस्य है। नदी प्रतिपल अपने दोनों किनारों पर अगणित कार्य करती चलती है और साथ-साथ अपने को असीम समुद्र में प्रवाहित भी कर रही है। उसका दण्ड पथ गत जीवन उसके शाश्वत जीवन के साथ सहज योग से युक्त है। इसमें से एक को छोड़ने से दूसरा निराश हो जाता है। इसलिये भक्त कबीर ने कहा है 'संसार और गृहस्थ जीवन को छोड़कर साधना नहीं हो सकती'। साधना में नित्य और दैनिक लक्ष्य में कोई विरोध नहीं।

कबीर ने इस सत्य को खूब समझा था। यही कारण है कि वे संन्यासियों के शिरोमणि होकर गृहस्थ थे। कबीर की वाणी में सहज धर्म के सम्बन्ध में अनेक बातें भरी पड़ी हैं।

उपर्युक्त अवतरण से कबीर के धर्म की आधार भूमि तो स्पष्ट हो गई। हम उनके सहज धर्म के अंगों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।[1]

कबीर के आध्यात्मिक विचार वाले प्रकरण में अध्यात्म और अनुभूति का विवेचन किया गया है। कबीर का सारा जीवन अध्यात्म साधना में ही बीता था उनकी वह साधना अनुभूति के आधार पर ही टिकी हुई थी। आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि यदि हो सकती है तो अनुभूति के सहारे ही हो सकती है। कबीर का सहज धर्म अध्यात्म का पुट लिये हुए था। उसकी उत्पत्ति अनुभूति के ही साँचे में ढलकर हुई थी। हम कह चुके हैं कि कबीर का सारा जीवन सत्य के प्रयोगों में बीता था। वे सब प्रयोग स्वानुभूति के सहारे हुआ करते थे। इन प्रयोगों से जो सत्य खंड निकलते थे, वे ही महात्मा कबीर को मान्य होते थे। इनमें भी उन्होंने अधिकतर उन्हीं को महत्त्व दिया है, जिनका स्वरूप उन्हें सहज एवं सरलतम प्रतीत होता था। कबीर का सहज धर्म ऐसे ही सरलतम सत्य खंडों से बना हुआ है। कबीर के सहज धर्म में दर्शन का जो अंश है, वह भी सरलतम ही है। उसमें तर्क जाल का इन्द्रजाल नहीं मिलता। दर्शन में वे तर्क

---

१ मध्ययुग के सन्त कवि शीर्षक लेख देखिए—विवेचनात्मक निबन्ध—साधुराम—पृ० ८३

की पूर्ण अप्रतिष्ठा समझते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा है "कहत कबीर तरक दुइ साधे, तिनकी मति है मोटी"। कबीर का यह अनुभूतिमूलक सारा दर्शन अद्वैतवादी है। उन्हें ब्रह्मांड के अणु-अणु में ब्रह्म के दर्शन होते थे। उन्होंने पूर्ण रूप से अनुभव कर लिया था। "जामें हम सोई हम ही में नीर मिले जल एक हुआ" तथा "हम सब मांहि सकल हम मांहि हम पै और दूसर नाहीं।" यही कबीर का अद्वैतवाद है। यही उनके सहज धर्म का आधार है। इसी से वह पूर्ण आस्तिक हैं, किन्तु इस आस्तिकता का आधार भी "सहज तत्त्व" है। वह तत्त्व न हिन्दुओं के ईश्वर से मिलता है और न मुसलमानों के अल्लाह से, योगियों के गोरख से उसकी कोई समता नहीं हो सकती। वह "सहज" घट-घट व्यापी भी है। उन्होंने मोक्ष स्वरूप भी पूर्ण अद्वैती माना है—"सहजै रहे समाय न कहुँ आवै न जाय" ॥ १ क० ग्रं० पृ० २०० ॥ ठीक भी है जब सब कुछ "सहज" ही है और आत्मा भी उसी का अंश है, तब कहीं आने जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही "सहज" कबीर के सहजवाद का प्राण है। इसी के चारों ओर उनकी सारी साधना केन्द्रित है।

कबीर के सहज धर्म में स्वानुभूति के साथ-साथ बुद्धिवादिता का भी पूरा स्थान है। जिस प्रकार उनके सहज धर्म का दर्शन अनुभूति पर टिका हुआ है, उसी प्रकार उनके विश्वास बुद्धिवादिता पर टिके हुए हैं। महात्मा कबीर दर्शन क्षेत्र में तर्क विरोधी होते हुए भी जीवन में बुद्धिवादिता के समर्थक थे। उनका सहज धर्म धर्माभासों की प्रतिक्रिया के रूप में उदय हुआ था। ये सब धर्माभास वाह्य आचारों से परिपूर्ण और मिथ्याडम्बरों से भी हुए थे। कबीर के शब्दों में "एक न भूला दोय न भूला भूला सब संसार।"[१] कबीर का लक्ष्य इन्हीं धार्मिक भूलों का सुधार करना था। उनका दृढ़ विश्वास था कि "कूड़ी करणी राम न पावे सांच टिके निज रूप दिखावे"[२] कबीर के जितने भी धार्मिक विश्वास हैं वे सत्य पर ही आधारित हैं, उन्हें अंधविश्वासों से बेहद घृणा थी। लोक और वेद

१ क० ग्रं० पृ० १९९

२ क० ग्रं० पृ० १५७

का अन्धानुसरण उन्हें बिलकुल पसन्द न था।[१] क्योंकि उन्हीं के अनुसरण के फलस्वरूप लोक में इतने अंधविश्वासों की उत्पत्ति हुई थी।[२]

महात्मा कबीर के विश्वासों की प्रथम भूमिका ध्वंसात्मक है। उन्होंने सभी धर्मों के सभी अन्धविश्वासों, पाखण्डों एवं वाह्याडम्बरों का बहुत विरोध किया था, किन्तु ये विरोध जड़तामूलक नहीं पूर्ण बुद्धिवादी हैं। छुआ-छूत पर तर्क उपस्थित करते हुए वे उसके ठेकेदार पण्डितों से ही प्रश्न करते हैं कि हे पांडे, तुम्हीं बतलाओ कौन सा स्थान पवित्र है, जहाँ बैठकर भोजन किया जाय। संसार में वास्तव में कोई वस्तु कर्म और स्थल ऐसा नहीं जो पवित्र हो।[3] इसी प्रकार पण्डितों के सन्ध्या, तपस्या, षट्कर्म आदि कर्मकाण्डों को वे अभिमानोत्पादक बतलाते हैं। पण्डित लोग इन कर्मकाण्ड में लगकर असली तत्त्व को भूल जाते हैं। अतः कबीर इन अहंकार मूलककर्मकाण्डों में आस्था नहीं रखते थे। वे सहज धर्म में व्यर्थ के जप व्रतादि भी नहीं पसन्द करते थे।[४] स्वर्ग-नर्क में भी उन्हें विश्वास न था। भगवान् के भजन का परित्याग कर अहोई का व्रत करनेवाली स्त्री को वे गदही कहने में नहीं हिचकते।[५] उनका दृढ़ विश्वास था कि "तीरथ व्रत नेम किए ते सबै रसातल जाहिं"।[६] संक्षेप में कबीर के सहज धर्म में किसी प्रकार के वाह्याचारों का स्थान नहीं है। उनका सहज धर्म, हृदय की निष्कपटता, चरित्र की आचार प्रवणता और मन की शुद्धता पर आधारित है।[७]

---

१ क० ग्रं० पृ० २—साखी ११

२ क० ग्रं० पृ० २०७

३ क० ग्रं० पृ० १७३—पद २५१

४ तीरथ व्रत सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाय,
कबीर मूल निकन्दिया, कौन हलाहल खाय ॥ क० ग्रं० पृ० ४४ ॥

५ क० ग्रं० पृ० २६२—साखी १७१

६ क० ग्रं० पृ० २४३

७ काम क्रोध तृष्णा तजै ताहि मिले भगवान् ॥ क० ग्रं० पृ० १ ॥

अथवा

सांई सेंती सांच चलि, औरां सूं सुध भाई।
भावै लम्बे केस करि, भावै घुरड़ि मुडाइ ॥ क० ग्रं० पृ० ४६ ॥

निश्चय ही महात्मा कबीर का सहज धर्म आन्तरिक शुद्धता पर आधारित है। यदि मन शुद्ध है, हृदय निष्कपट है, विचार पवित्र हैं और आचरण सात्विक है तो धार्मिक कहलाने में बाधा नहीं पड़ सकती। कबीर ने धर्म में मन की शुद्धता पर बहुत जोर दिया है। मन शुद्ध होने पर सहज ज्ञान बिना पढ़े ही प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार उनका विश्वास है—भगवान् की प्राप्ति जो प्रत्येक धर्म का लक्ष्य है, बिना हृदय की शुद्धता के नहीं हो सकती। कबीर ने स्पष्ट घोषणा की है :—

"हरि न मिले बिन हिरदै सूध"

मन पवित्र हो, हृदय शुद्ध हो, साथ ही साथ विचार भी सात्विक हों तभी मनुष्य धार्मिक कहला सकता है। विचारों का सच्चा और पवित्र होना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि धर्म के प्रधान अंग नीति शास्त्र और अध्यात्म शास्त्र के प्राण तत्त्व यह विचार ही होते हैं। यदि विचार शुद्ध और पवित्र नहीं हैं तो धर्म भी शुद्ध और पवित्र नहीं हो सकता। यही कारण है कि जब धर्मों में विचार की सत्यता और पवित्रता समाप्त हो जाती है तभी वे विकृत हो जाते हैं। प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक तत्त्व को विचार के साँचे में डालकर पवित्र कर ले। वास्तव में धर्म की प्रतिष्ठा करनेवाले वेद, शास्त्र मिथ्या तत्त्व का प्रचार नहीं करते, जितना अन्धानुसरण करनेवाले।[1] इसीलिये कबीर ने सहज धर्म की प्रधान विशेषता विचारात्मकता मानी है। विचारों की शुद्धता बहुत कुछ आचारों की सात्विकता और शुद्धता पर आधारित रहती है। तभी तो धर्म को आचार प्रभव कहा गया है। सम्भवतः यही कारण है कि प्रत्येक धर्म में आचारों के विस्तृत विधि निषेध मिलते। हैं जहाँ तक आचारों का सम्बन्ध है कबीर ने इन पर विशेष जोर दिया है, किन्तु उनके बाह्यात्मक रूप से उन्हें विशेष घृणा थी। वे उसका नैतिक और मानसिक रूप ही पसन्द करते थे। यही कबीर की अपनी विशेषता थी। जितने भी नैतिक आचरणों का सम्बन्ध विश्व धर्म से है उन्हें कबीर ने अपने सहज धर्म में पूरा स्थान दिया है। वास्तव में कबीर का

---

१ वेद कतेब कहो मत झूठा झूठा सो जो न विचारे ॥

क० ग्रं० पृ० १०७

सहज धर्म "मानव धर्म" ही है। जिसकी स्थिति हितवाद की भूमिका पर है। इसीलिये उसे हित धर्म भी कहा जाता है। सच्चा मानव धर्म या विश्व धर्म सदैव ही उन नैतिक आचरणों पर आधारित रहता है जिनसे मनुष्य की धारणा होती है और जो समाज स्थिति का कारण होते हैं। इन नैतिक आचरणों में कुछ विधि रूप में होते हैं और कुछ निषेध रूप में। महात्मा कबीर में दोनों स्वरूपों का निर्देश किया है। विधि रूप में पाए जाने वाले नैतिक आचरणों में सत्याचरण, सारग्रहिता, समदर्शिता, शील, क्षमा, दया, दान, धीरज, सन्तोष, परोपकार, अहिंसा आदि प्रमुख हैं। निषिद्ध आचरणों में मद्य, मांस, काम, क्रोध, लोभ, मान, कपट, तृष्णा आदि प्रमुख हैं। कबीर ने सर्वत्र ही अपने धार्मिक विचारों में सदाचार के पालन और निषिद्ध वस्तुओं और आचरणों के परित्याग पर जोर दिया है। इस प्रकार उनका सहज धर्म सच्ची नैतिकता की भूमि पर खड़ा हुआ है। प्रत्येक धर्म का एक पक्ष "रहनी" होता है। इन नैतिक आचरणों का सम्बन्ध धर्म के रहनी स्वरूप से है।

कबीर के सहज धर्म के "रहनी" स्वरूप में मध्य मार्गानुसरण का भी ऊँचा स्थान है। मध्य मार्ग सदैव ही श्रेयस्कर होता है। तभी तो बौद्धों ने उसके अनुसरण पर जोर दिया है। उन्होंने अपनी धार्मिक साधना में उसको बहुत महत्त्व दिया है। महात्मा कबीर पर इन दोनों की छाप पड़ी थी। वह मार्ग उन्हें बुद्धिवादी प्रतीत हुआ था। सम्भवतः इसीलिये उन्होंने अपने सहज धर्म में इसको भी स्थान दिया है। विशेषकर तत्त्व निरूपण में तो उन्होंने इससे बहुत अधिक सहायता ली है। उन्होंने मध्य मार्गानुसरण पर विशेष जोर दिया है। उनके एतद्सम्बन्धी विचार "मधि कौ अंग" शीर्षक अंग में विशेष रूप से व्यक्त हुए हैं। उसी की एक उक्ति है, देखिए :—

कबीर मधि अंग जेको रहै, तौ तिरत न लागै बार।
दुहु दुहु अंग सो लागि करि, डूबत है संसार॥

क० ग्रं० पृ० ५३

उन्होंने मध्य मार्ग को इतना महत्त्व क्यों दिया? इसका प्रमुख कारण यही था कि एक अन्त का ग्रहण विरोध का कारण बन जाता। यदि वे हिन्दुओं

के मार्ग का अनुसरण करते तो मुसलमानों का विरोध सहना पड़ता और यदि मुसलमानों का मार्ग ग्रहण करते तो हिन्दुओं की विरोध भावना जगती। इस द्वन्द्व को बचाने के लिये मध्यमार्गानुसरण और भी अधिक श्रेयस्कर था।

कबीर ने अपने सहज धर्म में समरसता को विशेष महत्त्व दिया है। कबीर संसार के महान् क्रांतिकारी होने के साथ-साथ सच्चे साम्यवादी भी थे। वे जीवन में, समाज में, धर्म में, साधना में सर्वत्र एक समरसता चाहते थे। जीवन में वे सुख, दुख, मानापमान, निन्दा, स्तुति को सम कर देना चाहते थे।[1] समाज में जाति भेद के ऊबड़ खाबड़ टीले को समभूमि के रूप में बदल देना उनका लक्ष्य था। वे साधना में कथनी और करनी दोनों को उचित और सम महत्त्व देना अत्यन्त आवश्यक समझते थे। धर्म में अनुराग और विराग को भी उन्होंने सम-भूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था। कहना न होगा कबीर की क्रांति भावना इसी समरसता को लेकर आगे बढ़ी थी। कबीर का सारा जीवन ही विविध विषमताओं को सम रूप देने में ही लगा रहा।

प्रत्येक धर्म का अपना साधना मार्ग अलग होता है। कबीर के सहज धर्म साधना मार्ग भी सहज ही हैं। उसके प्राणभूत उपादान सहजज्ञान, सहज वैराग्य, सजह योग और सहजाभक्ति थे। सहज वैराग्य और सहज ज्ञान सहज साधना के प्रारम्भिक सोपान हैं। वैराग्य शब्द का प्रयोग कबीर ने प्रचलित अर्थ में नहीं किया था। वे गेरुआ वस्त्र पहनकर जङ्गल में चले जाने को वैराग्य नहीं मानते थे। उनकी वैराग्य धारणा में वासनाक्षय को विशेष महत्त्व दिया गया है। वास्तव में वैराग्य के लिये मन का विकार रहित होना जितना अधिक आवश्यक था उतना बनवास नहीं। कबीर ने स्पष्ट कहा है कि "बनह बसे का कीजिये जो मन नहीं तजे विकार।" इस प्रकार मन का संयम ही सच्चा वैराग्य है। कबीर ऐसे ही वैरागी थे। अपने सहज धर्म में उन्होंने ऐसे ही वैराग्य की प्रतिष्ठा की

---

१ "लोहा कंचन सम जानहिं वे मूरत भगवाना॥"

क० ग्रं० पृ० १५०

सर्व भूत एके कहि जाना चूके वाद विवाद॥

क० ग्रं० पृ० २१७

है। सहज अंग में उन्होंने सहज धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है जो सहज में ही विषय वासना त्याग देता है वही सहजानुयायी कहा जा सकता है।[१] सहजमार्गी धीरे-धीरे सहज भाव से सब सांसारिक वस्तुओं से उदासीन होते-होते राम में लीन हो जाता है।[२]

कबीर के सहज धर्म में केवल वैराग्य को ही महत्त्व नहीं दिया गया है। ज्ञान के साथ कर्मयोग भी अनिवार्य माना गया है। यहाँ तक कि कबीर कहते हैं "जहाँ ज्ञान तह धर्म है।"[३] जिसने अपने जीवन में ज्ञान का चिन्तन नहीं किया उसका जन्म व्यर्थ ही समझना चाहिए।[४] कबीर ने साधना के मार्ग में विचार पर सवार होकर सहजज्ञान के पाँवड़े पर पैर रखने का आदेश दिया है।[५] अब प्रश्न यह है कि ज्ञान है क्या ? इसके उत्तर में कबीर कहते हैं "राजाराम मोरे ब्रह्म ज्ञान।"[६] जो इस राम नाम के ज्ञान को जान लेते हैं वे निर्मल हो जाते हैं।[७] इसी ज्ञान की आँधी के सामने समस्त भ्रम टीड़ियाँ उड़ जाती हैं।[८]

सहज धर्म की साधना में कर्म को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि कबीर उसके विरोधी थे। व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में वे चाहे कर्म को विशेष महत्त्व न देते हों, किन्तु समाज में कर्म करना

---

१ सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन सहजैं विषया तजी, सहज कही जै सोइ॥ क० ग्रं० पृ० ४१

२ सहजै सहजै सब गए सुत वित कामनि काम।
एकम एक ह्वै मिलि रह्या दास कबीरा राम॥ क० ग्रं० पृ० ४२॥

३ क० ग्रं० पृ० २६२

४ बावरे तैं ज्ञान बिचारैं न पाया। बिरथा जनम गँवाया॥
क० ग्रं० पृ० २६५

५ अपनै विचारै असवारी कीजै, सहज कै पांवड़े पग धरि लीजै॥
क० ग्रं० पृ० २६६

६ क० ग्रं० पृ० ३२७

७ निर्मल ते जे रामहिं जान। क० ग्रं० पृ० ३१५

८ सबै उड़ानी भ्रम की ठाटी रहै न माया बांधी। क० ग्रं० पृ० २११

वे आवश्यक समझते थे। उन्होंने इसीलिये घोषित किया है "जो जैसा कर्म करेगा उसे उसी के अनुरूप फल मिलेगा।" जहाँ तक साधना का सम्बन्ध है कबीर ने रहनी के साथ करनी को आवश्यक ठहराया है। हाँ, इतना अवश्य है कि उनकी करनी का स्वरूप हठयोगियों का-सा नहीं था। साधना के प्रारम्भ में उसका स्वरूप चाहे जो कुछ रहा हो किन्तु उनका अन्तिम मान्य रूप सहज योग ही था। उन्होंने सदैव हठयोग के जटिल स्वरूप की उपेक्षा की है। कबीर के सहज योग का स्वरूप योग साधना के अन्तर्गत दिखाया जा चुका है। यहाँ पर संक्षेप में हम उसे मानसिक साधना कह सकते हैं। मानसिक साधना में खिंथा मुद्रा और अधारी आदि धारण करने की आवश्यकता नहीं होती। उसमें धोती, नौती, पद्मासन आदि जुगतियों का भी स्थान नहीं है। उसमें सहजाभक्ति को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। भक्ति में भी नाम-स्मरण, अजपाजाप एवं प्रपत्ति को ही प्रधानता दी गई है। कबीर को कीर्तन बहुत पसन्द था। वह तो साधना का सरलतम रूप है। उनका विश्वास था कि "गुण गाए गुणनाम कहे" अर्थात् भगवान् के गुणों का कीर्तन करने से कर्म बन्धन कट जाते हैं कीर्तन के समान ही नाम स्मरण को भी साधना में परमावश्यक मानते थे। वे उसे सार रूप समझते हैं :—

कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल ॥

क० ग्रं० पृ० ५

यह स्मरण जप अजपाजाप का रूप धारण कर लेता है तो "रामरतन" की प्राप्ति बहुत ही सहज रूप हो जाती है।[1] प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। प्रपत्ति को हिन्दू भक्ति मार्ग में प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है। इसलाम का तो यह प्राण है। "इसलाम" शब्द का अर्थ ही प्रपत्ति है। डा० भंडारकर जैसे विद्वान् का तो यहाँ तक कहना है कि प्रपत्ति की भावना हिन्दू धर्म में इसलाम से ही आई है, किन्तु मेरी समझ में इस प्रकार की धारणा अतिरञ्जनापूर्ण है। भागवतपुराण को, यदि हम इस दृष्टि से कि उसकी रचना मुसलमानों के भारत

---

१ पंच संगी पिव पिव करै, छठा जो सुमिरे मन।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतन ॥ क० ग्रं० पृ० ९

में आने के बाद हुई थी प्रमाण न भी माने, तो भी हम भगवद्गीता के साक्ष्य को नहीं ठुकरा सकते। गीता में तो प्रपत्ति को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। जो कुछ भी हो कबीर ने अपने सहज धर्म में प्रपत्ति भाव को विशेष महत्त्व दिया है। उनकी रचनाओं में भगवान् की शरण में जाने के उपदेश भरे पड़े हैं। गीता के समान एक स्थल पर वे भी कहते हैं "मनुष्यो, मन से समस्त भ्रमों को त्याग कर केवल राम की शरण में जाओ और उसी का जप करो।"[१] कबीर की सहज धर्म की साधना का यही सार है।

जिस प्रकार कबीर की धर्म साधना मानसिक है उसी प्रकार उनकी उपासना और अर्चन विधि भी भावात्मक एवं मानसिक है। उनका अटल विश्वास था :—

भाव भगति सूं हरि न अराधा, जनम मरन की मिटी न साधा॥

क० ग्रं० पृ० २४४

कबीर ने अर्चन और उपासना के लिये किसी प्रकार के वाह्याचारों का आदेश नहीं दिया है। अगर पूजा की चौकी देना है तो वह सच्चे शील की ही चाहिये।[२] इसी प्रकार भावात्मक आरती का भी विधान किया है।[३] इसी प्रकार मुसलमानों को भी समझाया है :—

सेख सबूरी वाहिरा क्या हज कावै जाइ।
जाका दिल सावत नहीं ताको कहाँ खुदाइ॥

क० ग्रं० पृ० २६३

इस प्रकार कबीर के सहज धर्म का स्वरूप सब प्रकार से सात्विक, सरल,

---

१ कहत कबीर सुनहु हे प्रानी, छाँड़हु मन के भरमा।
केवल नाम जपहु रे प्रानी, परहु एक की सरना॥

क० ग्रं० पृ० २६२

२ साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै॥

क० ग्रं० पृ० २४५

३ संत कबीर राग विभासु प्रभाती॥ क० ग्रं० पृ० २४६

सहज, भावात्मक और बौद्धिक है। उनका अद्वैत दर्शन अनुभूति पर आधारित है। उनके धार्मिक विश्वास और रीतियाँ बुद्धिवादिता पर खड़ी हुई हैं। उनकी नैतिकता, सात्विकता, सरलता और मानव धर्म से अनुप्राणित हैं। उनकी साधना मनोजय और भक्ति एवं प्रेम से प्राणोदित है। उनकी अर्चन और उपासना विधिपूर्ण भावात्मक और मानसिक है। संक्षेप में यही कबीर के सहज धर्म का स्वरूप है।

कबीर के सामाजिक विचार

स्व कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के समष्टिस्वरूप का नाम समाज है। व्यक्ति के आचार-विचारों के अनुरूप ही समाज का स्वरूप होता है। यही कारण है कि जब तक व्यक्तियों में किसी प्रकार के दोष उत्पन्न नहीं होते, समाज का स्वरूप सुन्दर और सुव्यवस्थित रहता है किन्तु व्यक्ति के कर्त्तव्य च्युत होते ही समाज में विशृंखलता आने लगती है। इसी विशृंखलता को दूर करने के लिये प्रायः युग के महापुरुषों का जन्म हुआ करता है तभी तो वर्कले ने कहा है कि युग की विभूतियाँ युग प्रसूत होती हैं। हमारे महात्मा कबीर मध्ययुग की ऐसी ही महान् विभूति थे।

कबीर के सामाजिक विचारों को समझने से पहले उनकी पृष्ठभूमि जान लेनी आवश्यक है। प्रथम प्रकरण में इस पृष्ठभूमि की थोड़ी-सी चर्चा की जा चुकी है। जिस समय महात्मा कबीर का जन्म हुआ था उस समय समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अन्धकार, अस्तव्यस्तता और विशृंखलता फैली हुई थी। प्रथम प्रकरण में वर्णित कारणों और परिस्थितियों के अतिरिक्त भी इसके प्रमुख रूप से तीन कारण और थे :—

१. व्यक्तिवाद का प्राबल्य

२. धर्म के वास्तविक स्वरूप का लोप

३. पारस्परिक संघर्ष और विद्वेष-भावना

व्यक्तिवाद का प्राबल्य :—कबीर का युग व्यक्तिवाद का युग था। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" और "अपनी-अपनी ढफली अपना-अपना राग"

वाली कहावतें प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण रूप से चरितार्थ हो रही थीं। जिसका मन जिसमें लगा हुआ था वह उसी को अच्छा समझता था। कोई किसी की बात को सुनने के लिये तैयार न था। कबीर ने इस व्यक्तिवादिता का उस युग के विविध साधकों की आडम्बर प्रधान साधनाओं का चित्र उपस्थित करके अच्छा वर्णन किया है।[1] स्वामी शंकराचार्य के बाद कोई भी ऐसी विभूति भारत में प्रादुर्भूत नहीं हुई जो इस अन्धकार को विदीर्ण करने में समर्थ होती। स्वामी रामानन्द, इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने युग की अद्वितीय देन थे, किन्तु सर्वशास्त्र पारंगत विद्वान् होने के कारण तथा साधुमत में अधिक विश्वास करने के कारण साधारण जनता के सम्पर्क में अधिक न आ सके। इसका फल यह हुआ कि उनका कार्य अधूरा ही रह गया। महात्मा कबीर ने उसी की पूर्ति की थी। कबीर जो सन्देश लेकर हमारे सामने आये वह रामानन्द की ही दिव्य देन थी। केवल प्रस्तुत करने का ढंग उनका अपना था। वह थी "भाव भगति"। इसी भाव भगति के सहारे ही उन्होंने व्यक्तिवादिता के समाज को संयमित करने का प्रयत्न किया। इसी के द्वारा वे समाज के विविध अवयवों को एक सूत्र में बाँधने में समर्थ हुए थे। निर्गुनिया भाव भगति सब की होकर भी किसी एक वर्ग, किसी एक धर्म, किसी एक जाति से बिल्कुल सम्बन्धित न थी। यह सभी धर्मों की साधनाओं के प्राणभूत सात्विक तत्त्व को आत्मसात् करके भी मौलिक बनी रही। यही कबीर की सबसे बड़ी विशेषता थी। कबीर के समाज सुधार को समझने के लिये उनकी निर्गुण भाव भक्ति को सदैव ध्यान में रखना पड़ेगा क्योंकि समस्त धर्मों के बाह्य तामसिक और राजसिक अवयवों को ध्वंस करके वे उसी का मंडन करते हैं।

---

१ इक पढ़हि पाठ इक भ्रमहि उदास, इक नगन निरन्तर रहैं निवास।
इक जोग जुगति तन होहि खीन, ऐसे राम नाम संगि रहै न लीन॥
इक होहि दीन इक देहि दान, इक करै कलापी सुरा पान।
इक तंत मंत औषध बान, इक सकल सिद्ध राखै अपान॥
इक धोम घोटि तन होहिं स्याम, यूं मुकति नहीं बिन राम नाम॥
क० ग्रं० पृ० २१६

धर्म के वास्तविक स्वरूप का लोप :—धर्म का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज की धारणा करने वाले तत्त्व धर्म हैं और समाज है स्वकर्तव्य का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों का समष्टि स्वरूप। कर्तव्याकर्तव्य का विवेचन करने वाला शास्त्र नीतिशास्त्र कहलाता है। नीतिशास्त्र धर्म का प्रधान अंग है। सामाजिक व्यक्ति का धर्म के इस अंग से पूर्ण परिचित होना परमावश्यक है। इस प्रकार व्यक्ति समाज और धर्म दोनों का मिलन विन्दु है। यही कारण है कि जब धर्म का ह्रास होने लगता है तब समाज भी दूषित हो जाता है। कबीर का युग ऐसा ही था। वह धार्मिक ह्रास का युग था। इसीलिये उस युग में समाज भी पतन की पराकाष्ठा की ओर शीघ्रता से बढ़ रहा था।

कबीर के युग की धार्मिक दशा का चित्रण भी हम इस ग्रंथ के पहले प्रकरण में कर चुके हैं। कबीर ने स्वयं अपनी रचनाओं में जो चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किए हैं उनका संकेत कर देना अनुचित न होगा। महात्मा कबीर कभी तो वे विविध साधनाओं की जटिलता[1] का वर्णन करते हैं और कभी हिन्दू और इस्लाम धर्मों के आडम्बरों, पाखंडों, अन्धविश्वासों का निर्देश[2]। इसी प्रकार कभी रूढ़ियों

---

१ "इक पढ़हिं पाठ इक भ्रमहि उदास, इक नगन निरन्तर रहैं निवास।
इक जोग जुगति तन होहिं खीन, ऐसै राम नाम संगि रहै न लीन ॥"
इत्यादि क० ग्रं० पृ० २१६

२ हिन्दुओं के आडम्बरों, पाखडों और अंधविश्वासों के कुछ उदाहरण देखिए—
(अ) 'कर सेती माला जपै हिरदै बहै डंडूल।
पग तो पाला में गिल्या, भाजण लागी सूल ॥ क० ग्रं० पृ० ४९
(ब) 'बैसनो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दग्ध्या लोक अनेक ॥' क० ग्रं० पृ० ४९
(स) एकै पवन एक ही पाणीं, करी रसोई न्यारी जानी।
माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहौ कहाँ थूँ छोती ॥
क० ग्रं० पृ० ४४

इसी प्रकार मुसलमानों के पाखंडों का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है :—
(अ) "यह सब झूठी बंदिगी बिरिया पच निवाज।
सांचै मारे झूठि पढ़ि काजी करै अकाज" ॥
(ब) "काजी मुलां भ्रमियां, चल्या दुनी के साथ।
दिल थैं दीन बिसारिया करद लई जब हाथ" ॥
क० ग्रं० पृ० ४२

की हँसी उड़ाते हैं[१] और कभी धर्म के ठेकेदारों की पोल खोलते हैं।[२] देखिए काजी साहब के आचरण का कैसा रहस्योद्घाटन किया है।

"कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूं सांचा होइ॥"

क० ग्रं० पृ० ४२

पंडित भी अपने विद्या के मिथ्याहंकार में डूबे रहते थे। पंडित ही नहीं संन्यासी, जोगी और तपस्वी भी अहंकार से रहित नहीं थे—

"पंडित जन माते पढ़ि पुरान, जोगी माते जोग ध्यान।
संन्यासी माते अहमेव, तपसी माते तप के भेव॥"

क० ग्रं० पृ० ३०२

उस समय हिन्दू और मुसलमान दो ही धर्म प्रधान थे। हिन्दू धर्म से तात्पर्य हमारा सनातन धर्म से है। सनातन धर्म सदैव से आचार-प्रवण रहा है। जब

---

१ वाह्याचारों की निन्दा देखिए :—

(क) तीरथ बरत सब बेलड़ी सब जग मेल्या छाइ।
कबीर मूल निकंदिया कौण हलाहल खाइ॥"

क० ग्रं० पृ० ४७

(ख) सेख सबूरी बाहिरा का हज काबे जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनको कहा खुदाइ॥"

क० ग्रं० पृ० ४६

२ "ताथै कहिए लोकाचार वेद कतेब कथैं ब्योहार।
जारि बारि करि आवै देहा मूंवां पीछै प्रीत सनेहा॥
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूंवां पितृ लै घाले गङ्गा।
जीवत पित्र कूं अन न ख्वांवैं, मूंवां पाछैं प्यण्ड भरांवै॥
जीवत पित्र कूं बोलैं अपराध, मूंवां पीछे देहि सराध।
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यूं पावैं॥

क० ग्रं० पृ० २०७

बौद्ध धर्म पतनोन्मुख होकर वाह्याचार प्रधान होने लगा तो उसकी होड़ में सनातन धर्म के सात्विक आचारों ने भी अपना अतिरंजित रूप धारण किया। सनातन धर्म के कर्णधार पंडित और ब्राह्मण अधिक सजग हो गये। उन्होंने अपने धर्म को और भी अधिक आचार प्रधान बना कर उसकी नींव दृढ़ करने की चेष्टा की। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज में वाह्याचारों की बाढ़ सी आ गई। पंडितों ने धर्म के आचार वाले पथ को ही दृढ़ नहीं किया वरन् विचार पक्ष को दृढ़ रखने के लिये अनेकानेक दर्शन पद्धतियों की प्रस्थापना भी की।

इन दार्शनिक पद्धतियों और आचारों के प्रचार के लिये अनेक ग्रन्थ रचे गये। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग आचारों और विचारों के माया जाल में ही फँसकर रह गये और वास्तविक धर्म का लोप हो गया। कबीर ने एक स्थल पर इस परिस्थिति का मार्मिक वर्णन किया है :—

"आलम दुनी सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानां।
छह दरसन छ्यानवै पाखंड, आकुल किनहु न जानां॥
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौराना।
कागद लिखि लिखि जगत भुलानां, मन हीं, मन न समाना॥"

क० ग्रं० पृ० ६६

हिन्दू समाज की ही यह दशा न थी। इस्लाम के ठेकेदार भी पथ भ्रष्ट हो चुके थे। काजी साहब का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं :—

"काजी मुलां भ्रमिया चल्या दुनी कै साथि।
दिल थै दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि॥"

क० ग्रं० पृ० ४२

इस प्रकार उन्होंने सिद्ध किया है—

"एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब संसारा।"[१]

कबीर के जीवन का लक्ष्य समाज को इन्हीं मिथ्याचारों और विचारों के

---

१ क० ग्रं० पृ० १२९

माया जाल से निकाल कर एक सरल और सहज धर्म का उपदेश देना था। यह सन्देश देने के लिये उन्हें ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त हुई थी।[१]

पारस्परिक संघर्ष :—कबीर का युग संघर्ष का युग था। एक जाति दूसरी जाति को दबाने की चेष्टा कर रही थी। दूसरी पराजित होने पर भी हार मानने को तैयार न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि विद्वेषाग्नि सदा भभका करती थी और धर्म की आड़ में इस अग्नि में नित्य प्रति होम हुआ करते थे। इन्हें देखकर कबीर की सरल और सात्विक आत्मा काँप उठी। उन्हें दोनों वर्गों के ठेकेदारों से इतनी अधिक घृणा हो गई कि यह भयंकर क्रान्ति के रूप में व्यक्त होने लगी। उन्होंने साफ-साफ कह दिया—

पंडित मुल्ला जो लिख दीया, छाँड़ि चले हम कछु न लीया॥

क० ग्रं० पृ० २६२

वे दोनों मार्गों का परित्याग कर एक ऐसे मध्य मार्ग को निकालने की चेष्टा में लग गये जो नवीन होते हुए भी प्राचीन से सम्बन्ध बनाये हुए था। इस प्रकार यह दोनों से सम्बद्ध होकर भी दोनों से विलक्षण भी था। उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता भी मिली। उनका सुधारवाद इसी मध्य मार्ग की आधार-भूमि पर खड़ा हुआ है। उन्होंने इसी भूमि पर दोनों को मिलाने की चेष्टा की थी।

कबीर का कार्य :—सदाचरण प्रिय कबीर अपने युग के सबसे बड़े साम्यवादी नेता थे। उनकी साम्यवादी प्रकृति उनके युग की ही विषमताओं की प्रतिक्रिया का परिणाम थी। युगीय परिस्थितियों में हम दिखला चुके हैं कि कबीर का युग विषमता का युग था। जीवन में, देश में, धर्म में, समाज में भयंकर विषमतायें बढ़ती चली जा रही थीं। साम्यवादी कबीर भला इनको कैसे सहन कर सकते थे। वह उन विषमताओं रूपी कूड़ा करकट को दर्शन धर्म और समाज क्षेत्र से हटाने में लग गये। इस प्रकार स्पष्ट है कि यद्यपि कबीर का लक्ष्य सुधार

१ "मोहि आग्या दई दयाल दयाकरि काहू कू समझाइ।
कहै कबीर मैं कहि कहि हास्यौ, अब मोहिं दोस न लाइ॥"

क० ग्रं० पृ० १९६

करना न था किन्तु युगीय परिस्थितियों ने ऐसी बातें करने के लिये बाध्य किया जो उन्हें अब सुधारक की पदवी दिलाने के लिये पर्याप्त समझी जा सकती हैं।

दर्शन क्षेत्र में :—यद्यपि भारत में दर्शन धर्म का ही अंग माना जाता है, किन्तु विवेचन की सुविधा के लिये हमने उसे धर्म से प्रायः अलग ही रक्खा है क्योंकि उसका सम्बन्ध तत्त्व विवेचन से है। प्रायः दार्शनिकों ने तत्त्व विवेचन में बुद्धिमूलक तर्क को ही प्रधानता दी है। भारत में ही अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि विविध दर्शन पद्धतियों का विकास और उदय तर्क के बल पर ही हुआ है। यद्यपि वेदान्त सदैव तर्क के विरुद्ध रहा है। वेदान्त सूत्र और उपनिषद् बराबर तर्क की अप्रतिष्ठा घोषित करते रहे हैं। उन्हीं के समान कबीर ने स्पष्ट कह दिया कि जो तर्क के बल पर तत्त्व की द्वैतता सिद्ध करना चाहते हैं उनकी बुद्धि बड़ी स्थूल है।[1] यह तो हुई दर्शन क्षेत्र की पहली सुधारात्मक विशेषता। उस क्षेत्र की दूसरी विशेषता तत्त्व-स्वरूप-निरूपण सम्बन्धी है। तत्त्व-निरूपण में उन्होंने अनुभूति को विशेष महत्त्व दिया है। उनके तत्त्व-निरूपण में व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ी है। इससे एक ओर तो वे वेद सम्मत बने रहते हैं, दूसरी ओर एकेश्वरवाद के द्वारा मुसलमानों से सम्बन्ध बनाये रखते हैं। आपने विलक्षणवाद का पल्ला यहाँ भी नहीं छोड़ा है। वे तत्त्व को हिन्दू और मुसलमान दोनों के उपास्यों से विलक्षण घोषित करते हैं। तत्त्व-निरूपण क्षेत्र की यही मौलिकता उन्हें दार्शनिक सुधारवादी का पद दे सकती है।

धर्म क्षेत्र में :—समाज की स्थिति को सुस्थिर बनाये रखने वाला "तत्त्व धर्म" है।[2] यों तो धर्म शब्द बड़ा व्यापक है किन्तु यहाँ पर उसका प्रयोग लेखक लोक प्रचलित संकुचित अर्थ में ही कर रहा है। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज, उपासना विधि और साधना-पद्धतियाँ आती हैं। कबीर का युग अन्धानुसरण एवं अंध विश्वास का युग था। लोग धर्म का पालन

---

१ क० ग्रं० पृ० २०७

२ महाभारत कर्णपर्व ६६, ५६

हृदय से नहीं, भय से किया करते थे। यह कबीर ने अपनी एक उक्ति में बतलाया भी है।

हम धार्मिक विचारों वाले प्रकरण में विस्तार से दिखला चुके हैं कि उस क्षेत्र में कबीर ने क्या कार्य किया था। यहाँ पर इस प्रसङ्ग में उन्हीं का थोड़ा पुनः संकेत कर रहे हैं। कबीर को धर्म में जप, तप, ज्ञान, ध्यान, पूजा आचार आदि सब व्यर्थ लगते थे। इसीलिये उन्होंने उनका सब प्रकार से खंडन किया है। यह खंडन किसी वर्ग विशेष तक ही सीमित नहीं है। मिथ्याचार उन्हें जहाँ कहीं भी दिखाई दिये, उनका उन्होंने डटकर विरोध किया है। उस समय के प्रमुख धर्म हिन्दू और इस्लाम थे। इन दोनों धर्मों में अनेक मिथ्या वाह्याचार प्रचलित हो चले थे। उन्होंने सबका खंडन किया। एक ओर तो वह हिन्दुओं के जप तप, सन्ध्या बन्दन, माला फेरना, तीर्थ व्रत, बलि, तिलक आदि का खंडन करते थे[1], दूसरी ओर मुसलमानों की नमाज, रोजा, हलाल आदि की खिल्ली भी उड़ाते थे।[2] कभी-कभी तो वाह्याचारों के प्रचारकों पर इतना अधिक क्रुद्ध हो जाते थे कि कटूक्तियों की वर्षा करने लगते थे[3], किन्तु ऐसा उन्होंने किसी द्वेष भावना

---

१ (क) हरि बिन झूठे सब व्यौहार, केते कोउ करो गंवार,
झूठा जप तप झूठा ज्ञान, राम नाम बिन झूठा ध्यान।
विधि न खेद पूजा आचार, सब दरिया में वार न पार।
इन्द्री स्वारथ मन के स्वाद, जहाँ साँच तहाँ माण्डे वाद"

क० ग्रं० पृ० १७४

(ख) "क्या जप क्या तप संयमी क्या व्रत क्या अस्नान,
जब लगि मुक्ति न जानिये भाव भक्ति भगवान।"

क० ग्रं० पृ० २२१

२ "जोरी करि जिवहै करि करते हैं जो हलाल,
जब दफ्तर देखेगा दई तब ह्वैगा कौन हवाल।"

क० ग्रं० पृ० ४२

३ "पांडे न करसि वाद विवाद" इत्यादि क० ग्रं० पृ० १७२
"मीया तुमसो बोल्या नहि वणि आवै"

इत्यादि क० ग्रं० पृ० १७४

से नहीं किया है। उनकी इस उग्रता के मूल में उनकी सत्यनिष्ठा छिपी है, क्योंकि उनका कहना है "जहाँ साँच तह माडैं बाद।" इन खंडनों के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की है, वह यह कि वे अधिकतर बुद्धिवाद पर आश्रित हैं। उनके खण्डन प्रायः सतर्क किए गए हैं। देखिए वे आडम्बरियों से प्रश्न करते हैं :—

"जो रे खुदाय मसीत वसतु है, अवर मुलुक किही केरा।
हिंदू मूरति नाम निवासी, दुहमति तत्तु न हेरा।

क० ग्रं० पृ० २६७

कहीं-कहीं पर तर्क बहुत ही अधिक बुद्धिवादी हैं। वे कहते हैं :—

"नागें फिरें जोग जे होई बन का मृग मुकति गया कोई।
मूंड मुड़ाये जो सिधि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहुँची कोई॥"

क० ग्रं० पृ० १३०

कभी-कभी तो वे आडम्बरियों से बड़ी सहानुभूति के साथ पूछते हैं कि वे किस विचार से वाह्य पूजा में संलग्न हैं। वे उन्हें बतलाते हैं वास्तव में आत्मा ही ब्रह्म है। उसमें विना विश्वास किये हुए फूल पत्र चढ़ाना अधर्म है।[1]

उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के वाह्याचारों का[2] ही खण्डन नहीं किया है अवधूतों और जैनों[3] की भी खबर ली है। अवधूत ही नहीं वैष्णवों को भी

---

१ कौन बिचारि करत हौ पूजा, आतम राम अवर नहिं दूजा।
बिन प्रतीतैं पाती तोड़ै, ज्ञान बिना देवल सिर फोड़ै॥

क० ग्रं० पृ० १३१

२ अवधू कामधेनु गहि बाधी रे।
भांडा भजन करै सबहिन का, कछू न सूझै आंधी रे।
जो ब्यावै तो दूध न देई, ग्याभण अमृत सरवै॥" इत्यादि

क० ग्रं० पृ० १६७

३ "मन मथ करम करैं असरारा कलपत बिन्द धसै तिहि द्वारा।
ताकी हत्या होइ अदभूता षट दरसन में जैन बिगूता॥"

क० ग्रं० पृ० २४०

जिनको वे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, उनकी आडम्बर प्रियता के लिये लज्जित किया है।[1]

वाह्याडम्बरों का विरोध कबीर ने खण्डनात्मक शैली में ही नहीं किया है, उपदेशात्मक शैली में भी किया है। ऐसे स्थलों पर वे उपदेशक और गुरु रूप में दिखलाई पड़ते हैं। देखिये जोगी को कैसा उपदेश दे रहे हैं :—

"आसण पवन किये दृढ़ रहु रे मन का मैल छाँड़ि दे बौरे ॥"

क० ग्रं० पृ० २०७

कबीर ने केवल वाह्याचारों और वेशाडम्बर का ही खण्डन नहीं किया है, भिन्न-भिन्न प्रकार के साधकों को उनकी सच्ची साधना तथा धर्म का भी उपदेश दिया है। इस प्रकार के उपदेश देते समय उन्होंने किसी प्रकार की भेद भावना नहीं रक्खी है। भक्त को वे राम की पूजा और सद्गुरु की सेवा करने का आदेश करते हैं तथा उसे मिथ्या पाखण्ड से बचने की सलाह देते हैं।[2] इसी प्रकार जोगी को उसकी साधना का सच्चा स्वरूप समझाते हैं। धर्म, सत्य आदि का उपदेश देते हैं और पाखण्ड एवं काम, क्रोधादि से दूर रहने का आदेश देते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण आदि की भी उन्होंने अपनी अलग व्याख्या दी है :—

"सो हिंदू सो मुसलमान जाका दुरुस रहे इमान।
सो ब्राह्मन जो कथै ब्रह्म-गियान काजी सो जो जानै रहिमान ॥"

---

१ "बैसनों भया तौ क्या भया, बूझा नहीं विवेक,
छापा तिलक बनाई करि, दग्ध्या लोक अनेक।"

क० ग्रं० पृ० ४६

२ "सति राम सद्गुरु की सेवा, पुजहु राम निरंजन देवा ॥टेक॥
जल के मज्जन जो गति होई मीना नित ही न्हावै।
जैसा मीना तैसा नरा, फिरि फिरि जोनी आवै ॥" इत्यादि

क० ग्रं० पृ० २०४

कबीर की बहुत सी सुधारात्मक उक्तियाँ उपदेश[1], नीति भर्त्सना[2] या आत्मबोध[3] अन्य आदि विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं। कुछ सुधारात्मक उक्तियाँ तो सिद्धान्त कथन के रूप में दिखलाई पड़ती हैं।[4]

समाज क्षेत्र में :—समाज क्षेत्र में कबीर की सुधार भावना अपने क्रांति-पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हुई है। समाज क्षेत्र में जो सबसे बड़ा कार्य करना चाहा था वह था साम्यवाद की प्रतिष्ठा। कबीर समाज में ऊँच, नीच, ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि के भेद भाव को सहन नहीं कर पाते थे। उन्होंने इस भेद भावना के आश्रय देने वालों की अच्छी खबर ली है, और दृढ़ता से उसकी निरर्थकता सिद्ध कर दी है। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया है :—

"भूला भरमि परै जिनि कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई ॥"

क० ग्रं० पृ० १६८

इसी प्रकार की उक्तियाँ शूद्र के सम्बन्ध में कहते हैं :—

"एक ज्योति से सब उत्पना, कौन बाम्हन कौन सूदा ॥"

उनका दृढ़ विश्वास था कि शांति तभी मिल सकती है जब मनुष्य में समदृष्टि आ जाती है। वे गीता के समान कहते हैं :—

"लोहा कंचन सम करि जानहिं, ते मूरत भगवाना।"

क० ग्रं० पृ० १५०

---

१ "कबीर कहा गरबियौ देही देखि सुरंग।
बीछुड़िया मिलिवो नहीं, ज्यों केंचुली भुजंग ॥" क० ग्रं० पृ० २१

२ "हरि को नाम न लेहि गँवारा फिर क्या सोवैं बारम्बार।"
क० ग्रं० पृ० १७७

३ क० ग्रं० पृ० १७८, पद १६४, और भी २६० पद।

४ "जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तत कथ्यो गियानी ॥"
क० ग्रं० पृ० १०१

इतना ही नहीं अन्त में उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया है कि कबीर के उद्धार का मुख्य कारण साम्यदृष्टि ही है :—

"ऊँच नीच सम सरिया, ताथै जन कबीर निसतरिया ॥"

क० ग्रं० पृ० १५०

कबीर की वाणी ने समाज क्षेत्र में एक और बहुत बड़ा कार्य किया था। वह है सात्विकता और आचरण-प्रवणता का प्रचार। कबीर के युग में वासना अपना भयंकर रूप धारण करती जा रही थी। कबीर को उसका डटकर सामना करना पड़ा था। उसके लिये उन्हें स्त्रियों की निन्दा करनी पड़ी। ब्रह्मचर्य का उपदेश देना पड़ा। इसके अतिरिक्त उन्होंने मांस-भक्षण[1], मद्यपान आदि का भी निषेध किया। उन्होंने समाज में सात्विक वृत्तियों के प्रचार के लिये बड़ा तप किया था। वे क्रोध, तृष्णा, हिंसा, कपट आदि जितनी कुप्रवृत्तियाँ हैं उन सबके कट्टर विरोधी थे।

जीवन की सरलता[2], हृदय की निष्कपटता[3], मन की शुद्धता[4] आदि का प्रचार करना कबीर के सामाजिक सुधार का प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने सर्वत्र इन पर जोर दिया है। कभी-कभी तो कबीर का सुधारक और उपदेशक रूप बहुत स्पष्ट हो गया है। यह उक्ति देखिए :—

"चलो विचारी रहौ संभारी, कहता हूँ जू पुकारी ॥"

उन्होंने मिथ्या कर्म कांड का भी बड़ा विरोध किया है। उनका अटल विश्वास था कि :—

---

१ संत कबीर श्लोक २३३

२ "हरि न मिलै बिन हिरदै सूध।" क० ग्रं० पृ०

३ "साईं सेति साच चल औरों सों सुधभाय।
भावै लाम्बे केस कर भावै घुरड़ि मुड़ाय ॥" क० ग्रं० पृ० ४

४ "जब लग मनहि विकारा, तब लगि नहिं छूटै संसारा।
जब मन निर्मल करि जाना तब निरमल मांहि समाना ॥"

क० ग्रं० पृ० १७८

"कूरणी करनी राम न पावै, साँच टिकैं निज रूप दिखावै ।"

क० ग्रं० पृ० १५६

धर्म की बहुत सी बातें लोकाचार, वेदाचार बनकर कुप्रथाओं के रूप में परिणत हो जाती हैं। इसलिये कबीर लोकाचार और वेदाचार का पालन करना उचित नहीं समझते थे। कबीर ने इन सब का खण्डन किया है।

ताथे कहिए लोकाचार बेद कतेब कथै व्योहार।
जारि बारि करि आवे देहा, मूआ पीछे प्रीति सनेहा॥
जीवत पित्रहि मारै डंडा, मूआ पित्र लै घालै गंगा॥

क० ग्रं० पृ० २०७

मतवाद :—कबीर की इस प्रकार की खंडनात्मक प्रवृत्ति को देखकर बहुत से लोग उन्हें अराजकतावादी मानने के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि कबीर ने पक्षपात पूर्ण दुर्भावनाओं से प्रेरित होकर उचित अनुचित सभी प्रकार की धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का मूलोच्छेदन करने का प्रयत्न किया था। कबीर ऐसे सत्यान्वेषी महात्मा पर इस प्रकार का दोषारोपण करना उचित नहीं। क्राप्टकिन[1] नामक विद्वान् ने कहा है कि मनुष्य की यह साधारण प्रवृत्ति है कि वह समाज की उपयोगी प्रथाओं और संस्थाओं को नष्ट नहीं करना चाहता। जब साधारण मानव के सम्बन्ध में इस प्रकार का मनोवैज्ञानिक सिद्धांत स्थिर किया जा चुका है तो कबीर ऐसे सन्त और लोककल्याण विधायक महात्मा ने पक्षपात पूर्ण दुर्भावनाओं से प्रेरित होकर सामाजिक और धार्मिक व्यवस्थाओं की कटु आलोचना की थी, ये बात समझ में नहीं आती। कबीर को अराजकतावादी तो किसी प्रकार से नहीं कह सकते। अराजकतावादियों का लक्ष्य सब प्रकार की राजकीय व्यवस्थाओं का विनाश करना होता है।[2] कबीर ने कभी इस प्रकार का प्रयत्न नहीं किया था। हाँ, सिकन्दर लोदी वाली किंवदन्ती के आधार पर यदि यह कहना चाहें तो इतना कह सकते हैं कि वे आध्यात्मिक क्षेत्र

---

१ फ्रैंसिस काकर—रिसेन्ट पोलिटीकल थाट—पृ० २१६
२ फ्रैंसिस काकर—रिसेन्ट पोलिटीकल थाट—पृ० १६२

में राजकीय सत्ता के प्रभुत्व को अस्वीकार करते थे, उसका विध्वंस करने का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया था। उन्हें धार्मिक और सामाजिक अराजकतावादी भी नहीं कह सकते, क्योंकि उनकी विध्वंसात्मक प्रवृत्ति रचनात्मक भावना से प्रेरित हुई थी। उसके भी मूल में सत्य निष्ठा काम कर रही थी। एक बात अवश्य उनमें अराजकतावादियों की दिखाई पड़ती है; वह है अन्धविश्वासों की अपेक्षा बुद्धिवादिता को महत्त्व देना।[1] किंतु कबीर में अराजकतावादियों की यह प्रवृत्ति भी अपनी विचारात्मक विशेषता से विशिष्ट होकर उदय हुई थी। सच तो यह है कि उन्हें हम किसी राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिकवाद के कटघरे में बन्द नहीं कर सकते। वे क्रान्तिदर्शी महात्मा थे जिनके जीवन का लक्ष्य साम्यवाद की प्रतिष्ठा करना था। किन्तु इनका साम्यवाद भी अपनी अलग विशेषताएँ रखता है। हीगेल के डायलेक्टिकल आइडियलिज्म और कार्ल-मार्क्स के डायलेक्टिकल मैटीरियलिज्म से कबीर का साम्यवाद बिलकुल भिन्न है। इसे हम सामाजिक और आध्यात्मिक साम्यवाद कह सकते हैं। किन्तु यह प्लेटो के सामाजिक साम्यवाद और मूर के नैतिक आदर्शवादी साम्यवादों से भी भिन्न है। प्लेटो का सामाजिक साम्यवाद केवल स्त्री और बच्चों का साम्यवाद था।[2] कबीर ने मानव-मात्र के साम्य पर जोर दिया। अतः वह प्लेटो के सामाजिक साम्यवाद से कहीं ऊँची वस्तु है। कबीर का आध्यात्मिक साम्यवाद मूर[3] के नैतिक आदर्शवादी साम्यवाद से भी मेल नहीं खाता। प्लेटो और मूर ने उन आदर्शवादी साम्यवादों का वर्णन किया था, जिसे कार्यरूप में परिणत करना असम्भव ही समझा जाता है। किन्तु कबीर ने अपने सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक साम्यवाद को अपने जीवन में चरितार्थ होते देखा था। उनके मत के जितने अनुयायी थे, वे सब सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से समान थे। कबीर उनमें तथा अन्य मानवों में किसी प्रकार का भेद नहीं मानते थे। कबीर का साम्यवाद एक ओर तो इसलामिक साम्यवाद से प्रभावित प्रतीत होता है और

---

१ देखिए अनार्किस्ट कम्यूनिज्म—पृ० ४

२ कोकर—रीडिंग्स इन पोलिटिकल फिलोसफी—पृ० २६

३ जार्ज एच० सेबाइन—ए हिस्ट्री आफ पोलिटिकल थ्योरी— पृ० ३७०-३८१

दूसरी हिन्दुओं के अद्वैतवादी आध्यात्मिक साम्यवाद से भी अनुप्राणित है। उनका साम्यवाद इस्लामिक साम्यवाद की व्यवहारिकता और भारतीय अद्वैत-वाद की ज्ञानात्मकता के सुन्दर समन्वय से बना था। इस दृष्टि से उनका साम्य-वाद अपनी अलग विशेषताओं से विशिष्ट होने के कारण पूर्ण मौलिक है।

इस प्रकार कबीर की सद्समाज प्रियता उनकी विचारधारा में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित दिखलाई पड़ती है। उन्होंने परम्परागत अन्धविश्वासों, प्रथाओं और संस्थाओं का मूलोच्छेदन करके धर्म दर्शन और समाज सभी क्षेत्रों में बुद्धिवादी साम्यवाद प्रतिष्ठित किया था। अपने लक्ष्य की पूर्ति उन्होंने, इसमें कोई भी सन्देह नहीं, बड़ी कटुता के साथ की है। यह कटुता कहीं-कहीं अपने अतिरूप में दिखलाई पड़ती है। इनको देखकर ऐसा मालूम होता है कि कबीर किसी प्रकार की पक्षपात पूर्ण दुर्भावनाओं से प्रेरित थे, किन्तु हमारी समझ में इस प्रकार की कटु आलोचनाओं के मूल में उनकी अक्खड़ प्रकृति बहुत थी। पक्षपात-पूर्णता बहुत कम। वास्तव में उनका साम्यवाद भारत के लिये एक मौलिक देन है। इसी के आधार पर चलकर आज भी भारत का उद्धार हो सकता है।

छठा प्रकरण

कबीर के विचारों की साहित्यिकता और अभिव्यक्ति

काव्य का स्वरूप निरूपण—अभिव्यक्ति के विविध प्रसाधन—विविध दृष्टियों से कबीर के काव्य की मीमांसा।

कबीर के विचारों की साहित्यकता और अभिव्यक्ति

साहित्य शब्द काव्य का पर्यायवाची भी है।[१] यहाँ पर हमने उसे उसी अर्थ में लिया है। काव्य स्वरूप के सम्बन्ध में विविध मत प्रचलित हैं। कुछ लोग तो उसे शब्दनिष्ठ मानते हैं और कुछ उसे शब्द और अर्थ उभयनिष्ठ मानते हैं। शब्दनिष्ठ वालों का कहना है—"औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः"। इस मीमांसा सूत्र से शब्द और अर्थ का स्वाभाविक सम्बन्ध रहता है। अतएव काव्य शब्दनिष्ठ कहने से उसकी अर्थनिष्ठता स्वयं प्रकट हो जाती है। शब्दार्थवादी व्यासज्य वृत्ति से काव्य को शब्द और अर्थ से सम्बन्धित बतलाते हैं। शब्द और अर्थ के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न विद्वानों ने काव्य के कुछ और भी उपादान माने हैं। नाट्य शास्त्र[२] में उनकी निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई गई हैं :—

---

१ निम्नलिखित आचार्यों ने साहित्य, काव्य के अर्थ में प्रयुक्त शब्द लिया है :—

(क) पञ्चमी साहित्य विद्या इति यावरीयः—काव्य मीमांसा—पृ० ४

(ख) और देखिए—वक्रोक्ति जीवित—१/१७

२ नाट्य शास्त्र—१६/११८

१ मृदु और ललित पदों से युक्त हों।
२ उसमें शब्द और अर्थ दोनों का ही सौष्ठव हो किन्तु ये गूढ़ न हों।
३ वह सरल और बोधगम्य हों।
४ युक्तियुक्त भी हो।
५ नृत्यादि में उसका उपयोग भी किया जा सके।
६ अग्निपुराण[१] में काव्य परिभाषा में शब्दार्थ को महत्त्व न देकर पदावली को महत्त्व दिया है। उसके अनुसार सत् काव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ और होनी चाहिए :—

१ उसमें गुणों का भी समावेश हो।
२ दोष रहित हो।
३ उसमें अभीष्ट अर्थ का संक्षेप में कथन किया गया हो।

भामह ने शब्दार्थ के अतिरिक्त काव्य की किन्हीं विशेषताओं का उल्लेख नहीं किया है। वामन ने काव्य में सौंदर्य को महत्त्व देते हुए लिखा है कि वह गुण अलंकार सहित होता है।[२] रुद्रट ने भामह की ही परिभाषा दोहराई है।[३] कुन्तल[४] ने काव्य की अवस्थित वैदग्ध्य भंगी भणित में मानी है। सरस्वती कण्ठाभरण[५] में भोज ने काव्य के गुणों और अलंकारों के अस्तित्व और दोषों के प्रभाव पर बल दिया है। सबसे महत्त्वपूर्ण परिभाषा मम्मट की है :—

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि"—अर्थात् शब्द और अर्थ का वह समन्वित रूप जो दोष रहित हो और गुण अलंकार सहित हो

---

१ अग्नि पुराण—३३७/२-३
२ काव्यालंकार सूत्र—१/१/१,२,३
३ काव्यालंकार—२/१
४ वक्रोक्ति जीवित—१/७
५ सरस्वती कण्ठाभरण।

तथा कहीं अलंकार स्पष्ट भी न हो, काव्य होता है। अधिकांश परवर्ती आचार्यों[1] ने इसका ही अनुकरण किया है। साथ ही जयदेव, विश्वनाथ और जगन्नाथ आदि आचार्यों ने उसकी कटु आलोचना की है। "अदोषौ" पर आक्षेप करते हुए विश्वनाथ ने लिखा कि काव्य सर्वदा दोष शून्य कभी नहीं हो सकता। इसके प्रमाण में उन्होंने ध्वन्यालोक में दिए गए एक श्लोक को उद्धृत कर यह सिद्ध किया है कि उसमें अभिधेयाविमर्श दोष है। ध्वनिकार ने उसे श्रेष्ठ काव्य भी माना है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि मम्मट ने 'दोष' शब्द का प्रयोग उद्देश्य और प्रतीप के प्रतिबन्ध के अर्थ में किया है। यदि काव्य की लक्ष्य सिद्धि में बाधा न पड़ती हो तो दोष उसके काव्यत्व में बाधक नहीं हो सकते शब्दार्थौ पर पण्डित-राज जगन्नाथ ने आपत्ति प्रकट की है। उनका कहना है कि लोक में प्रायः ऐसा सुना जाता है कि काव्य पढ़ा किन्तु समझ में नहीं आया। इससे स्पष्ट है कि काव्य से उसका अर्थ भिन्न होता है। मम्मट के अनुयायियों ने इसका खण्डन महाभाष्य के "वह अध्ययन किया जाता है और समझा भी जाता है" इस वाक्य से किया है। इससे काव्य शब्द और अर्थ उभय-गत सिद्ध हो जाता है। "सगुणौ" पर विश्वनाथ की आलोचना है। उनका तर्क है कि मम्मट गुणों को रस का धर्म मानते हैं। फिर उन्होंने इसे शब्दार्थौ का विशेषण क्यों बनाया? अतः 'सगुणौ' का प्रयोग यहाँ पर अनुचित है। उनके इस भ्रम का निवारण प्रदीपकार ने किया है। उसने स्पष्ट लिखा है कि

---

१ (i) हेमचन्द्र के काव्यानुशासन की काव्य परिभाषा बिलकुल मिलती जुलती है :—
"अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्" ॥ काव्यानुशासन—प्रथम अध्याय।
(ii) विद्यानाथ ने अपने प्रतापरुद्र यशोभूषण में—
"गुणालंकार सहितौ शब्दार्थौ दोष वर्जितौ काव्यम्"।
(iii) वाग्भट्ट का वाग्भट्टालंकार—देखिये—१/२।
(iv) द्वितीय वाग्भट्ट का काव्यानुशासन देखिए—२ में ऐसी परिभाषा दी है।

आचार्य ने सगुणौ का प्रयोग गुणव्यंजक शब्दार्थ के लिये किया है। "अनलंकृती पुनः क्वापि" पर जयदेव, विश्वनाथ और जगन्नाथ तीनों ने आक्षेप किया है। किन्तु मम्मट ने "अनलंकृती" का प्रयोग अस्फुट अलङ्कारों के अर्थ में किया है। अलंकारों के अभाव के अर्थ में नहीं। इस प्रकार भारत में काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में बड़ा शास्त्रार्थ होता रहा है। काव्य के प्राण के सम्बन्ध में भी आचार्यों में मतैक्य नहीं है। नाट्य शास्त्र में रस को काव्य का प्राण ध्वनित किया गया है। भामह, उद्‌भट, रुद्रट और दंडी आदि ने अलंकारों को महत्त्व दिया है। वामन और मुकुल भट्ट रीति एवं सौन्दर्यवादी हैं। कुंतल वक्रोक्ति को ही काव्य का प्राणभूत तत्त्व मानते हैं। आनन्द-वर्धन ने ध्वनिवाद का प्रवर्तन किया। अभिनव गुप्त ने काव्य में 'चारुता प्रतीति' को बहुत आवश्यक माना है। क्षेमेन्द्र औचित्य को काव्य का अनिवार्य अंग मानते हैं। कुछ अन्य आचार्यों ने काव्य में चमत्कार का होना परमापेक्षित सिद्ध किया है। अत्यन्त संक्षेप में भारतीय काव्य स्वरूप सम्बन्धी प्रमुख मत यही है।

पाश्चात्य-देशों में भी काव्य स्वरूप के सम्बन्ध में अच्छी चर्चा हुई है। वहाँ अधिकतर काव्य के चार अंगों का ही निर्देश किया गया है—बुद्धितत्त्व, भावतत्त्व, कल्पना तत्त्व और शैली तत्त्व। किसी विद्वान् ने बुद्धि तत्त्व को महत्त्व दिया है किसी ने भावतत्त्व को। कोई कल्पना को आवश्यक समझता है तो कोई शैली को ही काव्य का प्राण मानता है। पाश्चात्य विद्वानों ने जो काव्य की परिभाषाएँ दी हैं वह प्रायः एकांगी हैं। उनसे काव्य का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। हमारी समझ में उपर्युक्त प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वान् काव्य के वास्तविक स्वरूप को समझने में असफल रहे हैं। भारतीय आचार्यों में ध्वनिकार ही एक ऐसे आचार्य हैं, जिन्हें काव्य स्वरूप का कुछ ज्ञान था। काव्य वास्तव में एक अनिर्वचनीय विशेषता रखता है। आनन्दवर्धन ने उस अनिर्वचनीय तत्त्व का संकेत इस प्रकार किया है :—

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनां।[1]
एतत् प्रसिद्धायवातिरिक्तं आभाति लावण्यनि युवांगनासु॥"

१ ध्वन्यालोक १/४

अर्थात् जिस प्रकार स्त्रियों के रूप में अवयव सम्बन्धी सौन्दर्य के अतिरिक्त लावण्य नाम की एक अनिर्वचनीय वस्तु होती है, उसी प्रकार महाकवियों की वाणी में भी एक प्रतीयमान अनिर्वचनीय सौन्दर्य होता है। यह अनिर्वचनीय तत्त्व काव्य में कहाँ से आता है, इस बात पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। ध्वनिकार ने इस तत्त्व की उत्पत्ति ध्वनि से मानी है। हमारी समझ में काव्य में यह अलौकिक अनिर्वचनीयता तभी आ सकती है जब कि उसकी अभिव्यक्ति सीधी आत्मा से हो। महाकवि भवभूति ने सम्भवतः इसीलिये वाणी या काव्य को अमृतरूपा कहते हुए आत्मा की कला माना है।[1] हमारी समझ में सच्चा काव्य वही है जिसमें आत्मतत्त्व की अनुभूति होती हो। अमृतरूपा भी वही काव्य हो सकेगा जिसमें सच्चिदानन्द स्वरूपिणी आत्मा की अभिव्यक्ति होगी। ऐसे काव्य के लिये छन्द, गुण, दोष, अलंकार आदि बाह्य विधानों की अपेक्षा नहीं होती। उसमें आत्मा के दिव्य और अनिर्वचनीय आनन्द रस का क्षरण होता है, जिसकी अनुभूति कर जड़ चेतन हो उठते हैं और चेतन में तन्मय हो जाते हैं। संत कवियों के काव्य की परीक्षा इसी कसौटी पर की जानी चाहिए। उनकी वाणी में गुण, अलंकार, छन्द, दोष आदि विविध काव्य के बाह्य उपादानों की खोज करना व्यर्थ है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इनके काव्य में ये तत्त्व होते ही नहीं हैं। सच तो यह है कि इन बाह्य तत्त्वों की भी अत्यन्त स्वाभाविक उद्भूति एवं अवस्थिति इन्हीं की बानियों में मिलती है। इनकी कविता देवी बन-खंड के सहज सुन्दर सुमनों से शोभायमान रहती है। लौकिक कवियों की कविता कामिनी के समान कृत्रिम एवं भार रूप व्यर्थ के अलंकारों के इन्द्रजाल से नहीं। इस प्रकार हम कवियों को दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—लौकिक और आध्यात्मिक। लौकिक कवि उन्हें कहेंगे जिनमें काव्य शास्त्र में वर्णित गुण, दोष और अलंकार आदि की योजना भी करना होता है। आध्यात्मिक कवि इनसे भिन्न होते हैं। उनके काव्य में कृत्रिम गुण, अलंकार, छन्द आदि का चमत्कार नहीं होता। उनमें आत्मा की सुवासनी अभिव्यक्ति मिलती है। उसमें अज्ञान से विमूढ़ित मानव के उद्बोधन की अलौकिक क्षमता होती है। आत्मा

---

१ उत्तर रामचरित १/१

और परमात्मा के विविध सम्बन्धों की भावमयी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही उनके काव्य में विषय रूप से व्याप्त रहती है। महात्मा कबीर ऐसे ही श्रेष्ठ आध्यात्मिक कवि थे। उनके काव्य में हमें एक अलौकिक आध्यात्मिक आनन्द मिलता है। आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों के रहस्यमय वर्णन मिलते हैं। इनका काव्य रामरसायन से सराबोर है। इस रसायन की समता संसार के किसी रसायन से नहीं की जा सकती।[1] उसका पान करते ही समस्त भावनाएँ, कामनाएँ और वासनाएँ तृप्त होकर शान्त होने लगती हैं और धीरे-धीरे निर्वाण की परिस्थिति को प्राप्त हो जाती हैं :—

"कबीर हरि रस यों पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़ई चाक॥"

क० ग्रं० पृ० १६

किन्तु इस रसायन का पीना ही बहुत कठिन है। इसे पीने के लिये बड़ा कठिन त्याग करना पड़ता है।

"राम रसाइन प्रेमरस, पोवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, माँगै सीस कलाल। क० ग्रं० पृ० १६

इस रामरस का पान करके साधक आनन्द से उन्मत्त हो जाता है और 'विगलित वेद्यान्तर' की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। कबीर का सारा काव्य इसी रामरस से सराबोर है।

कबीर के काव्य के वर्ण्य विषय आध्यात्मिक विचार हैं, लौकिक भाव नहीं। आधुनिक विचारों की अभिव्यक्ति भक्ति-क्षेत्र में दार्शनिकों की शुष्क शैली में नहीं की जा सकती। इसीलिये भक्त कवि अपने आध्यात्मिक विचारों को विविध सहायक प्रसाधनों के सहारे व्यक्त करते हैं। आत्मा का परमात्मा के प्रति जो भक्ति सम्बन्ध है उसकी अभिव्यक्ति लौकिक भाषा में नहीं हो सकती। भावुक भक्तों ने इसीलिये अपने आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त करने के लिये प्रतीकों, अन्योक्तियों, समासोक्तियों, रूपकों और उलटवासियों आदि की शरण ली

---

१ क० ग्रं० पृ० १७, साखी ८

है। सन्त कवियों ने ही ऐसा नहीं किया है, अनादि काल से सभी भावुक कवि ऐसा करते चले आ रहे हैं। संहिताओं और उपनिषदों आदि में इन सबके उदाहरण मिलते हैं। महात्मा कबीर ने भी अपनी आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिये इन सभी सहायक प्रसाधनों का आश्रय लिया है। यहाँ हम क्रमशः एक-एक पर संक्षेप में संकेत कर देना चाहते हैं।

प्रतीक पद्धति वास्तव में बहुत प्राचीन है। आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति में वैदिक ऋषियों ने भी इसका आश्रय लिया था। बृहदारण्यकोपनिषद्[1] में ब्रह्म वर्णन सूर्य, चन्द्र आदि के प्रतीकों से किया गया है। वेदों में वर्णित कुछ विद्वान् सोम रस को निष्कलंक जान कर प्रतीक मानते हैं। भारत में प्रतीक पद्धति के विकास को सूफी की प्रतीक पद्धति से भी प्रेरणा मिली है। सूफी लोग अपने हृदय के अनन्य प्रेम को व्यक्त करने के लिये आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति के लिये दाम्पत्य प्रेम का प्रतीक कल्पित करते रहे हैं। भक्त लोग भगवान् के प्रति पिता और माता का सम्बन्ध सदैव से ही मानते आये हैं। कबीर सूफी साधना से प्रभावित कवि थे। इसीलिये उन्होंने ईश्वर के प्रति दाम्पत्य और वात्सल्य दोनों प्रकार के प्रतीकों को अपने काव्य में प्रश्रय दिया है। कहीं पर तो वे "हरि जननी मैं बालक तोरा" और कहीं पर "पिता हमारो बड़ु गुसाईं" और कहीं पर "हरि मेरा पीव मैं राम की बहुरिया"। दाम्पत्य प्रतीक के प्रयोग से शुद्ध आध्यात्मिक विचार मधुमयी कोमल भावनाओं के रूप में व्यक्त होते हैं, जिससे काव्य में एक अलौकिक आनन्द, एक दिव्य रस स्फुरित होने लगता है। दाम्पत्य प्रेम में विरह और मिलन की मधुर और कोमल परिस्थितियाँ आती हैं। लौकिक कवियों में इन परिस्थितियों के चित्रण वासना के उद्दीपक प्रतीत होते हैं और आध्यात्मिक कवियों में ये ही चित्र आत्मा की रसमयी अलौकिक अभिव्यक्ति में समर्थ होते हैं। कबीर ने आत्मा और परमात्मा के विरह और मिलन जनित अनेक मधुर चित्र दाम्पत्य प्रतीकों के ही सहारे व्यक्त किये हैं। रहस्य भावना का निरूपण करते समय हम इनका संकेत कर चुके हैं। यहाँ पर भी उनके काव्य के सात्विक आनन्द को स्पष्ट करने के लिये दो एक उदाहरण दे देना आवश्यक है :—

---

१ वृहद्—२/१

कबीर ने प्रतीक रूप में दाम्पत्य प्रेम का अच्छा वर्णन किया है। उनके इस दाम्पत्य प्रेम की सबसे प्रमुख विशेषता, पवित्रता, सात्विकता एवं आध्यात्मिकता है। उसमें विरह मिलन के मधुर चित्र भी चित्रित किए गए हैं किन्तु उसमें कहीं पर भी वासना की दुर्गन्ध नहीं आती। उनका दाम्पत्य सम्बन्ध सूफियों के दाम्पत्य सम्बन्ध से भिन्न है। सूफी लोगों ने अधिकतर प्रेमी और प्रेमिका के ही प्रतीक को महत्त्व दिया किन्तु कबीर का प्रेम पति-पत्नी का पवित्र प्रेम है जो कि शास्त्रीय विधि से विवाह हो जाने के पश्चात् उत्पन्न हुआ है। यह भी लौकिक विवाहमात्र नहीं है। आत्मा और परमात्मा का विवाह लौकिक हो भी कैसे सकता है। इस विवाह में साधक की आत्मा ही वधू है। स्वयं राम ही वर है। शरीर वेदिका है। ब्रह्मा जी पुरोहित हैं। तैंतीस करोड़ देवता और अट्ठासी हजार ऋषि इस सम्बन्ध के साक्षी बराती हैं। भला इस प्रेम से पवित्र विवाह कौन हो सकता। तभी तो इस विवाह से उद्‌भूत प्रेम के आदर्श सती और सूरा हैं। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर भी यदि आत्मा में किसी प्रकार का विकार शेष रह जाता है तो मिलन नहीं होता। इस परिस्थिति में आत्मा वधू किस प्रकार उद्विग्न और विह्वल हो उठती है। उसका एक चित्र देखिये :—

कियौ सिंगार मिलन के ताईं, हरि न मिले जगजीवन गुसांईं।
हरि मेरो पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया॥
धनि पिय एकै सङ्ग बसेरा, सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै, कहि कबीर फिर जनमि न आवै॥

क० ग्रं० पृ० २७७

जब आत्मारूपी वधू का परमात्मारूपी प्रियतम से इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर भी मिलन नहीं होता तभी वह तड़प कर पुकार उठती है :—

वै दिन कब आवहिंगे माय।
जा कारन हम देह धरी है मिलवो अंग लगाय॥

क० ग्रं० पृ० १६१

कबीर की रचनाओं में आध्यात्मिक प्रणय के ऐसे अनेक मनोरम चित्र मिलते हैं। इनसे इनके काव्य में एक प्रकार के आध्यात्मिक रस की वर्षा हो उठी है।

दाम्पत्य प्रतीकों के अतिरिक्त कबीर ने माता और पुत्र के प्रतीकों के सहारे भी अपनी भक्ति भावना व्यक्त की है। देखिये निम्नलिखिति पद में उन्होंने कितने विनम्र भाव से हरि रूपी जननी के प्रति आत्म निवेदन किया है :—

हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहैं न तेते ॥
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

क० ग्रं० पृ० १२३

यह तो मानवीय सम्बन्धों के प्रतीकों की बात हुई। कबीर ने कहीं-कहीं पर पशु और उसके स्वामी के प्रतीक भी कल्पित किये हैं। एक स्थल पर उन्होंने अपने को गोरू और भगवान् को ग्वाल के प्रतीकों से अभिव्यक्त किया है। कहीं एक दूसरे स्थल पर उन्होंने अपने को कुत्ता कहा है और राम को अपना स्वामी। इस प्रकार की प्रतीक योजना के सहारे वे अपने विनय भाव की अच्छी अभिव्यक्ति कर सके हैं। ऐसे स्थलों पर लक्षणा के सहारे भक्त और भगवान् का जो सम्बन्ध व्यक्त हुआ है वह कबीर की अनपायनी सेव्य सेवक भाव की भक्ति का द्योतक है। अपने को गोरू और कुत्ता कहकर उन्होंने लक्षणा के सहारे अपनी परवसता, निरीहता, जड़ता, अज्ञानता आदि विविध दुर्बलताओं की अभिव्यक्ति की है। जिस विनयभाव को तुलसी 'विनय पत्रिका' लिखकर भी न प्रकट कर सके, कबीर ने गोरू और कुत्ते के प्रतीक से प्रकट कर दिया है। इन विविध सम्बन्ध मूलक प्रतीकों के अतिरिक्त कबीर ने और भी कई प्रकार के प्रतीकों की योजना की है :—

(१) सांकेतिक प्रतीक।
(२) पारिभाषिक प्रतीक।

(३) संख्यामूलक प्रतीक ।

(४) रूपकात्मक प्रतीक ।

सांकेतिक प्रतीक :—नाथ पंथी योगियों में बहुत से सांकेतिक प्रतीक प्रचलित थे । गगन मंडल में वे ब्रह्म रन्ध्र का अर्थ लेते थे । बंकनाल सुषुम्ना की वाचक थी । इसी प्रकार के इनमें और भी बहुत से सांकेतिक प्रतीक प्रचलित थे । कबीर ने इन परम्परा से प्राप्त सांकेतिक प्रतीकों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया था । उन्होंने भी गगन मण्डल का प्रयोग ब्रह्म रन्ध्र के अर्थ में किया है । 'बंकनाल' का प्रयोग भी उन्हीं के अनुकरण पर सुषुम्ना के पर्याय के रूप में किया गया है ।

पारिभाषिक प्रतीक :—योगियों में बहुत से पारिभाषिक प्रतीक भी प्रचलित थे । हठयोग प्रदीपिका के इस श्लोक से यही बात प्रतीत होती है :—

इड़ा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी ।
इड़ा पिङ्गलयोर्मध्ये बालरंडा च कुण्डली ॥

यहाँ पर इड़ा नाड़ी के लिये गंगा और पिङ्गला के लिये यमुना और कुण्डलिनी शक्ति के लिये बालरंडा नाम के पारिभाषिक प्रतीक निश्चित किए गए हैं । कबीर ने इन पारिभाषिक प्रतीकों का नाथ पंथियों के ढङ्ग पर ही प्रयोग किया है । नाथ पंथियों में मूलाधार के लिये सूर्य और सहस्रार के अमृत तत्त्व के लिये चंद्र पारिभाषिक प्रतीक माने जाते हैं । कबीर इन पारिभाषिक प्रतीकों को योगियों के अर्थ में ही प्रयुक्त करते हैं । वे लिखते हैं :—

सूर्य समाणा चन्द में दुहूँ किया घर एक ।
मन कर चिंता तब भया कुछू पूर्वला लेख ॥

इसी प्रकार से और भी बहुत से पारिभाषिक प्रतीक कबीर की रचनाओं में ढूँढ़े जा सकते हैं ।

संख्यामूलक प्रतीक :—सिद्ध और नाथ पंथी योगी बहुत से संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग प्रतीकों के रूप में किया करते थे । कबीर ने उनकी इस

प्रवृत्ति को भी ज्यों के त्यों आत्मसात् किया था। कबीर ने भी बहुत से संख्या वाचक शब्दों का प्रयोग प्रतीकों के ही रूप में किया है। जैसे :—

चौसठ दीया जोय के चौदह चंदा मांहि।
तेहि घर किसका चानडो जेहि घर गोविंद नाहिं॥

यहाँ पर 'चौदह' शब्द १४ विद्याओं का और चौंसठ ६४ कलाओं का द्योतक है। इसी प्रकार से और भी संख्या मूलक प्रतीकों के प्रयोग पाए जाते हैं।

रूपात्मक प्रतीक :—कबीर में बहुत से ऐसे प्रतीकों की योजना मिलती है जो किसी रूपक विशेष के अंगों के लिये कल्पित किए गए हैं। ऐसे स्थलों पर रूपक योजना प्रतीकात्मक हो जाया करती है। कबीर के रूपकों का विवेचन करते समय इस बात को और स्पष्ट किया गया है।

उलटवासियाँ :—कबीर ने अपने विचार अधिकतर उलटवासियों में प्रकट किए हैं। इन उलटवासियों को उन्होंने उलटा वेद कहा है। उलटवासियों की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। स्वयं ऋग्वेद में उलटवासियों के ढंग की उक्तियाँ मिलती हैं। उसमें एक स्थल पर कहा गया है कि अग्नि अपनी माता को जन्म देता है :—

क इमं वो नृण्य माचिकेत, वत्सो मातृजनयति सुधाभिः[1]

अर्थात् बन आदि में अन्तर्हित अग्नि को कौन जानता है? पुत्र होकर भी अग्नि अपनी माताओं को हव्य द्वारा जन्म देते हैं। वेदों में वर्णित, अदिति की कथा भी उलटवासी के रूप में ही व्यक्त हुई है। उलटवासियों के ढंग की बहुत सी उक्तियाँ उपनिषदों में भी मिलती हैं। उपनिषदों के विभावनात्मक[2] वर्णन तो प्रसिद्ध ही हैं, कहीं-कहीं पर उलटवासी की एक नवीन शैली के भी दर्शन होते हैं। तैत्तरिय उपनिषद् में एक स्थल पर कहा गया है कि पृथ्वी आकाश

१ रामगोविन्द त्रिवेदी—ऋग्वेद संहिता हिन्दी टीका प्रथम अष्टक—(१/१/७/१२) सूत्र १२
२ ईश ४ / कठो० १/२/१०

में प्रतिष्ठित है और आकाश पृथ्वी में प्रतिष्ठित है।[1] इनके अतिरिक्त और भी विविध प्रकार की मिलती-जुलती उक्तियाँ उलटवासियों से ढूँढ़ी जा सकती हैं। उपनिषदों के पश्चात् उलटवासियों की शरण सम्भवतः तांत्रिकों ने ली थी। इसका कारण यह था कि वे अपनी साधना सम्बन्धी बातें लोक में प्रकट करना उचित नहीं समझते थे। विश्वसारतन्त्र में उनकी इस प्रवृत्ति का संकेत करते हुए लिखा है :—

प्रकाशात् सिद्धि हानिः स्यात् वामाचार गतौ प्रिये।
अतो वाम पथे देवी गोपयति मातृ जारवत्॥

आगे चलकर इस वाम पंथ का प्रचार वज्रयानी सिद्धों में हुआ और वे भी उलटवासियों के ढंग पर ही अपनी साधना सम्बन्धी बातें व्यक्त करते थे। सिद्धों और नाथों की परम्परा से कबीर का सीधा सम्बन्ध है। कभी-कभी तो कबीर ने इनके भाव ही नहीं वाक्यांश और पूरे पद के पद ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिए हैं। तान्तिपा सिद्ध की यह उक्ति :—

बद्ल बिआएल गबिया बाँझे, पिटा दुहिए एतिना साँझे।[2]

कबीर में किञ्चित् परिवर्तन के साथ ज्यों की त्यों मिल जाता है :—

बैल बियाय गाय भई बांझ, बछरा दूहे तीनों सांझ।

सिद्धों की इस प्रकार की अटपटी भाषा संध्या भाषा के नाम से प्रसिद्ध थी। संध्या भाषा के सम्बन्ध में विविध मत हैं।[3] कुछ लोग इसे एक ऐसी अभिव्यक्ति प्रणाली मानते हैं जिसकी योजना लेखक जान-बूझकर करता है और जिसके अभिधामूलक अर्थ को महत्त्व न देकर किसी अन्य सांकेतिक अर्थ की व्यंजना की जाती है।[4] कुछ लोग इसे अपभ्रंश और हिन्दी के सन्धि काल की भाषा मानते हैं। कुछ लोगों ने इसे बंगाल और बिहार के संध्यस्थल की

---

१ तै० ३/९

२ देखिए रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास पृ० ११

३ दास गुप्ता आब्सक्योर रिलीजस कल्ट्स—पृ० ४७७

४ डा० हजारी प्रसाद—हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ३४

भाषा कहा है ।[१] हमारी समझ में सन्ध्या भाषा उस विशेष प्रकार की अभिव्यञ्जना प्रणाली के लिये प्रयुक्त हुई है जिसके सहारे तांत्रिकों की भाँति, सिद्ध लोग भी अपने वामाचार को उसी प्रकार छिपाने में समर्थ होते थे जिस प्रकार संध्या उजियारे को । यों तो 'सन्धि' शब्द अमरकोश में श्लेष का पर्यायवाची माना गया है । इसके आधार पर संध्या का अर्थ श्लिष्ट भाषा भी लगाया जा सकता है । किन्तु सिद्धों की पारिभाषिक अटपटी वाणी को श्लिष्ट भाषा कहना अधिक उचित नहीं मालूम होता । सिद्धों के अतिरिक्त उलटवासियों की परम्परा नाथों में भी प्रचलित थी । किन्तु उनकी भाषा के लिये संध्या भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है । कारण यह था कि नाथ पंथी वामाचारी सिद्धों के समान व्यभिचारी न थे, अतएव उन्हें क्या आवश्यकता थी कि वे भाषा को व्यभिचार छिपाने वाली संध्या का नाम लेते । यदि 'संध्या' शब्द का प्रयोग श्लिष्ट के ही अर्थ में होता तो उसे मध्यकाल तक प्रचलित बना रहना चाहिए था । मध्यकाल के किसी भी संत ने अपनी भाषा को संध्या भाषा का अभिधान नहीं दिया है ।

कबीर की अधिकांश आध्यात्मिक उक्तियाँ उलटवासियों के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं । उलटवासियों की शैली के कारण इनकी शुष्क और नीरस दार्शनिक उक्तियों में भी एक विचित्र चमत्कार का समावेश हो गया है । चमत्कार काव्य का प्राण माना जाता है, और विशेष कर वह चमत्कार जिसमें कोई विशेष ध्वनि निहित रहती है । कबीर की उलटवासियों में अलंकार मूलक चमत्कार तो मिलता ही है । उसमें व्यंजना के विविध स्वरूप भी परिलक्षित होते हैं । अतएव हम इन उलटवासियों के रूप में व्यक्त हुई उक्तियों को काव्य के अंतर्गत ही लेंगे । प्रायः सभी उलटवासियों में एक विशेषता पाई जाती है । उनमें हमें विरोध भावना के साथ प्रतीक शैली और रूपक शैली का एक सुन्दर समन्वय दिखलाई पड़ता है । राहुल सांकृत्यायन[२] ने एक स्थल पर लिखा है । कि उलट-

---

१ इन मतों के लिये डा० रामकुमार वर्मा का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६१—६२ देखिए

२ सरस्वती भाग ३२ पृ० ७१५—१६

वासियाँ प्रायः सभी रूपक होती हैं। हमारी समझ में इस प्रकार का नियम निश्चित करना उचित नहीं है। बहुत सी ऐसी भी उलटवासियाँ होती हैं जो रूपक प्रधान न होकर विभावना, असंगति, विरोध, विशेषोक्ति और व्याघात आदि विरोध मूलक अलंकारों के सहारे व्यक्त हुई हैं। उनमें कहीं कहीं पर रूपक की योजना बिलकुल भी नहीं मिलती है। संक्षेप में हम कबीर की उलटवासियों को उनकी प्रकृति के अनुसार निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं :—

(१) अलंकार प्रधान।

(२) अद्भुत प्रधान।

(३) प्रतीक प्रधान।

(१) **अलंकार प्रधान** :—उलटवासियाँ अधिकतर विरोध मूलक होती हैं। इनमें चमत्कार भी बहुत अधिक पाया जाता है। यही कारण है कि इनमें विरोध मूलक अलंकार भी सदैव विद्यमान रहता है। विरोध मूलक अलंकारों में प्रधान रूप से निम्नलिखित अलंकार आते हैं:—[१] विरोधालंकार [२] विरोधाभासालंकार [३] असम्भव [४] विभावना [५] विशेषोक्ति [६] असंगति [७] विषम [८] विचित्र [९] अधिक [१०] अन्योन्यम् [११] व्याघात। रुय्यक ने विरोध मूलक अलंकारों में सम, विशेष और अतिशयोक्ति को भी स्थान दिया है। अतिशयोक्ति को उसने दो भागों में बाँटा है [१] अध्यवसाय मूलक [२] विरोध मूलक।[1] कबीर की अधिकांश उलटवासियों में उपर्युक्त विरोध मूलक अलंकारों में कोई न कोई अवश्य मिलता है। इनमें से अलंकार प्रधान कुछ उलटवासियों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

असंगति :—

आगमि बेलि अकास फल अण व्यावण का दूध। क० ग्रं० ८६

विभावना :—

'कमल जो फूले जलह बिन'

और देखिए क० ग्रं० पृ० १४० पद १५९ क० ग्रं० पृ० १२

१ कन्हैयालाल पोद्दार—संस्कृत साहित्य का इतिहास द्वितीय भाग पृ० १४२

अधिक :—

जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैं गल मलि न्हाय।
देवल बूड़ा कलस सूं, पंखि तिसाई जाय ॥ क० ग्रं० पृ० १७

विषम :—

आकासे मुख औंधा कुआं पाताले पनिहार। क० ग्रं० पृ० १६

विरोध और विशेषोक्ति का सङ्कर :—

ठाढ़ा सिंह चरावै गाई। क० ग्रं० पृ० ६१

अद्भुत रस प्रधान उलटवासियाँ :—कबीर की बहुत सी उलटवासियाँ ऐसी हैं जिनमें विरोध मूलक अलंकार गत चमत्कार अद्भुत रस के आश्रित दिखाई पड़ता है। ऐसे स्थलों पर कवि का लक्ष्य घटना, व्यापार और चित्र की अद्भुतता को ही अधिक से अधिक प्रवेग पूर्ण शब्दों में व्यक्त करना होता है। ऐसी उक्तियों में प्रतीक और अलंकार गौण पड़ जाते हैं, अद्भुत रस मुख्य स्थान ग्रहण कर लेता है। अद्भुत चित्रों की कहीं-कहीं इतनी अधिकता पाई जाती है कि हमारा ध्यान अर्थ से हटकर आश्चर्य सागर में डूब जाता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात पूर्णतया स्पष्ट है :—

ऐसा अद्भुत मेरे गुरि कथ्या मैं रह्या भेषै।
मूसा हस्ती सौं लड़ै, कोई बिरला पेखै ॥
मूसा पैठा बांबि में, लारै सापणि धाइ।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाइ ॥
चींटी परबत ऊषण्यां ले राख्यो चौड़ै।
मुर्गा मिनकी सूं लड़ै, झल पांणी दौड़ै ॥
सुरहीं चूंखै बछतलि, बछा दूध उतारै।
ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै ॥
भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै।
कहै कबीर ताहि गुरु करौं, जो यहु पदहि बिचारै ॥

क० ग्रं० पृ० १४१

(३) प्रतीकात्मक उलटवासियाँ :—कबीर ने कुछ ऐसी भी उलटवासियों की योजना की है जिनमें उन्होंने गूढ़ातिगूढ़ योजनाओं को प्रश्रय दिया है। इन उक्तियों में प्रतीकों के साथ रूपकात्मकता भी आ गई है। कुछ उक्तियों में प्रतीक गौण पड़ जाते हैं, रूपक मुख्य स्थान ग्रहण कर लेता है और कहीं-कहीं रूपक गौण पड़ जाता है प्रतीकात्मकता ही मुख्य रहती है। इस प्रकार प्रतीक प्रधान उलटवासियों के हम दो भाग कर सकते हैं—मूलतः रूपक प्रधान और मूलतः प्रतीक प्रधान। इनके उदाहरण क्रमशः नीचे दिए जाते हैं :—

मूलतः रूपक प्रधान :—

हरि के षारे बड़े पकाए, जिकि जारे तिनि खाए।
ज्ञान अचेत फिरै नर लोई, ताथै जनमि जनमि डहकाए॥
धौल मंदलिया बैलर बाबी, कउवा ताल बजावै।
पहरि चोलना गदहा नाचै, भैंसा निरति करावै॥
स्यंघ बैठा पान कतरै, घूंस गिलौरा लावै।
उंदरी बपुरी मंगल गावै, कछू एक आनंद सुनावै॥
कहैं कबीर सुनहु रे सन्तहु, गडरी परवत खावा।
चकवा बैसि अंगारे निगले समंद अकासे धावा॥

क० ग्रं० पृ० ९२

मूलतः प्रतीक प्रधान :—

कैसे नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष विचक्खन नारी।
बैल बियाइ गाइ भई बाँझ, बछरा दूहै तीयू साँझ॥
मकड़ी घरि माषी छछिहारी, मास पसारि चील्ह रखवारी॥
मूसा खेवट नाव बिलइया, मींडक सोवै साँप पहरिया।
निति उठ स्याल सिंह सू जूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै॥

और देखिए पृ० १४२ पर पद १६२

अन्योक्ति :—अध्यात्म क्षेत्र में अन्योक्तियों की परम्परा भी बहुत प्राचीन है। स्वयं वेदों में कई स्थलों पर अन्योक्तियों का समावेश किया गया है। अन्योक्ति में प्रस्तुत का वर्णन अप्रस्तुत की योजना मात्र से किया जाता है।

कबीर में अन्योक्तियों की योजना बहुत अधिक तो नहीं पाई जाती है, किन्तु फिर भी उनकी अन्योक्तियाँ बहुत सुन्दर उतरी हैं। 'नलिनी' के प्रति कही हुई उनकी उक्ति आत्मा के प्रति एक विचित्र उद्‌बोधन है :—

उक्तियाँ :—

काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास।
ना तल तपत न ऊपर आग, तोर हेतु कहु कासन लाग।
कहत कबीर जो उदक समान, ते नहिं मुए हमारी जान॥

समासोक्ति :—गूढ़ आध्यात्मिक व्यंजना के लिये कवि लोग समासोक्ति पद्धति का भी अनुसरण करते रहे हैं। जायसी की समासोक्ति पद्धति तो प्रसिद्ध ही है। समासोक्ति का अर्थ है संक्षिप्त उक्ति। इसमें प्रस्तुत वर्णन से अप्रस्तुत का संकेत किया जाता है।[1] कबीर में समासोक्ति के सहारे भी कहीं-कहीं पर गूढ़ आध्यात्मिक व्यंजना की गई है। निम्नलिखित समासोक्ति उदाहरण के रूप में देखी जा सकती है :—

जा कारण मैं ढूँढ़ता सनमुख मिलिया आय।
धनि मैली पिव उजला लागि न सक्को पाय॥

क० ग्रं० पृ० ५

अभिव्यक्ति की इन शैलियों के अतिरिक्त भी कबीर ने न जाने और कितने प्रकार की शैलियों को जन्म दिया है। संकेतात्मक शैली (जिसका आज के छायावादी कवि बहुत प्रयोग करते हैं) भी कबीर में अपनी विशेषताओं के साथ उपलब्ध हैं। उस लोक का वर्णन उन्होंने अधिकतर इसी शैली में किया है। बहुत से लोग इस शैली को समासोक्ति के अंतर्गत लेते हैं, किन्तु हमारी समझ में यह एक अलग ही शैली है। इसके अतिरिक्त कबीर ने उन तमाम शैलियों को भी आत्मसात् किया था, जिनके सहारे हमारे यहाँ दार्शनिक और वैदिक साहित्य में तत्त्वों की विवेचना की गई है। इनमें से कुछ का संकेत आध्यात्मिक विचारों

१ अलंकार मञ्जरी—कन्हैयालाल पोद्दार—पृ० २१८

का निरूपण करते समय किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त इनमें स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति, छेकोक्ति, विवृक्तोक्ति, गूढ़ोक्ति और व्याजोक्ति आदि विविध अभिव्यंजना से सम्बन्ध रखनेवाले अलङ्कारों की भी सरलता से खोज की जा सकती है। सच तो यह है कि कबीर ने उपदेशों को छोड़कर किसी भी आध्यात्मिक विचार को सीधे-साधे ढंग से व्यक्त नहीं किया है। इससे इनकी शुष्क, नीरस और आध्यात्मिक उक्तियों में भी एक विचित्र आध्यात्मिक चमत्कार आ गया है। यह चमत्कार कहीं अलङ्कार मूलक है, कहीं रसमूलक और कहीं लक्षणा या व्यञ्जना मूलक। अतएव उनकी शुष्क आध्यात्मिक उक्तियाँ भी उत्तम काव्य के अंतर्गत आती हैं।

यह कई बार कहा जा चुका है कि लौकिक काव्य का प्राण चमत्कार माना गया है। कबीर ने अपने आध्यात्मिक काव्य में इस लौकिक चमत्कार को अभिव्यञ्जना के सहारे प्रतिष्ठित किया है। यही कारण है कि इनके काव्य में एक ओर तो अनिर्वचनीय आत्मिक रस की अभिव्यक्ति मिलती है, और दूसरी ओर उसमें लौकिक चमत्कारों के उपादानों का भी समावेश हो गया है। लौकिक चमत्कार को क्षेमेन्द्र ने दसविधि माना है—(१) अभिचारित रमणीय (२) विचार-माण रमणीय (३) समस्त सूक्त व्यापी (४) सूक्तैक देशदृश्य (५) शब्दगत रमणी-यता (६) अर्थगत रमणीयता (७) शब्दार्थौ उभयगत रमणीयता (८) अलङ्कारगत रमणीयता (९) रसगत रमणीयता (१०) रसालङ्कारो उभयगत रमणीयता।[१] किन्तु विश्वेश्वर ने अपनी चमत्कार चन्द्रिका में चमत्कार के सात करण माने हैं—गुण, रीति, रस, वृत्ति, पाक, शय्या और अलंकृति।[२] महात्मा कबीर में दसों प्रकार की रमणीयताएँ और सातों प्रकार के चमत्कार कारण ढूँढ़े जा सकते हैं। किंतु यहाँ पर हम केवल इन सबका विचार निम्नलिखित शीर्षकों से ही अत्यन्त संक्षेप में करना चाहते हैं :—

(१) शब्दगत रमणीयता।

(२) शब्दार्थोभयगत रमणीयता।

---

१ के० के० ए० काव्यमाला गुच्छक चतुर्थ—पृ० १२१

२ सम कन्सेप्ट्स आफ अलंकार शास्त्र—राघवन्—पृ० २००

(३) रसगत रमणीयता ।

(४) अलंकारगत रमणीयता ।

(५) गुणगत रमणीयता ।

(६) भाषा ।

(७) छंद ।

शब्दगत रमणीयता :—बहुत से आचार्यों ने काव्य को शब्दगत ही माना है । पण्डितराज जगन्नाथ और विश्वनाथ ऐसे आचार्यों में अग्रगण्य हैं । महात्मा कबीर ने अपनी रचनाओं में किसी प्रकार के चमत्कार या रमणीयता को लाने का प्रयत्न नहीं किया है । फिर भी उनमें शब्दगत चमत्कार का समावेश अपने आप हो गया है । उनके शब्दगत चमत्कार उनके रूपकों और उलट-बासियों आदि में दृष्टिगत होते हैं । उनका संकेत हम ऊपर कर चुके हैं । शब्दगत चमत्कार शब्द-औचित्य पर भी बहुत अधिक निर्भर रहता है । अभिनव गुप्त ने स्पष्ट ही लिखा है कि यदि उचित शब्दों की काव्य में योजना होगी तो काव्य में चमत्कार का समावेश स्वयं हो ही जावेगा । राजशेखर ने काव्य मीमांसा में इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

"तस्मात् रसोचित शब्दार्थ सूक्ति निबन्धनः पाकः ।

अर्थात् रस के उपयुक्त शब्दों, विचारों और धारणाओं के औचित्य पर ही काव्य कला की परिपक्वता निर्भर है । इस दृष्टि पर कबीर का अध्ययन करने पर हमें निराश नहीं होना पड़ेगा । उनका यह पद उदाहरण के रूप में देखिए :—

विनस जाइ कागद की गुड़िया, जब लग पवन तबै लगै उड़िया ।
गुड़िया को सबद अनाहद बोलै, खसम लियैं कर डोरी डोलै ।
पवन थक्यौ गुड़िया ठहरानी, सीस धुनै धुनि रोवै प्रानी ।
कहै कबीर भजि सारंग पानी, नहीं तर हुइहै खैंचा तानी ॥

॥ क० ग्रं० पृ० ११७ ॥

इस पद में कबीर मानव-शरीर की नश्वरता ईश्वर की जीव के प्रति सूत्र-धारिता आदि बातें ध्वनित करना चाहते हैं । इसके लिए उन्होंने 'कागद की

गुड़िया, 'पवन' और 'खसम' शब्दों का बड़ा सार्थक प्रयोग किया है। इसमें कठपुतली के नाच का रूपक प्रतीत होता है। जिस प्रकार से कठपुतलियों का स्वामी या सूत्रधार ऊपर से उनकी डोरी के सहारे वायु में उन्हें नृत्य कराता रहता है, उसी तरह से ईश्वर भी जीव रूपी गुड़िया का सूत्रधार है। इस गुड़िया का शरीर लकड़ी का न होकर कागज का है। इसीलिये सरलता से नष्ट हो सकता है। उसमें अपनी कोई शक्ति नहीं है। वह केवल पवन के सहारे ही प्रवर्तित होती है। यहाँ पर कबीर ने पवन शब्द से एक ओर तो प्राण का संकेत किया है और दूसरी ओर सीधा-साधा अर्थ वायु लिया है। 'गुड़िया' शब्द से मानव-शरीर का आकार साम्यपूर्ण रूप से प्रकट किया गया है। इसी प्रकार से 'खसम' शब्द भी सार्थक और उचित है। एक ओर तो वह ब्रह्म का वाचक और दूसरी ओर कठपुतलियों के संचालक का। इसी प्रकार अन्तिम पंक्ति का 'सारंग पानी' भी सार्थक और औचित्यपूर्ण है। सारंग पानी प्रभु ही जीव को तमाम व्याधियों से मुक्त कर सकते हैं। शब्द औचित्य के अतिरिक्त कबीर में शब्दालंकार गत रमणीयता भी ढूँढ़ी जा सकती है। यमक और श्लेष आदि के उदाहरण यत्र तत्र मिल जाते हैं। उपर्युक्त अवतरण में ही 'पवन' शब्द में श्लेष का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कबीर में सभी प्रकार की शब्दगत रमणीयताएँ अपने रूप में पाई जाती हैं।

शब्दार्थोभयगत चमत्कार :—श्रेष्ठ काव्य में शब्द और अर्थ दोनों की रमणीयता पाई जाती है। इस बात को वक्रोक्ति जीवित कार कुन्तक ने बड़े सुन्दर ढंग से लिखा है—

साहित्योभनयो शोभाशालितां प्रतिकाप्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वं मनोहारिण्यवस्थितिः॥[1]

अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों की अन्यूनानतिरिक्त साहित्य में अपेक्षित होती है। महात्मा कबीर की वाणी या तो उपदेश के रूप में मुखरित हुई या

---

१ वक्रोक्ति जीवित—१/१७

आध्यात्मिक तत्त्वों के निरूपण के रूप में। अतएव उनमें शब्द और अर्थ उभयगत रमणीयता सर्वत्र नहीं मिलती है, किन्तु फिर भी उनके रूपकों, प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों और रहस्यवादनी रचना में उत्कृष्ट उभयगत सौन्दर्य भी दिखलाई पड़ता है। उनकी निम्नलिखित उक्ति में हमें शब्द और अर्थ उभयगत सौन्दर्य के दर्शन होते हैं :—

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

यहाँ पर कबीर ने 'लाल' शब्द एक तो प्रेमस्वरूपी ब्रह्म की व्यञ्जना करने के लिये प्रयुक्त किया है। दूसरी ओर 'लाल' शब्द परदेशी प्रिय का वाचक होता है। सर्वत्र लालिमा की व्यंजना करके कवि ने मंसूर हल्लाज के प्रेमवाद और इब्नसिना के सौंदर्यवाद का सुन्दर समन्वय सा किया है। साथ ही साथ इसमें साधक और साध्य की अद्वैत की स्थिति का भी सुन्दर संकेत है। एक उदाहरण और लीजिए :—

कबिरा हरिदी पीऊरी चूना उज्जर भाय।
राम सनेही यों मिलै दूनों बरन गवाँय॥

संत कबीर श्लोक ५६

यहाँ पर एक ओर तो कवि ने चूना और हरदी के मिलन पर जो उनका रूप परिवर्तन हो जाता है उसका वैज्ञानिक पर्यवेक्षण प्रकट किया है और दूसरी ओर हल्दी और चूने को लाक्षणिक प्रतीक मानकर तपस्वी साधक और सतोगुण में ईश्वर का भी अर्थ लिया जा सकता है। साधक साध्य से मिलकर उसी तरह से प्रेमस्वरूप हो जाता है जिस प्रकार हल्दी और चूना मिलकर अरुण वर्ण में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार साधारण सी उक्ति में लाक्षणिक व्यंजना के सहारे उन्होंने साधक और साध्य की अद्वैत स्थिति का अच्छा संकेत किया है। इसीलिए उनके काव्य को हम केवल उपदेशात्मक काव्य नहीं कह सकते। क्योंकि उसमें स्थान-स्थान पर सुन्दर व्यंजनाएँ, शब्द औचित्य और प्रभावात्मक लाक्षणिक प्रयोग मिलते हैं।

रसगत रमणीयता :— जिस तरह अध्यात्म शास्त्र में "आनन्दो ब्रह्मयेति"

रसो वैसः" कहकर ब्रह्म की प्राणभूत विशेषता प्रकट की गई है। उसी प्रकार काव्य शास्त्र में रस को प्राणस्वरूप माना गया है। भरत मुनि "नहि रसादृते कश्चित् अर्थः प्रवर्तते"[1] कहकर काव्य में सत्काव्य के रस की अनिवार्यता प्रकट की है। वाग्वैदग्ध्य को महत्त्व देने वाले अग्नि पुराण ने भी "वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रसेपात्र जीवितम्"[2] कहकर रस की महत्ता प्रकट की है। ध्वनि को महत्त्व देने वाले ध्वनिकार ने भी ध्वन्यालोक में स्पष्ट कहा है कि परिपक्व कवियों की वाणी में रसा आदि तात्पर्य से अलग कोई व्यापार सुशोभित नहीं होता।[3] शुद्धोदनि[4] और विश्वनाथ[5] ने तो स्पष्ट ही रस को काव्य का मूल तत्त्व माना है। वाक्भट्ट[6] प्रथम तथा सरस्वती रस कण्ठाभरणकार[7] भोज ने काव्य में रस को आवश्यक सिद्ध किया है। रस की दृष्टि से कबीर की बानियों का अध्ययन करने पर हमें चार प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं :—

(१) सुधारात्मक, उपदेशात्मक, यौगिक, शुष्क और आध्यात्मिक :— इस प्रकार की उक्तियों में हमें किसी प्रकार के रस की अनुभूति नहीं होती। इन्हें हम काव्य के अन्तर्गत नहीं ले सकते। हाँ कुछ नश्वरता का उपदेश देनेवाली उक्तियों में शान्त रस की अभिव्यक्ति अवश्य हो गई है।

(२) अद्भुत रस प्रधान उलटवासियाँ :—कबीर की अधिकांश उलटवासियाँ ऐसी हैं जिनमें अलौकिक, अदृश्य, अपूर्व आश्चर्यजनक बातों का वर्णन है। इन उक्तियों में विस्मय स्थायी रूप से विद्यमान रहता है। निम्नलिखित उलटवासी देखिए कैसी कौतूहलपूर्ण है :—

---

१ नाट्यशास्त्र—अ० ६
२ अग्निपुराण—३३७/३३
३ ध्वन्यालोक—२२१
४ अलंकार शेखर—१/१
५ साहित्यदर्पण—१/३
६ वागभटालङ्कार—१/२
७ सरस्वती कण्ठाभरण—१/२

ऐसा अद्भुत मेरे गुरि कथ्या मै रह्या उभेषै ।
मूसा हसती सो लड़ै, कोई विरला पेखै ।।
मूसा पैठा बाम्बि में, लारै सापणि धाई ।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचरज भाई ।।
चींटी परबत उषरायां ले राख्यो चौड़े ।

इत्यादि क० ग्रं० पृ० १४१

(३) भक्ति और शान्तरसमयी उक्तियाँ :—महात्मा कबीर भक्त पहले थे कवि बाद को। इनकी भक्ति परक जितनी भी उक्तियाँ हैं उनमें या तो शान्त रस की अभिव्यक्ति पाई जाती है या भक्ति रस की। शान्त रस और भक्ति रस के सम्बन्ध में मतभेद है। भरत मुनि ने भक्ति को शान्त के अन्तर्गत ही माना है। और भी बहुत से अन्य आचार्यों ने भक्ति को रस नहीं माना है। किन्तु श्री कन्हैयालाल पोद्दार ने इसे सर्वोपरि रस सिद्ध किया है।[१]

शान्त रसमयी उनकी एक उक्ति देखिए :—

माया मोहि मोहि हित कीन्हाँ,
ताथैं मेरौ ज्ञान ध्यान हरि लीन्हां ।।

संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांन ।
साँच करि नरि गाँठ बाँध्यौ, छाड़ि परम निधांन ।।
नैन नेह पतंग हुलसै, पसू न पेखै आगि ।
करि बिचार बिकार परहरि, तिरण तारण सोइ ।।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नाहीं कोइ ।

क० ग्रं० पृ० १७१

भक्ति रसमयी यह उक्ति देखिए :—

भजि नारदादि सुकादि बंदित, चरन पंकज भामिनी ।
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर, देव देव सिरोवनी ।

इत्यादि क० ग्रं० पृ० २१८

---

१ संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग दो—पृ० ६२

(४) शृङ्गार रस प्रधान उक्तियाँ :—रहस्यवाद के अन्तर्गत हम कबीर के दाम्पत्य भाव के प्रतीकात्मक वर्णनों का निर्देश कर चुके हैं। कबीर में शृंगार रस की अभिव्यक्ति केवल उनकी दाम्पत्य प्रतीकों के सहारे अभिव्यक्त की हुई रहस्यवादमयी उक्तियों में मिलती है। वास्तव में प्रत्यक्ष तो ऐसी उक्तियाँ शृंगारात्मक प्रतीत होती हैं, किन्तु उनके मूल में एक विचित्र आध्यात्मिकता पाई जाती है।[१] अतः कबीर का शृङ्गार लौकिक शृङ्गार नहीं कहा जा सकता। उसे हम आध्यात्मिक शृंगार का नाम देना उचित समझते हैं।

कबीर में अलंकार गत रमणीयता :—काव्य में अलंकारों की मान्यता आदि काल से चली आ रही है। दूसरी शताब्दी के रुद्रदामन के शिला-लेख में अलंकृत शब्द सबसे पहले प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है।[२] इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इससे पहले काव्य में अलंकारों की अवस्थिति नहीं होती थी। संहिताओं और उपनिषदों की अधिकांश उक्तियों में स्वाभाविक अलंकारों की योजना पाई जाती है। हाँ यह हो सकता है कि उस समय तक उनका नामकरण न हुआ हो। नाट्य शास्त्र[३] में सबसे प्रथम उपमा, रूपक, दीपक और यमक नाम के नाट्यालंकारों का उल्लेख मिलता है। अलंकार और काव्य के सम्बन्ध तथा स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वामन ने लिखा है :—

काव्यं ग्राह्यं अलंकारात्। सौंदर्यं अलंकारः।

अर्थात् अलंकार की विशिष्टता से ही उक्ति काव्य कहलाती है तथा उक्ति सौंदर्य का ही नाम अलंकार है। दंडी ने इस बात को दूसरे ढंग से व्यक्त किया है। उनके मतानुसार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।[४] काव्य में अलंकारों का बड़ा महत्त्व है। काव्य का प्राण रस मानने वाले अग्नि

---

१ देखिए—क० ग्रं० पृ० १६६, पद २३०, पृ० १६४, पद १२६, पृ० ११२ पद १०७

२ हिस्ट्री आफ संस्कृत पोयटिक्स—पृ० ३१८

३ नाट्यशास्त्र १७/४३

४ काव्यादर्श २/१

पुराण को भी 'अलंकार रहिता विधवेव भारती'[१] कहना पड़ा है। किन्तु आचार्य[२] ने काव्य की परिभाषा देते हुए अलंकार रहित कविता को भी काव्य होने का प्रमाणपत्र दे रखा है। कबीर की कविता ऐसी ही थी।

कबीर ने अपने काव्य को साहित्यिक बनाने की कभी चेष्टा नहीं की थी। उनके जीवन का लक्ष्य भवसागर में डूबते हुए लोगों के लिए साखी कहना था न कि रसिकों के लिए काव्य की चित्रकारी सजाना। साखियों में यदि हम छन्द, गुण, अलंकार आदि साहित्यिक उपादानों को ढूँढ़ने का प्रयत्न करेंगे तो सम्भव है हमें निराश होना पड़े। उन्होंने अपनी उक्तियों पर कभी गुण अलंकारादि का कृत्रिम मुलम्मा चढ़ाने की चेष्टा नहीं की थी। यह बात दूसरी है कि उक्ति और उपदेशों को अत्यधिक प्रभावात्मक बनाने के प्रयत्न में स्वाभाविक अलंकारों की योजना स्वतः हो गई हो। अलंकार कबीर के लिए साध्य नहीं स्वाभाविक साधन मात्र थे।

कबीर की रचनाओं में उन्हीं अलंकारों की प्रचुरता है जिनकी योजना कवि की प्रतिभा अज्ञात रूप से भाव को प्रभावात्मक बनाने के लिए किया करती है। इन अलंकारों में सबसे प्रमुख उपमा और रूपक हैं। यह दोनों ही अलंकार साम्य मूलक हैं। किन्तु दोनों में भेद इतना है कि रूपक में साम्य की प्रतीति व्यंजना से होती है। उपमा में साम्य की प्रतीति अभिधा से होती है। जिस प्रकार कालिदास उपमा के लिए प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार कबीर अपने रूपकों के लिए प्रसिद्ध हैं। कबीर के रूपकों की कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं। संक्षेप में हम उनको प्रायः इस प्रकार निर्देशित कर सकते हैं। सभी रूपक प्रायः —

(१) सावयव हैं।

(२) अध्यवसित हैं।

(३) उनमें उपमान या अप्रस्तुत सरल और सामान्य जीवन से लिये गए हैं।

(४) उपमान अधिकतर संकेतात्मक एवं प्रतीकात्मक हैं।

(५) वे फल—साम्य या वस्तु—साम्य पर टिके हुए हैं।

---

१ अग्नि पुराण ३४४/२

२ हरिमंगल मिश्र—काव्य प्रकाश, पृ० ११

(६) कुछ मनोरञ्जन होने के साथ-साथ उलटवासियों के रूप में व्यक्त हुए हैं।

(७) उनमें प्रभावात्मक प्रतीकों का प्रयोग अधिक मिलता है।

कबीर में अधिकतर ऐसे ही रूपक पाए जाते हैं जिनमें उपमान प्रायः पूर्ण-क्रिया परिस्थिति या चित्र के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। कभी-कभी उपमान कुछ ऐसी वस्तुओं के रूप में लाए गए हैं जिनके सावयव वर्णन से एक पूरी बात स्पष्ट कर दी जाती है। सन्त कबीर में इस कोटि के रूपकों की भरमार है। हठ-योग[1] का रूपक एक पूर्ण प्रक्रिया का वर्णन करता है। प्रायः विवाह[2] के रूपक भी परिस्थिति विशेष से सम्बोधित कहे जावेंगे। न्यायालय[3] वाला रूपक भी एक पूरा चित्र प्रस्तुत करता है। यह सभी रूपक अधिकतर सावयव ही हैं।

कबीर में पाए हुए अधिकांश रूपक अध्यवसित रूपक हैं। इनमें रूपकाति-शयोक्ति की भाँति उपमेयों का बिलकुल कथन ही नहीं किया जाता है। रूपकाति-शयोक्ति और अध्यवसित रूपक में इतना ही भेद है कि रूपकातिशयोक्ति में उपमान्य अत्यन्त प्रसिद्ध परम्परागत होते हैं किन्तु अध्यवसित रूपक में उपमान परम्परागत न होकर मौलिक प्रतीकात्मक एवं संकेतात्मक होते हैं। सन्त कबीर में राग भैरव १७ में दुर्ग का रूपक देखिए। यहाँ पर उपमान प्रतीकात्मक और संकेत प्रधान है, परम्परागत नहीं है। इस उदाहरण से कबीर के रूपकों की एक और विशेषता भी स्पष्ट होती है—वह यह है कि उनके रूपकों के उपमान भी परम्परा-गत नहीं होते। पूर्ण मौलिक होने के साथ बिलकुल सामान्य जीवन से सम्बन्धित होते हैं। अन्न, आंधी, आम, आरति, कुम्हार, कोठी, गगरी, चक्की, चौपड़, दुर्ग, थैली और नाव इत्यादि उनके बहुत से रूपक हैं।

कबीर के रूपकों की एक और प्रमुख विशेषता है। वे अधिकतर फल साम्य या गुण साम्य को ही प्रकट करनेवाले हैं। उन्होंने अधिकतर प्रस्तुत और अप्रस्तुत के गुण साम्य पर ही ध्यान रखा है :—

---

१ सन्त कबीर—रा० १०

२ सन्त कबीर—आ० ६

३ सन्त कबीर—सू० ३

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डालिकै, पिय को लिया रिझाय ॥

बहुत से रूपक केवल फल साम्य पर ही टिके हुए हैं :—

"यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है ।"

कबीर के बहुत से रूपक भाषा और अभिव्यक्ति में अत्यन्त मनोरञ्जक हैं, और बहुत कुछ पहेलियों से मिलते जुलते हैं । सन्त कबीर में दिया हुआ विवाह का यह रूपक ऐसा ही है । कबीर के बहुत से रूपक हैं जिनमें कुछ प्रतीकात्मक और पारिभाषिक शब्द उपमान के रूप में लाए गए हैं । ऐसे रूपकों में राग भैरव १० देखा जा सकता है । यह तो हुई कबीर के रूपकों की संक्षिप्त चर्चा ।

कबीर में रूपक के अतिरिक्त उनकी उपमाएँ भी बड़ी सुन्दर हैं । अपनी उपमाओं में कबीर जिन उपमानों को लाए हैं वे प्रायः परम्परागत नहीं हैं । वे सामान्य जीवन की वस्तुओं से सम्बन्वित हैं :—

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जाति ।
एक दिनां छिप जांहिगे, तारे ज्यूं परिभात ॥

क० ग्रं० पृ० ७३

उपमा और रूपकों के अतिरिक्त कबीर में उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, लोकोक्ति, विभावना, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, दृष्टांत आदि अन्य अलङ्कारों की भी कमी नहीं है । किसी तथ्य को प्रभावात्मक और संकेतात्मक ढंग से कहने के लिये अन्योक्ति अलङ्कार बड़ा उपयोगी होता है । कबीर की उपदेश प्रधान उक्तियों में अन्योक्तियों की कमी नहीं । इसका हम पीछे संकेत कर चुके हैं ।[1]

कबीर ने ब्रह्म निरूपण में विभावना अलङ्कार का अधिक सहारा लिया है ।

बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै ।

क० ग्रं० पृ० १४०

इसी प्रकार निम्नलिखित उक्ति में काव्यलिंग का अच्छा उदाहरण मिलता है—

---

१ सन्त कबीर—भै० १०

राम पियारा को छाँड़िकै, करै आन का जाप।
वेस्या केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूँ बाप॥

क० ग्रं० पृ० ६

इसी प्रकार अलङ्कारों के और भी उदाहरण कबीर की रचनाओं में ढूँढ़े जा सकते हैं। जहाँ तक शब्दालङ्कारों का सम्बन्ध है कबीर उनसे परिचित भी न थे। फिर भी कहीं-कहीं पर उनकी उक्तियों का समावेश हो ही गया है। अनुप्रास का उदाहरण देखिए :—

लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मैं खालिक सब घट रह्यो समाई॥

क० ग्रं० पृ० १०४

इस प्रकार स्पष्ट है कबीर ने अपने काव्य में व्यर्थ के अलंकारों को आश्रय नहीं दिया है। उनमें जो अलंकार पाए जाते हैं वे अधिकतर स्वाभाविक रूप से उक्ति में वैचित्र्य लाने के प्रयत्न के फलस्वरूप आ गए हैं। कबीर ने कभी व्यर्थ के अलंकारों की योजना करने की चेष्टा नहीं की थी। फिर भी उनकी अधिकांश उक्तियों में साम्य मूलक रूपक और विरोध मूलक विभावना, विरोध असंगति, विषय आदि अलंकारों की योजना प्रायः सर्वत्र मिलती है। इससे उनके काव्य के प्रभावात्मकता और नैसर्गिक सौन्दर्य दोनों ही बढ़ गए हैं।

गुण गत रमणीयता :—बहुत से आचार्यों ने गुणों को काव्य की शोभा बढ़ानेवाला उपादान मानकर उन्हें अलंकारों से अधिक महत्त्व दिया है।[1] वामन ने स्पष्ट कहा है कि गुण काव्य के शोभा कारक धर्म हैं और अलङ्कार गुणकृत शोभा को बढ़ाने वाले उपादान हैं।[2] आचार्य मम्मट को यह मत मान्य नहीं है उन्होंने गुण को रस के धर्म रस के उत्कर्ष कारक तथा रस में अचल स्थिति रखनेवाले तत्त्व माना है। गुणों की संख्या के सम्बन्ध में भी आचार्यों में मतभेद हैं। भरत मुनि और वामन ने दस गुण माने हैं। अग्नि पुराण ने संख्या १६

१ अग्नि पुराण ३४६/१
२ काव्यालङ्कार सूत्र ३/१/१,२

तक पहुँचा दी है। भोज ने २४ गुणों की कल्पना की है। पर आचार्य मम्मट गुणों की इतनी संख्या मानने के लिये तैयार नहीं। उन्होंने सब गुणों का ओज, प्रसाद और माधुर्य से इन तीन रसों में अन्तर्भाव कर दिया है।

जहाँ तक कबीर की रचनाओं का सम्बन्ध है उसमें माधुर्य गुण की प्रधानता है। उपदेशात्मक उक्तियों में प्रसाद गुण भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। कबीर का रहस्यवाद अत्यन्त मधुर एवं रसात्मक है। उसमें शृंगार के दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति हुई है। रहस्यवाद की शृङ्गार रस पूर्ण उक्तियों में माधुर्य गुण की पूर्ण प्रतिष्ठा मिलती है।

माधुर्य गुण के विषय में आचार्य मम्मट ने लिखा है कि "टवर्ग" वर्जित जो स्पर्श वर्ण (क से लेकर म तक २५ व्यंजन जो वर्णमाला में पठित हैं के अग्र भाग में अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) से युक्त हो तथा "र" और "ण" यह दोनों अक्षर और समास का अभाव तथा छोटे समस्त पदों का अभाव और मधुरता युक्त स्वतः माधुर्य गुण की व्यंजक होती है (काव्य प्रकाश अष्ठम् उल्लास सू० ९९)। कहने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा कबीर ने आचार्य मम्मट के इन गुणों का अध्ययन नहीं किया था। उनकी उक्तियों में प्रयत्नजः माधुर्य गुण को ढूँढ़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उनकी बानी आत्मा की अभिव्यक्ति है। उससे आत्म रस का क्षरण होता है।

उनकी कविता में स्वाभाविक माधुर्य गुण की प्रतिष्ठा मिलती है। देखिए निम्नलिखित पंक्तियों में माधुर्य की कैसी मनोरम व्यंजना मिलती है।

> पथु निहारे कामिनी लोचन भरले उसासा।
> उर न भीजै पथु ना हरि दर्शन की आसा॥

दूसरे वाले उद्धरण में कवि ने शब्दों में केवल मधुर वर्णों की ही योजना की है। शब्दों के स्वरूपों को उनके मधुरतम रूप में रक्खा है। उनमें ऐसे प्रत्यय लगाये हैं जिनके प्रयोग से भाषा में माधुर्य अभिव्यक्ति में रसात्मकता और भाव में कोमलता आ जाती है।

"बहुरिया", "लहुरिया" आदि ऐसे शब्द हैं। शब्दों में कठिन वर्णों के

प्रयोग को बचाने की चेष्टा भी कबीर ने की है। "दुहेरा" शब्द में "ल" के स्थान पर "र" का प्रयोग उन्होंने इसीलिये उपयुक्त समझा है।

माधुर्य गुण के अतिरिक्त कबीर में प्रसाद गुण की भी कमी नहीं है। उनकी उपदेशात्मकता और सुधारात्मकता उक्तियाँ प्रसाद गुण सम्पन्न हैं। ऐसी उक्तियाँ अधिकतर खड़ी बोली में मिलती हैं। इनकी भाषा सरल सीधी और स्पष्ट होती है। स्वाभाविक दृष्टांत, उदाहरण, उपमा आदि अलंकारों के प्रयोग से प्रसादात्मकता और बढ़ गई है। देखिये निम्नलिखित उक्तियाँ अलंकारों के लिये कितनी सरल और प्रसाद गुण सम्पन्न हो गई हैं :—

(१) कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूँढै बन माँहि।
ऐसे घटि घटि राम हैं दुनियाँ देखै नाहिं।

क० ग्रं० पृ० ८१

(२) यहु तन काचा कुम्भ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ॥

क० ग्रं० पृ० २४

भाषा :—अभिव्यक्ति वाणी की प्राण शक्ति का दूसरा नाम है। इसे हम अपनी अनुभूतियों को दूसरे तक पहुँचाने की प्रक्रिया भी कह सकते हैं। "सैना वैना" इस प्रक्रिया के सहायक उपादान हैं। इन्हीं सैना वैना व्यवस्थित और सार्थक स्वरूप को भाषा कहते हैं। भाषा और अभिव्यक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः यहाँ पर पहले हम कबीर की भाषा पर संक्षेप में विचार करेंगे।

कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है। उनकी बानियों में हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है, साथ ही साथ खड़ी, अवधी, भोजपुरिया, पंजाबी, मारवाड़ी आदि उप भाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है। अभी तक केवल दो ही पुस्तकें ऐसी मिलती हैं जिनमें संकलित कबीर की बानियों को प्रामाणिक मानने के कुछ आधार हैं। एक तो कबीर ग्रंथावली और दूसरी सन्त कबीर। कबीर ग्रन्थावली के संकलन कर्ता हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर श्यामसुन्दर दास जी हैं। उनका कहना है

कि उसका सम्पादन दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है। जिनकी अनुलिपि क्रमशः सं० १५६१ तथा १८८१ है। यद्यपि अब एक आध विद्वानों ने इसके सम्बन्ध में सन्देह उठाया है, किन्तु अभी तक इसकी प्रामाणिकता का खण्डन नहीं किया गया है। दूसरा ग्रन्थ 'सन्त कबीर' है। इसके संकलन कर्ता कबीर साहित्य के मर्मज्ञ और प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर रामकुमार वर्मा हैं। इसमें उन्होंने ग्रंथ साहब में दिए हुए पदों का संकलन किया है। ग्रंथ साहब सिक्खों का अत्यन्त प्रामाणिक और विश्वसनीय ग्रंथ है। इन दोनों ग्रंथों की भाषा की निम्नलिखित कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं :—

(१) उसमें पंजाबी-पन अधिक है।

(२) उसमें भोजपुरी भाषा के संज्ञा और क्रिया रूप प्रचुरता से मिलते हैं।

(३) उनकी भाषा में कहीं-कहीं खड़ी बोली के अच्छे उदाहरण मिलते हैं।

(४) भाषा का रूप अधिकतर विषय और भाषा के अनुरूप है।

(५) उसमें विविध प्रान्तीय भाषाओं का मेल है।

(६) वह अत्यन्त सरल और सीधी-सादी है।

(७) उसमें संकेतात्मकता, प्रतीकात्मकता और पारिभाषिकता अधिक है।

(८) उसमें किसी एक भाषा के नियमों का पालन नहीं किया गया।

कबीर की भाषा की पहली विशेषता पंजाबी-पन है। कबीर ग्रंथावली और संत कबीर दोनों की भाषा में पंजाबी-पन का पुट है। इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि कबीर जब बनारस के निवासी थे तो उनमें पंजाबी-पन कहाँ से आया? इस सम्बन्ध में मेरा अनुमान है कि कबीर ने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग देशाटन में व्यतीत किया था। वे कई बार तो हज्ज ही गये थे। हज्ज जाते समय पंजाब से गुजरना पड़ा होगा। सम्भव है वह कुछ दिन वहाँ रह भी गये हों। उस समय पंजाब सूफी साधु संतों का केन्द्र था। उनमें थोड़े दिन रम रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पंजाब में रहने के कारण उनमें पंजाबी-पन का आ जाना स्वाभाविक था।

कबीर की भाषा में हमें भोजपुरी का भी पुट मिलता है। डा० रामकुमार

वर्मा ने अपने इतिहास[1] में कबीर की भाषा में पाई जाने वाली संज्ञा के लघ्वन्त और दीर्घान्त दोनों रूपों के बहुत से उदाहरण उद्धृत किए हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

खंभवा (पृष्ठ १४ पंक्ति १३), पहरवा (पृष्ठ १६ पंक्ति १३)
मनवा (,, १०८ ,, २३), खटोलवा (,, ११२ ,, १५)

उन्होंने भोजपुरी के अतीतकाल की क्रिया के 'अल' या 'अले' प्रत्यय के भी बहुत से उदाहरण उद्धृत किए हैं। जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :—

जुलहै तनि बुनि पार न पावल (पृ० १०४ पंक्ति १५)
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल (पृ० १०४/१५)

इसके अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार बहुत से ऐसे शब्द रूप भी हैं जिनके सम्बन्ध में उनकी धारणा है कि मूल रूप में भोजपुरी ही थे। किन्तु लिपिकारों के द्वारा उनका यहाँ भी रूपान्तर प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। डाक्टर साहब का मत समीचीन मालूम होता है, ऐसा स्वाभाविक भी है। बनारस में रहने वाले की भाषा में स्वभाव से ही पूर्वी रंग होना चाहिए यह बात दूसरी है कि उनकी बानियाँ जिनकी रचना पंजाब में हुई हो पंजाबी-पन लिए हों। पंजाबी और भोजपुरी के अतिरिक्त कबीर की ऐसी बहुत सी उक्तियाँ हैं जो खड़ी बोली का सुन्दर उदाहरण कही जा सकती हैं। निम्नलिखित साखी ही ले लीजिए :—

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलका कहूँ तो झूठ।
मैं का जानों राम को, नैनों कबहुँ न दीठ॥

इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास[2] में यह निवेदन किया है कि सन्तों को खड़ी बोली की परम्परा सिद्धों से मिली है। जिस प्रकार सिद्धों के उपदेश की भाषा टकसाली हिन्दी है, उसी प्रकार संतों के उपदेश की भाषा खड़ी बोली है। इन पंक्तियों के लेखक का अनुमान है कि

---

१ डा० रामकुमार वर्मा-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० १७
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल—पृ० २०

कबीर में इस प्रकार भाषा सम्बन्धी कोई विभाजन नहीं दिखलाई पड़ता है। ऊपर उद्धृत की हुई साखी ब्रह्म निरूपण से सम्बन्ध रखती है उपदेश से नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर ने खड़ी बोली का प्रयोग इसलिए किया था कि उनकी पूर्वी बोली न जानने वाले सन्त भी उनकी बात समझ सकें।

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने की है—वह यह है कि उसका रूप अधिकतर विषय, व्यक्ति और भाव के अनुकूल है। जब से वे किसी मुसलमान को कोई बात समझाते थे या किसी इस्लामी बात को समझाना चाहते थे तो वह फारसी मिश्रित उर्दू का प्रयोग करते थे। इस प्रकार हिन्दू धर्म की चर्चा करते समय तथा पण्डितों को समझाते समय वे शुद्ध हिन्दी का ही प्रयोग करते थे। देखिए मियाँ को समझाते समय कैसा उर्दू का प्रयोग किया है :—

मीयाँ तुम्हसौ वोल्यां वाणी नहीं आवै।
हम मसकीन खुदाई बन्दे, तुम्हारा जस मनि भावै॥
अल्लाह अवलि दीन का साहिब, जारे नहीं फुरमाया।
मुरसिद पीर तुम्हारे है को, कहौ कहाँ थै आया॥

क० ग्रं० पृ० १७४

इसी प्रकार हिन्दू महात्माओं और सन्तों के लक्षण बताते हुए शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया है :—

निरबैरी निहकामता, सांई सेती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह॥

क० ग्रं० पृ० ५०

पंजाबी ही नहीं उनमें बंगला, मैथिल, राजस्थानी आदि कई और भाषाओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। बंगला के 'अछिलों' आदि के प्रयोग भी कबीर में स्वतन्त्र रूप से आ गए हैं। लहंदा और राजस्थानी के प्रयोगों की भी कमी नहीं है। मेरा तो अनुमान यह है कि कबीर की भाषा में यदि देखा जाय और खोज की जाय तो भारत की प्रत्येक भाषा का कुछ न कुछ प्रभाव दिखाई देगा। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में मारवाड़ी, राजस्थानी, पंजाबी,

भोजपुरी आदि के बहुत से रूप मिलते हैं। देखिए निम्नलिखित साखी में राजस्थानी का कैसा प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

आखड़ियाँ प्रेम कसाइयाँ, लोग जाने दूखड़ियाँ।
साईं अपने कारणै, रोई रोई रातड़ियाँ॥

कबीर की भाषा पूर्ण सधुक्कड़ी है। उसमें किसी प्रकार का मिथ्या क्लिष्टत्व नहीं है। यह बिलकुल सीधी सादी और सरल है। उसमें व्यर्थ के अलंकार नहीं मिलेंगे। उनकी अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता ही उनकी भाषा का सौष्ठव है। उसको किसी भी प्रकार के वाह्य आडम्बरों से सजाने की चेष्टा नहीं की गई है।

कबीर की भाषा सरल और सीधी सादी होते हुए भी संकेतात्मक, प्रतीकात्मक और पारिभाषिक है। इसका प्रमुख कारण यही है कि उनकी रचनाओं में योग साधना और रहस्यवाद का विस्तार से वर्णन मिलता है। इन वर्णनों की भाषा का संकेतात्मक, प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक होना स्वाभाविक है। संकेतात्मक, प्रतीकात्मक और पारिभाषिक होने के कारण ही उनकी बानियाँ दुर्बोध हो गई हैं। इसे हम कबीर की भाषा का दोष न मानकर उनके वर्ण्य विषय की विशेषता कह सकते हैं।

कबीर की भाषा की एक और विशेषता है—वह यह है कि उन्होंने अधिकतर शब्दों के अत्यन्त विकृत रूप प्रयुक्त किए हैं। कभी-कभी तो उनके वास्तविक रूप का पता लगाना कठिन हो जाता है। देखिये इस पद[१] के शब्द कितने तोड़े मरोड़े गये तथा उनके कितने अस्पष्ट रूपों का प्रयोग किया है। इस

---

१ रे दिल खोजि दिलहर खोजि, नां परि परेसांनी मांहि।
महल माल अजींज औरति, कोई दस्तगीरी क्यूँ नांहि ॥टेक॥
पीरां मुरीदां काजियां, मुलां अरु दरवेस।
कहाँ थे तुम्ह किनि कीये, अकलि है सब नेस।
कुरानां कतेबां अस पढ़ि पढ़ि, फिकरि या नहीं जाइ।
टुक दम करारी जे करै, हाजिरां सूर खुदाई॥ इत्यादि
.क० ग्रं० पृ० १७९—पद २५७

प्रकार हम देखते हैं कि कबीर का भाषा पर एकाधिकार है। भावानुकूल और समयानुकूल भाषा गढ़कर तथा काट-छाँटकर उससे अपनी स्वेच्छानुसार अभिव्यक्ति कर लेना उन्हें खूब आता है। तभी तो उनकी उक्तियों में इतना प्रभाव, प्रवेग और प्रेषणीयता है।

छन्द :—कबीर ने अधिकतर सधुक्कड़ी छंदों का प्रयोग किया है। इनमें सबसे प्रमुख साखी, सबद और रमैनी हैं। रमैनियों में प्रायः कुछ चौपाइयों के बाद दोहे के समान एक साखी का प्रयोग किया जाता है। साखी बहुत कुछ दोहे से मिलती-जुलती है। शब्द वास्तव में पदों का वाचक मालूम होता है। कबीर के 'सबद' अधिकतर राग रागनियों और पदों के रूप में ही हैं। इन छंदों के अतिरिक्त चौतीसी, विप्र भतीसी, कहरा हिंडोला, वसन्त, चाचर, वेलि, बिरहुली आदि और भी अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है। इन छंदों में कबीर को कुछ ग्रामीण बोलियों से और कुछ साधु परम्परा से प्राप्त हुए थे। इनमें कोई छंद पिंगल के नियमों से नहीं बाँधा है। इनके अपने नियम हैं और इनमें प्रायः गीत और लय पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। एक मुसलमान विद्वान् ने[1] कबीर के छंदों के विषय में एक नई खोज की है। वे उन्हें उर्दू भाषा का प्रथम गज्जाल करार देते हैं। उदाहरण रूप में उन्होंने निम्नलिखित उदाहरण पेश किया है। किन्तु इसकी प्रामाणिकता अनिश्चित है :—

हमने इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या।
रहे आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या।
जो बिछड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते,
हमारा यार है हममें हमन को इंतजारी क्या।
खलक सब नाम अपने को बहत कर सिर पटकता है,
हमन गुरु नाम सांचा है हमन दुनिया से यारी क्या॥

———

१ एम० ए० गनी—हिस्ट्री आफ दि परसियन लैन्ग्युज-एट दि मोगल कोर्ट, में यह उर्दू की पहली गजल मानी गई है।

· सातवाँ प्रकरण

मध्यकालीन विचारकों में कबीर का स्थान

तीन कोटि के मध्यकालीन विचारक—उनमें कबीर का स्थान—कबीर का कार्य।

मध्यकालीन विचारकों में कबीर का स्थान

मध्ययुग में हमें तीन प्रकार के विचारक दिखाई पड़ते हैं—रूढ़िवादी, सामञ्जस्यवादी और स्वतन्त्र। रूढ़िवादी विचारक अधिकतर शास्त्र आचार्य थे। यह लोग शास्त्रीय विधि-विधानों तथा वर्णाश्रम धर्म में पूर्ण आस्था रखते थे। दर्शन क्षेत्र में स्वतन्त्र चिन्ता को महत्त्व देते हुए भी श्रुति प्रामाण्यवाद के कट्टर अनुयायी थे। स्वामी शंकराचार्य ऐसे ही रूढ़िवादी विचारकों के मुखिया थे। शंकराचार्य के अतिरिक्त विष्णु स्वामी, निम्बकाचार्य, बल्लभाचार्य आदि अन्य प्रमुख रुढ़िवादी विचारक भी मध्ययुग में हुए थे।

सामञ्जस्यवादी विचारकों के प्रमुख और प्रथम अधिनायक स्वामी रामानुजाचार्य थे। इनका लक्ष्य शास्त्रीय वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए भी शूद्रों के प्रति सहानुभूति और स्नेह प्रदर्शित करना था। इसी स्नेह और सहानुभूति की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने शूद्रों के लिये प्रपत्ति का मार्ग खोला था। इनकी परम्परा में आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास हुए, जिन्होंने विविध विरोधी तत्त्वों में सामञ्जस्य विधान की चेष्टा की थी। तुलसी के पहले भी चैतन्यदेव, नामदेव, रामदास, नरसिंह मेहता, तुकाराम आदि अनेक सामञ्जस्यवादी सन्त हो चुके थे। मुसलमानों में सामञ्जस्यवादी विचारकों के मुखिया 'अलगज़्जाली' माने जाते हैं। इन्होंने रूढ़िवादी इस्लाम का स्वतन्त्र चिंतामूलक सूफी मत से सामञ्जस्य स्थापित किया था।

तीसरी धारा उदार वृत्ति वाले स्वतन्त्र चिंतकों की थी। इसका लक्ष्य सर्वतोन्मुखी सुधार करके रूढ़िवादी विचारधारा का खण्डन करना था। यह शास्त्रीय विधि-विधान, वर्णाश्रम धर्म और प्रामाण्यवाद में विश्वास नहीं करते थे। अंधानुसरण और अंध विश्वास से इन्हें विशेष घृणा थी। यह सभी सन्त स्वभाव से अत्यंत बुद्धिवादी और स्वतन्त्र विचारक थे। रामानन्द और उनके शिष्य कबीर ऐसे ही स्वतन्त्र विचारकों में अग्रगण्य हैं।

यों तो स्वतन्त्र चिन्ता का श्रोत भारतवर्ष में अनादि काल से बह रहा है। वेदों में वर्णित व्रात्य लोग भी स्वतन्त्र चिन्तक ही थे। बौद्ध, जैन धर्म आदि में भी स्वतन्त्र चिंता के ही परिमाण हैं, किन्तु मध्यकाल में यह स्वतन्त्र चिन्ता की धारा अधिक उच्छृंखल हो चली थी। इसका मुख्य कारण बौद्ध और हिन्दू धर्म का ह्रास कहा जा सकता है। स्वामी शंकराचार्य के प्रभाव से जब बौद्ध धर्म पतनोन्मुख हो चला तब अनेक उपसम्प्रदाय उदय होने लगे। इनमें सहजयान, वज्रयान, नाथपंथ, बाउल सम्प्रदाय, निरञ्जन पंथ आदि प्रमुख हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म क्षेत्र में अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। चिन्तन क्षेत्र में कबीर इस विश्रृंखलता को न देख सके। अतः उन्होंने इन सबको मर्यादित कर एक सात्विक और स्वतन्त्र विचारधारा को जन्म दिया। यदि उस युग में कबीर की सदाचरण प्रधान धारा का प्रवर्तन न हुआ होता तो आचरण की दृष्टि से भारत की न मालूम क्या अवस्था होती।

स्वतंत्र चिन्ता की धारा उत्तर भारत में ही नहीं, दक्षिण में भी बह निकली। लिंगायत, सिद्धरा आदि सम्प्रदायों का उदय इसी स्वतंत्र चिन्ता के परिणामस्वरूप समझना चाहिए। इन सम्प्रदायों में प्राचीन सनातन धर्म के प्रति क्रांतिकारी प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है। इन धर्म पद्धतियों का प्रवर्तन सुधार की भावना से हुआ था।[१] इनके प्रवर्तक हिन्दू और मुसलमानों के लिए एक समान तैयार

---

१ 'इन्फल्यूएंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर' पृ० ११७
देखिए कास्ट्स एण्ड ट्राइब्स आफ साउथ इण्डिया-थर्स्टन लिंगायत—पृ० २८०

करना चाहते थे। इन धार्मिक सम्प्रदायों का लक्ष्य धर्म सुधार के साथ समाज सुधार भी करना था। लिंगायतों में विवाह बन्धन वर-वधू की इच्छा पर रखा गया है। इसमें बाल विवाह का विरोध और पुनर्विवाह का विधान भी मिलता है।[1] इतना सब होते हुए भी इन विचारकों को उतनी लोक प्रियता प्राप्त न हो सकी जितनी कबीर को। इसका प्रमुख कारण यही था कि कबीर इन सबसे अधिक प्रतिभाशाली और लोक रुचि को परखने वाले थे। दूसरे इन धर्म पद्धतियों के प्रवर्तकों ने धर्म सुधार और समाज सुधार को जितना महत्त्व दिया उतना दर्शन को नहीं। दर्शन ठोस वस्तु है। वह देश काल की सीमा का अतिक्रमण करके भी जीवित रहती है। कबीर स्वभाव से ही धर्म सुधारक, समाज सुधारक के साथ-साथ उच्चकोटि के दार्शनिक और उपदेशक भी थे। उनकी दार्शनिकता उनकी रचनाओं का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ाती जा रही है और वे दिन पर दिन लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

जहाँ तक इस्लाम का सम्बन्ध है उसमें स्वतंत्र चिन्ता का कोई स्थान ही नहीं है। हाँ, सूफीमत में अवश्य स्वतन्त्र चिन्ता को विशेष महत्त्व दिया गया था किन्तु सूफियों को इसके लिये बहुत मूल्य चुकाना पड़ा। 'मन्सूर हल्लाज' तो बेचारा स्वतन्त्र चिन्ता के कारण ही सूली पर लटका दिया गया था। यदि गज्जाली सूफी मत का इस्लाम से सामञ्जस्य स्थापित न करता तो न मालूम और कितने सूफियों को सूली पर चढ़ना पड़ता। अतः इस्लाम में हल्लाज को छोड़कर और कोई दूसरा विचारक नहीं है जिससे कबीर की थोड़ी बहुत तुलना की जा सके। किन्तु 'हल्लाज मंसूर' का भारतवर्ष से कोई सम्बन्ध न था। इसलिये कबीर की तुलना में उसे भी लाना उचित नहीं है।

मध्ययुग में कबीर ने भारत का जितना उपकार किया था उतना आज तक कोई विचारक न कर सका। कबीर के युग में इस्लाम अपना प्रचण्ड प्रभाव जमाता चला जा रहा था। उस प्रवाह में अनेक पीड़ित निम्न जातियाँ सामूहिक रूप से इस्लाम धर्म स्वीकार करती चली जा रही थीं। कबीर स्वयं भी एक ऐसी ही जाति से सम्बध रखते थे जो उनके उत्पन्न होने के कुछ पूर्व मुसलमान हो गई

---

१ इन्फल्यूएंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर—पृ० ११८

थी ।[१] कबीर ने धर्म-परिवर्तन के इस उठते हुए तूफान को यथाशक्ति रोका । उन्होंने साधारण जनता में एक भेद भाव विहीन ऐसे बुद्धिवादी सहज धर्म की प्रतिष्ठा की जिसकी सीमाएँ सब प्रकार के बन्धनों से निर्मुक्त थीं । इसी के परिणामस्वरूप साधारण जनता में भी स्वतन्त्र रूप से सोचने की शक्ति जाग्रत हुई । वह इस्लाम से भी अधिक सरल व्यावहारिक और बुद्धिवादी धर्म स्वरूप को देखकर मुग्ध हो गई । फिर उसने धर्म परिवर्तन का विचार छोड़ दिया । यदि कबीर ने इस प्रकार जनता में विचार स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति न जाग्रत की होती तथा धर्म के सहज रूप को सामने न लाये होते तो आज भारत में जितने हिंदू दिखाई पड़ते हैं उसके चतुर्थांश शेष न रह जाते । कबीर का कार्य केवल उन्हीं तक सीमित न रहा उसके पश्चात् भी उनका कार्य उनके शिष्यों द्वारा और भी दृढ़ता से सम्पन्न हुआ । इसी के फलस्वरूप उनकी विचारधारा से अनुप्राणित अनेक पंथों का प्रवर्तन हुआ और कबीर के समान ही अनेक विचारकों का जन्म भी । इन पंथों और विचारकों में नानक पंथ, दादू पंथ, लालदासी लोग, साध लोग, धरनीदास, चरनदास, नारायणी और गरीबदासी लोग, पलटू पंथ, प्राणनाथी संत, राधास्वामी सत्संग आदि प्रमुख हैं । इसके अतिरिक्त बहुत से मुसलमान विचारक भी कबीर से प्रभावित हुये थे । इनमें यारी साहब, बुल्ला साहब और दरिया साहब हैं ।[२]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर का मध्यकालीन विचारकों में विशिष्ट स्थान है । उनकी विचारधारा मध्ययुग के लिये अनुपम देन थी । यह वह सुधा थी जिसे पान कर पतित भी उठ खड़े हुए और निराश आशा से नाच उठे थे । यदि कबीर का जन्म न हुआ होता तो आज भारत का इतिहास कुछ और ही होता ।

---

१ देखिए प्रकरण 'रूढ़िवादी विचारक'

२ इनका विस्तृत विवेचन आचार्य क्षितिमोहन सेन के प्रसिद्ध ग्रंथ मैडिवल मिस्टीसिज्म में देखिए ।

आठवाँ प्रकरण

उपसंहार

कबीर के विचारों के दो मूल उत्स—कबीर की प्रतिभा—अनुशीलन की क्षमता—विचारों का संग्रह—विचारधारा की विशेषता—क्रान्ति भावना—प्रेम भावना।

कबीर की विचारधारा के सूक्ष्म और साङ्ग अध्ययन के पश्चात् यह स्वयं स्पष्ट होने लगता है कि उसके मूल उत्स दो थे—अलौकिक प्रतिभा और सत्यानुभूति। इन्हीं दोनों का स्वर्ण और सुगंध सहयोग पाकर उनकी वाणी थिरक उठी थी। उन्होंने अपना सारा जीवन सत्यान्वेषण एवं सत्य के प्रयोगों में व्यतीत किया था। जिन सत्य खण्डों की अनुभूति उन्हें गूढ़ चिन्तना और विचारात्मकता के माध्यम से होती थी, उनकी प्रतिभा उन्हें शब्दमय रूपों में एक विचित्र सौन्दर्य के साथ व्यक्त कर देती थी। शाश्वत सत्य तत्त्व ही आत्म तत्त्व है। कबीर की प्रतिभा ने उसी की मधुमयी गाथा गाई है। इन अमूल्य सत्य ग्रन्थों की अनुभूति के बीच-बीच में उन्हें जो भी मिथ्या तत्त्व और आडम्बर के असत्य मय उपल शकल मिले उन्होंने उनको जी खोलकर ठुकराया है। उनकी अक्खड़ता का पता ऐसे ही अवसरों पर मिलता है। ऐसे ही अवसरों पर उनका क्रांतिकारी रूप भी व्यक्त हुआ है। उनकी क्रांतिभावना ने उनकी विचारधारा में एक ऐसा प्रवेग भर दिया था जो भारतीय साहित्य में क्या सम्भवतः विश्व साहित्य में खोजने से भी न मिलेगा। कबीर की इन्हीं सब विशेषताओं को पाकर उनकी विचारधारा इतनी महत्त्वशालिनी हो उठी है।

प्रतिभा के अन्तर्गत प्रधान रूप से चार शक्तियाँ आती हैं—तत्व ग्राहिणी शक्ति, तत्त्व धारणा शक्ति, उद्भावना शक्ति और अभिव्यञ्जना शक्ति।

कबीर में यह चारों शक्तियाँ अपरिमित मात्रा में विद्यमान थीं। उनकी तत्त्व ग्राहिणी शक्ति तो इतनी प्रखर थी कि वे दुरूह से दुरूह और जटिल से जटिल विषयों को सुनते-सुनते ही समझ जाते थे। तभी तो वे भारत के प्रत्येक दर्शन, प्रत्येक धर्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म सारभूत तत्त्वों को आत्मसात् करने में समर्थ हुए थे। कभी-कभी तो उनको प्रतिभा की इस शक्ति पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। पण्डितों, मुल्ला, मौलवियों से उनका विरोध था। वे उन्हें अपना गुरु नहीं बना सकते थे, और न वे ही कबीर को कभी कुछ समझाने का प्रयत्न करते होंगे। किन्तु फिर भी आश्चर्य है कि उन्हें इनकी इतनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातें ज्ञात थीं कि जिनको सम्भवतः उस विषय के विद्वान् भी नहीं जानते होंगे। इसका प्रमुख कारण उनकी तत्त्व ग्राहिणी शक्ति की विलक्षणता ही थी।

कबीर की धारणा शक्ति तत्त्व ग्राहिणी शक्ति से भी अद्भुत थी। सूक्ष्म विषयों को समझ लेना उतना कठिन नहीं है जितना उनको सदैव स्मरण रखना। कबीर की रचनाओं को देखिए, उसमें उन्होंने दर्शन और योग की सूक्ष्माति-सूक्ष्म बातें वर्णित की हैं। जिस जुलाहे ने स्वयं कहा है "विदिया न परउ वाद नहिं जानउ" वही हिंदू धर्म की हिन्दू दर्शनों की इतनी सूक्ष्म बातों का वर्णन करता है जिनको देखकर आश्चर्यान्वित होना ही पड़ता है।

उनका मस्तिष्क वास्तव में वह अनन्त रत्नाकर है जिसके अंतराल में विचित्रातिविचित्र अनुभव और अनन्त रत्नराशि बिखरी पड़ी थीं। उनकी विचारधारा में वे रत्न स्पष्ट झलकते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

कबीर की उद्भावना शक्ति भी अलौकिक थी। कल्पना और मौलिकता उद्भावना शक्ति के नामान्तर हैं। कबीर की कल्पना शक्ति बड़ी प्रचण्ड थी। उसके सहारे वे जटिलतम रूपक और विचित्र उलटवासियों की योजना करने में समर्थ हो सके थे। उनके रहस्यवाद में विरह मिलन के जो अनेकानेक मधुर चित्र हैं उनके मूल में उनकी विशाल कल्पना ही है। उनकी इस कल्पना शक्ति ने ही उन्हें हिन्दी का मधुर और सुन्दर कवि बना दिया है। कल्पना के साथ-साथ कबीर में अद्भुत मौलिकता भी थी। उनके रूपकों, अन्योक्तियों, उलट-वासियों आदि में अप्रस्तुतों की सुन्दरतम योजना उनकी मौलिकता की ही परिचायक है। कबीर की मौलिकता एक बात में और है। उनका नियम था

कि वे किसी विचार का पिष्टपेषण नहीं करते थे। वे दूसरे के सारभूत तत्त्वों को ग्रहण तो अवश्य करते थे, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति वे प्रतिभा के साँचे में ढालकर ही करते थे। अनुभूति की अग्नि में परिष्कृत किए हुए कबीर के विचाररूपी स्वर्णकण प्राचीन होते हुए भी अभिनव ही दिखलाई पड़ते हैं। यही उनके विचारों की मौलिकता है। उनकी विचारधारा का बहुत बड़ा महत्त्व इसी मौलिकता पर आधारित है।

मौलिकता के बाद अभिव्यञ्जना शक्ति आती है। अभिव्यञ्जना वास्तव में वाणी का प्राण है। कबीर की प्रतिभा वाणी के इस प्राण से पूर्ण रूपेण अनुप्राणित थी। भाषा अभिव्यक्ति का प्रमुख प्रसाधन है। कबीर भाषा के डिक्टेटर थे। जहाँ पर जैसी भाषा की आवश्यकता होती थी कबीर वहाँ वैसी ही भाषा प्रयुक्त करते हैं। यदि अधिक सुंदर ढग से कहना चाहें तो आचार्य हजारी प्रसाद जी के शब्दों में कह सकते हैं कि "जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है। बन गया है तो सीधे-साधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानों इतनी हिम्मत ही नहीं है कि वह लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमायश को नाहीं कर सके। अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।"[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा पर कबीर का एकाधिकार था। उनकी अभिव्यक्ति का बहुत बड़ा सौन्दर्य भाषा पर ही आश्रित है। इस अभिव्यक्ति सौष्ठव ने कबीर की बानियों का काफी महत्त्व बढ़ा दिया है।

अनुशीलन की क्षमता :—प्रतिभा की विभिन्न शक्तियों के साथ-साथ कबीर में विचारों और वस्तुओं के अनुशीलन की अद्भुत शक्ति थी। बार-बार कहा जा चुका है कि कबीर का जीवन सत्य के प्रयोगों में बीता था। जीवन और जगत् में जो कुछ भी उनके सामने आया उसे उन्होंने कभी उसी रूप में ग्रहण नहीं किया। उनका यह नियम था कि वे प्रत्येक बात पर विचार करते थे, उसका अनुशीलन करते थे, फिर जब उसे वे ग्राह्य समझते तो आत्मसात्

---

1 डा० हजारी प्रसाद—'कबीर' (उपसंहार)

कर लेते थे। किन्तु जिन बातों को असत्य, मिथ्या और आडम्बर रूप समझते थे उनका वे डटकर विरोध करते थे। उनके सामाजिक विचार इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

पीछे सामाजिक विचार वाले प्रकरण में कहा जा चुका है कि जिस समय उनका उदय हुआ था भारत में वाह्याचारों का बवंडर उठ रहा था। इस बवंडर में सत्य असत्य मिलकर एक हो गए थे। कबीर को इस बवंडर का सामना करना पड़ा था। ऐसे समय में उन्होंने अपनी अनुशीलनात्मक प्रवृत्ति से ही काम लिया। इसी के सहारे वे नीर-क्षीर का विवेक कर सके थे। इसी के बल पर वे समाज को, धर्म को, दर्शन को, साहित्य को सभी को एक अभिनव रूप देने में समर्थ हुए थे। उनके धार्मिक और सामाजिक विचारों का अध्ययन उनकी इसी अनुशीलन की क्षमता के प्रकाश में करना चाहिए।

विचारों का संग्रह :—कबीर की अनुशीलन की क्षमता ने जो सबसे बड़ा काम किया था वह था सद्विचारों का संग्रह। वैसे तो कबीर के जीवन का लक्ष्य ही ब्रह्म या आत्मविचार करना था। उनकी आध्यात्मिक विचारप्रियता ने ही उनके सच्चे स्वरूप को सँवारा था। जिस प्रकार विद्याओं में अध्यात्म विद्या का सबसे अधिक महत्त्व है उसी प्रकार विचारों में आध्यात्मिक विचारों का स्थान है। कबीर ने अद्भुत अनुशीलन क्षमता और अलौकिक प्रतिभा के सहारे विविध दर्शनों, विविध धर्मों के सिद्धान्तों का अध्ययन करके उनके सारभूत विचारों का संग्रह किया था। उन्हें जहाँ कहीं सत्य के पोषक विचार मिले उनका उन्होंने सहर्ष स्वागत किया। यही उनकी महानता थी। इसीलिए उनके विचार इतने ऊँचे हैं। इस विचार संग्रह के कार्य में उनकी सारग्राहिणी एवं नीर-क्षीर विवेकारिणी बुद्धि ने बहुत अधिक सहायता पहुँचाई थी।

उनकी विचारधारा की विशेषता :—उनकी विचारधारा के वास्तविक स्वरूप का अध्ययन करते समय हमें उनके व्यक्तित्व की दो एक बातें अवश्य स्मरण रखनी पड़ेंगी। उनमें से एक है उनकी क्रान्ति भावना। कबीर की क्रान्ति भावना कुछ तो पूर्व जन्म के संस्कारों का परिणाम और कुछ युगीय परिस्थितियों की देन थी। जिस समय उनका जन्म हुआ था, उस समय देश में अनेक धार्मिक मत और साधनाएँ प्रचलित थीं। इन सभी में वाह्याडम्बरों की प्रधानता थी।

कबीर जन्म से ही इन वाह्याडम्बरों की प्रतिक्रिया का भाव लेकर उत्पन्न हुए थे। प्रतिक्रिया की भावना का प्रचण्ड स्वरूप ही कबीर में क्रान्ति बनकर अवतीर्ण हुआ है। यह क्रान्ति भावना कबीर के व्यक्तित्व की सबसे प्रमुख विशेषता है। इस क्रांति के कठोर कण उनकी विचारधारा के सभी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। उनके सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक और यौगिक आदि सभी प्रकार के विचार इसी क्रान्ति के स्वर से स्वरित हैं। सच तो यह है उनके व्यक्तित्व में तो मानो वह शतशः मूर्तिमान हो उठी थी। उनकी इस क्रान्ति भावना ने दर्शन क्षेत्र में विलक्षण और सर्वातीत ब्रह्म की स्थापना की है। तत्त्वानुभूति में बुद्धिमूलक तर्क का दृढ़ विरोध किया है। धर्म-क्षेत्र में उसने विविध धर्मों के विकृत हुए विशेष रूप का खण्डन और सीधे और सच्चे सरल धर्म का प्रस्थापन किया है। समाज क्षेत्र में उनकी यही क्रान्ति भावना सदाचरण और साम्यवाद का रूप धारण कर सामने आई है। लोकाचार और वेदाचारजनित कुरीतियों का तो उसने मूलोच्छेदन करने का ही प्रयत्न किया है। क्रान्ति के वशीभूत होने के कारण कबीर का स्वभाव कुछ फक्कड़ तथा कुछ उन्मन सा हो गया था। इसी से वह कटु स्पष्टवादी हो गए थे। इस प्रकार क्रान्ति ने कबीर की समस्त विचार-धारा को अपने अधीन कर रखा है।

प्रेम तत्त्व कबीर की विचारधारा का प्राण-प्रदायक अणु है। महात्मा कबीर का स्वरूप ठीक वैसा ही है जैसा प्रेम ने उसे सँवारा है। आलोचकगण प्रायः उनके स्वरूप का विवेचन करते हुए उनकी यह विशेषता भूल जाते हैं। तभी वे उन्हें कोरा दार्शनिक, सुधारक और धर्मोपदेशक समझ बैठते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर दार्शनिक, सुधारक और धर्मोपदेशक सभी कुछ थे। किन्तु उनके यह सभी स्वरूप प्रेम से विशिष्ट हैं। इस प्रेम तत्त्व की प्रधानता के कारण ही वे अध्यात्म क्षेत्र में सहजवादी और सदाचरण प्रिय भक्त दिखाई देते हैं। समाज क्षेत्र में इसी प्रेम तत्त्व ने उन्हें सहानुभूति विशिष्ट सुधारक बना दिया है। इसी प्रेम तत्त्व के प्रभाव से उनका हठयोग भी सहज योग में परिवर्तित हो गया है। अंत में यह कहना आवश्यक है कि कबीर की सारी विचारधारा का प्रवर्तन ही प्रेम मूलक, ब्रह्मानुभूति-जनित समाधि की अवस्था में हुआ था। इसीलिए उनमें मानव जाति के लिए अमर संदेश निहित है। उनमें रहस्यवाद के समावेश का

भी यही कारण है। श्रेष्ठ काव्यतत्त्व का स्फुरण भी इसी कारण हो सका है। तभी उसमें एक अलौकिक रस धारा प्रवाहमान है। भवभूति ने वाणी को आत्मा की कला कहा है।[1] कबीर की वाणी वास्तव में आत्मा की कला ही है। तभी तो उसमें गूढ़ आध्यात्मिकता, अक्षय आनन्द और अनन्त कल्याण भावना भरी है। सच तो यह है कि उसमें अलौकिक अमृतत्व भरा हुआ है, जिसे प्राप्त करने के लिए महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी व्याकुल हो उठी थी। इसी अमृतत्व को पाकर निष्प्राण होती हुई मध्ययुग की भारतीय जनता एक बार जीवन और ज्योति से फिर जगमगा उठी थी।

इस प्रकार महात्मा कबीर नवयुग का निर्माण करनेवाले भारत की अन्यतम विभूति थे। मध्यकालीन सोये हुए युग को जगाने का श्रेय उन्हीं को है। हताश भारत को हाथ पकड़कर उन्होंने ही उठाया था। उन्हीं की अलौकिक प्रतिभा को पाकर साहित्य थिरक उठा था। उन्हीं के अनुसंदेश से मृत-प्राय हिन्दू समाज जीवन ज्योति से जगमगा उठा था। उनके ही विचार अनुभूति के संसर्ग से उच्चतम दर्शन की प्रसूति हुई है। उनके ही पावन हृदय से भक्ति की वह अलौकिक धारा बही थी जिसके स्पर्श मात्र से आज भी जड़ चेतन और चेतन तन्मय हो उठते हैं।

---

१ उत्तररामचरित—प्रथम अंक—प्रथम श्लोक

परिशिष्ट

कबीर पंथ की रूपरेखा

कबीर के कुछ पारिभाषिक शब्द, सहायक ग्रंथों की सूची

कबीर के विचारों का परवर्ती रूप

कबीर पंथ की वर्तमान रूपरेखा :—आज का कबीर पंथ एक व्यवस्थित धर्म पद्धति के रूप में दिखाई पड़ता है। अन्य धर्मों की भाँति उसका अपना एक विस्तृत साहित्य है। उसके अपने अलग आध्यात्मिक सिद्धान्त हैं। उसकी साधना पद्धति, उसके विधि-विधान, उसके रीति-रिवाज, उसके तीर्थ-स्थान आदि सभी कुछ अपने अलग ही हैं, उसका आधुनिक रूप हिन्दू धर्म से अत्यधिक प्रभावित मालूम पड़ता है। उसकी रूपरेखा उससे काफी मिलती-जुलती है। कबीर की वाणी में प्रतिष्ठित सहज धर्म से कबीर पंथ का कितना साम्य और वैषम्य है इसके समझने के लिए कबीर पंथ पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेनी चाहिए।

कबीर पंथियों के आध्यात्मिक सिद्धान्त बहुत जटिल नहीं हैं। उन पर हिन्दुओं के अद्वैतवाद तथा पौराणिक वैष्णव मत आदि का अच्छा प्रभाव पड़ा है। पहले उनके सृष्टि विकास क्रम पर विचार कर लिया जाय। कबीर पंथियों में श्रेष्ठता की दृष्टि से सृष्टि को दस लोकों में विभाजित कर रक्खा है। इस लोक विभाग के अनुसार ही उन्होंने ईश्वर के भी दस स्वरूप माने हैं। इन दसों रूपों में से प्रत्येक एक-एक लोक का अधिष्ठाता माना गया है। इन्हीं दस लोकों के आधार पर ज्ञान की भी दस अवस्थायें निश्चित की गई हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य ज्ञान के एक-एक सोपान पर चढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह उच्चतर लोक का अधिकारी बनता जाता है। इन लोकों में सबसे उच्चतम लोक सत्य लोक है और श्रेष्ठतम पुरुष सत् पुरुष है। इस सत् लोक में पहुँचकर साधक जीवन मुक्त हो

जाता है। वहाँ पर निरंजन के बंधन नहीं पहुँचते। यह निरंजन कौन है ? इसका बड़ा मनोरंजक इतिहास है। कहते हैं सबसे प्रथम केवल सत्पुरुष का अस्तित्व था। कबीर के राम और कबीर पंथियों के सत्पुरुष को एक ही समझना चाहिए। इन्हीं सत्पुरुषों ने विश्व का निर्माण किया। उसमें उन्होंने अपने सात पुत्रों की प्रतिष्ठा की। इन पुत्रों के नाम क्रमशः सहज, ओंकार, इच्छा, सोहंग, अचिन्त्य और अक्षर हैं। सत्पुरुष के यह छहों पुत्र जब संसार में शान्ति और व्यवस्था स्थिर न कर सके तब सत्पुरुष ने सातवें पुत्र को उत्पन्न करना चाहा। सत्पुरुष ने अक्षर को जल में प्रगाढ़ निद्रा में सुला दिया। जब उनकी नींद टूटी तो उन्होंने एक अंडे को तैरता हुआ देखा। वह उस पर मनन करने लगे। वह अंडा फूट गया। उसमें से ही यह एक निरंजन नाम का भयानक पुरुष निकला। इन निरंजन महाराज को काल पुरुष भी कहते हैं। इस काल पुरुष ने तपस्या करके सत्पुरुष से तीनों लोकों (स्वर्ग, नरक और पृथ्वी) का आधिपत्य माँग लिया। अभी इन लोकों की सृष्टि नहीं हो पाई थी, कच्छप महाराज उसके प्रयत्न में ही थे कि निरंजन महाशय उनसे लड़ पड़े। उन्होंने कच्छप के सोलह सिर काट कर सूर्य, चन्द्र आदि का निर्माण किया। कच्छप ने सत्पुरुष से निरंजन के विरुद्ध शिकायत की। इस पर सत्पुरुष ने निरंजन को अपने लोक से वहिष्कृत कर दिया। यद्यपि निरंजन के पास मनुष्य बनाने का सारा सामान था किन्तु वह उससे मनुष्य का निर्माण करने में असमर्थ था। अतः उसने कच्छप के तीन सिरों को उदर अस्त कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह कामोन्मत्त हो गया। फिर उसने सत् पुरुष से अपनी इच्छा पूर्ति के लिए प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना पर सत् पुरुष ने माया की सृष्टि की। माया और निरञ्जन के सहयोग से ब्रह्मा, विष्णु और महेश का जन्म हुआ। इन तीनों की उत्पत्ति के पश्चात् निरञ्जन ने चार वेदों की रचना की। इनकी रचना करके वह अन्तर्ध्यान हो गया। पुनः माया ने तीन कन्याओं की सृष्टि की। किन्तु वेद और कन्याएँ समुद्र में विलीन हो गईं। ब्रह्मा और विष्णु ने समुद्र का मन्थन करके उन्हें फिर निकाल लिया। कन्याएँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश की क्रमशः स्त्रियाँ हो गईं और वेद, लोक में चार स्वरूपों में प्रचलित हो गया।

आगे चलकर ब्रह्मा ने इस संसार की सृष्टि की। मनुष्य त्रिदेवों की पूजा

में ही लीन हो गए। सत्पुरुष का उन्हें ध्यान भी न रहा। किन्तु माया ने जब यह देखा कि मानव सृष्टि में उसके पुत्र उसकी प्रतिष्ठा कम कर रहे हैं तब उसने तीन कन्याओं की और सृष्टि की। इन कन्याओं ने संगीत, नृत्य आदि से संसार को इतना आकृष्ट किया कि वेद माया को देवी के रूप में पूजने लगा। मुमुक्षुओं ने सत्पुरुष से मुक्ति की प्रार्थना की तो उन्होंने कबीर को सन्देश लेकर भेजा।[1] कबीर पंथियों का कहना है कि प्रलय काल में सब कुछ नष्ट हो जावेगा केवल सात पुरुष रह जावेंगे। यह हुआ निरञ्जन महाराज का पसारा और उनकी गाथा। अब हम अपने विषय पर फिर आते हैं। दसों लोकों और उनके अधिष्ठाताओं तथा ज्ञान की अवस्थाओं का क्रम निम्नलिखित कोष्ठीकरण से स्पष्ट हो जायेगा।[2]

अधिष्ठाता	लोक	ज्ञान की अवस्था
सत्पुरुष	सत् लोक	शब्दसार
सहज	सहज द्वीप	दैनाक
ओंकार	ओंकार द्वीप	हुकुम मुर्तिंद
इच्छा	इच्छा द्वीप	जुलकर चन्द्राकि
सोहंग	सोहंग द्वीप	ध्यानदोराहियात
अचिन्त्य	अचिन्त्य द्वीप	तख्वहत
अक्षर	लाहूत	मारिफत
निरञ्जनानन्द माया	जबरुत	हकीकत
ब्रह्मा, विष्णु और शिव	मलकूत	तफ्त
सब अन्य जीव	नासूत	शरीयत

१ अनुराग सागर आदि कबीर पंथी ग्रन्थों में ऐसी ही बातें हैं।

२ 'कबीर एण्ड हिज फालोअर्स'—पृ० १३८

साधक को विधि विधानों का पालन नासूत तक ही सीमित रखता है। उपासक साधक मलकूत तक पहुँच जाते हैं। उपासक साधकों की पहुँच जिबरूत तक हो जाती है। मारिफत या ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करनेवाला लाहूत तक पहुँच जाता है। कुछ ऐसे भी सिद्ध साधु होते हैं जो अचिन्त्य द्वीप तक पहुँच जाते हैं। सहज द्वीप तक केवल त्रिदेव ही पहुँच सकते हैं। जीव सद्‌गुरु के उपदेश के द्वारा ही सत्‌लोक की प्राप्ति कर सकता है। यहाँ प्रत्यक्ष कबीर पंथियों की यह विविध लोक कल्पना और साधना के विविध सोपान बहुत कुछ सूफियों की पद्धति पर किए हुए जान पड़ते हैं।

कबीर पंथियों के मतानुसार जीव सत्पुरुष के ही अंश हैं। किन्तु वे अपने को उनसे भिन्न समझने के भ्रम में फँसे हुए हैं। कबीर पंथी जन्मान्तरवाद में भी पूर्ण विश्वास करते हैं। यह लोग अन्य धर्मों को केवल निरञ्जन का पसारा भर समझते हैं और अपने पंथ को ही सच्चा पंथ कहते हैं। कबीर पंथियों को धर्मराय की भी कल्पना मान्य है। धर्मराय ही मनुष्यों को कर्म अकर्म के अनुसार फलाफल देते हैं। जब जीव निरञ्जन पुरुष के मायाजाल में फँसा रहता है तब बिना सद्‌गुरु की कृपा के मुक्ति की कोई आशा नहीं है। किन्तु एक समय ऐसा भी आयेगा जब निरञ्जन पुरुष का साम्राज्य अक्षर पुरुष को मिल जायेगा और निरञ्जन पुरुष का प्रभुत्व छिप जायेगा। अक्षर पुरुष के शासन में समस्त जीवों की मुक्ति हो जाने की आशा जाग्रत होगी।

कबीर पंथ में कबीर सच्चे सद्‌गुरु समझे जाते हैं। वे बन्धनों से मुक्त करनेवाले कहे गए हैं। कबीर पंथी उन्हें सत्पुरुष के सन्देशवाहक भर मानते हैं, सत्पुरुष का अवतार नहीं क्योंकि उनका आकार और शरीर केवल मनुष्यों को दिखाई भर देता है। वास्तव में वे अशरीरी ही हैं। प्रत्येक युग में सत्पुरुष उन्हें संसार में उपदेश देने के लिए भेज देते हैं। वे सत्युग में सत्सुकृति, त्रेता में मुनीन्द्र, द्वापर में करुणामय ऋषि तथा कलियुग में कबीर साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कबीर पंथियों ने मोक्ष प्राप्ति में भक्ति को विशेष महत्त्व दिया है। भक्ति के साथ-साथ सदाचरण भी परमावश्यक है। गुरु भक्ति और साधु सेवा भी परमापेक्षित है। स्वसम्वेद (कबीर पंथियों का अपना धार्मिक साहित्य) पढ़ना। भी

उनके धर्म का एक अंग है। सिद्धान्त रूप में कबीर पंथी अद्वैतवादी कहे जाते हैं।

कबीर पंथ में बहुत से रीति रिवाज संस्कार आदि का भी प्रचार है। इनमें 'परवाना' नाम का संस्कार बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। यह हिन्दुओं के यज्ञोपवीत संस्कार से मिलता-जुलता है। त्यौहारों के स्थान पर इनके यहाँ चौका नाम का उत्सव होता है। यह भी बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। आजकल इसमें उपासना और अर्चन का जो स्वरूप प्रचलित है वह हिन्दुओं की वैधी उपासना से बहुत साम्य रखता है। कबीर पंथियों में माला का बहुत प्रचार है। उनके कुछ अपने मन्त्र भी अलग हैं! इनके यहाँ कंठी पहनने की भी प्रथा है। कंठी नाम का एक संस्कार होता है। इस संस्कार के बाद ही कंठी पहना दी जाती है और कंठी पहननेवाला व्यक्ति भगत के नाम से पुकारा जाता है। कबीर पंथ में जाति-पाँति का भेद भाव मान्य नहीं है, किन्तु उसमें हम उसका उस रूप में बहिष्कार नहीं देखते जिस रूप में कबीर साहब ने अपनी बानी में किया है। आजकल कबीर पंथ में मूर्ति पूजा और तीर्थाटन आदि की ढोंगबाजियाँ—जिनका कबीर साहब जीवन भर विरोध करते रहे थे—भी आ गई हैं। कबीर के पंथ के पचास मूल सिद्धान्त हैं। इनका निर्देश कबीर मंसूर, कबीर चरित्र आदि ग्रन्थों में किया गया है। इनका पालन कबीर पंथी के लिए परम विधेय ठहराया गया है। संक्षेप में कबीर पंथ की यही रूपरेखा है।

हम कबीर पंथ और कबीर के सहज धर्म की यदि तुलना करके देखें तो निसंकोच भाव से कह सकते हैं कि दोनों में बड़ा अन्तर है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर पंथ कबीरदास जी के उपदेशों का आधार लेकर ही खड़ा हुआ है किन्तु समय के प्रवाह में पड़कर यह पौराणिक हिन्दू धर्म से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि वह मूल आधार को छोड़कर त्रिशंकु की भाँति अधभर में उछल रहा है। आज के कबीर पंथ का स्वरूप उस पौराणिक हिन्दू धर्म के पाखण्डपूर्ण स्वरूप से, जिसके विरोध में कबीरदास जी की वाणी प्रवृत हुई थी—किसी प्रकार भी कम पाखण्डपूर्ण नहीं है। कितना अच्छा होता यदि कोई महात्मा कबीर फिर उदय होकर उसका परिष्कार करते।

———

कबीर के कुछ शब्द और उनका संक्षिप्त ऐतिहासिक विकासक्रम

शून्य :—कबीर की रचनाओं में स्थान-स्थान पर 'शून्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। यहाँ पर संक्षेप में हम उस पर विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं। भारत में शून्य शब्द अत्यन्त प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आया है, किन्तु भिन्न-भिन्न युगों और दर्शनों में इसकी धारणा अलग-अलग रही है। ब्राह्मण दर्शनों में इसका प्रयोग सरल सत्ता के अर्थ में हुआ है।[1] अद्वैतवादी गौड़पादाचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् की कारिकाओं में इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया है। ब्राह्मण दर्शनों के पश्चात् बौद्ध दर्शन का उत्कर्ष हुआ। बौद्ध दर्शन में शून्य शब्द को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। शून्यवाद बौद्धों का प्राचीन मत है। नागार्जुन तथा आर्यदेव नामक आचार्यों ने प्रज्ञा परिमिता आदि ग्रन्थों के आधार पर उसका प्रतिपादन किया था। शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्र के भाष्य में बौद्धों के शून्यवाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है[2] कि 'बौद्धों के अनुसार आत्मा या ब्रह्म कोई भी नित्य वस्तु जगत के मूल में नहीं है। जो वस्तु दीख पड़ती है वह क्षणिक और शून्य है।' कुछ विद्वानों की धारणा है कि बौद्धों का शून्य वास्तव में आत्मतत्त्व के निषेध के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है, जैसा कि शंकराचार्य ने समझाने की चेष्टा की है। उनका मत है कि बौद्धों ने तत्त्व की अनिर्वचनीयता सिद्ध करने के लिए ही उसे शून्य रूप माना है।[3] एक विद्वान् ने तो यहाँ तक लिखा है कि बौद्धों का शून्य वास्तव में परमार्थ सत्ता का ही वाचक है।[4] कुछ विद्वान्[5] शून्य का मध्यमार्गीय-अर्थ लगाते हैं। उनका

---

१ बलदेव उपाध्याय—"भारतीय दर्शन"—पृ० २११

२ वेदान्तसूत्र भाष्य—२/१८/२६

३ बलदेव उपाध्याय—'भारतीय दर्शन'—पृ० २११

४ विनयतोष भट्टाचार्य—"बौद्ध धर्म में योग" कल्याण 'योगाङ्क'—पृ० २१०

५ दत्त चटर्जी—'एन इण्ट्रोडक्शन टु इंडियन फिलासफी'—पृ० १११

कहना है कि तत्त्व न तो सत्‌रूप है और न असत्‌रूप ही। उसका स्वरूप दोनों के मध्य विन्दु से निर्णीत है। उसे वह शून्यरूप मानते हैं। इस प्रकार बौद्धों के शून्यवाद के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। हमारी समझ में इस शब्द का प्रयोग भगवान् बुद्ध ने तत्त्व की अनिर्वचनीयता ही ध्वनित करने के लिए किया था। बाद में दूसरे आचार्यों ने उसे निषेध और अभाव रूप कल्पित कर लिया। नागार्जुन ने उसे सत् और असत् के बीच का एक द्वैताद्वैत विलक्षण वस्तु ध्वनित करने की चेष्टा की। आगे चलकर महायान मत में वही शून्य परमार्थ सत्ता का वाचक माना जाने लगा। इसके पश्चात् इस शून्य शब्द का प्रयोग और प्रचार सिद्धों में बढ़ा। सिद्ध लोगों का सम्बन्ध भी किसी न किसी रूप में बौद्धों से ही था। उनकी शून्य सम्बन्धी भावना बहुत कुछ बौद्धों से मिलती जुलती है। नागार्जुन का शून्यवाद इनमें द्वैताद्वैत विलक्षणवाद के रूप में विकसित हुआ है।[1] महायानियों में शून्य शब्द महासुखवाद[2] का वाचक भी समझा जाता था। सिद्धों ने उसका प्रयोग इस अर्थ में भी किया है। सिद्धों में ऐसे स्थल भी मिलते हैं जहाँ शून्य शब्द का प्रयोग बौद्धों के क्षणिक अर्थ में भी किया गया है।

आगे चलकर शून्य शब्द का और भी अधिक विकास हुआ। वह अभाव रूप, क्षणिक रूप, द्वैताद्वैत विलक्षण तत्त्व, केवलावस्था आदि रूपों के अतिरिक्त भी अन्य कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाने लगा। केवल हठयोग प्रदीपिका में ही इसका प्रयोग चार-पाँच अर्थों में हुआ है।[3] एक स्थल पर वह ब्रह्म रन्ध्र का वाचक है।[4] दूसरे स्थल पर उसका अर्थ देश काल परिछिन्न ब्रह्म से लिया गया है।[5] एक तीसरे स्थान पर वह सुषुम्ना नाड़ी के अर्थ का द्योतक है।[6] एक

---

१ 'दोहाकोष'—पृ० १ और पृ० ८

२ क्षितिमोहन सेन—'दादू'—पृ० ७८-८०

३ क्षितिमोहन सेन "कन्सेप्शन आफ शून्य वाद इन मेडिवल इंडिया"—विश्व-भारती न्यू सीरीज १/१ तथा
राहुल सांकृत्यायन—'हिन्दी काव्य धारा'—पृ० ११

४ "हठयोग प्रदीपिका"—४/१०

५ "हठयोग प्रदीपिका"

६ ह० प्र०—४/४४

अन्य स्थान पर उसका प्रयोग अनाहत चक्र के पर्याय के रूप में भी हुआ है।[१] नाथपंथियों में आकर शून्य शब्द का और अधिक विकास हुआ। गोरखनाथ ने इसका प्रयोग द्वैताद्वैत विलक्षण तत्त्व और ब्रह्म रन्ध्र के अर्थ के अतिरिक्त समाधि की अवस्था के अर्थ में भी किया है।[२]

कबीर को 'शून्य' की इस प्रकार एक लम्बी-चौड़ी परम्परा प्राप्त हुई थी। किन्तु उन्होंने इसका प्रयोग अधिकतर नाथपंथियों और सिद्धों के अनुकरण पर किया है। कबीर में शून्य शब्द कहीं पर तो सुषुम्ना का वाचक है,[३] कहीं ब्रह्म रन्ध्र का द्योतक है[४] और कहीं केवलावस्था का संकेतक है।[५] यहाँ तक तो वे सिद्धों और बौद्धों के अनुयायी कहे जा सकते हैं। किन्तु उन्होंने 'शून्य' शब्द का प्रयोग भावरूप ब्रह्म के अर्थ में भी किया है,[६] यह उनका मौलिक प्रयोग कहा जा सकता है। यद्यपि सिद्धों, नाथों और महायानियों का शून्य शब्द कहीं-कहीं भाव रूप तत्त्व का वाचक सा प्रतीत होता है किन्तु ये लोग सिद्धांत रूप से कट्टर आस्तिक नहीं थे, इसलिए उनकी शून्य सम्बन्धी भावना उतनी अधिक आस्तिक नहीं थी जितनी कबीर की है। कबीर उच्च कोटि के भक्त और कट्टर आस्तिक महात्मा थे। उनकी यह आस्तिकता शून्य शब्द में भी प्रतिष्ठित है।

---

१ ह० प्र०—४/७२

२ "गोरखवाणी संग्रह"—पृ० ६०,१

३ "कबीर ग्रंथावली"—पृ० १८ पर निम्नलिखित साखी देखिए :—

गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट।
तहाँ कबीरै मठ रच्या, मुनि जन जोवैं बाट॥

४ "ऐसा कोई नां मिलै, सब विधि देइ बताय।
सुनि मण्डल में पुरिष एक, ताहि रहै ल्यो लाइ॥"

क० ग्रं० पृ० ६७

५ क० ग्रं० पृ० २८३ पर ६३ अन्तिम पंक्ति

६ अबरन बरन घाम नहिं छाम। अबरन पाइयै गुरु की साम॥
टारी न टरै आवै न जाइ। सुन्न सहज महि रह्यो समाइ॥

क० ग्रं० पृ० २११

उन्होंने कहीं पर भी शून्य शब्द का अर्थ अभावरूप और क्षणिक रूप के अर्थ में नहीं किया जैसा अधिकांश बौद्धों ने किया है। कबीर की बानियों का अध्ययन करते समय इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि कबीर का शून्यवाद बौद्धों के शून्यवाद से भिन्न है। उनके ऊपर योगियों के शून्यवाद की छाया अवश्य है, किंतु उसे भी हम उनका सच्चा मतवाद नहीं कह सकते। उनका शून्यवाद एक सच्चे श्रद्धालु और आस्तिक भक्त का शून्यवाद है। उनका शून्यों अद्वैतवादियों के अद्वैत तत्त्व का भावात्मक प्रतिरूप माना जा सकता है।

निरंजन :—शून्य शब्द के समान "निरञ्जन" शब्द भी कबीर की बानिय में कई बार आया है। अतएव यहाँ पर उसका भी ऐतिहासिक विकास संकेतित कर देना आवश्यक है। उपनिषदों में इस शब्द का कई बार प्रयोग किया गया है। उनमें यह अधिकतर "माया रहित" अर्थ का वाचक है। मुण्डकोपनिषद् की निम्नलिखित उक्ति से यही बात स्पष्ट होती है :—

"तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति।"
॥मु० ३/३॥

यहाँ पर निरञ्जन शब्द विद्वान् के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है और "माया रहित" अर्थ का द्योतक है। अन्य उपनिषदों में भी इसका प्रयोग प्रायः इसी अर्थ में किया गया है। उपनिषदों के अतिरिक्त यह शब्द श्रीमद्भागवत में भी पाया जाता है :—

"नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितम् न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम्।"

अर्थात् नैष्यकर्म स्वरूप निरञ्जन भी अच्युत भाव के बिना शोभा नहीं देता। स्पष्ट ही यहाँ पर निरञ्जन शब्द निर्मल, पवित्र और अज्ञान रहित का वाचक है। इस शब्द का प्रयोग योगियों ने बहुत अधिक किया है। इसीलिए 'हठयोग प्रदीपिका' में यह शब्द कई बार आया है। एक स्थल पर तो यह माया रहित शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ब्रह्म का वाचक[1] प्रतीत होता है। एक दूसरे स्थल पर इसका प्रयोग विशेषण के रूप में हुआ है। वहाँ पर उसका अर्थ शुद्ध और पवित्र

---

१ श्रीमद्भागवत—१/५/१२

निकलता है।[१] 'शिवसंहिता'[२] में भी यह शब्द लगभग इसी अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। आगे चलकर सिद्धों और नाथों में तो यह शब्द बहुत अधिक प्रचलित हुआ। सिद्धों ने इसका प्रयोग अधिकतर शून्य शब्द के साहचर्य से किया है। ऐसे स्थलों पर वह प्रायः अर्थ निर्विकल्पक, असङ्ग और निर्पेक्ष आदि अर्थों का ही द्योतक प्रतीत होता है।[3] कहीं-कहीं पर उनमें इसका प्रयोग द्वैताद्वैत विलक्षण के अर्थ में भी किया गया है।[४] सिद्धों के पश्चात् इस शब्द का प्रचार नाथ पंथियों में बढ़ा। गोरखनाथ ने इस शब्द का प्रयोग अधिकतर निर्गुण ब्रह्म के अर्थ में ही किया है।[५] एकाध स्थलों पर ही इसे शून्य के विशेषण के रूप में भी लाए हैं।[६] ऐसे स्थलों पर उसका प्रयोग सिद्धों की परम्परा से मिलता-जुलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'निरञ्जन' शब्द वैदिक और वैष्णव साहित्य में अपने साधारण अर्थ "कालुष्य, पाप या माया रहित" का द्योतक था। बाद में सिद्ध लोग इसका प्रयोग अधिकतर उन तमाम विशेषणों के अर्थ में करने लगे जो नागार्जुन के शून्य के लिए प्रयुक्त होते आए थे। आगे चलकर नाथ पंथी योगियों में यह ब्रह्मरंध्र निवासी नाद स्वरूपी निर्गुण चैतन्य ब्रह्म का वाचक बन गया।

निरञ्जन शब्द पाशुपत दर्शन में भी पाया जाता है। पाशुपत दर्शन में पशु माया विशिष्ट जीव को कहते हैं। इसके दो भाग माने गए हैं :—(१) साञ्जन (२) निरञ्जन। साञ्जन शरीरधारी जीव को कहते हैं और निरञ्जन माया विशिष्ट अशरीरी जीव को। इससे स्पष्ट होता है कि निरञ्जन शब्द इस दर्शन में आकर पूर्ण पारिभाषिक शब्द बन गया है। इसी पाशुपत दर्शन का आधार लेकर बहुत सी शैव और शाक्त विचारधाराओं को स्वायत्त

---

१ हठयोग प्रदीपिका—४/१०५ और भी देखिए—४/४

२ हठयोग प्रदीपिका—४/१

३ बाग्ची—दोहा कोष—पृ० १

४ बाग्ची—दोहा कोष—पृ० ५

५ गो० बा० संग्रह—पृ० १६

६ गो० बा० संग्रह—पृ० ७३

करनेवाली कुछ यौगिक साधन पद्धतियाँ उदय हुईं[1]। इनमें एक निरञ्जनी साधना पद्धति भी थी। इस निरञ्जनी साधना पद्धति पर एक ओर तो पाशुपत के निरञ्जन सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रभाव था, दूसरी ओर सिद्धों और नाथ पंथियों की यौगिक परम्पराओं का। शाक्तों की तांत्रिक साधना पद्धति ने भी इनको यथेष्ट प्रभावित किया था। इन समस्त प्रभावों को समेटकर अभिनव रूप धारण कर उठ खड़ा होनेवाला सम्प्रदाय ही निरञ्जन मत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। डा० बड़थ्वाल ने इनके अनुयायियों के साधना सम्बन्धी विचारों का अपने एक लेख में विश्लेषण भी किया है। इस निरञ्जन मत में निरञ्जन शब्द का प्रयोग बहुत कुछ सात्विक अर्थ में ही किया गया है। किन्तु सम्भवतः इन सात्विक निरञ्जन-वादियों की एक उपशाखा भी थी जिसके संस्थापक सम्भवतः शाक्त और शैव तान्त्रिक थे। उन्होंने निरञ्जन को पाशुपत दर्शन में प्रयुक्त निरञ्जन के आधार पर अन्यत्र माया या अज्ञान का प्रतिरूप मानना आरम्भ कर दिया। इस मत के अनुयायी पहिले कबीर के समय तक अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते थे। सम्भवतः बम्बई प्रदेश में इस दूसरे निरञ्जन मत का प्रयोग हुआ था। बाद में जब कबीर पंथ का उदय और विकास हुआ तो निरञ्जन मत के इस उपसम्प्रदाय के मत वाले कबीर पंथ में चले गए। इनको कबीर पंथ में मिलाने का श्रेय बहुत कुछ कबीर के पुत्र कमाल को था। बम्बई की तरफ के कबीर पंथियों से बात करने पर इस बात का आभास मिला है। इस सम्बन्ध में कोई लिखित प्रमाण अभी तक नहीं प्राप्त हो सके हैं। खोज बराबर जारी है। उपर्युक्त मत को चाहे दृढ़ आधार भूमि पर प्रतिष्ठित होने के कारण स्वीकार न किया जाय, किन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कबीर पंथ में वर्णित निरञ्जन महाराज की गाथा कबीर वर्णित नहीं है। कबीर ने निरञ्जन शब्द का प्रयोग उस अर्थ में कभी नहीं किया था जिस अर्थ और रूप में वह कबीर पंथियों में मान्य है। जिन बानियों में निरञ्जन शब्द का प्रयोग हेयतर अर्थ में किया गया है, उन्हें हम कबीर की प्रामाणिक रचनाएँ नहीं मानते। कबीर ग्रंथावली और संत कबीर में ढूँढ़ने पर एक भी ऐसा स्थल नहीं मिलता जहाँ उन्होंने निरञ्जन का

---

१ देखिए 'योग प्रवाह' में निरञ्जनी साधकों वाला लेख

प्रयोग उसी अर्थ में किया हो जिसमें वह कबीर पंथ में प्रचलित है। मेरी दृढ़ धारणा है कबीर के नाम से प्रचलित वे बानियाँ जिनमें निरञ्जन शब्द का प्रयोग सात्विक अर्थ में नहीं किया गया है—कबीर की नहीं हैं।

कबीर स्वभाव से सात्विक थे। उनके ऊपर सभी सात्विक धर्म और पद्धतियों का प्रभाव पड़ा था। उनकी उन्होंने प्रशंसा भी की है। असात्विक धर्म और दर्शन पद्धतियों से इन्हें घृणा थी। इसीलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर शाक्तों की निन्दा और वैष्णवों की प्रशंसा की है। उन्होंने असात्विक धर्म और साधना पद्धतियों से कुछ बातें ग्रहण अवश्य की थीं, किन्तु वे केवल उन्हीं बातों को अपना सके थे, जो उनकी सात्विकता और आस्तिकता के मेल में थीं। ऐसी दशा में यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता कि कबीर ने किसी निरञ्जन या उससे सम्बन्धित किसी असात्विक उपसंप्रदाय के अनावश्यक तत्त्व ग्रहण किये होंगे। डा० हजारी प्रसाद ने इस शब्द पर विस्तार से विचार किया है। उन्होंने निरञ्जन को एक मध्यदेशीय पंथ का परम दैवत माना है। उसका कहना है कि कबीर पंथ को इस निरंजन पंथ से अपने अस्तित्व के विकास के लिए द्वन्द्व करना पड़ा था। कबीर पंथियों ने पराजित पंथ के परम दैवत को शैतान जैसा मानना प्रारम्भ कर दिया। हमारी समझ में यह मत किन्हीं लिखित प्रमाणों के आधार पर प्रतिष्ठित नहीं किया गया है, अतएव इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। इतना तो वे भी मानते हैं कि निरञ्जन शब्द का प्रयोग कबीर पंथियों में पाए जाने वाले निरञ्जन के अर्थ में नहीं किया है। उनकी धारणा है कि कबीर ने निरञ्जन शब्द का प्रयोग अधिकतर नाथ पंथियों के अनुकरण पर किया है और वे उसे उपनिषदों आदि में प्रयुक्त निरञ्जन शब्द से कुछ हेयतर अर्थ में प्रयुक्त मानते हैं। मेरी समझ में यह मत आलोचना के परे नहीं है। जैसा कि हम 'शून्य' शब्द पर विचार करते हुए दिखला चुके हैं, कबीर ने किसी एक शब्द या साधना का प्रयोग केवल कभी एक रूप में नहीं किया है। वे विकासवादी थे। उनकी सारी विचारधारा धीरे-धीरे विकसित हुई थी। यही कारण है कि उनमें प्रत्येक साधना, प्रत्येक शब्द प्रयोग और प्रत्येक विचारधारा के विकसित होते हुए विविध स्तर दिखलाई पड़ते हैं। 'निरंजन' शब्द के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। कबीर की प्रामाणिक रचनाओं में कहीं-कहीं सम्भवतः

यह शब्द पाशुपत दर्शन के आधार पर शरीर का वाचक है। अपने विकास की दूसरी अवस्था में इसका प्रयोग उन्होंने ठीक उसी अर्थ में किया है, जिस अर्थ में नाथ पंथियों और सिद्धों द्वारा होता रहा है। तीसरी अवस्था में यह परात्पर ब्रह्म का वाचक बन गया है और वैदिक तथा वैष्णवी साहित्य में प्रयुक्त निरंजन के अनुरूप है। कबीर का यही अन्तिम मतवाद था।

"नाद और विन्दु" :—नाद विन्दु शब्दों का सम्बन्ध लय योग साधना से है। लय योग साधना अत्यन्त प्राचीन है। कठोपनिषद् में इसका निम्नलिखित शब्दों में संकेत किया गया है :—

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥

कठोपनिषद् २/३/१०

अर्थात् "जब योगाभ्यास के बल से पंच ज्ञानेन्द्रिय, छठा मन और सातवीं बुद्धि लय भाव को प्राप्त हो जाती है, तभी परम गति की स्थिति उपलब्ध होती है।" इस लय योग को सिद्ध करने के सहस्रों साधन हैं। किन्तु प्राचीन काल से विवेकी साधक नाद लय को ही महत्त्व देते आए हैं। शंकराचार्य ने 'योग तारावली' नामक ग्रन्थ में नाद लय साधना का ही विस्तार से निर्देश किया है। "हठयोग प्रदीपिका" में तो इसे स्पष्ट ही श्रेष्ठ साधन कहा गया है।[1] शिव संहिता ने भी "न नादसमोलयः" कह कर इसी का समर्थन किया है। इस नाद लय साधना से ही नादविन्दु साधना का सम्बन्ध है। दोनों में केवल अन्तर इतना ही है कि नाद लय साधना में मन को नादस्वरूपी ब्रह्म में लीन करने का आदेश दिया गया है। किन्तु नाद विन्दु साधना प्रत्यक्ष रूप में मन के लय से सम्बन्धित नहीं है। नाद विन्दु की साधना करने वालों का विश्वास है कि विन्दु साधना से मन, बुद्धि आदि स्वयं नादस्वरूपी ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। हठयोग प्रदीपिका[2] में स्पष्ट कहा गया है कि जब विन्दु स्थिर होता है तो मन भी स्थिर होता है और

---

१ हठयोग प्रदीपिका ४/६६

२ हठयोग प्रदीपिका ४/११४

विन्दु के चपल होने पर मन भी केन्द्रित नहीं हो सकता, और जब तक मन केन्द्रित नहीं होगा, लय योग की प्राप्ति नहीं होगी।

नाद और विन्दु शब्दों का प्रयोग योगियों ने कई अर्थों में किया है। साधारणतया नाद का अर्थ सूक्ष्म शब्द तत्त्व का क्रियमाण स्वरूप है, जो क्रमशः स्थूल रूप में परिवर्तित होता जाता है और बाद में सृष्टि का कारण हो जाता है।[1] नाद का अर्थ अनहद नाद से भी लिया गया है।[2] यह परमात्मा का भी वाचक प्रसिद्ध है।[3] विन्दु[4] शब्द स्थूल रूप से वीर्य का पर्यायवाची है और ब्रह्मचर्य साधना के लिए प्रयुक्त होता है। किन्तु इससे योगी लोग जीवात्मा का भी अर्थ लेते हैं।[5]

नाद विन्दु साधना का उदय सबसे पहिले सम्भवतः तान्त्रिकों में हुआ था। तांत्रिक बौद्ध, शैव, शाक्त सभी मत वाले होते थे। तन्त्र ग्रंथों में इन शब्दों का अनेक बार प्रयोग हुआ है। तन्त्रों के बाद यह साधना परवर्ती मत्स्येन्द्र-नाथी हठयोग की विविध शाखाओं में प्रविष्ट हुई। नाद विन्दु उपनिषद् में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त इस साधना का वर्णन हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, प्रस्थानत्रयी, मधुसूदन-सरस्वती-स्मृति प्रभृति अन्य ग्रन्थों में भी किया गया है। कबीर को यह शब्द सम्भवतः सिद्धों और नाथों से ही मिले थे—तांत्रिकों से नहीं।

सिद्धों में नाद विन्दु शब्दों का जगह-जगह पर उल्लेख मिलता है। किन्तु उनमें ऐसे स्थल कम हैं, जहाँ इस साधना का श्रद्धा के साथ विस्तार से विवेचन किया गया हो। विन्दु साधना ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित थी। चौरासी सिद्धों में अधिकांश सिद्ध वाममार्गी होने के कारण ब्रह्मचर्य के विरोधी थे। केवल दो-चार

---

१ गो० बा० पृ० २०/२५ की टीका
२ हठयोग प्रदीपिका ४/७२ की टीका
३ हठयोग प्रदीपिका ४/७२
४ हठयोग प्रदीपिका ४/१०२
५ हठयोग प्रदीपिका ४/७२
६ रामचन्द्रशुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ६

सात्विक सहजयानी सिद्ध ही ऐसे थे, जो नाद विन्दु साधना के सात्विक स्वरूप में विश्वास करते थे। यही कारण है कि सिद्ध मत में इस साधना को उतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना कि उनकी प्रतिक्रिया के रूप में उदय हुए सात्विक नाथ पंथ में। उन्होंने इन शब्दों को बौद्ध तांत्रिकों और योगियों की परम्परा से प्राप्त किया था इसीलिए उनमें वे स्थान-स्थान पर दिखलाई पड़ जाते हैं। वास्तव में अधिकांश सिद्ध लोग नाद विन्दु साधना के अनुयायी नहीं थे। निम्नलिखित दोहे में देखिए नाद विन्दु के प्रति उपेक्षा का भाव भी प्रकट किया गया है :—

"नाद न विन्दु न रवि न शशि मण्डल। चिअराअ सहावे मूकल।
उजु रे उजु छाँड़ि मा लेहु रे बंक। निअहि बोहि मा जाहुरे लंक॥

सिद्धों के बाद नाथ पंथी हठयोगियों में यह साधना बड़ी प्रबलता के साथ प्रचलित हुई। गोरखनाथ ने इस साधना को सिद्धि प्राप्ति का दृढ़ और निश्चित मार्ग माना है :—

"नाद बिन्द है फीकी सिला। जिहिं साध्या ते सिधैं मिला॥"
गो० बा०—पृ० ६१

यह सही है कि गोरखनाथ जी ने विन्दु साधना को बहुत महत्त्व दिया है। किन्तु वह आध्यात्मिक अनुभूति-विरहित साधना को व्यर्थ भी मानते थे। उन्होंने कहा भी है :—

व्यंद व्यंद सब कोइ कहै। महा व्यंद कोइ बिरला लहै।
इह व्यंद भरोसे लावै बन्ध। असथिरि होत न देषो कन्ध॥
गो० बा०—पृ० ७५

अर्थात् विन्दु-विन्दु तो सभी बोलते हैं किन्तु महाविन्दु को कोई विरला ही प्राप्त करता है। आध्यात्मिक अनुभूति के बिना जो विन्दु मात्र के अर्थ बन्ध क्रिया का आश्रय ग्रहण करते हैं उनका शरीर स्थिर होते नहीं देखा गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गोरख ब्रह्मानुभूति को आवश्यक मानते थे। गोरख में 'विन्दु' शब्द का प्रयोग जीव शक्ति के लिए भी किया हुआ जान पड़ता है। जहाँ पर वे नाद में विन्दु के समाने की बात कहते हैं वहाँ विन्दु का अर्थ जीवात्मा लेना

ही उचित है। हठयोग प्रदीपिका के टीकाकार ने इसका यह भी एक अर्थ माना है। कहीं-कहीं पर गोरखनाथ जी ने विन्दु का प्रयोग शिव के अर्थ में भी किया है :—

"आछै सिवरूपी ब्यंद" गो० बा०—पृ० १००

नाद विन्दु शब्दों का प्रयोग कबीर ने भी किया है। इन शब्दों को वे प्रायः उन्हीं अर्थों में ग्रहण करते थे जिन अर्थों में गोरखनाथ जी। विन्दु साधना उन्हें भी मान्य थी, किन्तु इसे वे उपसाधना मात्र मानते थे साध्य नहीं। उनकी मूल साधना तो भगवद् भक्ति थी। इस बात को उन्होंने इस रूपक से स्पष्ट करने की चेष्टा की है :—

"नाद ब्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण गाइले, गुरु गमि उतरौ पार॥

क० ग्रं० पृ० ६०

यहाँ पर स्पष्ट ही उन्होंने राम नाम की अपेक्षा नाद ब्यंद को गौण रूप माना है। जिस तरह से नदी पार करने वाला पथिक पहिले तो एक नाव की खोज करता है नाव मिलने पर उसके खेने वाले कर्णधार की चिन्ता होती है साथ ही एक पथ-प्रदर्शक की भी आवश्यकता पड़ती है तथा इन तीनों के प्राप्त हो जाने पर वह प्रसन्नतापूर्वक गीत गाता हुआ नदी के पार पहुँच जाता है। उसी प्रकार जीवरूपी पथिक को भवसागर के पार जाने के लिए नाद विन्दु साधना के रूप में एक नाव की आवश्यकता होती है। उस साधना को सफल बनाने के लिए राम नाम रूपी कर्णधार अपेक्षित होता है। पथ प्रदर्शक गुरु के बिना तो काम ही नहीं चल सकता। इन तीनों के मिल जाने पर वह सरलतापूर्वक भगवान् का कीर्तन करते हुए उस पार जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर कोरी नाद विन्दु साधना को नाव के समान शुष्क और जड़ मानते थे। वही भक्ति भावना से समन्वित होकर भवसागर के पार ले जाने वाली वस्तु बन जाती है। कोरी विन्दु साधना की इसीलिए उन्होंने एक दूसरे स्थल पर निन्दा की है।

"बिन्दु राख जो तरयै भाई। खुसरै क्यों न परम गति पाई॥"

क० ग्रं० पृ० ३००

इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर ने नाद विन्दु साधना को अधिक महत्त्व नहीं दिया है। परम्परा पालन के रूप में ही इनमें यह शब्द मिलते हैं। नाद से कबीर का अभिप्राय अधिकतर अनहद नाद होता है। विन्दु का यह साधारण अर्थ ब्रह्मचर्य पालन ही लेते हैं। कहीं-कहीं पर नाथ पंथियों के अनुसरण पर उन्होंने नाद को परमात्मा और विन्दु को जीवात्मा के अर्थ में भी प्रयुक्त किया है। गोरखनाथ और कबीर की विन्दु साधना में इतना ही अन्तर था कि गोरखनाथ ज्ञानपूर्वक की गई नाद विन्दु साधना को महत्त्व देते थे और कबीर भक्तिपूर्वक की गई नाद विन्दु साधना को।

'सहज शब्द'—सहज शब्द सहज मतवादियों का है। सहज मतवाद बहुत प्राचीन है। वेदों में वर्णित निवारतीय और निव्युत्तीय सहजवादी ही थे। अथर्ववेद में वर्णित व्रात्य भी सहज धर्म के अनुयायी थे। ये सहजवादी अधिकतर पुरुषवादी होते थे और मनुष्य को ही सबसे अधिक महत्त्व देते थे। वेदों के पश्चात् सहजवाद का प्रवर्तन सिद्धों में हुआ। इनकी सहज भावना बौद्धों की शून्य भावना से प्रभावित प्रतीत होती है। सिद्ध लोग सहजावस्था को द्वैताद्वैत विलक्षण की स्थिति मानते थे। सिद्ध तिल्लोपाद ने इसी बात को ध्वनित करते हुए लिखा है :—

सहजें भावाभाव ण पुच्छह। सुण्ण करुण वहि समरस इच्छह॥

तिल्लो० दोहा कोष—बाग्ची पृ० १

इसमें स्पष्ट ध्वनित किया गया है कि 'सहज' भाव और अभाव दोनों से भिन्न है। उसे हम द्वैताद्वैत विलक्षण समरसता की स्थिति कह सकते हैं। इसके टीकाकार ने 'सहजे' का पर्यायवाची 'समरसे' ची दिया भी है। सिद्ध लोग सहज का प्रयोग सरल और प्राकृतिक भी किया करते थे। तिल्लोपाद के एक दोहे से यही ध्वनित भी होता है :—

सहजेंचित्त विसोहहु चङ्ग। इह जम्महि सिद्धि [मोक्ख भङ्ग]॥

तिल्लो० दोहा कोष—बाग्ची पृ० ४

इसमें प्रयुक्त 'सहज' शब्द टीकाकार द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है। इसका अर्थ द्वैताद्वैत विलक्षण भाव भी हो सकता है। किन्तु मेरी समझ में इसका सीधा

साधा अर्थ "स्वाभाविक गति से" लेना चाहिए। सिद्ध लोग इस सहज साधना के सामने निर्वाण को भी महत्त्व नहीं देते थे। सरहपाद ने लिखा है :—

[सहज छड्डि जें णिव्वाण भाविउ]
णउ परमत्थ एक्क ते साहिउ ॥ दोहा कोष—पृ० १७

नाथ पंथियों ने सहज शब्द का प्रयोग बहुत कम किया है। इसका कारण यही है कि वे सहजयोग में विश्वास न करके हठयोग में विश्वास करते थे। जहाँ कहीं भी उन्होंने 'सहज' शब्द का प्रयोग भी किया है वहाँ वह 'स्वाभाविक' का ही पर्यायवाची प्रतीत होता है। गोरखनाथ एक स्थल पर लिखते हैं :—

गिरही जो सो गिरहै काया, अभ्यन्तर की त्यागे माया।
सहज सील का धरै शरीर, सो गिरही गंगा का नीर ॥

गोरख की इस बानी में 'सहज' शब्द स्वाभाविक का ही वाचक है। अतः स्पष्ट है कि सिद्धों का पारिभाषिक सहज नाथों में आकर 'स्वाभाविक' का वाचक बन गया था।

महात्मा कबीर ने सहज शब्द का प्रयोग बहुत बार किया है। किन्तु इनके सहज को सहजवादियों के सहज से बिलकुल भिन्न समझना चाहिए। उन्होंने एक स्थल पर यह बात स्पष्ट कही भी है :—

सहज सहज सब कोय कहै, सहज न चीन्हे कोय।
जिन सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोय ॥
सहज सहज सब कोय कहै, सहज न चीन्हे कोय।
पांचूँ राखै परस्ती, सहज कहीजै सोय ॥
सहजै सहजै सब गए, सुति वित्त कामणि काम।
एके एक ह्वई मिल रहा, दास कबीरा राम ॥
सहज सहज सब कोय कहै, सहज न चीन्हें कोय।
जिन सहजै हरि जी मिले, सहज कहीजै सोय ॥

इन साखियों में एक ओर तो कबीर ने परम्परागत सहजवाद की उपेक्षा की है और दूसरी ओर उसके स्वरूप का अपने ढंग पर निरूपण। इन पंक्तियों से स्पष्ट

है कि कबीर के मत में सहजवाद भक्ति के सहज प्राप्ति से सम्बन्धित है। सिद्धों के समान जीवन के सहज उपभोग से नहीं। इनके सहजवाद का लक्ष्य स्वाभाविक गति से वैराग्य और भक्ति की प्राप्ति करना था।

कुछ स्थलों पर कबीर ने 'सहज' शब्द का प्रयोग निर्गुण ब्रह्म के अर्थ में भी किया है। यहाँ पर भी उनका सिद्धों से मतभेद है। सिद्ध लोग सहजावस्था को निर्विकल्पक शून्य रूप मानते थे। किंतु कबीर का सहज अद्वैतवादियों का सर्वव्यापी अव्यय तत्त्व है। कहीं-कहीं यह सहज शब्द 'समाधि' और नादस्वरूपी ब्रह्म का पर्यायवाची भी प्रतीत होता है, किन्तु ऐसे स्थल कबीर की बानियों में कम हैं। इस प्रकार कबीर की सहज साधना सात्विक भक्ति विशिष्ट अद्वैत मूलक है।

'खसम'—कबीर की बानियों में 'खसम' शब्द का प्रयोग भी बार-बार किया गया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने इस सम्बन्ध में खोज भी की है। डा० हजारीप्रसाद का मत है कि कबीर में यह शब्द निकृष्ट पति[1] के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने इसे साधारण रूप से पति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ सिद्ध किया है। हमारी समझ में कबीर ने 'खसम' शब्द का प्रयोग अपने निर्गुण ब्रह्म के लिए किया था। इस शब्द की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस सम्बन्ध में कुछ निश्चय पूर्वक तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु हमारा दृढ़ मत है कि इसका जन्म सबसे पहले सिद्धों में हुआ था। श्रुतियों में ब्रह्म का वर्णन करते हुए उसे 'आकाशवत् सर्वगतश्च पूर्णः' कहा गया है। सिद्ध लोग शून्यवादी थे। 'आकाश शून्य का प्रतीक है।' आकाश का एक नाम 'खम्' भी है। सिद्ध लोग अपने शून्य को आकाशवत् कहना चाहते थे इसके लिए उन्होंने खम् और सम् शब्दों को मिलाकर 'खसम' शब्द की सृष्टि की है। इस 'खसम' शब्द से उन्होंने अपने द्वैताद्वैत विलक्षण शून्य शब्द के तत्त्व का वर्णन किया। तिल्लोपाद ने एक स्थल पर लिखा है :—

चित्त खसम जहि समसुह पइट्ठइ।
इन्दीअ-विसअ ताहि मत्त ण दीसई॥

दोहा कोष—पृ० १

---

१ कबीर—डा० हजारीप्रसाद—पृ० ७२

अर्थात् जब "समसुखस्वरूपी खसम" में साधक का चित्त बिलकुल लीन हो जाता है तब उसे ऐन्द्रिक अनुभूति नहीं होती। कहीं-कहीं सिद्धों ने 'खसम' को मन का पर्यायवाची भी माना है। तिल्लोपाद ने ही एक दूसरे स्थल पर लिखा है :—

मणह [भअवा] खसम भअवई ॥ ति० दो०—पृ०—१

इस प्रकार स्पष्ट है कि सिद्धों में यह शब्द कहीं तो द्वैताद्वैत विलक्षण शून्य पर्यायवाची है और कहीं 'मन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। नाथ पंथियों ने इस शब्द का प्रयोग शायद ही एकाध स्थलों पर किया हो। जहाँ कहीं उन्होंने इसका प्रयोग किया भी है वहाँ वह साधारणतया नाद स्वरूपी ब्रह्म का वाचक है।

कबीर ने इस शब्द का प्रयोग प्रायः दो अर्थों में किया है—एक तो परमात्मा या ब्रह्म के अर्थ में और दूसरा मन के अर्थ में। देखिए निम्नलिखित पंक्तियों में उसका प्रयोग परमात्मा के अर्थ में ही किया गया है :—

खसमै जाणि खिमाकर रहै, तब होय निरवऔ अखै पद लहै।

उनकी एक दूसरी उक्ति में इसका प्रयोग 'मन' के अर्थ में किया हुआ जान पड़ता है। वे पंक्तियाँ इस प्रकार लिखी हैं :—

खसम मरे तौ नार न रोवै, उस रखवारा औरै होवै।
रखवारे का होय विनास, आगे नरक ईहा भोग विलास ॥
इत्यादि

प्रस्तुत पंक्तियों में कबीर ने माया का वर्णन किया है। माया अपने मन रूपी खसम के नष्ट हो जाने पर भी दूसरे—बुद्धि चित्त आदि अन्तःकरण की अन्य वृत्तियों में लिप्त हो जाती है—इत्यादि इत्यादि ॥ कुछ लोग यहाँ पर खसम को मन का वाचक नहीं मानते हैं। वे उसका सीधा साधा अर्थ पति लेते हैं। हमें भी इस अर्थ को मानने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि कबीर ने अपने को बहुरिया कहा है और परमात्मा उनके खसम हैं। वैसे भी उनसे कहीं 'खसम' शब्द साधारणतया पति के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[1]

---

१ संत कबीर—राग बसंतु २

'उन्मनि' :—'उन्मनि' शब्द का प्रयोग कबीर ने बार-बार किया है। अतएव उसके स्वरूप को भी जान लेना आवश्यक है। यह शब्द नाथ पंथी हठयोगियों में बहुत प्रचलित था। हठयोग प्रदीपिका में इसके सम्बन्ध में विस्तार से लिखा हुआ है। 'उन्मनि' समाधि से मिलती जुलती ध्यान की अवस्था है। इसे 'तुरीया' अवस्था भी कह सकते हैं। इस अवस्था को प्राप्त कर साधक द्वैत भाव को भूल कर पूर्णाद्वैतावस्था की अनुभूति करने लगता है—(४/६१)। इस अवस्था के प्राप्त होने पर साधक का शरीर वाह्य बातों से इतना अधिक उदासीन हो जाता है कि उसे शंख और दुन्दुभी की ध्वनि तक नहीं सुनाई पड़ती (४/१०६)। इसको प्राप्त करने का सरलतम ढंग निर्देशित करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि इसे सरलता से प्राप्त करने के लिए त्रिकुटी पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। गीता में भी इस प्रकार के ध्यान योग का वर्णन मिलता है। हमारी समझ में नाथ पंथी हठ योगियों की 'उन्मनि' पातञ्जलि योग में वर्णित समाधि का ही रूपान्तर है। गोरखनाथ ने इस शब्द का प्रयोग अनेक बार किया है। यह शब्द उनमें अधिकतर समाधि अवस्था का ही वाचक प्रतीत होता है। एक स्थल पर डा० बड़थ्वाल ने इसका अर्थ समाधि किया भी है (गो० बा०—पृ० ३३ सा० १०)। इस उन्मनावस्था में साधक को गोरखनाथ के अनुसार आनन्द की भी अनुभूति होती है। एक स्थल पर उन्होंने लिखा है :—

'उनमनि लागा होइ अनन्द'। गो० बा० पृ० ४५

महात्मा कबीर ने 'उन्मनि' शब्द का प्रयोग अधिकतर नाथ पंथियों के अनुकरण पर ही किया है। वे उसे एक प्रकार का ध्यान मानते हैं। उन्होंने कहा भी है "उन्मनि ध्यान घट भीतर पाया"—क० ग्रं० पृ० ६४ गोरख के समान वे उस अवस्था को आनन्द रूप भी मानते थे। इसीलिए उन्होंने लिखा है :—

अवधू मेरा मन मतिवारा। उन्मनि चढ़ा मगन रस पीवै।

क० ग्रं० पृ० ११०

कबीर ने उन्मनि शब्द का प्रयोग कहीं-कहीं विशेषण के रूप में भी किया है। एक स्थल पर वे लिखते हैं :—

उन्मनि मनुआँ सुन्य समाना, दुविधा दुर्मति भागी ॥

ऐसे स्थलों पर 'उन्मनि' का अर्थ केन्द्रित होने की क्षमता रखने वाला प्रतीत होता है। इस प्रकार कबीर ने इस शब्द का प्रयोग अधिकतर या तो ध्यान मग्नता के लिए या समाधि के लिए या विशेषण रूप में केन्द्रित होने की सामर्थ्य रखने वाली के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

सहायक ग्रंथ-सूची

हिन्दी

१ अमरसिंह बोध—स्वामी युगलानन्द

२ अनुराग सागर— ,, ,,

३ आदि ग्रन्थ—भाई मोहन सिंह

४ अनन्तदास की परिचई—अनन्तदास जी

५ कबीर ग्रंथावली—सम्पादक डा॰ श्यामसुन्दर दास

६ कबीर बचनावली—सम्पादक महाकवि हरिऔध

७ कबीर पदावली—सम्पादक डा॰ रामकुमार वर्मा

८ कबीर साहब की शब्दावली (चारों भाग)—(बे॰ प्रे॰ प्रयाग)

९ कबीर—डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी

१० कबीर चरित बोध—(वेंकटेश्वर प्रेस)

११ कबीर कसौटी—भाई लहनासिंह

१२ कबीर मंसूर—परमानन्द कृत उर्दू अनुवाद

१३ कबीर सागर—युगलानन्द

१४ कबीर पंथ—शिवव्रतलाल

१५ कबीर का रहस्यवाद—डा॰ रामकुमार वर्मा

१६ कबीर ज्ञान—सुखदेव प्रसाद

१७ कबीर साहब का जीवन चरित—

१८ कबीर अध्ययन प्रकाश—मणिलाल मेहता

१९ कबीर साहब और उनके सिद्धान्त—

२० कबीर एक अध्ययन—डा॰ रामरतन भटनागर

२१ गीता रहस्य—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

२२ गंगा पुरातत्वाङ्क—

२३ गोरख बानी—डा० बड़थ्वाल
२४ गोरख सिद्धान्त संग्रह
२५ गरीबदास जी की बानी—(बे० प्रे० प्रयाग)
२६ गुलाल साहब की बानी—(बे० प्रे० प्रयाग)
२७ जायसी ग्रन्थावली—सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल
२८ तसव्वुफ और सूफी मत—चन्द्रबली पाण्डेय
२९ दोहाकोष—डा० प्रबोध चन्द्र बाग्ची
३० दादू (बंगला)—आचार्य क्षिति मोहन सेन
३१ धर्म कल्पद्रुम
३२ धर्मदास जी की बानी
३३ नामदेव वंशावली—नन्हेलाल
३४ नामदेव—(नटेसन कम्पनी, मद्रास)
३५ निर्भय ज्ञान—
३६ नव रत्न—मिश्र बन्धु
३७ बीजक—विचार दास
३८ बौद्धकालीन भारत—जनार्दन भट्ट
३९ बौद्ध दर्शन—बलदेव उपाध्याय
४० मौर्य साम्राज्य का इतिहास—विद्यालङ्कार
४१ महात्मा कबीर—हरिहर निवास द्विवेदी
४२ भक्तमाल—नाभादास
४३ भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याय
४४ भवतारण—
४५ भारतीय साहित्य शास्त्र—बलदेव उपाध्याय
४६ भक्ति रसामृत सिन्धु—
४७ भारतीय इतिहास की रूपरेखा—जयचन्द्र विद्यालंकार
४८ योग प्रवाह—डा० बड़थ्वाल
४९ योग सम्प्रदायाविष्कृति—
५० ऋग्वेद संहिता—राम गोविन्द त्रिवेदी का हिन्दी अनुवाद

५१ रैदास जी की बानी (बे० प्रे० प्रयाग)
५२ रामचरितमानस—(वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई)
५३ रज्जब जी की बानी—(बे० प्रेस प्रयाग)
५४ विचार विमर्श—चन्द्रबली पांडेय
५५ विवेचनात्मक निबन्ध—साधूराम
५६ सत्यार्थ प्रकाश—दयानन्द सरस्वती
५७ संस्कृत साहित्य का इतिहास—कन्हैयालाल पोद्दार
५८ संत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा
५९ संत साहित्य—भुवनेश्वर नाथ मिश्र
६० संत धना की बानी—(बे० प्रे० प्रयाग)
६१ संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय
६२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा
६३ हिन्दी साहित्य—डा० श्यामसुन्दर दास
६४ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
६५ हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन
६६ हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद
६७ हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास

हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ

१ कल्याण—(सभी विशेषांक) गोरखपुर
२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका—(बनारस)
३ विश्व भारतीय पत्रिका—(शांति निकेतन)
४ सरस्वती—(प्रयाग)
५ साहित्य सन्देश—आगरा
६ हिन्दुस्तानी—(प्रयाग)
७ स्व सम्वेद—बड़ौदा
८ कबीर सन्देश—बाराबंकी
९ गंगा पुरातत्वाङ्क
१० खोज रिपोर्ट

संस्कृत और पाली

१ ऋग्वेद संहिता
२ अथर्ववेद संहिता
३ सरस्वती कंठाभरण—भोज
४ काव्यानुशासन—हेमचन्द्र

५ यजुर्वेद संहिता
६ ऐतरेय ब्राह्मण
७ दशोपनिषद्
८ योगोपनिषद्
९ वैष्णवोपनिषद्
१० श्रीमद्भागवत
११ श्रीमद्भगवत् गीता
१२ विष्णु पुराण
१३ अग्नि पुराण
१४ बोधचर्यावतार
१५ महावग्ग
१६ भक्तिसूत्र—नारद
१७ भक्तिसूत्र—शांडिल्य
१८ शिव महात्म्य पूजास्तोत्र—शंकर
१९ मनुस्मृति
२० महाभारत
२१ योग सूत्र
२२ काव्य प्रकाश—मम्मट
२३ काव्यालङ्कार सूत्र—वामन
२४ वाग्भट्टालंकार—वागभट्ट
२५ उत्तर राम चरित—भवभूति
२६ ध्वन्यालोक—आनन्द वर्धन
२७ वक्रोक्ति जीवित—कुन्तक
२८ नाट्य शास्त्र—भरतमुनि
२९ पंचदशी
३० तत्वत्रय
३१ श्री भाष्य
३२ माध्यमिक कारिका
३३ महानिर्वाण तंत्र
३४ शक्ति सम्मोहन तंत्र
३५ हठयोग प्रदीपिका
३६ शिव संहिता
३७ वेदान्त सूत्र

फारसी और उर्दू

१ सम्प्रदाय—बी॰ बी॰ राय
२ कबीर और उनकी ताली
३ कबीर साहब—पं॰ मनोहरलाल जुत्शी
४ तजरीकीरुल फुकरा—नसीरुद्दी
५ खुलासा उत्तवारीख
६ मुन्तखिब उल तवारीख
७ आइने अकबरी (मूल)
८ दबिस्ताने मजाहिब (मूल)
९ खजीन अत्तुल असफिया (मूल)

अंग्रेजी

१ आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया नार्थ वेस्ट प्राविंसेस भाग २
२ ए हिस्ट्री ऑफ मरहठा पीपुल
३ ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटिकल फिलासफी—जार्ज ए० सेबाइन
४ ए हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया—डा० ईश्वरी प्रसाद
५ ए हिस्ट्री ऑफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर—डा० कीथ
६ एनार्किस्ट एण्ड कम्यूनिस्ट
७ एन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन्स एण्ड एथिक्स
८ ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर—की
९ ए स्केच ऑफ हिन्दी लिटरेचर—ग्रीव्स
१० एन आउट लाइन ऑफ रिलीजस लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान—फर्कुहर
११ एन इन्ट्रोडक्शन टु इण्डियन फिलासफी—दत्त एण्ड चटर्जी
१२ ब्रह्मनिज्म एण्ड हिंदूइज्म—मानियर विलियम्स
१३ क्रेसेन्ट इन इण्डिया—एस० आर० शर्मा
१४ क्रियेटिव इवोल्यूशन—वर्गसां
१५ दविस्तान-ए-मजाहिब—ट्रांसलेटेड बाई ट्रोयर एण्ड शी
१६ दीन इलाही—राय चौधरी
१७ गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज—ब्रिग्स
१८ गोरखनाथ एण्ड दि मेडिवल मिस्टीसिज्म—डा० मोहनसिंह
१९ हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया—डा० ईश्वरी प्रसाद
२० हिस्ट्री ऑफ राइज ऑफ मोहमेडन पावर—ब्रिग्स
२१ हिंदू ट्राइब्स एण्ड कास्टस् एज रिप्रेजेन्टेड एट बनारस—शेरिङ्ग
२२ हन्ड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर—रवींद्रनाथ
२३ हिस्ट्री ऑफ उड़ीसा—डा० बनर्जी
२४ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी—रानाडे एण्ड वेलवेलकर
२५ हिम्स फ्राम ऋगवेद—पीटरसन
२६ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी—राधाकृष्णन्

२७ हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स हिस्टोरियन्स (मुस्लिम पीरियड) इलियट एण्ड डाउसन
२८ हिस्ट्री ऑफ सूफीइज्म—आरबेरी
२६ इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर—डा० ताराचन्द
३० इण्डियन इस्लाम—टिटस
३१ आइडिया ऑफ परसनैलिटी इन सूफीइज्म—निकलसन
३२ इंडियन थीइज्म—मैकनिकल
३३ कबीर एण्ड हिज फालोअर्स—डा० की
३४ कबीर एण्ड दि कबीर पंथ —वेस्कट
३५ कबीर एण्ड दि भक्ति मूवमेण्ट—डा० मोहनसिंह
३६ कश्फुल महजूब (इंगलिश ट्रांलेशन)— प्रो० निकलसन
३७ कबीर—हिज बायोग्रैफी—डा० मोहनसिंह
३८ लाइफ ऑफ बुद्ध—राकहिल
३६ मेडिवल मिस्टीसिज्म—आचार्य क्षितिमोहन सेन
४० मिस्टीसिज्म इन मरहठा सेन्ट्स—प्रो० रानाडे
४१ मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम—निकलसन
४२ मिस्टीसिज्म—इवीलियन अंडरहिल
४३ माडर्न वरनाकुलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान—डा० ग्रियर्सन
४४ मिस्टीसिज्म इन ईस्ट एण्ड वेस्ट—रूडोल्फ
४५ निर्गुण स्कूल ऑफ हिंदी पोयट्री—डा० बड़थ्वाल
४६ आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर—शुशट्री
४७ आब्सक्योर रिलीजस कल्टस—डा० दास गुप्ता
४८ आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया—स्मिथ
४६ रिलीजस सेक्ट्स ऑफ दि हिन्दूज—विलसन
५० रामानन्द टु रामतीर्थ—(नटेसन कम्पनी मद्रास)
५१ रिलीजन ऑफ दि तन्त्राज
५२ रीडिंग्स इन पोलिटिकल फिलासफी
५३ ऋग्वेद संहिता—मैक्समूलर

५४ सिख रिलीजन—मैकलिफ
५५ शक्ति एण्ड दि शाक्त—वुडरुफ
५६ स्टडीज इन तंत्राज—बाग्ची
५७ स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टीसिज्म—प्रो॰ निकलसन
५८ साउथ इण्डियन पैलियोग्राफी—
५९ स्पिरिट ऑफ इस्लाम—मुहम्मद अली
६० सिस्टम ऑफ वेदान्त—डायसन
६१ सर्वे ऑफ उपनिषदिक फिलासफी—रानाडे
६२ सिक्स सिस्टम्स ऑफ इण्डियन फिलासफी—मैक्समूलर
६३ सर्पेंट पावर—एविलीयन आर्थर
६४ दि महावंशम्- डा॰ गायगर
६५ टेवेल्स—टेवेनियर
६६ थीइज्म इन मेडिवल इण्डिया—कारपेण्टर
६७ दि हिस्ट्री ऑफ बंगाल—डा॰ रमेशचन्द्र
६८ दि बीजक ऑफ कबीर—अहमदशाह
६९ वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम्स डा॰ भण्डारकर
७० वेदान्त सार—हिरयन्ना
७१ वैदिक रीडर—मेकडानेल
७२ वाटर युवान चुआँग
७३ योगोपनिषद—महादेव

अंग्रेजी पत्र पत्रिकाएँ

१ जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी—ग्रेट ब्रिटेन
२ गजेटियर—बनारस और आजमगढ़
३ जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल
४ इण्डियन एण्टीक्वेरीस्

——